प्रकाशकीय

भारतीय लोकजीवन की पुरातन और अधुनातन मान्यताओं की अभिव्यक्ति यदि एक साथ देखनी हो तो लोकसाहित्य की ओर दृष्टिपात करना चाहिये। गीतों, गाथाओं, कथाओ और कहावतो आदि में लोक-सस्कृति की जो धारा बही है, वह अक्षुण्ण और सार्वकालिक है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने पिछले कई वर्षों से हिन्दी भाषी प्रदेश के विशिष्ट क्षेत्रों के लोक-साहित्यिक अध्ययन का प्रकाशन किया है। डाक्टर शंकरलाल यादव का प्रस्तुत अध्ययन "हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य" इसी दिशा में आगे बढ़ा हुआ एक कदम है।

हरियाना, हिन्दी क्षेत्र का सीमान्त प्रदेश है। किसी समय यह प्रदेश आर्य सभ्यता एव संस्कृति का केन्द्र था। पुराण और पुराणोतर साहित्य में इस प्रदेश को विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। तात्पर्य यह कि संस्कृति की गरिमा से परिपूर्ण इस प्रदेश का लोकसाहित्य समृद्ध है।

विद्वान् लेखक ने गहन अध्ययन के बाद हरियाना-प्रदेश के विभिन्न रूपो—लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा तथा अन्य प्रकीर्ण साहित्य का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें भाषाशास्त्रीय प्रमुख विश्लेषणों के साथ सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पक्ष पर भी प्रामाणिक अध्ययन है। परिशिष्ट में एक वृहद् शब्दसूची भी दी गयी है। तीन गीतों की स्वर लिपि भी है।

आशा है, लोकसाहित्य के अध्येताओं के लिये यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी और विद्वत्समाज में समादृत होगी।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

विद्या भास्कर
मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

उपोद्घात

किसी देश की कृष्टि और संस्कृति का परिचय उस देश के लोकसाहित्य से पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। लोकसाहित्य जन-जीवन का आइना है। इस दर्पण में अनगढ़ जनता की भावनाओं का, सुख-दुखभरी विविध मनोवृत्तियों का प्रतिफलन होता है। नागर साहित्य में भाव और विचारों का प्रकाशन कलात्मक ढंग से, भाषा और कथन शैली के परिष्कार के साथ होता है परन्तु लोकसाहित्य में वह बिना किसी सजावट, बिना किसी बनावट के, स्वतः प्रस्फुटित होता है। लोकसाहित्य वह पौदा है जिसे किसी माली ने न तो सींचा और न काटा छाँटा है; वह तो बिना विशेष परिपोषण के पुष्पित और फलित होता है। इसीलिए इसकी सुगंधि मद और भीनी होती है। साहित्यिकता, संगीतात्मकता और कलात्मकता का लोकसाहित्य में नागर-साहित्य के समान उत्कर्ष नहीं मिलेगा परन्तु साहित्य, संगीत और कला का मूल प्रेरक स्रोत लोकसाहित्य और लोक-गीतों में ही निहित है। भाषा का मूल रूप भी इसी साहित्य मे प्राप्त होता है।

भारतीय जन-जीवन आदि काल से ही अपने सुख-दुख की बात को सहज अकृत्रिम ढंग से लोकसाहित्य के विविध रूपों में प्रकट करता आया है। आदिकाव्य रामायण के रचयिता महर्षि बाल्मीकि लिखित साहित्य के आदि कवि कहे जाते हैं। उनसे पूर्व भी लोक जीवन की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियाँ तत्कालीन जन-भाषा में प्रकट हुई होगी, परंतु आज उनके आकलन का लिपिबद्ध लेखा नगण्य है। लोकसाहित्य की धारा तब से अब तक भाषा परिवर्तन के साथ बहती चली आ रही है।

पाश्चात्य देशों में लोकसाहित्य का सकलन और उसके अध्ययन का कार्य १६ वीं शताब्दी के आरंभ से ही गंभीरता के साथ होने लगा था। इन्हीं पाश्चात्य मनीषियों से प्रेरणा पाकर हमारे यहाँ लोकसाहित्य का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी में लोकसाहित्य संग्रह का व्यवस्थित कार्य पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने किया। उन की 'कविता कौमुदी' इस दिशा की प्रथम पुस्तक मानी जाती है। आगे चलकर विश्वविद्यालयों में भी इस साहित्य के अध्ययन का कार्य आरभ हुआ।

कई वर्ष हुए मैंने अपने निरीक्षण मे लोकसाहित्य से संबंधित तीन विषय—भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, अवधी लोकसाहित्य का अध्ययन तथा

बुन्देलखण्डी लोकसाहित्य का अध्ययन—तीन विद्यार्थियों को दिये। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अथक परिश्रम के साथ कार्य करके भोजपुरी लोक-साहित्य पर प्रबन्ध पूरा कर दिया और उन्होंने पी० एच-डी० की उपाधि भी प्राप्त की; परन्तु अन्य दो विषयों पर कार्य पूर्ण न हो सका। ब्रज लोकसाहित्य का, डा० सत्येन्द्र जी का अध्ययन इस समय तक हिन्दी जगत् में आ चुका था। इसी बीच सन् १९५३ ई० मे श्री शंकर लाल यादव (अब डा० यादव) ने इस विश्वविद्यालय मे हिन्दी अनुसधान के लिए प्रवेश लिया और उन्हें मैंने उनकी अभिरुचि के अनुसार अपने निर्देशन में 'हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य' विषय के अध्ययन का कार्य दिया। डा० यादव हरियाना क्षेत्र में ही एक डिग्री कालेज के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे थे। उनकी मेधा और उनके उत्साह का परिचय मुझे मिल चुका था। उन्होंने बड़ी लग्न और परिश्रम के साथ यह कार्य सन् १९५७ में पूरा कर लिया और इस कृति पर उन्हें इस विश्व विद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

डा० यादव ने अपने इस शोध-प्रबंध में हरियानी खड़ी बोली के लोक-गीत, लोक-कथा, लोक-गाथा तथा अन्य प्रकीर्णक लोकसाहित्य के रूपों का अध्ययन किया है। इसके साथ ही उन्होंने लोकसाहित्य के रमणीयतम रूप 'लोक-नाट्य' पर भी विशेष प्रकाश डाला है। इस प्रकार का अध्ययन इस कोटि के अन्य अध्ययनों में नहीं है। लोकगीतों में मार्मिकता एव सहजानुभूति है तथा चित्रात्मकता का कैसा योग रहता है—यह एक मल्होर गीत में, मुझे डा० यादव ने एक समय सुनाई थी, बड़े सुन्दर ढंग से बैठा है :—

जोबण चाल्या छूट कै होलिया लम्बी राह।
क्यूँकर पकडूँ भाजकै मिरे गोड्यॉ म्हें दम नाय॥
मेरी बावली मल्होर।

प्रबन्ध के अन्त में बांगरू खड़ी बोली का एक संक्षिप्त शब्द-कोष भी डा० यादव ने दिया है। मेरे विचार में यह अनुसधान-कृति रोचकता और उपादेयता, दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि की है। डा० यादव इस समय लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में लोकसाहित्य के विशेषज्ञ प्राध्यापक हैं। उनकी लेखनी से लोक और नागरसाहित्य के अन्य ग्रन्थ भी प्रसूत हों, यह मेरी मंगल कामना है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग की ओर से हमने भी कुछ प्रकाशन हिन्दी-संसार के समक्ष प्रस्तुत किये हैं। इस ग्रन्थ को भी हम

छापते परंतु हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग (उत्तर प्रदेश) ने इस शोध-प्रबंध के प्रकाशन का कार्य अपने हाथ में लिया है। इसके लिए हम एकेडेमी की सराहना करते हैं। आशा है, इस ग्रन्थ के प्रकाशन से लोकसाहित्य के अध्ययन की अभिरुचि उद्दीप्त होगी और हिन्दी-जगत् लाभान्वित होगा।

—दीनदयालु गुप्त

डा० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, डी० लिट्०
अध्यक्ष,
हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ,
लखनऊ विश्वविद्यालय
विजयदशमी, २०१७

प्रस्तावना

यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो यथार्थ में लोकसाहित्य समाज की आत्मा का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। किसी देश की जातीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं आर्थिक माप के लिए यदि कोई वास्तविक पैमाना हमारे पास है तो वह उस देश का लोकसाहित्य ही है। यह अपने असस्कृतरूप में ही आकर्षक, अपनी कच्ची अवस्था में ही मधुर और अपनी हीनस्थिति मे ही उच्च तथा महान् है। उसके वैज्ञानिक एव व्यवस्थित अध्ययन की हिन्दी में बड़ी कमी रही है। मैंने इस पुस्तक रूप मे 'हरियाना प्रदेशीय लोकसाहित्य' का अध्ययन प्रस्तुत किया है। समूचे हरियानी लोक वाङ्मय को एक ही स्थान पर छूने की अथवा अनुशीलन की सामर्थ्य मुझ मे नहीं है। मैंने केवल कतिपय नमूने पाठकों के समक्ष रखे हैं। परन्तु जब गुलाब में कटक है, मयक में अंक है तब प्रस्तुत कृति में भी पाठकों को कुछ स्खलन एवं त्रुटियाँ मिले तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर भी, यदि इस पुस्तक से हिन्दी लोकवार्ता साहित्य का तनिक भी उपकार हुआ अथवा नाममात्र को भी किसी अभाव की पूर्ति हुई और साथ ही पाठको का कुछ भी मनोरजन हुआ, तो मै अपना प्रयास सफल समझूँगा।

"एष चेत् परितोषाय विदुषां कृतिनां वयम्"

—शंकरलाल यादव

वक्तव्य

१९४९ की बात है। मैं रेवाड़ी कालेज में हिन्दी प्राध्यापक रूप में पहुँचा। वहाँ पर छात्रावास मे रहने तथा स्थानीय निवासियों के सम्पर्क मे आने से जनपदीय बोली के साथ मेरा परिचय हुआ। संस्कृत व्याकरण, निर्वचन शास्त्र के अध्ययन और भाषातत्व-विज्ञान की शिक्षा ने मेरे भीतर भाषा के रहस्यों की खोज के प्रति जो आग्रह उत्पन्न कर दिया था उसे अब अपने विकास के लिए क्षेत्र मिला।

मै अवसर की प्रतीक्षा में था। सौभाग्य से मेरे अनन्य शुभचिंतक, सुहृद् और मुझे साहित्य-क्षेत्र मे सतत समुत्साहित किये रहनेवाले अग्रज सदृश रामकंवर जी, एम. ए. (कोसली रेवाड़ी) ने १९५१ के अन्त मे मेरी प्रवृत्ति को समझकर एक लोक संवादात्मक नाटक का अभिनय कराया। मैने यह अनुभव किया कि वे नाटकीय सवाद जो हरियानी बोली में थे, अपेक्षाकृत विशेष आकर्षक थे। इस बोली के संभाषण और गीतों में, राग और रागिनियों मे ओजस्विता, सामाजिकता, लोकवार्तातत्व और भाषायीतत्व प्रधानता से उपलब्ध थे। अब मैने अपने को उस बोली के निकट पाया जिसने आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी के निर्माण व विकास में एक महत्वपूर्ण कार्य किया है और जिसकी इस दिशा में एक मौलिक देन है। ऐसे ही कारणो से मेरी रुचि हरियानी बोली की ओर विशेषरूप से जागरूक हुई। मैने स्वय कुछ सामग्री एकत्र की और अपने कुछ छात्रों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया।

१९५२ के मध्य में, लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष डा० दीनदयालु जी गुप्त से मेरी भेंट हुई। मैंने हरियानी बोली के लोकसाहित्य के अध्ययन का अपना विचार उनके समक्ष रक्खा। डा० गुप्त जी ने मेरी प्रार्थना पर विचार किया और सहायता पहुँचाने का आश्वासन ही नहीं दिया, अपितु अपने विश्वविद्यालय मे अन्तेवासी के रूप में मुझे खोज-कार्य की अनुमति प्रदान कर कृतसंकल्प भी किया।

अब मेरा विचार हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य का वैज्ञानिक रीति पर अध्ययन करने का था। इसके लिए यह आवश्यक था कि सामग्री सब

प्रकार से यथार्थ एवं विशुद्ध हो। अतः मैंने इस कार्य की यथार्थता के लिए साधारण से साधारण कठिनाई भी उठाकर नहीं रखी है। इस सामग्री को स्वयं उस प्रदेश मे घूम-घूमकर मैने एकत्र किया है और फलस्वरूप कई बार परिव्राजक बनकर हरियाना प्रदेश मे भ्रमण करता फिरा हूँ। इस संकल्प का प्रतिशब्द मैंने जनता के मुख से सुनकर लिखा है और संग्रहीत किया है। प्रदेश के तीर्थों, मेलों, मठो और समाधियों पर भी मैने अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए श्रद्धा के पुष्प चढ़ाये हैं और प्रचुर सामग्री एकत्र की है।

एक कहावत है, "बारह कोस पर पाणी और बाणी बदल जाते हैं।" अतः मैंने बोली के इस सूक्ष्म परिवर्तन को समझ सकने और लिख सकने के लिए अपने पड़ाव प्रायः १८-२० कोस पर लगाये जिससे न्यून से न्यून परिवर्तन भी मेरी पकड़ से नहीं बच सके हैं। मेरे दौरों की कठिनाइयाँ अपना पृथक् अस्तित्व एवं इतिहास लिए हुए हैं। मै जिस गॉव में जाकर उतरता ग्रामीण जनता के लिए एक कौतूहल की वस्तु बन जाता था। वे न समझ पाते कि एक व्यक्ति जो पढ़ा-लिखा है, संभ्रांत एव स्वच्छ वेशभूषा धारण किये है, केवल कार्य करता है—हाली-हाली (ग्वाले) से कहानी सुनना, उनका सभाषण सुनना और बूढली (वृद्धा) लुगाइयों के पुरांटे गीत सुनना आदि। अधिकतर जनता मुझे सी० आई० डी० (गुप्तचर) विभाग का कोई अधिकारी समझती और मेरी उपस्थिति को सदैव संदिग्धरूप से देखती। अनुनय करने पर भी वे लोग मेरी बात पर ध्यान न देते और ओले-टोले मारकर मसखरी करके नौ दो ग्यारह हो जाते। वयस्क ग्वालिए अवश्य एक आध अश्लील-सी रागणी सुना देते जो सम्भवतः उनकी भावी नायिका की रूपरेखा मात्र खींचती थी। ऐसी स्थिति में स्त्री-गीतों को लेखनीबद्ध करने की तो बात ही दूर थी। इस सहज एवं निर्मूल ग्राम-सुलभ आशंका ने मेरे सामने कई बार प्रतिकूल परिस्थितियाँ तक उपस्थित कीं, जिनका वर्णन यहॉ अपेक्षित नहीं है। इतना लिखना तो अवश्य असंगत न होगा कि मुझे कई बार इन प्रतिकूल परिस्थितियों से बचने के लिए वहॉ से खिसकना पड़ा है। अनेक बार निराश कर देनेवाली कठिनाइयॉ आईं, परन्तु 'परदेश कलेस नरेसहुं को' के साथ धैर्यपूर्वक उन्हें भी सहा है।

अपने उद्देश्य में रत, मैंने मान-अपमान, भूख-प्यास आदि की चिंता न की और अपनी यात्राओं पर बराबर बढ़ता रहा। जनता ने भी मेरी क्षमता तथा साहस को पहचाना। अब कुछ लोग मेरी बात सुनने लगे। कुछ अपनी सतत उपस्थिति, मृदुल स्वभाव एव सिधाई से मैंने जनता को

अन्ततः अपनी ओर आकर्षित कर ही लिया और उनका भ्रम दूर हुआ। गॉव के सरपच, स्कूलो के अध्यापक एवं अन्य पेशेवाले लोग मेरे इस कार्य का कुछ-कुछ महत्व पहचानने लगे। इस उद्योग एव अध्यवसाय से जो निरन्तर चार वर्षों तक चलता रहा, मेरे पास मिलाकर कोई दो सहस्र छोटे बड़े गीत और कई सौ कहानियॉ सकलित हो गईं।

इस संग्रह की मेरी अपनी योजना रही है। खेत-क्यार में कीकड़ की छाया मे बैठकर, खेत-रक्षक के मचान पर चढ़कर, घसियारे की गठड़ी पर बैठकर मैंने इसका सचयन किया है। कहानी लिखने मे एक कठिनाई यह हुई है कि कई बार इन्हें ग्रामीण बोली मे लिख सकना दुष्कर रहा है। यह उस परिस्थिति मे हुआ है जब कथक तेजी से बढ़ा है और उसे धीरे-धीरे कहानी सुनाने में कठिनाई हुई है। कई कथकों की ऐसी प्रवृत्ति होती है कि जब वे कहानी सुनाना आरम्भ कर देते हैं तो उनके कठ के पट खुल जाते हैं और वे गांडीव के सदृश अप्रतिहत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। एसी स्थिति में कहानी खड़ी बोली मे ही लिखी जा सकी है। मेरे इस सग्रह मे से लगभग २२५ गीत और १५ कहानियॉ उन बटमारों के हाथ पडकर नष्ट हो गई जिन्होंने घग्गर के काठे में मुझे दिन धौले लूट लिया था। एक अधेड़ पुरुष मेरे उस झोले को लेकर चम्पत हो गया जिसमें मेरा रात-दिन का परिश्रम और ग्रामीण नर-नारियों का हृदय भरा हुआ था।

हरियानी लोकसाहित्य संकलन के पश्चात् मैंने हरियानी भाषा के इतिहास तथा विकास, प्रादेशिक संस्कृति तथा अन्यान्य ज्ञातव्य बातो के लिए सामग्री एकत्र की। इसके लिए मैं शिक्षित जनता के सम्पर्क में आया और प्राचीन लेख, हस्तलिखित पुस्तके तथा ऐसी ही अन्य उपयोगी सामग्री को मैंने खोजा। इस प्रकार इलाके की पूरी जानकारी मुझे हुई।

मेरी अगली योजना की यह विशेषता रही है कि मैंने जोगी, भाट, मिरासी, डूक और भोपा आदि से लोक-गाथाए एकत्र कीं। हरियाना प्रदेश के नामीगिरामी रागियों से यहां के प्रसिद्ध राग सुने और लेखबद्ध किये। जींद रियासत के बौंदखुर्द ग्राम के प्रसिद्ध गायक भान्ना जोगी से हरियाने का लोकप्रिय राग 'निहालदे' सुना। मांडौठी ग्राम (रोहतक) के चतरू सूरदास से उसका दूसरा पाठ लिखा। तीसरा पाठ बाबा मगल भारथी के मुखारबिंद से अधिगत किया। ढाणा खुर्द (हांसी) के श्रीचद हरिजन के सौजन्य से "गुरु गूगा का साका" प्राप्त किया। नरवाना (पटियाला) से दुर्गा की लड़ाई का किस्सा अथवा "देवी का जुज्झ" लेखबद्ध किया। गोहाणा से

(रोहतक) 'राग राव किसन गोपाल' हस्तगत किया। महम से महमी साधुओं के उदात्तचरित्र वाले अवदान एकत्र किये। दादरी, हिसार, तोषाम और पानीपत से पूरनमल, गोपीचद भरथरी, रूपवसत आदि लोक-गाथाओं को हासिल किया। इस प्रकार मैने हरियाने की सभी मुख्य-मुख्य गाथाएँ एकत्र कीं; परतु विस्तारभय से केवल तीन गाथाएँ—निहालदे, गुरु गूगा और राग राव किशनगोपाल ही मैंने सविस्तार यहाँ दी हैं। ये सभी राग (गाथाए) अप्रकाशित हैं, नूतन हैं एव मौलिक हैं। इस सग्रह का एक राग किस्सा राव किशन गोपाल अभी तक उपेक्षित रहा है। उसे पाठको के समक्ष रखने का श्रेय प्रस्तुत लेखक को है। यह राग एकदम मौलिक एव यथार्थ है। पजाब की लोकगाथाओं के यशस्वी उद्धारक सर आर. सी. टेम्पल ने अपनी पुस्तक 'दि लीजेन्ड्स आव् दि पजाब' भाग ३ में ५८ गाथाए सग्रहीत की हैं। उनमें से १७ हरियाने मे प्रचलित हैं एव प्रिय हैं। परतु हमारे संग्रह के सभी राग (गाथाएं) इनसे पृथक् हैं, अतः सुतरां मौलिक हैं।

इस प्रकार मैंने अनेक यात्राए करके हरियाना प्रदेश के साथ सान्निध्य स्थापित किया है। मुझे गर्व है कि इस महान् प्रदेश के साथ मै तादात्म्यलाभ कर सका हूँ। संक्षेप में यही मेरे इस संग्रह का इतिहास है।

सग्रह के उपरांत अपने शोधकार्य को यथासंभव पूर्ण, प्रामाणिक एवं व्यापक बनाने में कोई कमी मैंने नहीं छोड़ी है। इस कार्य के लिए मुझे अनेक सम्पन्न पुस्तकालयों मे अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इनमें से केन्द्रीय पुरातत्व पुस्तकालय, दिल्ली; केन्द्रीय सचिवालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय प्रमुख हैं। मैने रोहतक, हिसार, कर्नाल, गुड़गांव, जींद और पटियाला नाभा आदि जिला व रियासतों के सभी गजेटियर देखे हैं। लिखना प्रारंभ करने से पूर्व मैने लोकवार्ता के धुरीण विद्वान्—फ्रेजर और टेम्पिल (बर्न एव विशप) विचारक रस्किन और श्री राहुल साकृत्यायन, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, भारतीय लोकसाहित्य मर्मज्ञ सत्येन्द्र एवं सत्यार्थी, ग्रियर्सन और एलविन, त्रिपाठी तथा मेघाणी, पारीक एवं राकेश और दुबे तथा उपाध्याय आदि सभी विद्वानों के साहित्य का अध्ययन किया है।

इस प्रयत्न से पूर्व इस दिशा में दो कार्य—'ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन' तथा 'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन' क्रमशः डा० सत्येन्द्र एव डा० कृष्णदेव उपाध्याय के मेरे देखने में आये हैं। इस निबंध के तैयार करने में मैंने डा० कृष्णदेव उपाध्याय के ग्रन्थ को पथिकृत् रूप में रखा है। यह

ग्रथ भी पी-एच० डी० के लिये डा० गुप्त के निर्देशन मे लिखा गया था। श्री एम० एस० रंधावा की पुस्तक 'हरियाना के लोक-गीत' अभी प्रकाशित हुई है परन्तु वह प्रयत्न साधारण, एकागी एव् कृशकाय है। उसमे हरियानी लोकसाहित्य के केवल एक रूप-गीतो को ही लिया गया है। अतः यह गर्व के साथ कहा जा सकता है कि प्रस्तुत लेखक का यह कार्य अपने क्षेत्र में मौलिक एव नूतन है। इस निबन्ध के निर्माण में मेरा अपना मौलिक दृष्टिकोण ही सर्वत्र रहा है। मैने सामग्री को वैज्ञानिक रूप से जॉच की है और उसके अध्ययन के लिए एक नूतन एव मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाई है। प्रारम्भ मे लोकसाहित्य एव लोकवार्ता विषयक विवेचनापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय मे हरियाना प्रदेश के प्रामाणिक इतिहास की खोज की गयी है और उसकी प्राचीन गौरवगाथा को परखा गया है। द्वितीय अध्याय में हरियानी बोली का भाषायी अध्ययन दिया गया है। ऐसा करने में हमारा यह लक्ष्य रहा है कि पाठक हरियानी लोकसाहित्य—गीत, कथा, गाथा तथा विविध साहित्य के रसचर्वण के लिए हरियानी बोली से अभिज्ञता प्राप्त कर लें। हरियानी के स्थान-स्थापन (लोकेशन) के लिए भाषायी मानचित्र दिया गया है जिससे पुस्तक का मूल्य बढ़ा है। इस प्रयत्न को मैं मौलिक एव खोजपूर्ण समझता हूॅ। अगले चार अध्यायों मे हरियानी लोकसाहित्य का सविस्तार अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अध्याय मे गीतों के अध्ययन के पीछे 'साहित्यचर्चा' नाम से कलापारखियों के मनोरजनार्थ एक सूक्ष्म-विवेचन और दिया गया है। अतिम अध्याय में हरियाना प्रदेश की लोक संस्कृति का चित्र उपस्थित किया गया है। सबसे अंत में एक परिशिष्ट भाग जोड़कर पुस्तक को पूरा किया गया है। इसमें दो हरियानी लोक कहानिया दी गई हैं जिससे हरियानी के रूप-निर्धारण मे पाठकों को सरलता होगी। कोषकारो के उपयोग के लिए एक बृहद् शब्द सूची भी दी गई है। इससे हरियानी बोली के शब्द-भडार का सहज ही ज्ञान हो जायेगा। साथ ही नमूने के तौर पर तीन गीतों की स्वरलिपि भी दी गई है। इस प्रकार लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को सभी दृष्टियो से उपयोगी बनाने की चेष्टा की है।

अत मे, एक बात और कह देना चाहता हूॅ कि प्रस्तुत प्रयत्न मे मैंने सिद्धांतवादिता की कोई बात नहीं कही है। न मैंने किसी नूतन दिशा की ओर संकेत किया है और न कोई नई थ्योरी ही खोज निकाली है। मैने तो केवल हरियाना प्रदेश में प्राप्त लोक-साहित्य की साधारण-सी चर्चामात्र की है। मेरा विश्वास है कि लोकसाहित्य अध्येता के लिए यह पुस्तक अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी।

साथ ही जिन सज्जनों से मुझे अपेक्षित सहयोग तथा मुहमाँगी सहायता, आशा एवं उत्साह मिला है उनके प्रति भी कृतज्ञता प्रकाशित करना मै अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम मै डा० दीनदयालु जी गुप्त के प्रति आभारी हूँ जिनकी महती कृपा से मैं इस प्रशस्त पथ पर अग्रसर हुआ। गुप्त जी की अनुकम्पा के बिना सभवतः मेरा औत्सुक्य एव उत्साह कली रूप में ही सीमित रहकर मुर्झाकर सूख जाता। उन्हीं के निर्देशन मे यह प्रबन्ध लिखा गया है। डा० भगीरथ मिश्र और डा० सरयू प्रसाद जी अग्रवाल का भी कृतज्ञ हूँ, उन्होंने भी समय-समय पर मुझे मार्ग दिखाया है। इन दोनो सज्जनो के साथ बैठकर कई बार मैने अपने विषय की विवेचना और आलोचना की है। वैसे तो मेरे सहायकों की नामावली बड़ी लम्बी है, फिर भी कुछ महानुभाव ऐसे हैं जिनका नामोल्लेख किए बिना मै अवश्य ही अपने कर्तव्य में एक त्रुटि छोड़ जाऊँगा।

इस क्रम में, श्री देवेन्द्र सिंह (छारा रोहतक) का नाम विशेष रूप से स्मरण रहेगा जिनके यहाँ अब से ५ वर्ष पूर्व इस कार्य का श्रीगणेश हुआ। श्री खजान सिह चौधरी (रोहतक) मेरे उन छात्रों मे से एक हैं जिन्होंने मुझे लज्जाशील महिला जगत् के सव्रीडकठ से गीत लिखने में सबसे अधिक सहायता प्रदान की। निश्चय ही उनके बिना मेरा यह कार्य इतना सम्पन्न न होता। मैं इनका कृतज्ञ हूँ। पं० जयनारायण जोशी (हांसी) ने मुझे हरियाना प्रदेश मे प्रचलित नानाविध अनुष्ठान, संस्कार, आचार, परम्परा एवं विश्वास आदि का साक्षात् ज्ञान कराया। दादरी (जींद रियासत) के पं० जयन्ती प्रसाद व्यास और उनके साथी जैलाल सूरदास ने मुझे भरसक सहायता दी। वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। रोहतक जिले के परिभ्रमण में मेरे एक दूसरे छात्र श्री छोटूराम यादव ने जो मेरी सहायता की है वह स्मरण की वस्तु है। पानीपत में श्री ब्रह्मानद जी गोयल, प्रधानाध्यापक, स्थानीय जैन हाई स्कूल ने अपने इलाके से जो सामग्री एकत्र करवाई है, वह अमूल्य है। कर्नाल, कैथल, गोहाणा, नरवाणा और जारवल आदि स्थानों के कई हितैषी मेरी सहायक-सूची के रत्न हैं। सौनीपत में भाटों की चौपाल के वे दिन मुझे चिरकाल तक स्मरण रहेंगे जहाँ मुझे कहानियों की अपार निधि मिली है। भिवानी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार श्री कन्हैयालाल जी भिन्डा का मेरे प्रति बड़ा सदयता का व्यवहार रहा है। निःसंदेह, वे मेरे सबसे बड़े सहायकों में से एक हैं। मैं उनके उपकारों से कदापि उऋण न हो सकूँगा। कप्तान राव वीरेन्द्र सिंह जी (रामपुरा) ने अपने पुस्तकालय से अमूल्य सहायता प्रदान की। वे मेरी श्रद्धा के पात्र हैं। श्री एच. पी. पटेल

(नडीयाद) ने मुझे गुजराती भाषा और साहित्य का परिचय कराया है। गायनाचार्य मास्टर श्री राम जी ने कई गीतों की स्वर-लिपि तैयार कर मुझे सक्रिय सहायता प्रदान की। हरियाना प्रदेश के भाषायी मानचित्र तैयार करने मे श्री लक्ष्मी नारायण वर्मा, एम. ए., ने जो परिश्रम किया है वह कदापि भुलाया न जा सकेगा। वे धन्यवाद के पात्र हैं। मेरी पत्नी ने अनेक महिलाओं की सहज सल्लज वाणियों को कागज पर प्रतिष्ठित कर मेरी जो सहायता की है वह अनुपम है। भोरका (हिसार) की श्रीमती कुंती जी का स्नेह भी प्रशंसनीय है जिन्होंने स्त्री-सुलभ लज्जा मिश्रित चाव से तथा निस्स्वार्थभाव से अपने सरस एवं अमूल्य गीतरत्नों से मेरी झोली भरी है। वे धन्यवाद की पात्री हैं।

अत मे, मै ज्ञात-अज्ञात उन सब सहायकों का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी तनिक भी सहायता की अथवा परदेश मे मुझे सुख-सुविधा दी।

—लेखक

विषय-सूची

विषय-प्रवेश १७-४८

प्रथम अध्याय ४९-७८

द्वितीय अध्याय ७९-११९

तृतीय अध्याय १२१-३३६

चतुर्थ अध्याय ३३७-३७६

पंचम अध्याय ३७७-४०८

षष्ठ अध्याय ४०९-४५५

सप्तम अध्याय ४५७-४७५

परिशिष्ट

———

विषय-प्रवेश
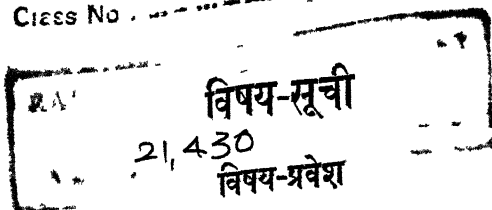
क. लोकसाहित्य का अध्ययन : प्रवृत्ति-पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य तक लोकसाहित्य एक उपेक्षित विषय था। महिलाओं द्वारा गाये गये गीतो को ऊल-जलूल, हुलियारे की होलियों और फागो को अल्लाना, किस्सों को रिक्तमन की वाचालता और दंतकथाओं को शब्दाडम्बर समझा जाता था। बच्चों की तुकबन्दियों को भी निरर्थक शब्द-जंजाल कहा जाता था। परन्तु आज हम उन्हें एक विशेष सम्मान और गौरव व राष्ट्रीय निधि एवं सांस्कृतिक थाती के रूप में पाते हैं।

लोकसाहित्य एक ऐसा विषय है जिसका सम्यग् अध्ययन किये बिना हम किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म व रीति-रिवाज, कला और साहित्य, सामाजिक अभ्युदय एव आकाक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन नहीं कर सकते हैं। शास्त्र-सम्मत कला व साहित्य से हमे किसी देश विशेष की तत्कालीन सम्मुन्नत सस्कृति का आभास भले ही मिल जाय; परन्तु अमुक संस्कृति कैसे पनपी, इसका सकेत पाना कठिन कार्य है। जबकि लोकसाहित्य के द्वारा यह कार्य सुतरा सुलभ हो जाता है। अतः लोकसाहित्य का अध्ययन बड़ा आवश्यक एव महत्वपूर्ण है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने एक स्थान पर बड़े मार्के की बात कही है कि लोकसाहित्य जनता की सम्पत्ति होने के कारण लोक-सस्कृति का दर्पण है।[1]

लोकसाहित्य के अध्ययन ने ससार को आज एक विशेष प्रकार की जिज्ञासा, कौतूहल तथा आश्चर्यानुभूति मे डाल दिया है। इस उपेक्षित लोक-साहित्य सामग्री मे हमारी विशाल संस्कृति का पुनीत इतिहास व्यक्त है। हमारे शिष्ट साहित्य का उद्गम-स्रोत भी यही लोकाभिव्यक्ति है और हमारे समुन्नत साहित्य के विकास की जड़े भी लोकमानस की भावभूमि से ही तत्वग्रहण करती हैं। भारतवासियों का भी जीवन सदा से काव्यमय रहा है और वह लोकसाहित्य से परिपूर्ण है। फलतः भारतीय जीवन के उषःकाल से हमें लोक-साहित्य के दर्शन होते हैं।

लोकसाहित्य किसी एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों द्वारा बनाया नहीं जाता। यह तो समस्त समाज का उल्लास और उच्छ्वास होता है। इसके

---

१. डा० उपाध्याय—'भोजपुरी ग्राम गीत' द्वितीय भाग, वक्तव्य पृष्ठ १।

निर्माण मे समग्र समाज का हाथ होता है। यह एक परम्परागत निधि है जिसे लेखनी ने न कभी संवारा है, न सजाया है और न कदाचित् कभी इसे लेखनी की सहायता ही मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान-पतन हुआ, साहित्य बना और बिगडा परन्तु लोकसाहित्य का स्रोत कभी शुष्क नही हुआ और आज भी उसकी धारा अविरल रूप से प्रवहवान है।

लोकसाहित्य का अध्ययन करनेवाले अग्रणी विद्वान् यूरोप के हैं। यूरोप मे बहुत पहिले से ही लोकसाहित्य पुरातत्व (आरक्यालाजी) और नृ-विज्ञान (एंथ्रापालाजी) के अध्ययन का आवश्यक सहायक रहा है। इस प्रसग में, विशप परसी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होने सत्रहवी शताब्दि के मध्य मे पाश्चात्य गीतो के एक प्राचीन सग्रह की खोज की। विशप परसी के उपरान्त प्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट ने अग्रेजी लोकगीत सौन्दर्य की ओर जनता को आकर्षित किया और अपनी रचनाओ मे यत्र-तत्र उस सामग्री का उपयोग भी किया। इसी शताब्दि के उत्तरार्द्ध मे अर्थात् सन् १६८१ ई० म जाहन औब्रे, महोदय ने 'रीमेस आव् जेंटिलिज्म एन्ड बुडाइज्म' पर जो विवेचना दी है वह यहूदियों तथा अन्य साधारणजन के विषय मे बड़ी पते की बाते बतलाती हैं। १७७७ मे जोहन ब्रेंड ने 'आवजर्वेशन आन दि पोपुलर एन्टीक्कुटीज आव दि ब्रिटिश आइल्स' पर एक पुस्तक लिखकर इस अध्ययन को आगे बढ़ाया। १८वीं शताब्दि मे 'रेलिक्स आव इगलिश पोइट्री' को लिखते समय विशप पीरी ने लोकगीतों को ही स्थान दिया है।

उन्नीसवीं शताब्दि विश्व के लोकसाहित्य के इतिहास मे एक क्रान्तिकारी युग है। इस शताब्दि में लोकसाहित्य के क्षेत्र में कितने ही प्रशस्त एवं विशद उद्योगों का सूत्रपात हुआ है। १८२६ ई० प्रकाशित 'होन महोदय' की 'ऐवरी-डे बुक' में भी लोकसाहित्य सम्बन्धी सम्यक् विवेचना भरी है। आगे चलकर ग्रिम-बंधुओं ने विशेष रूप से जेकबग्रिम ने भाषा-विज्ञान (भाषाशास्त्र) और माइथालाजी (धर्मगाथा) के क्षेत्र मे लोकसाहित्य के सिद्धान्त रूप में उपयुक्तवा सिद्ध की। इस नव्य भव्य प्रयत्न के कारण जर्मनी के इन विद्वानों का नाम सदा स्मरण रहेगा। इनकी दो पुस्तके 'किंडर एन्ड हउसमारर्वे' और 'दे उत्सके माइथालाजी' क्रमशः सन् १८१२ और १८३५ ई० मे प्रकाशित हुई। इन जर्मन विद्वानों ने अपने इस नये प्रयत्न द्वारा लोकवार्ता जैसी उपेक्षित सामग्री के अध्ययन को एक वैज्ञानिक रूप दिया। इनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक एवं उदार था। ग्रिम-बंधुओं की प्रेरणाओं, मान्यताओ और धारणाओ के उपरान्त इस अध्ययन की ओर अन्य अनेक विद्वानों का ध्यान गया और

जनता मे भी एक उत्कट रुचि उत्पन्न हुई।

इस युग तक योरप के विद्वानों का परिचय संस्कृत के साथ हो चुका था। वेदो के अध्ययन ने इस ओर एक नया द्वार खोला। इस वैदिक अध्ययन के द्वारा साहित्य की प्राचीन ग्राम्य सामग्री को परखा गया और उसकी वैज्ञानिक छानबीन की गयी। अभी तक मैक्समूलर आदि प्राग्विद्या-विशारदों का यह विचार था कि लोकवार्ता सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु की वैदिक कसौटी पर परख होनी चाहिए परन्तु यह विचार आगे लोकवार्ता-शास्त्रियो को मान्य नहीं रहा। इसके विपरीत, उन विद्वानो ने यह प्रमाणित किया कि लोकवार्ता की व्याख्या के लिये वेदो की ओर देखने की आवश्यकता नहीं। इस प्रवृत्ति के जनक थे श्री ई० बी० टेलर और सर जेम्स फ्रेजर। टेलर महोदय का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण था। स्वय फ्रेजर महोदय इनके बड़े कृतज्ञ थे। उन्होने स्वयं एक स्थान पर कृतज्ञता प्रकाश करते हुए लिखा है कि डा० "ई० बी० टेलर के ग्रंथो के अध्ययन से मेरी रुचि समाज के प्राचीन इतिहास की ओर जाग्रत हुई और मेरे सामने उस लोक के दर्शन हुए जिसका स्वप्न भी नहीं देखता था।[1]" दो अन्य महानुभाव, जिनका प्रभाव फ्रेजर महोदय पर पडा, श्री मन्नहार्ट और डब्ल्यू राबर्ट्सन स्मिथ थे। इनकी प्रेरणा के फलस्वरूप १८६० ई० में फ्रेजर महोदय की 'दि गोल्डन बो' जो लोकवार्ता की 'बाइविल' कहलाती है, प्रकाश मे आई। इस ग्रन्थ के कई भाग हैं जो लोकवार्ताशास्त्रियो के लिए बडे महत्व के हैं। यही वह ग्रन्थ है जिसकी रचना ने लोकवार्ता के अध्ययन में एक नई दिशा दी। वैदिक अध्ययन का लोकवार्ता के प्रति जो आग्रह था वह न रह गया। इनके प्रयत्नों से यह सिद्ध हुआ कि लोकवार्ता की आदिम एवं मौलिक प्रवृत्तियों का संधान असभ्य, अर्द्धसभ्य, अशिक्षित एव हब्शी लोगो के आचार-विचार, ऐतिहासिक-दशा आदि मे होना चाहिए। फ्रेजर महोदय का मत इस ओर बड़ा स्पष्ट है :—

"आर्यो के आदिम धर्म के शोध का कार्य या तो कृषिजीवी लोगो के अध-विश्वासों (मूढ़ग्राहों), विश्वासों और रीति-रिवाजों से आरम्भ होना चाहिए या उनका उपयोग करते हुए निरंतर उसका संशोधन और नियंत्रण होते रहना चाहिए। जीवित प्रथाओ की साक्षियों के समक्ष पूर्वकालीन धर्म के विषय मे प्राचीन ग्रन्थों की साक्षी का विशेष महत्व नहीं है।" फ्रेजर महोदय का कहना है कि लिखित साहित्य के द्वारा विचार-पद्धति इतनी तीव्रता से आगे बढ़ती है कि यह साधारण जन के कंठ से प्रचारित मत और

---

१. 'दि गोल्डन बो' की भूमिका लेखक श्री जेम्स फ्रेजर।

विश्वासों को बहुत पीछे छोड़ जाती है। फ्रेजर महोदय के सतत तथा सफल उद्योगो के परिणामस्वरूप लोकवार्ता-विशारदो की दृष्टि आर्यक्षेत्र के बाहर भी गयी और विस्तृत हुई। श्री ऐंड्रू लैंग ने इस अध्ययन-क्षितिज को और भी दीप्ति प्रदान की। परिणाम-स्वरूप अंधविश्वास आदि धार्मिक तत्व इस आदिम समाज मे आदिकाल से ही पोषित हुए। इनका अध्ययन मानव-इतिहास की नींव तक पहुँचने में बडा सहायक सिद्ध हुआ है और होगा भी। यह नृ-विज्ञान और समाज-विज्ञान की उन गुत्थियो के सुलझाने मे समर्थ होता है जो अभी तक जटिल बनी हुई हैं।

उपरोक्त पाश्चात्य प्रयत्नों के अतिरिक्त आज भी पश्चिम के विद्वान प्रयत्नशील हैं। इस ओर सबसे अधिक सचेष्ट और संयत प्रयत्न आधुनिक-काल मे अमेरिका के कुछ अध्यवसायी विद्वानों ने किया है। उनमें प्रो० एफ० जे० चाइल्ड का नाम विशेष उल्लेखनीय एवं प्रख्यात है जिन्होने इंगलैंड और स्काटलैंड के एक-एक लोकगीत को बड़ी छानबीन के साथ खोजा है और उनकी अन्य देशों के गीतो के साथ तुलना की है। इन प्रयत्नों पर अंग्रेजी साहित्य को गर्व है।

उपरोक्त वर्णन उन उद्योगो का है जिनके द्वारा योरप और अमेरिका में लोकवार्ता का कार्य बढ़ा और विकसित हुआ। सौभाग्य से इसकी लहर भारत में भी आई क्योंकि जिन दिनों लोकवार्ता सम्बन्धी प्रयत्न पश्चिम मे हो रहे थे, भारत का सम्बन्ध भी पश्चिम से बढ़ रहा था। भारत की लोकवार्ता पर भी इनकी दृष्टि पड़नी स्वाभाविक थी। फलतः टॉड महोदय ने 'एनाल्स् आव राजस्थान' लिखते समय राजस्थान के इतिहास के लिए बहुत-सी लोक-वार्ताओं का आश्रय लिया तथा उसका भरपूर उपयोग किया। किसी लिखित इतिहास के अभाव में बहुत सी मुख-परम्परागत सामग्री को आधार बनाया गया। उसकी जॉच की गई और तथ्यपूर्ण सामग्री का यथोचित उपयोग भी किया गया। सामयिक विश्वासों एव रीति प्रथाओं का पर्याप्त वर्णन टॉड-राजस्थान में मिलता है। अतः पक्षपातरहित होकर यह कहा जा सकता है कि टॉड महोदय ही भारत के सर्वप्रथम लोकवार्ता-संग्राहक हैं। टॉड के बाद लगभग ५० वर्षों तक भारत में इस दिशा में कोई स्तुत्य प्रयत्न नहीं हुआ। फिर सन् १८८४ में सर आर० सी० टेम्पल महोदय (तत्कालीन पंजाब में कमिश्नर) ने 'लीजेन्ड्स आव दि पंजाब' तीन भागों में प्रकाशित कराके इस उपेक्षित सामग्री की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। इन्होने एक विशिष्ट लग्न एवं अध्यवसाय के साथ पंजाब भर के किस्सों का (गाथाओं और अवदानों का) संग्रह किया। इन पुस्तकों की भूमिका में सर टेम्पल ने बड़े

पते की बाते बतलाई हैं। उन्होने प्रथम भाग की भूमिका मे लिखा है कि ये अपनी आफिशियल ड्यूटी से समय निकालकर स्थानीय मेलों-टेलों में जाते, विवाहादि उत्सवों में सम्मिलित होते और रात-रात भर जागकर नौटकी और स्वांगो को भी देखते थे। इन्होंने बहुत से किस्से[1] कहनेवालों को महीनों तक पैसे देकर लिखवाने का कार्य किया। सन् १८६६ ई० मे रैवरेंड एम० हिस्लप के वे लेख जो मध्यभारत की आदिम जातियों के सम्बन्ध में थे, प्रकाशित हुए। सर टेम्पल से सन् १८६८ मे मिस फ्रेयर ने 'ओल्ड डैकनडेज' नाम का एक लघु सग्रह प्रकाशित कराया था। इसके तीन वर्ष पश्चात् सन् १८७१ मे डाल्टन महोदय की 'डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आव बगाल' का प्रकाशन हुआ। इन्ही दिनो भारतीय पुरातत्व और इतिहास की सामग्री को लेकर चलनेवाली एक सुप्रसिद्ध पत्रिका 'इंडियन एंटिक्वेरी' में बहुत-सी लोकवार्ता सम्बन्धिनी सामग्री छपनी आरंभ हुई। रेवरेंड लालबिहारीडे की 'फोक्टेल्स आव बंगाल' सन् १८८३ में प्रकाशित हुई। अगले वर्ष अर्थात् सन् १८८४ में टेम्पल महोदय के वे तीन ग्रथ निकले जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। सन् १८८५ में श्रीमती एफ० ए० स्टील की वे कहानियाँ प्रकाशित हुईं जिनका सग्रह 'वाइड अवेक स्टोरीज' के नाम से हुआ है। इस पुस्तक के प्रकाशन का सौभाग्य भी सर टेम्पल को ही है। नटेश शास्त्री ने 'फोकलोर इन सदर्न इंडिया' लिखकर इस प्रयत्न में सहयोग प्रदान किया है।

सन् १८६० मे डब्ल्यू० कुक ने 'नार्थ इडियन नोट्स एन्ड क्वेरीज़' नाम से एक स्वतंत्र पत्रिका निकालनी प्रारम्भ की। इनके साथ ही रेवरेंड ए० कैम्बल तथा रेवरेंड जे० एच० नोलीज के सदुद्योगो से सथालों की और काश्मीर की कहानियाँ पाठकों के सामने आईं। आर० एस० मुकर्जी की 'इंडियन फोकलोर', श्रीमती ड्रकौर्ट की 'शिमला विलेज टेल्स', रेवरेंड सी० स्विनर्टन की 'रोमांटिक टेल्स फ्रोम पजाब' लोकवार्ता की महत्वपूर्ण सामग्री से भरी पड़ी है। श्री जी० एच० बोम्पस और रेवरेंड ओ० बौडिग का नाम 'संथाली' कहानियों के साथ सदा स्मरण रहेगा। एम० कुलक की 'बंगाली हाउस होल्ड टेल्स' और श्रीमती शोभना देवी की 'ओरिएन्ट पर्ल्स' की लोकवार्ता सम्बन्धिनी महत्ता कितनी है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। पार्थर महाशय द्वारा प्रकाशित 'विलेज फोक टेल्स आव सीलोन' के

१. 'किस्सा' पंजाब का एक व्यापक शब्द है जो किसी कहानी, स्वांग, गाथा और अवदान आदि के लिए प्रयुक्त होता है। प्रायः लघु-गीत को छोड़कर शेष समस्त लोकवार्ता के लिए इसका प्रयोग देखा जाता है। गाथा शब्द के लिए राग भी प्रचलित है।

तीन भाग किस लोकवार्ता-अध्येता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं करते ? पेंजर और टानी द्वारा प्रकाशित कथासरित्सागर लोक वार्ता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। यह कथाशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इस सम्बन्ध में भारत के लब्धप्रतिष्ठ नृ-विज्ञानवेत्ता शरच्चंद्र राय का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता। इन्होंने अपनी खोज में प्राचीन कहानियाँ दी हैं। ग्रिगसन महोदय का नृ-अध्ययन भी प्राचीन कहानियो के विश्लेषण का परिणाम है। 'इंडियन फेबिल्स' के कर्ता 'रामस्वामी राजू' का नाम भी उल्लेखनीय है। अपने इस सग्रह में उन्होंने सौ भारतीय कहानियों को स्थान दिया है। जी० आर० सुब्राह्मिया पतालु का 'फोकलोर आव दि तेलगूज'' प्रौढ़ तथा साहित्यिक आलोचना से पूर्ण एक अनुपम संग्रह है। मारिस ब्लुम फोल्ड, नार्मन ब्राउन, रूथ नार्टन, एम० बी० एमेन्यू आदि अमेरिकन लोकवार्ताशास्त्रियो का भी नाम इस ओर आता है। इन्होंने और उपन्यासकार स्कॉट ने जिसका उल्लेख प्रथम पृष्ठो में हो चुका है, लोककथाओं और लोकगीतो के अध्ययन की एक बिल्कुल नवीन तुलनात्मक प्रणाली स्थापित की है।

आजकल भारतीय लोकवार्ताशास्त्र के प्रमुख विद्वान नृ-शास्त्री डॉ० वैरियर एलविन हैं जिन्होंने मुडा और संथाल आदि आदिम जातियो पर विशेष कार्य किया है। चाइल्ड और रिचार्ड महोदय का नाम और काम भी स्तुत्य है। किन्तु इस प्रसंग में यह भी स्मरण रखने योग्य है कि उपरोक्त जितने भी उद्योग एवं प्रयत्न इस ओर हुए हैं वे सब अंग्रेजी को माध्यम बनाकर चले हैं। फिर भी ये सभी भारत में लोकवार्ता क्षेत्र के अग्रणी हैं और इनकी प्रेरणा से बहुत-सा कार्य हुआ है।

लोकवार्ता के अन्तर्गत लोकगीतों का भी संग्रह एवं अध्ययन हुआ है। सन् १८७२ में श्री सी० आई० गोवर ने 'फोक्सांगस् आव सदर्न इंडिया' को प्रकाशित कराया। श्री तोरुदत्त का 'एंशियेंट बैलेड्स एन्ड लीजेन्डस आव हिन्दुस्तान' सन् १८८२ में प्रकाशित हुआ। सर टैम्पल महोदय ने जिनका उल्लेख पहिले पृष्ठों में हो चुका है 'लीजेन्ड्स आव दि पंजाब' मे गीत ही संग्रहीत किये हैं जो बड़े-बड़े गीत रूप में 'किस्सा' कहलाते हैं।[1] क्षितिमोहन सेन का बंगला में 'दारामणि' नाम का संग्रह विख्यात है। 'मैमनसिंह गीतिका' में

---

१. हरियाना में बड़े-बड़े गीत किस्सा के नाम से पुकारे जाते हैं जिन्हें नाम अकदान अथवा गाथा दिया जाता है।

भी बंगाली गीत ही संग्रहीत हैं। झबेरचंद मेघाणी द्वारा प्रकाशित 'रढ़ियाली रात' ३ भाग, रणजीतराव मेहता के 'लोकगीत', नर्मदाशंकर लाल 'शकर' के 'नागर स्त्रियो माँ गवातागीत' आदि गुजराती की महत्वशाली पुस्तकें हैं। सतराम के 'पंजाबी गीत' पंजाबी भाषा के गीतों का उत्तम संग्रह है। मारवाड़ी भाषा के गीतों के कई संग्रह प्रकाशित हुये हैं जिनमें मदनलाल वैश्य की 'मारवाड़ी गीतमाला' निहालचंद वर्मा के 'मारवाड़ी गीत' तथा ताराचंद ओझा का 'मारवाड़ी स्त्रीगीत संग्रह' विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी तो इस क्षेत्र के प्राण हैं जिन्होंने भारतभ्रमण करके लोकवार्ता की अमूल्य राशि का संग्रह किया है।

हिन्दी में इस प्रयत्न का श्रीगणेश श्री मन्नन द्विवेदी ने किया। उनकी 'सरवरिया' पुस्तिका इस दिशा की प्रारम्भिका के रूप में है। सरस्वती में प्रकाश पाकर सतराम जी के 'पंजाबी लोकगीत' हिन्दी की निधि बने। इनके पीछे हिन्दी लोकगीतों के कर्मठ शोधक पं० रामनरेश त्रिपाठी इस क्षेत्र में अग्रणी बने। कविता-कौमुदी के पांचवें भाग में उत्तर प्रदेश के सभी प्रकार एवं रंगों के ग्राम-गीतों को स्थान मिला है। हिन्दी के क्षेत्र में त्रिपाठी जी का यह सर्वप्रथम व्यापक उद्योग था। इनके प्रयत्नों से प्रेरणा पाकर तथा इस ओर बढ़ती अभिरुचि को देखकर हिन्दी लोकवार्ता के अनेक सच्चे सेवक उत्पन्न हुये और परिणाम-स्वरूप हिन्दी और उसकी बोलियों में पर्याप्त कार्य हुआ। राजस्थानी-गीतों के बड़े उत्तम संग्रह स्वर्गीय प्रो० सूर्यकरण जी पारीक, ठा० रामसिंह और श्री नरोत्तम स्वामी जी के प्रयत्न स्वरूप प्रकाशित हुए हैं। ठा० रामसिंह एवं श्री नरोत्तम स्वामी जी ने 'ढोलामारू रा दूहा' को लिपिबद्ध कर इस मरणासन्न निधि को अमर बना दिया है। स्वामीजी तथा प्रो० सहल कन्हैयालाल जी के सदुद्योगों से 'राजस्थान पत्रिका' अंग्रेजी के 'इंडियन एंटिक्वेरी' के नमूने पर निकल रही है। इस पत्रिका में पुरातत्त्व के साथ लोकवार्ता की भी चर्चा रहती है। विद्यापति के पश्चात् मिथिला की माधुरी को हिन्दी जगत् के समक्ष लानेवाले की श्री राम इकबाल सिंह राकेश इस ओर अच्छे लोकगीत संग्रहकर्ता हैं जिनकी की 'मैथिली लोकगीत' पुस्तक हिन्दी-सम्मेलन से प्रकाशित हुई है। लोकवार्ता की बहुत-सी सामग्री 'हंस' और 'विशालभारत' पत्रिकाओं में इधर-उधर छपी है। श्यामाचरण दुबे का 'छतीसगढ़ी लोकगीत' इस विषय का सुन्दर संग्रह है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय के 'भोजपुरी लोकगीत', २ भाग हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की एक विशेषता सर्वोपरि है कि गीतों की व्याख्या बड़ी ही अनुपम दी गयी है। आदि में एक सारपूर्ण भूमिका ने ग्रंथों

का मूल्य द्विगुणित कर दिया है। डा० उपाध्याय को 'भोजपुरी लोक साहित्य' पर लिखे गये विशिष्ट निबंध (थीसिस) पर लखनऊ विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि मिली है। यह निबन्ध डा० दीनदयालु गुप्त के निर्देशन में लिखा गया था। बुन्देलखण्ड मे तो पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी की प्रेरणा से बहुत सा कार्य हुआ है। शिवसहाय चतुर्वेदी जैसे महान् लोकवार्ता संग्रहकारो ने बुन्देलखडी लोकवार्ता का उद्धार किया है। इनकी बुन्देलखंडी लोक-कहानियाँ एक सुन्दर भूमिका के साथ छपी हैं। श्री कृष्णानन्द गुप्त के अध्यवसाय एवं प्रयत्न स्वरूप टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड) से 'लोकवार्ता' नामक त्रैमासिक पत्र, अंग्रेजी की 'फोक्लोर मैगजीन' के आदर्श पर निकालना आरभ हुआ था। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी जनपदीय साहित्य के अध्ययन की ओर विशेष प्रेरणा दी है। उनकी 'पृथ्वीपुत्र' नामक पुस्तक इस दिशा की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों मे से एक है। डा० अग्रवाल ने लोकवार्ता को भारतीय दृष्टिकोण से देखा और परखा है। स्वतंत्र पुस्तको के अतिरिक्त डा० अग्रवाल ने अनेक ग्रंथों की भूमिका के रूप मे भी अपने लोकवार्ता सबंधी विचार जनता के समक्ष रखे हैं। डा० सत्येन्द्र जी ने 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन', ब्रजलोक कहानियाँ और इस विषय सबधी अनेक लेखों द्वारा हिन्दी लोक-साहित्य-संग्रह को समृद्ध किया है। डा० सत्येन्द्र जी के साथ ब्रज-साहित्य मंडल को नही भुलाया जा सकता। यह मण्डल ब्रजलोकवार्ता का विज्ञान-सम्मत विवेचन एव अध्ययन करने मे जुटा हुआ है। इस प्रकार के साहित्य मंडलों की प्रत्येक देश व जनपद के लिए महती आवश्यकता है जो तद्देश-जनपदीय लोकसाहित्य के सग्रह एव सरक्षा का कार्य करें और उस सग्रहीत सामग्री के आधार पर एक विवेचनापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करे।

लोकवार्ता संबंधी इस संक्षिप्त सारणी से यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी की विविध बोलियों में लोकवार्ता संबंधी कार्य हो रहा है। जो कुछ लोकवार्ताएँ अभी तक प्रकाश में आई हैं उनके अवलोकन से यह बात प्रतीत होती है कि सभी प्रदेशों में बाहिरी आवरण के पीछे एक मूल-तत्व के दर्शन होते हैं। सभी लोकवार्ताएँ किसी एक स्थान पर मिलती दीख पडती हैं जिससे एकतत्व ही सर्वत्र प्रवहवान है अथवा मानवीय ऐक्य का अनुमान सुलभ है। जहाँ तक समानता का संबंध है, हिन्दी ही की लोकवार्ता क्यों, समस्त ससार की वार्ताएँ किसी एक ही दिशा की ओर आती-जाती दिखाई पड़ती है। लोकवार्ता का वह साम्राज्य है जहाँ न किसी धर्म की प्रधानता है, न किसी रंग और जाति का प्राबल्य। यह साम्राज्य यथार्थ में वह समुदाय विहीन (सैक्युलर) है जहाँ प्रत्येक बात मानव द्वारा मानव के लिए और मानव की बनकर कही

गयी है। यहाँ विशुद्ध मानवता का शासन है। यहाँ नीच-ऊँच, छोटे-बड़े, गोरे-काले, पौर्वात्य-पाश्चात्य, उदीच्य एवं दाक्षिणात्य सब एक समान रहते हैं। लोकवार्ता ने पुष्ट कर दिया है कि मानव-मानव का हृदय, विचार और भावनाएँ एक जैसी हैं विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक।

ख. लोकवार्ता एवं लोकसाहित्य

अ. प्रयोग की समस्या

लोकवार्ता अंग्रेजी के फोक लोर (Folk Lore) शब्द का पर्यायवाची है। हिन्दी में इसके प्रचार का अधिकांश श्रेय श्री कृष्णानन्द जी गुप्त एवं डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल को है।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक इस क्षेत्र के अध्ययन का नाम सार्वजनिक पुरातत्त्व (पापुलर एन्टीक्वटीज) था। सर्वप्रथम सन् १८४६ मे श्री विलियम जोहन थामस ने इसे नया नाम फोकलोर दिया। फोक शब्द ऐंग्लो-सैक्सन शब्द 'Folc' का विकसित रूप है। डा० वार्कर ने 'फोकशब्द' को समझाते हुए लिखा है कि 'फोक' से किसी सभ्यता से दूर रहनेवाली पूरी जाति का बोध होता है या यदि इसका विस्तृत अर्थ लिया जाये तो सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। पर 'फोकलोर' के संदर्भ मे फोक का अर्थ असस्कृत लोग है। दूसरा शब्द लोर (Lore) ऐंग्लो-सेम्सन 'Lar' से निकला है और इसका अर्थ होता है वह जो सीखा जाये। इस प्रकार 'फोकलोर' का शाब्दिक अर्थ है 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान'।[1]

फोकलोर शब्द के पर्याय हिन्दी शब्द के ऊपर जब गभीर विचार करते हैं तो फोक शब्द के लिए हिन्दी में तीन शब्दों का प्रयोग मिलता है—लोक, जन और ग्राम। अग्रेजी फोक शब्द के लिए हिन्दी का 'लोक' शब्द बहुत प्रचलित है एव प्रिय है। पर हिन्दी 'फोकसांग्स्' के प्रथम सग्रहकर्ता पं० रामनरेश त्रिपाठी 'फोकशब्द' के लिए 'ग्राम' शब्द पर विशेष बल देते हैं। उन्होने अपने साहित्य मे सर्वत्र ग्राम शब्द का ही प्रयोग किया है। यथा—ग्रामगीत, ग्रामसाहित्य आदि।[2] डा० मोती चंद जी ने 'फोक' के लिए जनशब्द के प्रति आग्रह किया है।

---

१. देखिए डा० भोलानाथ तिवारी का लेख 'लोकायन और लोकसाहित्य' सम्मेलन पत्रिका, सं० २०१०

२. देखिये जनपद खंड १, अंक १, त्रिपाठी जी का लेख।

गभीर विवेचन के लिए पहिले हम ग्राम शब्द को लेते हैं। इस शब्द मे वस्तुतः फोक की विशाल भावना नही आ पाती। यदि हल्का आवरण उठाकर देखें तो नगर मे भी फोक की स्थिति है। सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। इस प्रकार ग्राम और पुर का इसमें भेद नही है। दूसरा शब्द जन है। यह 'जनि' धातु से बना है जिसका अर्थ है उत्पन्न होना। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले (जन्मने वाले) सभी लोगो का बोध इस शब्द से हो जायेगा। अति प्राचीन काल से यह शब्द इस अर्थ का द्योतक रहा है। पृथ्वीसूक्त मे जन शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ मे मिलता है यथा 'जन विभ्रती बहुधा विवाचसम्, जानपद शब्द से भी जन शब्द के व्यापक अर्थ की ध्वनि निकलती है। वैदिक युग में 'जानराज्य' जनता के प्रिय राज्य को बताया गया है। ब्राह्मणग्रंथो, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के साहित्य मे भी जन शब्द प्रायः इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जनप्रवाद, जनपद तथा जनाश्रय आदि शब्दो मे भी जन की वही ध्वनि है। पर साथ ही साथ जन शब्द का एक दूसरा अर्थ भी लगा चलता रहा है जो भक्त के अर्थ मे आगे चलकर रूढ़ हो गया। महाभारत काल में गीता मे कृष्ण के लिए जो जनार्दन विशेषण आता है वह इसी अर्थ का पोषक है। इस शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है 'जन भक्तं अर्दयति रक्षति' इति जनार्दनः। उदाहरण— 'निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन'।[1] हिन्दी के भक्ति-साहित्य में तो जन शब्द 'भक्त' का पर्यायवाची ही बन गया है। 'हरिजन जानि प्रीति अतिबाढ़ी' (हरि का दास) (भक्त) जानकर प्रीति बढ़ी 'जन-रजन भजन खलत्राता। वेद धर्म रक्षक सुरत्राता।—(सुन्दरकांड)

लोक शब्द का प्रयोग भी बहुर्थी है। इस शब्द की व्युत्पत्ति धातुद्वय से 'लोकृ दर्शने' और 'रुच् दीप्तौ' से संभव है। पर इस क्षेत्र मे पाणिनी-वैयाकरण एवं पाश्चात्य भाषाविज्ञान-विशारदों में मतैक्य नहीं है। व्युत्पत्ति विषयक अर्थ को अलग रखते हुए प्रयोग से इसका एक अर्थ और भी मिलता है। इस शब्द का अर्थ स्थानवाची भी अवश्य है। ऋग्वेद में इसी अर्थ में इसका प्रयोग आया है। 'देहिलोकम्' का अर्थ है 'स्थान दो'। भुवन अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है यथा—इहलोक, त्रिलोक एवं चतुर्दशलोक आदि। लोक का एक विशिष्ट अर्थ वेद-विरोधी भी है। 'लोके वेदे च' की बात उसी समय से चली है। किन्तु आगे चलकर 'लोक' वेदेतर संस्कृति की संकुचित सीमा को तोड़कर ऊपर उठ गया है, उसकी भावना वैदिक और अवैदिक दोनों तत्त्वों को सहज रूप से छूने लगी है। अतः वेद के तुल्य ही

---

१ गीता, अध्याय १, श्लोक ३६।

यह शब्द स्वतत्र एव समान्य अस्तित्व का अधिकारी हो गया है। यथा 'लोक सभा' आदि शब्दो मे अशोक के शिलालेखो के देखने से पता चलता है कि उस समय लोक शब्द से सामान्य जीवन का अभिप्राय लिया गया है। यह प्रयोग 'अनुवत्तरं सर्वलोक हिताय' से सुस्पष्ट है। बौद्धधर्म के प्रचार के साथ ही लोक शब्द में 'मानवमात्र' की भावना का उद्भव हुआ। प्राकृत एव अपभ्रश भाषा के 'लोगजत्ता' (लोकयात्रा), 'लो अप्पवाय' (लोक प्रवाद) आदि शब्द लोक की महत्ता प्रदर्शित करते हैं।

इस प्रकार हमने देखा है कि 'ग्राम' शब्द सीमित है, जन अपेक्षया 'फोक' के निकट है परतु 'लोक' मे 'लोके वेदे च' से लेकर 'लोक कि वेद बड़ेरो' तक शुद्ध 'फोक' की भावना मिलती है। निष्कर्षतः लोक ही फोक का प्रतिशब्द ठीक बैठता है।

'फोक' के लिए भारतीय शब्द लोक निर्णीत हो चुकने पर 'लोर' के लिए भारतीय प्रतिशब्द की समस्या शेष रहती है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है लोर ऐंग्लो-सैक्सन (Lar) से निकला है और इसका अर्थ होता है 'वह जो सीखा जाये' अर्थात् 'ज्ञान'। इस प्रकार 'फोकलोर' का शाब्दिक अर्थ होगा 'लोक ज्ञान'। साथ ही साथ 'जो सीखा जाये' इस अर्थ की विवेचना करते-करते 'फोकलोर' के लिए अनेक शब्दों की उद्भावना हो आती है। यथा—लोकज्ञान, लोक-विज्ञान, लोकशास्त्र, लोकपरंपरा, लोकप्रतिभा, लोकप्रवाह, लोकपथ, लोक-विधान, लोकसंग्रह, लोकपुराण, लोक आगम आदि[1]। पर इन शब्दों मे किसी में भी मुकम्मिल भाव आद्योपांत अनुस्यूत नहीं मिलता। अतः इस समस्या को सुलझाने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रयुक्त शब्दो का विवेचन अपेक्षित है। सर्वप्रथम डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने 'फोकलोर' शब्द का पर्याय 'लोकवार्ता' खोजा है। उन्हें यह वार्ता शब्द 'वल्लभ सम्प्रदाय' मे प्रचलित निजवार्ता, घरूवार्ता, ८४ वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता आदि मे मिला है[2]। इस शब्द के अपनाने के प्रति श्री कृष्णानन्द जी गुप्त का भी आग्रह है। उन्होंने बुन्देलखण्ड के लोकवार्ता पत्र के निवेदन मे लिखा है—"लोकवार्ता को अंग्रेजी मे 'फोकलोर' कहते हैं। अथवा यह कहिए कि फोकलोर के लिए हमने लोकवार्ता शब्द का प्रयोग किया है। फोकलोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। परन्तु

---

१. डा० भोलानाथ तिवारी का लेख 'सम्मेलन पत्रिका' सं० २०१०

२. डा० सत्येन्द्र—ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, विषय-प्रवेश, पृष्ठ १।

हम उसका अर्थ करते हैं जनता की वार्ता। जनता जो कुछ कहती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश (जनपद) की अपनी एक भाषा होती है उसी प्रकार अपनी एक लोकवार्ता भी होती है। जनता के मानस में लोकवार्ता का जन्म होता है।"

परन्तु इस शब्द को स्वीकार करने में विद्वानों को कई आपत्तियाँ हैं। प्रथम, यह शब्द पर्याप्त व्यापक नहीं है। लोकवार्ता मे तो अधिक से अधिक लोककथा का भाव वहन करने की क्षमता है। देशीय प्रयोग मे चिट्ठी-पत्री की भाँति कथावार्ता का प्रयोग होता है जिससे यह स्पष्ट है कि कथा और वार्ता पर्यायवाची शब्द हैं। डिंगल में भी इस शब्द की यही स्थिति है। वहाँ पर भी बारता अथवा वारता का प्रयोग कथा के अर्थ में ही होता है। दूसरे, संस्कृत साहित्य मे इसका अर्थ 'अफवाह' या 'किंवदन्ती' भी मिलता है[1]। प्रसिद्ध संस्कृत कोशकार आप्टे महोदय ने लोकवार्ता का अर्थ 'पापुलर रिपोर्ट' या 'पब्लिक र्‍यूमर' दिया है। परन्तु इस समस्या के सुझाव के लिए 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' का मत भी देख लेना समीचीन होगा। इस विश्वकोष मे 'फोक्लोर' शब्द का इतिहास बतलाते हुए लिखा है कि "सन् १८४६ मे डबल्यू० जे० थामस ने यह शब्द सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीतिरिवाजों तथा मूढ़-ग्राहों की अभिव्यक्ति करने के लिए गढ़ा था। शब्दो के अर्थ परिभाषाओं द्वारा नियत नहीं होते, प्रयोग द्वारा होते हैं।[2]" अतः परिभाषाओं और कोषकारो को छोड़कर प्रयोग देखना चाहिए। लोकवार्ता के संपादक श्री कृष्णानद जी गुप्त ने तो सुस्पष्ट शब्दों मे कहा है कि जनता जो कुछ कहती और सुनती अथवा उसके विषय मे जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है। इस स्थापना को स्वीकार करते हुए लोकवार्ता शब्द बडा व्यापक बन जाता है और फोक्लोर का समीचीन पर्याय हो जाता है।

लोकायन शब्द फोक्लोर का भारतीय प्रतिशब्द है। यदि इस शब्द को परखा जाये तो यह बड़ा सुन्दर शब्द निकलेगा। इसमें 'अयन' शब्द रामायण की भाँति 'घर' अथवा 'सर्वस्व' के रूप में प्रयुक्त माना जायेगा और इसका अर्थ होगा—'लोक का घर' अथवा 'लोक का सर्वस्व।' अतः इस शब्द की परिधि में वह सब कुछ आ जायेगा जो जनता कहती है, सुनती है अथवा उसके

---

१. श्री द्वारका प्रसाद शर्मा—'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ'।

२. ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका—

विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है। शब्दान्तरों में यह लोक की रामायण है। जैसे रामायण राम के सब कुछ को लेकर चली है ठीक उसी प्रकार 'लोकायन' शब्द भी लोक के सर्वस्व को अपने मे समेटे हुए है। अतः यह शब्द भी लोकवार्ता की भाँति व्यापक एवं ग्राह्य है। परन्तु लोकवार्ता शब्द हिन्दी मे प्रयोग बल से अपना स्थान निर्धारित कर चुका है। नवीन शब्दों के सुझाव और आग्रह से लोकवार्ता के प्रति जमी हुई आस्था कम नहीं हो सकती। अतः सुविधा के लिए फोक्लोर शब्द का भारतीय प्रतिशब्द लोक-वार्ता ही सर्वश्रेष्ठ एवं मान्य है। हमारे विचार से भी यही उपयुक्त एवं ग्राह्य है।

अन्य अनेक विद्वानों ने भी इस दिशा मे विविध सुझाव दिये हैं। उन पर विहंगम दृष्टिपात करना भी अप्रासंगिक न होगा। पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने 'फोकलोर' के लिए 'ग्राम साहित्य' शब्द स्वीकार किया है किन्तु यह शब्द अव्याप्तिदोष दूषित है। डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने इस प्रसंग में 'लोक-संस्कृति' शब्द का प्रयोग किया है।[१] परन्तु यह 'फोककलचर' का ही पर्याय बन सकता है 'फोकलोर' पृथक् रह जाता है।

भाषा तत्वविद् डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने 'फोकलोर' के लिए भारतीय प्रतिशब्द 'लोकयान' दिया है। वे कहते हैं—"यान का प्रचलित अर्थ वाहन या सवारी है पर उसका एक अर्थ जाना या चलना भी है। सचमुच लोक जीवन फोकलोर के साथ, उसके सहारे और उस पर चलता है। इन दृष्टियों से 'लोकयान' मे बिना किसी प्रकार की खींचातानी के 'फोकलोर' के अन्तर्गत आने वाली सभी बातें आजाती हैं।[२]" किन्तु इस शब्द की परिधि मे विश्वास, रीति-रिवाज और अधविश्वास (मूढ़ग्राहों) का ही समावेश हो सकता है। लोकवाणी का विलास इसके बाहर पड़ेगा जो फोकलोर का एक मुख्य अश है।

डा० सत्येन्द्र ने अपनी थीसिस—'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' मे लोकवार्ता शब्द को ग्रहण किया है। एक स्थान पर (आलोचना पत्रिका, अक ४, पृष्ठ ३७) फोकलोर के लिए दो अन्य शब्दो का ग्रहण करते मिलते हैं—लोकाभिव्यक्ति एव लोकतत्व। इनमे से पहिला शब्द अव्यापक है और दूसरा 'फोक एलीमेंट' का पर्याय हो सकता है, फोकलोर का नहीं।

---

१. जनपद खण्ड १, अंक १, पृष्ठ ६६।

२. 'राजस्थानी कहावतां भाग पहिलो' सं० २००६, भूमिका पृष्ठ ११।

आ. लोकवार्ता का क्षेत्र एव व्यापकता

फोकलोर शब्द के हिन्दी पर्याय की खोज करते हुए इस शब्द की परिभाषा एवं इसके क्षेत्र के ऊपर भी कुछ विचार हुआ है। 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' मे फोकलोर के इतिहास पर टिप्पणी देते समय इसके क्षेत्र-विस्तार को भी छू लिया गया है। विश्वकोष ब्रिटेनिका के शब्द—"यह शब्द सभ्य जातिया म मिलनेवाले असस्कृत समुदाय की प्रथाओ, रीति रिवाजों तथा मूढ़-ग्राहो को अभिव्यक्त करने के लिए गढा गया था। अंग्रेजी परम्परा मे फोकलोर के क्षेत्र की कोई सूक्ष्म सीमा निर्धारित नही की जाती··· प्रयोग में साधारण प्रवृत्ति इसके क्षेत्र को सकुचित अर्थ मे सभ्य समाजो मे मिलने वाले पिछडे तत्वो की संस्कृति तक ही सीमित रखने की है।" किन्तु शार्लट शोफिया बर्न की वैज्ञानिक परिभाषा में और भी अधिक स्पष्टता एव सत्यता है। उन्होने अपनी पुस्तक 'हैंडबुक ऑव फोकलोर' मे फोकलोर के इतिहास की खोज की है और एक मार्मिक मीमांसा दी है। उनके एक विशिष्ट उद्धरण का अनुवाद डा० सत्येन्द्र जी ने अपनी थीसिस 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' मे इस प्रकार दिया है, "फोकलोर शब्द, शब्दार्थतः लोक की विद्या (दि लर्निङ्ग ऑव दि पीपिल) सन् १८४६ में श्री थामस ने पहिले प्रयोग में आने वाले (पापुलर एन्टीक्विटीज) शब्द के लिए गढ़ा था। (अब) यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों मे प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत् के संबंध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत पदार्थों के संबंध में, भूत-प्रेतों की दुनियाँ तथा उसके साथ मनुष्यो के संबंधो के विषय में, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध मे आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र मे आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढजीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्यव्यवसाय, पशु पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएँ, अवदान (लीजेंड), लोक कहानियाँ, साके (वैलेड), गीत, किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप मे, लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में है। यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोकवार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है, किन्तु वे उपचार अथवा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को भूमि जोतने के काम में लाने के समय करता है। जाल अथवा वंशी

की बनावट नहीं, वरन् वे टोटके जो मछुआ समुद्र पर करता है; पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन् वह बलि जो उनके बनाते समय की जाती है और उसको उपयोग मे लाने वालों के विश्वास। लोकवार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र मे हुई हो, चाहे सामाजिक सगठन तथा अनुष्ठानों मे अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में।[1]

उपरोक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि लोकवार्ता शब्द का विस्तार बड़ा महान् एवं विशद है। इसके अन्तर्गत उस समस्त आचार-विचार की समृद्धि रहती है जिसमे मानव का परम्परित रूप प्रतिबिम्बित होता है। यह मानव मानस की वह निधि है जिसमे परिष्कार तथा संस्कार अपेक्षित नही। डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने इसके क्षेत्र का परिगणन करते हुए लिखा है, "लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक मे बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान मे उस जन की सस्कृति—इन तीन क्षेत्रो मे लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है, और लोकवार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है[2]।"

उपरोक्त समस्त विवेचन का सार हम इस प्रकार दे सकते हैं कि लोक-वार्ता पुण्य सलिला सुरसरिता के सदृश त्रिपथगा है। इसके विषयो को तीन प्रधान समूहो मे बाँटा जा सकता है—१. कला २. विश्वास ३. अनुष्ठान। १. कला के क्षेत्र मे, साहित्य (लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति, सूक्ति तथा पहेली), चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, अभिनय कला, तथा नृत्यकला आदि हैं। २. विश्वास के क्षेत्र मे वे समस्त मान्यताएँ तथा अधविश्वास आयेंगे जो विभिन्न जीवों, धर्मगाथा के चरित्रो (यथा—इन्द्र, अग्नि आदि) भूत, चुडैलों आदि से सम्बन्धित हैं। ३. अनुष्ठान मे वे कार्य-कलाप आते हैं जो इन विश्वासों के कारण विभिन्न अवसरो पर अनिष्ट का परिहार करने तथा इष्ट की सिद्धि के लिए किये जाते हैं।

विस्तृत रूप से यदि लोकवार्ता के विषयो की परिगणना की जाये तो एक लम्बी चौडी तालिका बन सकती है। श्रीमती बर्न ने उसके तीन उपविभाग किये हैं और उनकी विस्तृत सूची दी है। डा० सत्येन्द्र ने उसका अनुवाद एवं वर्गीकरण इस प्रकार दिया है।

---

१. डा० सत्येन्द्र—'ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन', पृष्ठ ४,५।

२. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल—'पृथ्वीपुत्र' पृष्ठ ८५।

१. वे विश्वास और आचरण-अभ्यास जो सम्बन्धित हैं—

१. पृथ्वी और आकाश से,
२. वनस्पति जगत मे,
३. पशु जगत से,
४. मानव से,
५. मनुष्य निर्मित वस्तु से,
६. आत्मा तथा दूसरे जीवन से,
७. परामानवी व्यक्तियो से (यथा देवता, देवी तथा ऐसे ही अन्य व्यक्तियो से),
८. शकुनो-अपशकुनों, भविष्यवाणियो, आकाशवाणियों से,
९. जादू टोनों से और,
१०. रोगों तथा स्थानो की कला से ।

२. रीति रिवाज—

१. सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ,
२. व्यक्तिगत जीवन के अधिकार,
३. व्यवसाय धन्धे तथा उद्योग,
४. तिथियॉ, व्रत, तथा त्योहार और,
५. खेलकूद (अखाड़ेबाजी) तथा मनोरंजन

३. कहानियॉ, गीत तथा कहावतें—

१. कहानियॉ (अ) जो सच्ची मानकर कही जाती हैं ।
(आ) जो मनोरंजन के लिए होती हैं ।
२. गीत (सभी प्रकार के)
३. कहावतें तथा पहेलियॉ ।
४. पद्यवद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें ।
५. साधारणतया, मोटे तौर पर लोकवार्ता के विषयो की सूचिका इस प्रकार दी जा सकती है :—

क. अभिव्यक्ति :—

१. साहित्यिक एव कलात्मक :—लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ तथा सूक्तियॉ आदि ।

२. शारीरिक अभिव्यक्ति :—लोकनृत्य, लोकनाट्य आदि, बालक बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण खेल आदि ।

ख. रीति-रिवाज, प्राचीन परम्पराएँ, त्योहार, पर्व, पूजा, तीर्थ, व्रत आदि ।

ग. जादू टोना, टोटका, भूत प्रेत चुड़ैल सम्बन्धी विश्वास आदि ।

इस प्रकार पाठक देख पाये हैं कि लोकवार्ता का क्षेत्र बहुव्यापी है और साहित्यिक पक्ष उसका एक अश मात्र है । परन्तु जहाँ पर विभिन्न विश्वास और नाना अनुष्ठान लोकसाहित्य सृजन मे सहायक हैं वे भी लोकसाहित्य के ही अन्तर्गत आ जाते हैं । इस दृष्टि से लोकसाहित्य का क्षेत्र लोकवार्ता से व्यापक हो जाता है । परन्तु इस पक्ष मे विद्वान एकमत नहीं हैं ।

(इ) लोकवार्ता और लोकसाहित्य का सम्बन्ध

यहाँ तक फोकलोर (लोकवार्ता) के रूप, क्षेत्र और संज्ञादि पर विचार हुआ है । अब लोकवार्ता और लोकसाहित्य के सम्बन्ध को देख लेने की आवश्यकता है । श्रीमती बर्न ने अपनी विस्तृत मीमासा से यह स्पष्ट किया है कि लोकवार्ता का लोकसाहित्य एक अङ्ग है, और इसकी परिधि मे लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, कहावतें, पहेलियाँ, सूक्तियाँ और लोकनाट्य आदि आते हैं । किन्तु डा० सत्यव्रत सिन्हा का मत इसके विरुद्ध है[१] । उनका कहना है कि लोकवार्ता स्वयं लोकसाहित्य का एक अंग है । लोकसाहित्य के दो भेद होते हैं—'लोकगीत और लोकवार्ता' । वार्ता शब्द मे इतनी व्यापकता नहीं है कि उसमें समस्त लोकसाहित्य का समावेश हो जाये । इस प्रकार वे लोकवार्ता को लोकसाहित्य का एक भाग बतलाते हैं । एक स्थान पर डा० सत्येन्द्र ने भी लोकसाहित्य को लोकवार्ता से अधिक व्यापक बतलाया है । उन्होने लिखा है—एक दृष्टि से लोकसाहित्य का केवल एक अग ही लोकवार्ता के अन्तर्गत आ सकता है । ऐसा भी लोक-साहित्य हो सकता है, नहीं होता ही है, जो लोकवार्ता नही माना जा सकता । लोकवार्ता मे केवल वही लोकसाहित्य समाविष्ट होता है जो लोक की आदिम परम्परा को किसी न किसी रूप मे सुरक्षित रखता है । इस साहित्य को हम आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोष कह सकते हैं । पर लोकसाहित्य का बहुत सा अश ऐसा भी है जो पारिभाषिक लोकवार्ता के बाहर रहता है । यह वह साहित्य है जिसकी मौखिक परंपरा विशेष पुरानी नहीं है, जिसके निर्माता का काल अथवा समय जाना जा सकता है । जो नये विषयों पर नए उद्रेकों के परिणाम स्वरूप रचा गया है और रचा गया है बिना किसी सस्कारी

---

१ "हिन्दी अनुशीलन पत्रिका" वर्ष ४ अंक ४—डॉ० सत्यव्रत सिन्हा का लेख ।

चेतना के। इसके निर्माण में हृदय और मानस की वह सहज अकृत्रिम अभिव्यक्ति काम करती है जो लोकसाहित्य के लिए अपेक्षित है किन्तु किसी आदिम परंपरा की सुरक्षा नहीं है। अतः यह कहना अप्रगल्भ न होगा कि लोकवार्ता का क्षेत्र लोकसाहित्य की दृष्टि से कुछ असंकुचित है।' परन्तु ससार के सभी मनीषियो ने लोकवार्ता की व्यापकता एक स्वर से स्वीकार की है और वे सभी लोकसाहित्य को लोकवार्ता का प्रमुख अग स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत लेखक का मत भी यही है बिना संस्काररहितता के और आदिम परपरा की सुरक्षा के बिना किसी साहित्य को लोकसाहित्य कहना ही व्यर्थ है।

ग. लोकसाहित्य के विविध रूप

अभी तक हमने लोकवार्ता के रूप को परखा है और उसके साथ लोकसाहित्य के संबंध पर विचार किया है। अब लोकसाहित्य के विविध रूपो पर दृक्पात करना अप्रासंगिक न होगा। मोटे तौर पर हम इस साहित्य को तीन रूपों मे प्राप्त करते है : एक—कथा; दूसरा—गीत; तीसरा—कहावते आदि। लोककथाओं की विभेदता भी तीन रूपो मे मानी जाती है—धर्मगाथा, लोकगाथा (अवदान साके) तथा लोक-कहानी। धर्मगाथा (माईथालाजी) पृथक् अध्ययन का विषय है। शेष कथा के दो भाग रह जाते हैं लोकगाथा तथा लोक-कहानी। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन दोनों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व स्वीकार करते हुए लोक साहित्य को चार रूपों मे बॉटा है एक—गीत, दूसरा—लोकगाथा, तीसरा—लोक-कथा तथा चौथा—प्रकीर्ण साहित्य जिसमे अवशिष्ट समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश कर लिया गया है।

वैसे तो धर्मगाथाएँ पृथक् अध्ययन का विषय है किन्तु लोक-कहानी और धर्मगाथा में जो विशेष अन्तर आ गया है उसे समझ लेना अहितकर न होगा। धर्मगाथा अपने निर्माण-काल मे एक सीधी-सादी लोक-कहानी ही होती है परन्तु उस कहानी में धर्म की एक विशेष पुट लग जाती है जो उसे लोक-कहानी के वास्तविक आधार से पृथक् कर देती है। डा० सत्येन्द्र ने इस ओर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि धर्म-गाथा स्पष्टतः तो होती है एक कहानी पर उसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो उसके सृष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट होता है। ये धर्म गाथाएं हैं तो लोक-साहित्य ही, किन्तु विकास की विविध अवस्थाओं में से होती हुई वे गाथाएं धार्मिक अभिप्रायः से संबद्ध हो गयी हैं। अतः लोकसाहित्य के साधारण क्षेत्र से इनका स्थान बाहर हो जाता है और यह धर्मगाथा सम्बन्धी अंश एक पृथक् ही अन्वेषण

का विषय है।[१] अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि क्वीन आव दि एअर' में जान रस्किन ने धर्मगाथा की मीमांसा देते हुए लिखा है कि यह अपनी सीधी-सादी परिभाषा में एक कहानी है जिससे एक अर्थ संपृक्त है और जो प्रथम प्रकाशित अर्थ से भिन्न है।

लोकगाथाएँ (अवदान, किस्से या साके) वे काव्यमय कहानियाँ हैं जिनका आधार इतिहास है अथवा जिन्हें कालक्रम से ऐतिहासिक महत्व हासिल हो चुका है। लोक मानस की वे घटनाएं जो कोरी कल्पना-जन्य हैं वह आगे चलकर ऐतिहासिक रूप प्राप्त कर जाती हैं। जिन जातियों का मानसिक विकास नहीं हुआ है उनमे थोड़े से चमत्कारपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति युग-पुरुष अथवा ऐतिहासिक पुरुष की नाईं पूजे जाते हैं। ठीक इसी प्रकार का एक किस्सा (अवदान, गाथा) हरफूल जाट जुलाणी वाले का है जिसने अपने जीवन की बाजी लगा कर बधिकों से (कसाइयों से) गायें छुड़ा ली थी। आज भी गोमाता के पुजारी प्रदेश हरियाना की साधारण जनता हरफूल जाट के वीर रसात्मक किस्सो को गा-गाकर आनन्द मनाती है। अन्य जनपदीय जातियों मे भी ऐसे अनेक किस्से आपको मिल जायेंगे।

किस्सों की परख से यह स्पष्ट है कि इनमें इतिहास के अवशेषों को ही मरने से नहीं बचाया गया है पर साम्प्रतिक पुरुषों के किस्से भी चमत्कृत रूप में मिले हैं। अतः साके प्राचीन प्रवीरों और सिद्ध महात्माओं के ही हों ऐसी बात नहीं है, ये साके सामयिक पुरुष सम्बन्धी भी हो सकते हैं, बल्कि होते भी हैं। यथा—'किस्सा हरफूल जाट जुलाण का', इन नये व्यक्तियों के सम्बन्ध में बड़ी अद्भुत कल्पनाएँ कर ली जाती हैं। सर आर० सी० टेम्पल ने 'लीजेंड्स आव दि पंजाब' में इन किस्सों को छः भागों में बाँटा है। इन छः चक्रों में से एक चक्र उन कथाओं का भी है जो स्थानीय वीरों से सम्बन्ध रखती हैं।

हमने लोक गाथाओं को अवदान, साका, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया है। इस साहित्यिक विद्या का एक नाम राजस्थानी में ख्यात भी प्रचलित है। ये ख्यातें रासो से भिन्न वस्तु हैं। रासो साहित्यिक वीर कथाएँ हैं और ख्यातें मौखिक कथाएँ हैं। ये लोक गाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं। एक प्राचीन पुरुषों की शौर्य की कहानियाँ हैं जिन्हे वीरकथा कहा जा सकता है। इन्हें ही 'पवारा' भी कहते हैं यथा 'जगदेव का पंवारा'। इनमें पुराण पुरुषों का अस्तित्व निर्विवाद मान लिया जाता है। दूसरे—साके।

१. डा० सत्येन्द्र 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ ६ और ८।

ये उन पुरुषो के शौर्य से सम्बन्धित हैं जिनके प्रति इतिहास साक्षी है। साके मे जीवन तथा शौर्य का विस्तार अपेक्षित है।

लोककथा निस्सदेहात्मकतया लोकगाथा से भिन्न वस्तु है। जो विद्वान् इन दोनो को एक लोक-कहानी के ही लघु और विशाल रूप कहते हैं उन्होने उनके मर्म को पहचानने का प्रयास नहीं किया। लोकसाहित्य के ये दोनों रूप आपस मे भिन्न हैं। लोक कथाओं में कहानियो के दोनो तत्व—मनोरंजन एव शिक्षा-पाये जाते हैं। जो कहानियाँ केवल शिक्षा के लिए ही निर्मित हुई हैं उनके लिए अलग नाम भी दिया गया है। इन कहानियों को भारतीय साहित्य मे तंत्राख्यान या पशु पक्षियों की कहानियाँ कहा गया है। अंग्रेजी में ऐसी कहानियो का नाम फेबिल दिया गया है। फेबिल को समझाते हुए 'ला फाउन्टेन' ने बड़ी प्रिय परिभाषा दी है :—

"Fables in sooth are not what they appear,
Our moralists are mice and such small deer.
We yawn at Sermons, but we gladly turn,
To moral tales, and so amused in yarn."

"काल्पनिक कथाएँ, वास्तव मे, वैसी नही जैसी दिखाई देती हैं। हमारे धर्मोपदेष्टा चूहे और मृगशावक भी हो सकते हैं। हम उपदेश सुनते-सुनते ऊँघने लगते हैं, किन्तु शिक्षाप्रद कहानियो को प्रसन्नतापूर्वक पढ़ते हैं और वर्णन का खूब आनन्द लेते हैं।" भारतीय कथा साहित्य मे इस प्रकार के आख्यानो की कमी नहीं है। विष्णु शर्मा का पचतंत्र और हितोपदेश शश-शृगाल-काको लूक के मध्य चलने वाले जीवनोपयोगी आख्यान ही तो हैं। भारत के ये आख्यान संसार के श्रेष्ठतम फेबिलस् मे से है। इनकी यही विशेषता है कि इनमें किसी न किसी प्रकार की शिक्षा अवश्य मिलती है।

यहाँ पर इतना और ध्यान दे लेना चाहिए कि प्रत्येक वह कहानी जिसमें पशु-पक्षी किसी भी रूप में आये हैं तत्रमूलक अथवा नीतिमूलक कहानी नहीं कहला सकती। फेबलस् वे ही कहानियाँ हैं जिनमे नीति बतलाई गई है अथवा कोई सुनिश्चित उपदेश दिया गया है। बौद्ध जातको में आई हुई वे पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानी कदापि तंत्राख्यान नहीं कहलायेगी। कारण कि वे धर्मभावना को जाग्रत करके चुप हो जाती हैं और उनका आदर धर्म-श्रद्धा से होता है। यही स्थिति वेदों में मिलने वाली उन कहानियो की है जिनमें पशु-पक्षियों का नाम आया है।

लोकसाहित्य के कथा भाग पर विचार कर चुकने पर लोक गीत और लोक कहावतें, पहेलियाँ आदि रहती हैं। लोक गीत लोक मानस के वे अजस्र

एवं निश्छल प्रवाह हैं जिनका लोक प्रतिभा के द्वारा विभिन्न अवसरों पर निर्माण होता है एवं गान होता है। संक्षेप मे लोकगीत लोक द्वारा लोक के लिए गाया गया गीत होता है। लोक गीतों की सख्या उतनी हो सकती है जितने जीवन के पहलू हैं।

प्रकीर्ण साहित्य मे उस समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश होता है जो लोककथा, लोकगाथा और लोकगीत की परिधि से बाहर पड़ जाती है। इस प्रकार इनमे लोक के वे सभी अनुभव जो समय-समय पर होते हैं आ जाते हैं। पहेलियाँ, सूक्तियाँ, बुझौवल, कहावते, बालकों के खेलकूद के वाणी विलास आदि सब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इनका विवेचनात्मक वर्णन भी यथास्थान दिया गया है।

(घ) लोकसाहित्य की विशेषताएँ

लोक साहित्य जिसके रूपादि का ऊपर वर्णन हुआ है उसकी विशेषताओं पर दृक्पात करना असमीचीन न होगा। लोक साहित्य को कुछ विद्वानो ने लोक श्रुति (वेद) कहा है। वेद का नाम श्रुति इसी विशेषता के कारण पड़ा है कि यह शिष्य परंपरया श्रुतिबल से चलता चला आया है। लोक-साहित्य भी इसी कर्ण परम्परा से आगे बढ़ता है। वह दादी से पोती तक, नानी से धेवती तक श्रुति मार्ग से आया है। यही इसकी प्रथम एवं प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसके विपरीत प्रणीत साहित्य मौखिक परम्परा की अपेक्षा लेखनी परपरा पर गर्व करता है। यदि लेखबद्धता का वह गौरव लोक-साहित्य को मिल जाये तो वह एक प्रकार से निष्प्राण हो जायगा। लिपि का प्रसाद भले ही गीतो, गाथाओ, कथा-कहानियों को सुरक्षित रख ले परन्तु उनकी अनुप्राणिकाशक्ति उसी क्षण नष्ट हो जाती है जब कि वे लेखनी की नोक पर सवार होकर कागज की भूमि पर उतरना आरभ करते हैं। उनको सुरक्षा, सौन्दर्य एव सम्मान भले ही मिल जाये किन्तु उनमे वह स्वाभाविक उन्मुक्त प्रवृत्ति नही रहती जिसमे वे जन्मे हैं, पनपे हैं और पुष्ट हुए हैं। वह गमले के पौदे की भाँति हरा-भरा रहता हुआ भी अशक्त और भविष्यत् की उन्नति से विमुख रहता है। फ्रेक सिजविक के ये शब्द कितने तथ्यपूर्ण हैं कि लोकसाहित्य का लिपिबद्ध होना ही उसकी मृत्यु है। वस्तुतः लोकसाहित्य की मौखिकता ने ही उसे व्यापकता एवं अनेकरूपता प्रदान की है।

इसी बात को प्रो० किटरेज ने 'इगलिश और स्काटिश बैलेड्स' की भूमिका मे इस प्रकार कहा है—'लोक-साहित्य का शिक्षा से कोई उपकार

नहीं होता''''''''जब कोई जाति पढ़ना सीख लेती है, तो सबसे पहिले वह अपनी परम्परागत गाथाओं का तिरस्कार करना सीखती है। परिणाम यह होता है कि जो एक समय सामूहिक जनता की संपत्ति थी वह अब केवल अशिक्षितों की पैतृक संपत्ति मात्र रह जाती है।'

एक दूसरी विशेषता, जो लोकसाहित्य के पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है, वह है उसकी अनलंकृत शैली। शिष्ट साहित्य में सालंकारता के प्रति विशेष आग्रह होता है। यत्र-तत्र अनलंकृति भी क्षम्य है—'अनलंकृतिः पुनः क्वापि' (मम्मट—काव्य प्रकाश, काव्य का लक्षण) पर लोक-साहित्य में बनावट, सजावट, कृत्रिमता और अलंकरणप्रियता का आग्रह नहीं है। यह तो उस वन्य कुसुम के सदृश है जो बिना संवारे हुए भी अपनी प्राकृतिक आभा से दीप्तिवान है। इसमें नैसर्गिक रुक्षता (खुरदरापन) है किन्तु है एक लावण्य एवं सौन्दर्य से संयुक्त। यह तो लोक मानस की वे सहज तरंगें हैं जो सहृदयों के कलहंस को आह्लादित करती हैं। यह तो जाह्नवी की उस अजस्र जलधारा के सदृश है जो मानव के साथ अनादि काल से बहती चली आ रही है। सालंकार काव्य से लोक-गीतों का वैशिष्ट्य प्रदर्शित करते हुए पं० रामनरेश त्रिपाठी के ये शब्द चिरस्मरणीय रहेंगे—'ग्राम-गीत और महाकवियों की कविता में अंतर है। ग्राम-गीतों में रस है, महाकाव्य में अलंकार। ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।' कितने सार्थक हैं त्रिपाठी जी के ये शब्द। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इनमें दण्डी का पद लालित्य, भारवि का अर्थ-गौरव और कालिदास की अनूठी उपमाएँ न देखने को मिलें—बेशक, पर इनमें रस का एक पारावार लहरा रहा है जो सहृदय संवेद्य है।

सादगी लोक कविता का सर्वस्व है। साहित्यिक कविता में ऊहा और कल्पना के वे रंग हैं जो कालान्तर में छूछे हो जाते हैं। लोक कविता अपने नैसर्गिक रंग में मानव के उषःकाल से जीवित है और जीवित रहेगी। इस काव्य क्षेत्र में अलंकार बहिष्कार की शपथ नहीं ली गई है। ये तत्व अस्पृश्य एवं त्याज्य नहीं ठहराये गये हैं। अतः रीत्यलंकार पारखी अनावश्यक रूप से निराश व चिंतित न हों। उन्हें स्थान-स्थान पर बड़े भव्य एवं सुन्दर अलंकार चारों ओर बिखरे मिलेंगे। हमारा कहने का अभिप्रायः केवल यह है कि लोकसाहित्य में शिष्ट साहित्य की भाँति रीत्यलंकारों के प्रति आग्रह नहीं होता। जहाँ अलंकार आये हैं अनायास ही आ गये हैं। उनकी संख्या अल्प

अवश्य है किन्तु आये हैं ये सयम के साथ। इन्हीं तथा अन्यान्य कारणों से लोक साहित्य को सर्वप्रियता प्राप्त हुई है। अनुपम सादगी और स्वाभाविक सरलता लोक साहित्य के आत्मीय गुण हैं।

लोक साहित्य को तीसरी प्रमुख विशेषता है रचयिता और रचना काल का अज्ञात होना। दादी नानी से चली आती हुई दंतकथाओं और गीतों आदि की परंपरा किस युग से चली और किस कृती के पुण्यों का परिणाम है इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं। यों तो सभी रचनाएँ किसी न किसी व्यक्ति की प्रतिभा का प्रसाद है किन्तु उसका व्यक्तित्व इस परंपरा मे अज्ञातावस्था में है। वास्तव मे, इन गीतादिको के कर्त्ता वे निरीह जन हैं जिन्होने अपने नाम और गाम की चिंता न करते हुए समाज के लिए अपनी प्रतिभा की भेंट दी है। कालक्रम से अज्ञातनामा व्यक्ति विशेष की रचना मे समुदाय ने भी अपना योग दिया और यह स्वाभाविक भी था क्योंकि वह वस्तु समुदाय की है और समुदाय के लिए है। समुदाय का योग मिलना आवश्यक है। इसी से कविता के आरंभ पर विचार करते हुए कुछ विद्वानो ने कहा है कि आदि मे कविता समस्त समुदाय के प्रयत्नों से बनी। किसी ने कुछ जोड़ा, किसी ने कुछ और एक पद बना। इसी प्रक्रिया से कविता आगे बढ़ी है। इससे एक कठिनाई अवश्य हुई है कि लोकसाहित्य का कोई मूल पाठ नहीं मिलता। यह भी कहा जा सकता है कि संभवतः कोई निश्चित मूल पाठ रहा भी न हो। इसका एक विपरीत परिणाम यह भी हुआ है कि कई लोगों को घाघ, भड्डरी आदि की कहावतों को लोकसाहित्य कहने में आपत्ति हुई है। किन्तु इन लोक कलाकारों का व्यक्तित्व इतना व्यापक और महान् हो चुका था कि इनके नाम भी एक समुदायवाची बन गये हैं। इन्होंने 'स्कूल का रूप' ले लिया है। सच पूछा जाये तो इन नामों में नाम की गंध न रह गई है। ये तो आप्त पुरुष के रूप में शेष हैं। भले ही वह पुरुष घाघ हो, भड्डरी हो, या हो अन्य कोई लोक-नाट्यकार दीपचंद जैसा व्यक्ति। लखमी हरियाने का लोक सांगी इस रूप मे है कि उसमे लोक नाट्यकार के लिए जिस सूझ, व्यक्तित्व और प्रतिभा की आवश्यकता होती है वे सब एक-एक करके विद्यमान हैं। उसकी कल्पना इतनी निराली और व्यापक तत्वों से समन्वित थी कि दर्शकवृन्द 'वाह दादा, वाह दादा' कहकर पुकार उठते और रसानुभूति से उन्मत हो जाते थे। यहाँ पर डा० उपाध्याय की वह स्थापना जिससे उन्होंने राहुल जी आदि अनेक भोजपुरी भाषा में लिखनेवालों को भोजपुरी लोकसाहित्य निर्माताओं मे स्थान दिया है कुछ खटकने वाली है। राहुल जी का रूप तो एक उत्कृष्ट विवेचक और मीमांसक का है उसमें भला जन गायक का रूप कहाँ आ सकता

है ? फिर लोक बोली या लोक भाषा मे लिखी हुई प्रत्येक वस्तु लोक साहित्य के पावन सिहासन पर नही विराजमान हो सकती । इसके लिए उन परिस्थितियो की आवश्यकता है जो किसी वस्तु को लोकसाहित्य बनाने मे सहायक होती हैं।

लोकसाहित्य की अन्य विशेषता यह है कि यह प्रचार या उपदेशात्मक प्रवृत्तियो से अछूता है । विशुद्ध लोकसाहित्य मे प्रचार, प्रोपैगेन्डा अथवा उपदेश का अभाव रहता है । उसमे तो विरह, वीरता, करुणादि के सात्विक भाव भरे होते हैं जो जन-जन को एक रूप से प्रिय एवं ग्राह्य हैं । यहाँ पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि लोकोक्तियो मे भी तो उपदेशात्मक प्रवृत्ति है फिर वे लोकसाहित्य का प्रमुख अंग क्योकर हैं ? विचारने पर प्रतीत होगा कि लोकोक्ति-साहित्य का प्राण वह कोरा उपदेश ही नहीं है । लोकोक्ति तो वह विद्‌ एवं चत्मकार है जो शत-शत अनुभवों के द्वारा प्राप्त हुआ है और किसी के मुख से चमत्कृत रूप मे प्रसूत हुआ है । इसलिए लोकोक्ति केवल 'अभिव्यक्ति' पर जीवित है उपदेश पर नही । उपदेश तो वहाँ एक गौण तत्त्व है ।

लोकसाहित्य की एक और विशेषता यह भी है कि उसमे साम्प्रदायिकता के लिए स्थान नहीं है । वह पक्षी व पवन के सदृश स्वछन्द है । उसे शाक्त एवं वैष्णव की आलोचना से कुछ नहीं लेना देना है । उसे विष्णु भी उतने ही पूज्य हैं जितनी कि शक्ति या काली आराध्या । उसकी निर्गुण ब्रह्म मे उतनी ही आस्था है जितनी कि सीताराम, राधाकृष्ण और शिव-पार्वती मे । लोकसाहित्य की इस उदात्त-भावना ने निस्सदेह इसे अन्य सभी साहित्यो से महान् बना दिया है ।

अंत में इस बात को समाप्त करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं यदि कविता का कार्य पाठक को संवेदनशील बनाना, सोचने समझने की शक्ति देना और जीवन की रसमय व्याख्या करना है तो निश्चय ही शास्त्रीय कविताएँ अधिकांश में असफल रही हैं । लोकगीत चाहे जिस देश व जाति के हों कविता के वास्तविक उत्तरदायित्व को बहुत अंश में पूरा करते हैं, निभाते हैं ।

(ङ) लोकसाहित्य का महत्व

उपरोक्त विवेचन से हम उस कोने पर पहुँच गये हैं जहाँ से सरलतया लोकसाहित्य के महत्व को आंका जा सकता है । लोकसाहित्य का महत्व बहुविध है । विचार करने पर पाठक को धर्मगाथा (माइथालाजी), नृविज्ञान

(एनथापोलोजी), जाति विज्ञान (एथनोलोजी) और भाषा विज्ञान (फाइलालोजी) आदि क्षेत्रो मे लोकसाहित्य की महत्ता, विशेष रूप से अनुभव होगी। यदि हम कहें कि लोकसाहित्य के सम्यक् विवेचन के बिना इन क्षेत्रों का अध्ययन अपूर्ण एवं अर्द्धपूर्ण होगा तो कोई अत्युक्ति न होगी। लोकसाहित्य धर्मगाथादिकों के अध्ययन के लिए आधारशिला का कार्य करता है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र मे तो लोक साहित्य की महत्ता सर्वविदित है।

विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपो की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गये हैं वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति मे लोकसाहित्य ही दिशा निर्देश करता है। लोकसाहित्य का गंभीर अध्ययन जीवन और जगत की मौलिक एवं प्रामाणिक खोज के लिए अत्यन्त आवश्यकीय है। आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियो को जानने का सबसे सरल, प्रामाणिक एवं रोचक साधन लोकसाहित्य ही तो है। इस स्थल पर एक और बात भी विचारणीय है कि सभ्य कही जाने वाली जातियों के वास्तविकतावादी (Realistic) लेखकों की भाँति अनेक असस्कृत जातियों के मौखिक साहित्य मे भोग व लिप्सा की दुर्गन्ध नहीं है। इनके गीतों मे जीवन की निकृष्ट दशा को छोड़ जीवन के रमणीय पक्ष का प्रदर्शन हुआ है।

भय, आश्चर्य और जिज्ञासा हेतु मानव ने छन्दोबद्ध अथवा छन्दोमुक्त जो कुछ भी कहा है वह सभी हमारे अन्वेषण, अध्ययन एवं मनन के लिए उपादेय है। उसमें वे सभी प्रकार के गीत, कथा, गाथा, पहेली, लोकोक्ति, मुकरी आदि आयेंगे जिनके द्वारा मानव ने अपने हृदय के मोतियो को बखेरा है, अपनी ज्ञान-गंगा प्रवाहित की है। शिशु स्वागत के लिए गाये गये होलड़ और लोरियाँ भी इसी साहित्य के अङ्ग हैं। उन सबका अध्ययन बड़ा मनोरम एवं उपयोगी है जो नीचे के विवरण से स्पष्ट है।

१. ऐतिहासिक महत्व

किसी देश व समाज के प्राचीन रूप को झांक देख लेने का अनुपम साधन लोकसाहित्य है। जब श्रावण मास मे चंदन के रूख पर रेशम की डोर से झूला डालने की माग हरियाणे की नवोढा करती है, बटेऊ (अतिथि, विशेषकर जामाता) के पधारने पर सोने की कढ़ाई में पूरियाँ उतारने की बात कही जाती है तो बरवश मन समाज के विगत वैभव विलास की ओर खिंच जाता है। भले ही ये समाज की आदर्श कल्पनाएँ रही हों किन्तु जन मानस

में ये वस्तुएँ रही अवश्य हैं। चन्द्रावल तथा अन्यान्य पतिपरायणा महिलाओं के आदर्श पातिव्रत को प्रदर्शित करने वाले गीत तथा कामांध यवनों के निरीह जनता के गार्हस्थ्य जीवन को पंकिल करने वाले कारनामे किस इतिवृत्त से अधिक प्रभावशाली नहीं हैं ?

वर्णनात्मक दोहे जो ग्रामीण जनता के मुख में आसीन हैं बड़ी पते की बातें बतलाते हैं और पिछले इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। हरियाणा के विषय मे गुरु गोरख नाथ के पर्यटन से सम्बन्धित यह दोहा—

'कंटक देश, कठोर नर, भैंस मूत्र को नीर।'
करमां का मारा फिरे, बांगर बीच फकीर।

नाथ कालीन इस प्रदेश के इतिहास को अपने में समेटे हुए है। यह संस्कृत में प्राप्त उस वर्णन के प्रतिकूल है जहाँ हरियाणे को 'बहुधान्यकभूः' कहा गया है। इस स्थिति में पाठक एक विचिकित्सा में पड़ जाता है कि राजाश्रित किसी कवि की वह संस्कृतोक्ति सत्य है अथवा रमते राम बाबा गोरखनाथ की यह ठेठवाणी। सामयिक परिस्थिति एवं वातावरण को देखते हुए गोरख बाबा वाली बात ही यथार्थ बैठती है। ऐसे ही अन्य अनेक तत्व इतिहास की खोज में सहायक होते हैं।

पाश्चात्य विद्वानो ने भारतीय साहित्य में यह कमी बतलाई है कि इसमें इतिहास विषयक सामग्री का एक तरह से अभाव है परन्तु उनका यह आक्षेप शिष्ट और लोकसाहित्य दोनों पर लागू नहीं होता। लोक मस्तिष्क ने अपने इतिहास की कड़ियाँ अपने गीतों में, अपनी कथाओ मे जोड़ी हैं। लोक-गाथाएँ तो एक रूप से इतिहास की प्रचुर सामग्री से सम्पन्न हैं। उनमें अतिरंजना भले ही हो किन्तु इतिहास के विद्यार्थी को कुछ ऐसे तथ्य अवश्य मिल जायेंगे जो प्रसिद्ध इतिहास लेखकों की दृष्टि से छूट गये हैं।

२. सामाजिक महत्व

लोकसाहित्य का सामाजिक मूल्य बहुत अधिक है। समाज-शास्त्र के समुचित अध्ययन के लिए लोकसाहित्य की महत्ता सुविदित है। भारतीय समाज का ढांचा किस प्रकार का रहा है यह लोक-गीतों, लोककथाओ और लोकोक्तियों से भली-भॉति समझ में आ जाता है। सास बहू का कटु संबंध, ननद भौजाई का वैमनस्य, विप्रयुक्ता तथा विधवा की दशा का मार्मिक एवं याथातथ्यपूर्ण वर्णन किसी लिखित रूप में उतना मार्मिक नहीं मिलेगा! भाई बहन के निरीह निश्छल कोमल प्रेम के उदाहरण क्या कल्हण की राजतरंगिणी,

अष्टादश पुराण और टॉड राजस्थान आदि महान ग्रंथों में देखने को मिलेंगे ? शिशु जन्म पर होने वाले सामाजिक कृत्यों के प्रति क्या इतिहास-लेखको का ध्यान कभी गया है ? इन सबके समीचीन अध्ययन के लिए लोक साहित्य ही तो एक मात्र साधन है ।

३. शिक्षा विषयक महत्व

ज्ञान एवं नीति की दृष्टि से यह साहित्य पर्याप्त समृद्ध है । ग्रामो में चाहे स्कूल, कालेज एवं उच्च शिक्षा का समुचित प्रबंध न हो, चाहे ग्रामीण जनता को अक्षर ज्ञान की कोई सुविधा न हो परन्तु जनता के ज्ञान मे बराबर वृद्धि होती रहती है । इस ज्ञान को ग्रामीण जनता आँखों द्वारा न लेकर कानो द्वारा ग्रहण करती है । इस प्रकार यह शिक्षा दिन और रात का; प्रातः और मध्याह्न का, तथा संध्या व प्रदोषकाल का कोई ध्यान न कर सहज रूप मे वायु और आकाश के पंखों पर चढ़ नारद की भाँति जन-जन के द्वार पर अलख जगाती है । ग्राहक को इस शिक्षा के हृदयंगम करने के लिए किसी विशेष वातावरण एवं परिस्थिति की आवश्यकता नही पड़ती । यह कहना अनुचित न होगा कि ग्रामो मे मौखिक विश्व विद्यालय खुले हुए हैं । परस (चौपाल) और पूअर (अलाव) इस ज्ञान-वितरण के लिए बड़े उपयुक्त स्थल हैं । इन संस्थाओ में शिक्षा के अलग-अलग स्तर हैं जहाँ आबालवृद्ध को आयु के अनुसार शिक्षा मिलती है । शिक्षार्थी को समयानुसार सब चीजें सीखने को मिलेंगी । कोर्स (पाठ्यक्रम) आयु के अनुसार चलता है । बचपन में बाल सुलभ और बुढ़ापे मे वृद्ध सुलभ ।

इस शिक्षा वितरण के सर्वोत्तम साधन लोक-कथाएं हैं । यो तो बालक की शिक्षा जननी की गोद मे ही आरम्भ होती है । वहीं से वह चदामामा, भूजू के म्याऊं के, आटे बाटे के द्वारा कुछ सीखता चलता है । कैसा सुन्दर ढङ्ग है, शिक्षा की शिक्षा और मनोविनोद का मनोविनोद । घर-घर मे किंडर गार्टन और माटेसरी शालाएँ लगी होती हैं । माता-पिता, भाई-बहन, दादी-दादा, अडोसी-पडोसी अबोध बालक की ज्ञान झोली मे कोई न कोई रत्न बिना माँगे डालते रहते हैं । बालक कुछ बड़ा होता है तो दादी-नानी की घरेलू कहानियाँ बालक को हुकारे के साथ कभी आश्चर्य, कभी उत्साह और कभी उदारता के पाठ पढ़ाती चलती हैं । इन कहानियो मे बालक के लिए परिचित कुत्ता, बिल्ली, कौआ, मोर, तोता, सारस, गीदड और लोमडी आदि पात्र जीवन की व्याख्या बालक की मातृभाषा में करते चलते हैं । ये कहानियाँ श्रोता को सामाजिक व्यवहार का ज्ञान भी

देती रहती हैं। इन ग्रामीण घरेलू कहानियो मे और पाठ्य-पुस्तको मे स्थान पाने वाली आधुनिक कहानियो में एक मौलिक अन्तर है। स्कूली कहानियों मे पाश्चात्य सभ्यता व सस्कृति लहरे लेती है जब कि घरेलू कहानियो का पट उन्हीं तन्तुओं से निर्मित है जो पूर्णतया भारतीय हैं। वही—'एक राजा था। उसके सात छोरे थे और सात छोरियाँ थीं'—आदि पूर्व परिचित बाते हैं।

बालिकाओ के दृष्टिकोण से देखें तो लोकसाहित्य बड़ा उपयोगी मिलेगा। उनके लिए सामाजिक एवं कौटुम्बिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध यहाँ मिलता है। उदार जननी एवं सद्गृहस्थ बनना भारतीय पुत्रियो का प्रथम व पुरातन उद्देश्य रहा है। बलिकाएँ जीवन के आरम्भ से ही गुड़ियो के साथ खेल-खेल-कर अपना मनोरंजन करती हैं और गृहस्थ के अनेक रहस्यो को अनायास सीख लेती हैं, समझ लेती हैं। कुछ सयानी होती हैं तो गीतो की दुनिया मे पदार्पण करती हैं। यह संसार उन्हें पर्याप्त मात्रा मे शिक्षित कर देता है। यहीं से उन्हें ऐसे असंख्य नुसखे (योग) मिलते हैं। जो भावी जीवन के लिए लाभप्रद एव हितकर सिद्ध होते हैं। जिन बातों को ये गुड्डे गुड़िया के रूप मे कहती सुनती है उन्हीं से अपने भावी जीवन की दिशा निर्धारित करती चलती हैं। डा० वैरियर एलविन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'फोक्सांग्स् आव मैकलहिल्स्' में एक स्थान पर लोक गीतो की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि—'इनका महत्व इसीलिए नहीं है कि इनके संगीत, स्वरूप और विषय मे जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, प्रत्युत इनमे मानवशास्त्र (सोशियोलाजी) के अध्ययन की प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री हमे उपलब्ध होती है'। डा० एलविन के मत मे एक सार है, एक तथ्य है।

४. आचारिक महत्व

लोक में आचार का बड़ा महत्व है। लोकसाहित्य मे आचार सम्बन्धी बातें यत्र-तत्र बिखरी मिलेंगी। यहाँ आचार सम्बन्धी कितने ही अध्याय खुले पड़े हैं जिनमें एक लोकोत्तर नैतिक एव आचारिक अवस्था का वर्णन है। सतीत्व का कितना ऊँचा आदर्श यहाँ उपलब्ध होता है यह चन्दरावल के कथा-गीत से स्पष्ट है। लोक साहित्य मे जिन उच्चादर्शों का वर्णन है जिन लोकोत्तर चरित्रों की कल्पना है उनमे राम कृष्ण शिव और सीता राधा पार्वती को नहीं भुला सकते। वे हमारे आचार के केन्द्र हैं। इन्हीं आदर्शों को अपनाकर भारत भारत रह सकता है।

५. भाषा वैज्ञानिक महत्व

यह सत्य बात है कि 'भाषा-शास्त्री' के लिए शिष्ट साहित्यिक भाषाएँ

उतनी उपयोगी नहीं है जितनी कि बोलचाल की भाषाएँ। इसलिए लोक-साहित्य लोक-भाषा की वस्तु होने के कारण भाषा-वैज्ञानिकों के लिए बडा महत्व पूर्ण है। यही वह धरातल है जहाँ पर भाषातत्ववेत्ता भाषा के परतों को उघाडकर देखते हैं और गभीर से गंभीर स्तरो मे प्रवेश पाते हैं।

अर्थ परिवर्तन को समझने के लिए तथा शब्दों के इतिहास की खोज के लिए लोकसाहित्य सर्वाधिक उपादेय है। पं० रामनरेश जी त्रिपाठी का यह कथन पूर्णतया सत्य है कि 'आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता गाँव वाले हैं और उनका साहित्य इस भाषा को घढ़ने के लिए टकसाल का काम दे रहा है। संस्कृत के शब्द किस प्रकार साधारण जन के लिए उपयोग सुलभ हुए हैं यह सब इस टकसाल का ही परिणाम है।' जब एक साधारण ग्रामीण किसी नई वस्तु या किसी नूतन प्राकृतिक व्यापार को देखता है तो उसे अपनी समझ से कोई न कोई नाम देना चाहता है। इसके लिए किसी पडित व पुरोहित की अपेक्षा उसे नहीं होती। उसने साईकिल देखी। कभी नहीं सोचा कि यह अग्रेजी अथवा ऐंग्लो-सेक्सन भाषा का शब्द है और उसके क्या माने हैं। उसने देखा केवल एक नूतन व्यापार कि एक गाडी है और वह पैर से चलती है। अतः वह सहसा कह बैठा 'पैरगाडी'। यह एक साधारण शब्द है लेकिन कितना सार्थक एव उपयोगी है। संभवतः संस्कृत का धुरंधर वैयाकरण इतना सार्थक शब्द निर्माण न कर सकता। यदि करता तो उस शब्द की दशा 'मघवामूल विडौजा टीका' होती अर्थात् नवनिर्मित शब्द मूलशब्द से भी दुरूह होता।

लोकमानस की शब्द निर्माण शक्ति की परख प्रायः क्रिया-विशेषण बनाने मे सरलतया हो जाती है। जोर से गिरने के लिए 'धडाम से गिरा' अधिक सार्थक एव स्वतः बोधक है आदि। यदि हम किसी ग्रामीणजन को बोलता सुने तो हमे सहज ही ज्ञात हो जायेगा कि वह कितने ही ऐसे शब्द प्रयोग मे लाता है जो भारतीय वातावरण मे पनपे हैं यथा पौन (पवन) पौरख (पौरुष) वार (वारे) आदि ऐसे शब्द हैं जिनके अन्तस् में भारतीय वातावरण हिलोरें ले रहा है। एक सरल विवेचन से हम यह देख पायेंगे कि लोकभाषा शिष्ट भापा से अधिक सम्पन्न और बलवती है। इसके अध्ययन से हमारी भाषा समृद्ध बनेगी और सरल भी बनेगी। हरियाना लोकसाहित्य का अध्ययन भी हिन्दी शब्दकोश की पर्याप्त अभिवृद्धि करेगा। इस बोली के उणियार (सदृश), ल्हास (Co-operative league) तथा दावें (पर्याप्त रूप से) आदि ऐसे शब्द है जो हिन्दी की भाव-प्रकाशिका को बढ़ायेंगे।

६. सांस्कृतिक महत्व

लोकसाहित्य का सांस्कृतिक पक्ष बडा विशद है। विश्व की संस्कृतियाँ

कैसे उद्भूत हुई, कैसे पनपी, इस रहस्य की कहानी अथवा इतिहास हमें लोक साहित्य के सम्यक् अध्ययन से मिलता है। सस्कृतियो के पुनीत इतिहास की परख अनेकाश मे लोकसाहित्य से सभव है। सच पूछा जाये तो लोकसाहित्य ही संस्कृति की अमूल्य निधि है। महात्मा गांधी के निम्नलिखित शब्द जिनमे लोकसाहित्य के सास्कृतिक पक्ष की महत्ता प्रकट की गयी है, चिरस्मरणीय रहेंगे—'हाँ, लोकगीतो की प्रशंसा अवश्य करूँगा, क्योकि मै मानता हूँ कि लोकगीत समूची संस्कृति के पहरेदार होते हैं।' गुजराती मनीषी काका कालेलकर ने लोकसाहित्य के सास्कृतिक पक्ष को इन शब्दो मे व्यक्त किया है—'लोकसाहित्य के अध्ययन से, उसके उद्धार से हम कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा मे फिरने-डोलने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। स्वाभाविकता से ही आत्मशुद्धि सभव है[1]।' अत मे यदि हम यह कहें कि लोक साहित्य जन-संस्कृति का दर्पण है तो अत्युक्ति न होगी।

संस्कृति की आधारशिला पुरातन होती है। इसके मूलतत्वों के संबंध मे जो तत्व सबसे महत्वपूर्ण एव विचारणीय हैं, वह है विगत का प्रभाव। आज भी हमारा आदर्श हमारा अतीत है। झूला-झूलते, चाकी पीसते, यात्रा करते हमारे आदर्श राम-लक्ष्मण के पुण्य चरित्र ही हैं। यही लोकसाहित्य का सांस्कृतिक पक्ष है।

---

१. 'राजस्थानी लोकसाहित्य'—पारीक पृष्ठ १६।

प्रथम अध्याय

अ. हरियाना प्रदेश का इतिहास और क्षेत्र-विस्तार

आ. हरियाना लोकसाहित्य के विविध रूप

अ. हरियाना प्रदेश का इतिहास और क्षेत्र-विस्तार

१. हरियाना प्रदेश का इतिहास, नामकरण व प्राचीनता

विषय-प्रवेश मे हमने लोकवार्ता और लोकसाहित्य के रहस्य, पारस्परिक सम्बन्ध तथा लोकसाहित्य की विशेषताओं को जानने का प्रयत्न किया है। "हरियाना प्रदेशीय लोकसाहित्य का अध्ययन" नामक विषय पर पहुँचने से पहिले हरियाना प्रदेश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करना अनुपयुक्त एव अप्रासगिक न होगा। अतः इस अध्याय के प्रथम अर्द्धभाग में हरियाना प्रदेश की प्राचीनता, उसका क्षेत्र-विस्तार एवं सीमाओं पर विचार करेंगे और उत्तरार्द्ध मे हरियाना प्रदेश से प्राप्त लोकसाहित्य के विविध रूपों का वर्णन करेंगे।

हरियाना प्रात का इतिहास एक रूप से उपेक्षित रहा है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक का इतिहास इस प्रदेश के विषय मे मूक बना हुआ है। शक, मालव आदि तक्षशिला को केन्द्र बनाकर विकसित हुए। उनके समय में मथुरा नगर ऐतिहासिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था किन्तु तक्षशिला और मथुरा के मध्यवर्ती इस प्रदेश को कोई ऐतिहासिक महत्ता नहीं मिली। खेद की बात है कि जिस महान् प्रदेश को आज हरियाना के नाम से पुकारा जाता है उस प्रदेश का प्राचीन ग्रंथों में इस नाम से कही वर्णन तक नहीं मिलता। ऋक् संहिता ६.२.२५.२ में 'रजतं हरयाणे' पाठ में एक शब्द मिलता अवश्य है किन्तु यह शब्द देशवाची नहीं है।[1] यह शब्द वहाँ पर एक राजा के विशेषण के रूप मे प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है "सदैव यान (रथ) चलता रहता है जिसका।" परन्तु इस प्रदेश की स्थिति से यह सहज ही ज्ञात हो

---

१. निरुक्त—नैगम कांड, अध्याय ५, खंड १९, पृष्ठ ५२१ (दुर्गाचार्य की टीका)।

मूलपाठ—हरयाणो हरमाणयानः। रजतं हरयाण इत्यपि निगमो भवति। भाष्य—हरयाण इत्यनवगतम्। हरमाणयान इत्यवगमः। ऋजमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे। रथं युक्तमसनाम सुषामणि—ऋक् संहिता ६.२.२५.२

अर्थ—इसमें यान की स्तुति की गई है। घोड़ों से युक्त, चांदी से मढे और सरल, सुखद गतिवाले रथ को हमने, यान सदैव चलता रहता है जिसका और साम शोभायमान है जिसका ऐसे उक्षण्यायन नामके राजा के यजमान और महादक्ष दाता होने पर, प्राप्त किया।

जाता है कि यह प्रदेश विगत युगो मे आर्य सभ्यता का केन्द्र रहा है। इस प्रदेश की परिसीमा मनुस्मृति और महाभाष्य मे वर्णित ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि, मध्य-देश तथा आर्यावर्त के प्रचुर भूभाग को अपने मे समेटे हुए है।[१] चाहे जो कुछ हो इतना तो स्पष्ट है कि मनुस्मृति, महाभाष्य, बौधायन धर्मसूत्र, वशिष्ठ धर्मसूत्र और विनयपिटक आदि मे वर्णित मध्य-देश तथा आर्यावर्त की पश्चिमी सीमा आधुनिक हरियाने की पश्चिमी सीमा रही है।[२] आज भी हरियाने की पश्चिमी सोमा पर सरस्वती तथा दृपद्वती (घग्गर) नदी बहती है।[3]

उपरोक्त वर्णन से पाठको को यह विदित हो गया है कि यह प्रांत एक प्राचीन प्रदेश एवं कई प्राचीन जनपदो की लीलाभूमि रहा है। महाभारत में जनपदो का वर्णन मिलता है। उन जनपदो में कुरुवन एक विशेष ख्याति-प्राप्त प्रदेश था। आधुनिक हरियाना कुरुवन प्रदेश का वह भूभाग है जो कौरवो ने पाडवो को दिया था। इसी प्रदेश मे पांडवो ने अपनी इतिहास प्रसिद्ध राजधानी इन्द्रप्रस्थ बसाई थी। हरियाना प्रदेश मे ही पाणिप्रस्थ (आधुनिक पानीपत) श्रोणिप्रस्थ (आधुनिक सोनीपत) वे ऐतिहासिक स्थान हैं जिनकी मांग पांडवो

---

१. (i) सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
त देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ मनुस्मृति २.१७
सरस्वती और दृपद्वती देवनदियों के बीच के देवताओं से बनाये गये देश को ब्रह्मावर्त नाम से कहा जाता है।

(ii) कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एषः ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादन्तरः॥ २.१९
कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल और शूरसेन देश ब्रह्मर्षि देश कहलाते हैं जो ब्रह्मावर्त से भिन्न हैं।

(iii) हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥ २.२१
हिमालय और विन्ध्याचल के बीच मे विनशन नदी से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम देश को मध्यदेश कहा जाता है।

महाभाष्य—कः पुनरार्यावर्त्तः? फिर आर्यावर्त्त कौन सा देश है?
प्रागदर्शनात् प्रत्यक् कालकवनाद् दक्षिणेन हिमवंतं उत्तरेण पारियात्रम्।
अदर्शन नदी से पूर्व मे, कालक वन कनखल से पश्चिम मे, हिमालय से दक्षिण और पारियात्र से उत्तर में आर्यावर्त देश है।—
" विधिशेषप्रकरणे एकवद्भावप्रकरणम् ६, पृष्ठ ४३७

२. इंडियन एन्टीक्वेरी १९०४, पृष्ठ १७९ पर कविराज शेखर पर नोट।

३. गजेटियर जिला हिसार—पृष्ठ ५, पर हिसार की नदियाँ।

ने पारस्परिक कलह की उपशांति के लिए की थी। इनके आसपास ही दो अन्य छोटे-छोटे ग्राम हैं, पांचवां ग्राम इन्द्रप्रस्थ था।

इन्द्रप्रस्थ से पांडवों ने पश्चिम दिग्विजय प्रारंभ की थी। यह प्रदेश एक समय बड़ा समृद्ध था। यहां के कई नगर प्राचीन युग मे राजधानी रहे हैं। प्रारम्भ मे यौधेयों ने रोहतक को अपनी राजधानी बनाया था जो प्राप्त सिक्कों से विदित है। उस समय इस प्रदेश का नाम 'बहुधान्यक' प्रसिद्ध था। होशियारपुर, भरतपुर और सहारनपुर से प्राप्त सिक्कों से भी यह प्रकट है कि यह प्रदेश बडा समृद्ध एव सम्पन्न रहा होगा। पीछे से इस प्रदेश पर वर्धनवंश का राज्य रहा और हर्षवर्धन ने स्थानेश्वर (थानेसर) को अपनी राजधानी बनाया। अतः उपरोक्त विवरण से यह अवगत हो जाता है कि यह भूभाग चिरकाल तक भारतीय इतिहास मे बड़ा प्रमुख रहा है। इस प्रदेश के ऐतिहासिक मूल्य को जानकर भी हम उस युग तक नही पहुच पाये हैं जिस युग मे इसे 'हरियाना' नाम से पुकारा गया। इस नाम का सर्वप्रथम उल्लेख विक्रम की चौदहवीं शताब्दि के अंतिम भाग के (१३८४) एक शिलालेख मे मिला है। इसमे हरियाना देश को पृथ्वी पर 'स्वर्ग सन्निभ' कहा गया है और यहां की 'ढिल्लिका' दिल्ली नाम्नी पुरी तोमरवश द्वारा निर्मित बताई गई है।[1] एक दूसरे स्थान पर 'हरियानक' शब्द प्रयुक्त हुआ है। बलबन के राजत्वकाल के एक शिलालेख मे यह शब्द आया है। यह शिलालेख उपरोक्त शिलालेख

---

१. यह शिलालेख सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के समय का है, जो दिल्ली से ५ मील दूर दक्षिण स्थित 'सारबन' नाम के गांव से मिला है और इस समय दिल्ली के म्यूज़ियम बी० ६ मे रखा हुआ है। इस शिलालेख मे तिथि सं० १३८४। ८९ विक्रमीय फाल्गुन शुक्ल ५ मंगलवार अंकित हैं। कुल १६ श्लोक हैं। यहाँ पर उद्धृत अंश तृतीय श्लोक ह :—

देशोऽस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः।
ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता।
तोमरानन्तरं तस्यां राज्यं हितकंटकम्।
चाहमाना नृपाश्चक्रुः प्रजापालनतत्पराः॥

अ. 'डाउन फाल आफ हिन्दु इडिया'—सी० वी० वैद्य, तृतीयभाग, पृष्ठ २६६।
आ 'कैम्ब्रज हिस्ट्री आफ इंडिया' तृतीय भाग, पृष्ठ ५०७,५१७।
इ 'अग्रवाल जाति का इतिहास' पृष्ठ २१. २२
ई. 'एपीग्राफिका इंडिका' भाग १३ पृष्ठ।
उ. बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ पृष्ठ १।

से ४७ वर्ष पुराना है। यह पालम की एक बावडी से मिला है और उसका समय विक्रम सम्बत् १३३७ दिया हुआ है। परन्तु यह शब्द कोई नूतन नहीं प्रतीत होता वरंच स्वार्थ मे 'क' प्रत्यय करके 'हरियान' से हरियानक शब्द बना लिया गया जान पड़ता है।[1]

एक अन्य स्थान पर इस प्रदेश के लिए 'हरिवाणक' शब्द का प्रयोग मिला है। यह शब्द जिला हिसार की बन्दोबस्त रिपोर्ट सन् १८६३ मे उद्धृत एक श्लोक मे आया है। वहां पर निर्देश है कि यह श्लोक पं० धरनीधर हांसीवाले ने अपनी पुस्तक 'अखंड प्रकाश' में इस प्रकार दिया है।

अभोजितोमरैरादौ चौहाणैस्तदनंतरम् ।
हरिबाणकभूरेषा शकेन्द्रैः शास्यतेऽधुना ॥

अर्थ यह है कि यह हरिबाणक देश आरम्भ मे, तोमरो ने और पीछे चौहानों ने अपने अधिकार में रखा और अब शकेन्द्र इस प्रदेश के हाकीम हैं। इस स्थापना के अनुसार हरियाना—हरिबाणक अथवा हरिबन का परिवर्तित रूप है। इसी पुस्तक, 'अखड प्रकाश' मे हरिबन प्रदेश की पूर्व पश्चिम की सीमा भी एक श्लोक मे दी हुई है :—

पालंब ग्रामपूर्वे तु कुशुंभ ग्राम पश्चिमे ।
हरिबाणकभूरेषा सर्वसस्यादिवर्द्धिनी ॥

पालम गाव अर्थात् हवेली पालम जिसके पूर्व मे है और कुसुभ गाव अर्थात् पटियाला रियासत का कोहन गाव जिसके पश्चिम मे है, यह भूभाग हरिबाणक देश है।

उपरोक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह प्रदेश सदा से धनधान्य सम्पन्न रहा है और तोमर एव चौहान राजाओं ने ८ वीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी तक इसे भोगा है।[2] अतः इस प्रदेश के लिए यह नाम

---

१. एपीग्राफिका इंडो मुस्लिमिका—पृष्ठ ३५ पर दिल्ली के तुर्क सुल्तानों के शिलालेख पाठ—

अभोजितोमरैरादौ चौहाणैस्तदनंतरम् ।
हरियानकभूरेषा शकेन्द्रैः शास्यतेऽधुना ॥

२. अनंगपाल (प्रथम) ने सन् ७३६ ईस्वी में जो तोमरवंशीय सर्वप्रथम राजा है, दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया। आगे चलकर ११५१ ई० में बीसलदेव अथवा विग्रहराज ने (चौहानवंशीय राजा) अनंगपाल द्वितीय से दिल्ली को छीनकर अपनी राजधानी बनाया। दिल्ली के सिंहासन पर चौहानवंशीय अंतिम राजा पृथ्वीराज हुए जिनकी मृत्यु मोहम्मद गोरी के हाथों हुई।

ईस्वी आठवीं शताब्दी में प्राप्त हुआ होगा। हां, इसका उल्लेख, सर्वप्रथम, पाठक को एक शिलालेख से जो चौदहवीं शताब्दी का है, मिलता है।

हरियाना प्रदेश जो दिल्ली से पश्चिम में घग्घर नदी के काठे तक चला गया है, तीन उपभागों में बंटा हुआ है। एक—मूल हरियाना जो वर्तमान हिसार जिले के पूर्व दक्षिण भाग में घग्घर नदी से पूर्व में फैला हुआ है जिसके अन्तर्गत पूरी हाँसी तहसील, हिसार तहसील का पूर्वार्द्ध भाग और फतहाबाद तहसील का कुछ पूर्वी भाग आता है। दूसरा—बांगड़ के नाम से बोला और लिखा जाने वाल भूभाग है।[1] यह ऊँची भूमि है जो अरब सागर की ओर को बहनेवाली तथा बंगाल की खाड़ी की ओर बहने वाली नदियों के बीच जल-विभाजक (Water shed) का काम देती है। तीसरा और सबसे छोटा भाग जमना खादर के नाम से विख्यात है। खादर और बांगड़ के बीचोबीच ग्रांडट्रंक रोड (G. T. Road) है। इन तीनों भू-खडों को आज हरियाना के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रयत्न के द्वारा हमारा उद्देश्य इसी प्रदेश के लोकसाहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करना है।

आज हरियाना को वह समृद्धि तथा गौरव प्राप्त नहीं है जो उसे विगत युगों में मिला है। कहां चौदहवीं शती के शिलालेखों के वर्णन जिनमें इस भूमि को 'स्वर्ग सन्निभ'[2] कहा गया है और कहां आज का पिछड़ा हुआ हरियाना! आज परिस्थिति पूर्णतया विसंवादी है। इस विषमता को जब हम विगत युगों की समकक्षता मे रखते हैं तो आश्चर्य होता है। इतिहास की खोजों से यह प्रमाणित हो गया है कि यह भूभाग एक समय यौधेय वीरों का जनपद रहा है। यौधेयों के इतिहास को खोजना हमारा उद्देश्य नहीं है किन्तु इतना तो जान ही लेना चाहिए कि यौधेयों का प्रसङ्ग पाणिनीय अष्टाध्यायी में आया है[3] और यह एक प्राचीन जनपद है। इन्हीं यौधेयों की प्रभूत विभूति का वर्णन अपभ्रंश कवि पुष्पदंत ने अपने 'यौधेय भूमि वर्णन' में किया है।

१. 'बांगड़' और 'बागड़' दो भिन्न शब्द हैं। बागड़ वार्कट या बाकड से माना जाता है अर्थात् वह प्रदेश जहां बकरियाँ अधिक हों। हिसार जिले का यह वह भूभाग है जो बीकानेर को छूता है। इस प्रदेश में बागड़ी जाटों की आबादी है। हरियाना में देसवाल जाट अधिक हैं। बिशनोई जाति भी बागड़ में बसी है।

२. पृष्ठ ३५ (यही उच्छ्वास) पर पाद टिप्पणी (१)

३. अष्टाध्यायी "न प्राच्यभर्गादि यौधेयादिभ्यः" ४. १. १७८। पाणिनि का समय ४-५ शताब्दी ईस्वी पूर्व माना जाता है।

पुष्पदंत ने लिखा है कि यौधेय देश पृथ्वी (धरणी) पर दिव्य वेश धारण किये हुए हैं और वह प्रदेश धनधान्य से परिपूर्ण है। वहाँ के नगर, ग्रामादि सब बडे शोभायमान हैं।[१]

रोहतक यौधेयो की राजधानी रहा है और इस रोहतक राज्य के दो भागों—मरु और बहुधान्यक—का स्पष्ट वर्णन आता है। कैग्टिन कटले के द्वारा प्राप्त यौधेयों के सिक्के बहुधान्यक टकसाल के हैं। महाभारत काल तक यह प्रदेश अवश्य सम्पन्न रहा है। नकुल दिग्विजय मे आता है कि नकुल दिल्ली के पश्चिम की ओर बढ़ा और वह रोहतक होता हुआ मेहम (महेत्थ) और सिरसा (शैरीषक) तक गया है। उस वर्णन मे भी इस प्रदेश को बहुधनवाला और धनधान्य सम्पन्न कहा गया है।[२] प्रोफेसर जयचन्द विद्यालकार ने नकुल की पश्चिम दिग्विजय का वर्णन करते हुए ऐसा ही कहा है कि नकुल खांडवप्रस्थ से बड़ी भारी सेना लेकर चला। उसे रोहतक सिरसा के समूचे प्रदेश में कुछ अंश मरु और कुछ बहुधान्यक मिले।

हरियाना प्रदेश की प्राचीनता, सम्पन्नता और समृद्धि को देख लेने और समझ लेने के उपरात यह जिज्ञासा होती है कि इस प्रदेश का यह 'हरियाना' नाम किस आधार पर है। यहां यह जानना अप्रासगिक भी नहीं है।

हरियाना नामकरण के इतिहास मे सबल प्रमाण तो अधिक नहीं मिलते परन्तु जो किंवदन्तिया प्रचलित हैं अथवा जो कुछ लिखा मिला है, उसी

---

१. 'हिन्दी काव्य धारा'—राहुल जी, पृष्ठ १६०

जोहेयउ णामि अत्थि देसु। णं धरिणएं धरियउ दिव्वदेसु।

.. ..

जहिं जणधणकण परिपुण्णनाम। पुरणयर सुसीमा रामसाम॥

पुष्पदत महाराज कृष्णराज का दरबारी कवि था। इसका काल १०वीं-११वीं शती माना जाता है।

२. 'भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ' हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित, नकुल का पश्चिम दिग्विजय पाठः—

ततो बहुधन रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत्।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत्॥ सभापर्व, अध्याय ३५

यह श्लोक कुभघोण सस्करण के अनुसार ३५वां अध्याय है और सुब्रह्मण्य शास्त्री के मद्रास संस्करण के अनुसार २८ वां अध्याय है।

को आधार माना जा सकता है। उनमे से कुछ का निष्कर्ष इस प्रकार है :—

प्रथम :—ज़िला हिसार की सीमा पर रियासत जींद मे 'राम ह्रदय' नामक एक स्थान है जहाँ पर हिन्दुओं का एक तीर्थ स्थान (सरोवर) है। यह लोक विश्वास है कि इसी स्थान पर परशुराम ने क्षत्रियो को इक्कीस बार ध्वस्त (कत्ल) किया था। अतः यह एक बलिभूमि है, जहा पर हरि (हरि के अवतार परशुराम एव हरति प्राणानिति हरिः मारनेवाला) ने आर (यान के अर्थ है स्थान या एकत्रित करना) क्षत्रियो को एकत्रित कर इक्कीस बार परशुधार पर उतार दिया था। इस आधार पर यह हरियाना नाम पड़ा है। इसके शब्दार्थ यह हुए कि परशुराम जी द्वारा क्षत्रियो के बलिदान की भूमि।[1]

द्वितीय :—यह भी लोकोक्ति है कि महाराजा हरिश्चन्द्र एक बार अपनी राजधानी अयोध्या मे परिभ्रमण करते हुए इस ओर आये थे। उस समय यह समस्त भूभाग जंगल पड़ा था। उसने इसे आबाद किया। अतः हरिश्चन्द्र के नाम पर 'हरि (हरिश्चन्द्र) का आना' से इस प्रदेश का नाम 'हरिआना', 'हरियाना' प्रसिद्ध हुआ।[2]

तृतीय :—एक प्रचलित किंवदन्ती है कि ब्रज से द्वारका को जाने के लिए हरि (कृष्ण) के यान का यही निर्दिष्ट मार्ग था। अतएव यह भूभाग हरियाना कहलाया।[3] इसी से मिलती-जुलती एक अन्य उक्ति है कि कौरवों और पाडवों के युद्ध मे श्रीकृष्ण जब सम्मिलित होने आये तो सर्वप्रथम इसी प्रदेश मे ठहरे थे। उनकी सेना भी इधर ही एकत्रित रही थी। इसलिए हरि (कृष्ण) के आना से यह प्रदेश हरिआना > हरियाना कहलाया।[4]

चतुर्थ :—यह भी कहा जाता है कि इस प्रदेश मे जो जंगल या बन था उसका नाम 'हरियावन' प्रसिद्ध था। पश्चात्, इसमे आबादी हो जाने के कारण इस प्रदेश को भी 'हरियावन' प्रदेश कहा जाने लगा। फिर यही हरियावन > हरियाअन > हरियान > हरियाना हो गया।

पचम :—प० धरणीधर हांसीवाले ने अपनी पुस्तक अखड प्रकाश मे इस प्रकार लिखा है कि इस पुस्तक का नाम 'हरिबाणक' था। पीछे से

---

१. बन्दोबस्त रिपोर्ट, जिला हिसार सन् १८६३
२. बन्दोबस्त रिपोर्ट, जिला हिसार, सन् १८६३
३. बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रथ—पृष्ठ १
४. बन्दोबस्त रिपोर्ट, जिला हिसार, सन् १८६३

उच्चारण भेद से यह 'हरियाना' हो गया। 'हरिबाणक' शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है जिस देश मे हरि (इन्द्र) की अधिक आकाक्षा हो। योगरूढि से यह शब्द प्रदेशवाची बन गया है। आज भी हरियाना पानी की बूँद के लिए तरसता है और इन्द्र भगवान् की ओर आशा भरी दृष्टि से देखता है।[1]

षष्ठ :—जैसा कि पहले कह चुके हैं, ऋग्वेद मे 'हरयाण' शब्द वरु राजा के विशेषण के रूप मे आया है।[2] परन्तु 'वेद धरातल' के लेखक व्याकरणाचार्य पंडित-प्रवर गिरीशचद्र जो अवस्थी इस शब्द का सम्बन्ध हरियाणा प्रदेश के साथ जोड़ते हैं। उनका कहना है, 'ऋग्वेद' मे 'हरयाण' शब्द एक राजा के विशेषण के रूप मे आया है। 'हरयाणे नित्यकालमेवाभिप्रस्थितयान' अर्थात् जिसका रथ सदैव चलता रहे। इससे उस राजा का नाम हरयाण भी प्रसिद्ध था, यह प्रतीत होता है। फिर आगे चलकर हरयाण राजा के नाम पर उस प्रांत का नाम हरयाण पड गया जो आज भी पजाब मे 'हरियाना' नाम से प्रसिद्ध है। हरियाने के बैल आज बडे प्रसिद्ध हैं।[3] इससे यह पंजाब के 'हरियाना' का नाम पड़ गया है।

उक्त कल्पना का आधार यह स्पष्ट किया गया है कि एक ही स्थल पर 'हरयाण' और 'उक्षण्यायन' दो शब्द एक राजा वरु के विशेषण हैं। पं० अवस्थी 'उक्षन' शब्द से 'तत्रसाधुः' ४।४।६८ सूत्र से 'यत्' करके उक्षण्य शब्द व्युत्पन्न करते हैं जिसका अर्थ होगा 'बैलो के लिए कल्याणकारक'। अब उक्षण्यं अयनम् गृहं अस्य' इस विग्रह मे बहुब्रीहि समास होकर 'बैलो के लिए कल्याणकारण है घर जिसका' इस अर्थ मे उक्षण्यायन शब्द निष्पन्न होता है और यह राजा का विशेषण है, जिसका एक विशेषण 'हरयाण' भी है। अतः बहुब्रीहि समास से 'सदैव चलता रहता है रथ जिस प्रदेश मे' इस अर्थ में यह हरयाण शब्द भी देशवाची बन गया और इस प्रान्त का नाम भी हरयाण पडा जो आगे चलकर 'हरयाणा' और 'हरियाना' हो गया। पुरुष के नाम से भी देश का नाम पड सकना संभव है यथा, महाराजा भरत के नाम पर 'भारत' और महाराजा कुरु के नाम पर 'कुरु-प्रदेश' पड़ा।

पं० अवस्थी की यह स्थापना इस बात पर आधारित है कि दुर्गाचार्य एवं सायणाचार्य केवल कर्मकांड तथा ज्ञानकांड को लेकर चले हैं। उन्हे

१. प० धरणीधर द्वारा लिखित 'अखंड प्रकाश' में हरिबाणक शब्द का इतिहास।

२. ऋग्वेद संहिता ६।२।२४।२

३. 'वेदधरातल'—पृष्ठ ७७१, लेखक श्रीगिरीश चन्द्र जी अवस्थी व्याकरणाचार्य, प्रधानाध्यापक, संस्कृत प्राच्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

भौगोलिक खोज नहीं करनी थी; किन्तु विद्वान् इस स्थापना को स्वीकार करने मे असमर्थ हैं ।

सप्तम :—वासुदेव शरण अग्रवाल ने प्राचीन आभीरायण (अहीरों का घर या स्थान) शब्द से हरियाना शब्द की व्युत्पत्ति अधिक संभाव्य मानी है। आभीरायण > अहिरायन > हीराअन > हरिआन > हरियान > हरियाना ।

अष्टम :—महापंडित राहुल जी का सुझाव है कि हरियाना शब्द 'हरिधान्यक' से हरिहानक > हरिआनक > हरिआनअ > हरिआन > हरियान > हरियाना आदि प्रक्रिया से अपभ्रंश की चक्की मे पड़कर बना है।[1] इसकी पुष्टि मे यह कहा जा सकता है कि नकुल को पश्चिम दिग्विजय करते समय रोहतक मे मत्तमयूरों से भीषण युद्ध करना पड़ा था और उसने बहुधान्यक प्रदेश को अपने वश मे किया था। प्रो० जयचंद विद्यालंकार बहुधान्यक को रोहतक राज्य का एक भाग मानते हैं। इसी बहुधान्यक भूभाग का नामान्तर 'हरिधान्यक' भी मिलता है। 'बहुधान्यक' शब्द का अर्थ है 'प्रभूत धनवाला' और इसी सादृश्य पर 'हरिधान्यक' का अर्थ होगा हरित एवं धनधान्यपूर्ण। यह प्रदेश प्राक्काल में हराभरा रहा होगा। यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है जबकि सरस्वती नदी इस प्रदेश की हरीतिमा तथा सुषमा बखेरती हुई बहती होगी। आज हरियाना निस्सदेह अपने उस रूप मे नहीं है परन्तु फिर भी हमारी राष्ट्रीय सरकार इस प्रदेश को वही पुराना हराभरा रूप प्रदान करने के लिए कटिबद्ध है। भाखड़ा की नहरों का जाल अवश्य ही इस प्रदेश की कायाकल्प कर देगा और पुनः एक बार कृष्ण की वंशी की मृदुल स्वर लहरियां हरियानी गौओं को सुनाई पड़ेंगी ।

(२) हरियाने का क्षेत्र-विस्तार

हरियाना प्रदेश की परिसीमाएँ निर्धारित करना बड़ा कठिन है। क्योंकि मध्ययुग से पूर्व हरियाना नाम से किसी प्रदेश का वर्णन नहीं मिलता। मध्ययुग मे जो 'हरियाना' नामक देश का वर्णन मिला है[2] उससे एक बात निश्चितरूप से समझ मे आती है कि 'स्वर्ग सन्निभ' यह प्रदेश 'दिल्ली' नगरी को अपनी परिधि मे समेटे हुए है। किन्तु हरियाने की साम्प्रतिक स्थिति को ध्यान मे रखकर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'दिल्ली' हरियाने के किस भाग में स्थित थी ? यह भी अनुमेय है कि तोमरादि से संवर्धित यह नगरी इस प्रदेश की राजधानी भी अवश्य रही होगी। परन्तु राजधानी का देश की

१. यह सुझाव महापंडित राहुल जी ने लेखक को मंसूरी से लिखे गये एक पत्र के द्वारा दिया है।

२. 'देशोऽस्ति हरियानाख्यः' आदि; पृष्ठ ३५ पर।

हरियाना प्रदेश का
भाषायी मानचित्र
पंजाबी
सरस्वती
दृषद्वती
नदी
कुरुक्षेत्र
थानेश्वर
कैथल
टोहाना
करनाल
नरवाना
जाखल
फतहाबाद
बरवाला
सफीदो
पानीपत
जीन्द
हिसार
हाँसी
जयजयवती
गोहाना
सिरसा
सोनीपत
महम
तोषाम
रोहतक
बागड़ी
भिवानी
सांपला
बहादुरगढ
दिल्ली
दादरी
दुजाना
झज्जर
पालम
झाडली
गुडगाव
अहीरवाटी
मेवाती
बोली
खड़ी
ग्रामीण
नदी
कौरवी
यमुना
संकेत
सीमा हरियाना प्रदेश
हरियानी बोली के आदर्श स्थान जिन्हें आधार बनाया गया है।
भ्रमण किये गये स्थान
प्रदेश के अन्य स्थान
पैमाना
१ इन्च = २१ मील
रेवाड़ी
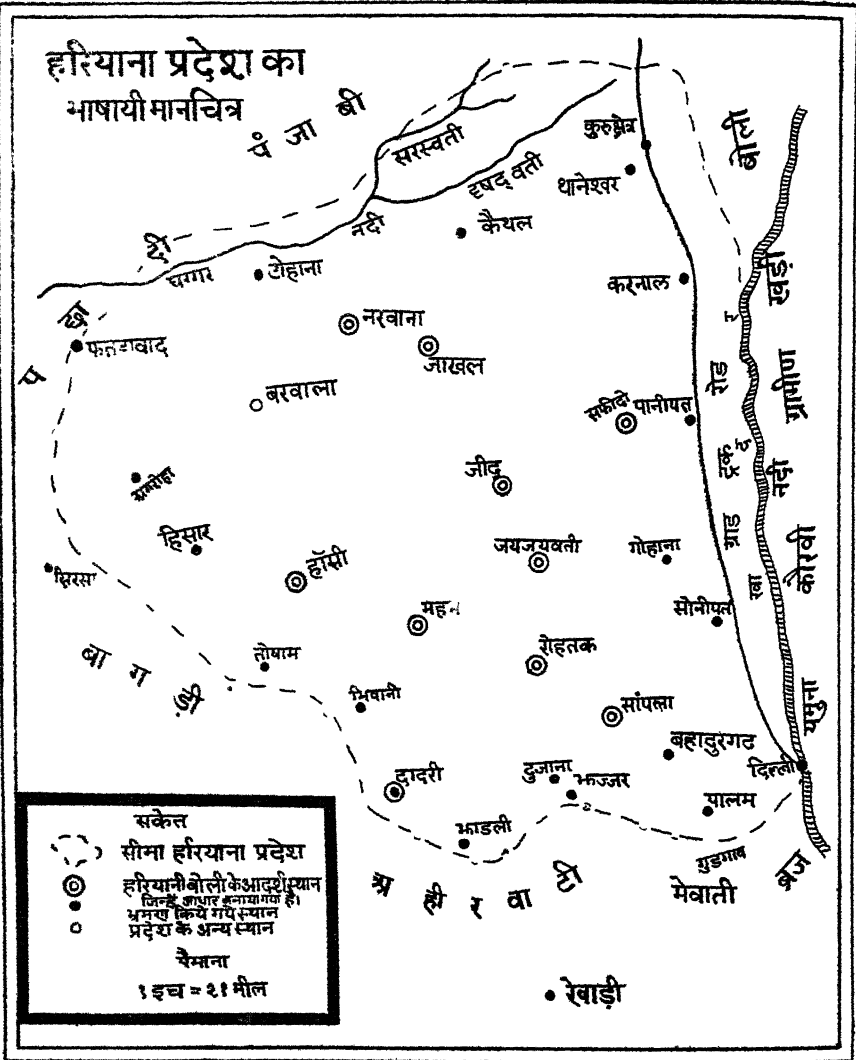
सीमा पर स्थित होना सुरक्षा के दृष्टिकोण से अच्छा नहीं है। तो फिर क्या दिल्ली को 'हरियाना' का केन्द्र मान लें? यह बात वैसे तो 'दिल्ली दीप हरियाना' नामक जनोक्ति से पुष्ट हो जाती है। परन्तु इस स्थापना में आधुनिक हरियाने के साथ प्राचीन कुरु तथा शौरसेन प्रदेश भी सम्मिलित हो जायेंगे किन्तु यह अभी खोज का विषय है। अतः किसी निश्चय के अभाव में हम दिल्ली को हरियाना की पूर्वी सीमा मानकर ही आगे बढ़ेंगे। डा० ग्रियर्सन ने भी दिल्ली के उन मुहल्लों की बोली को जहां देसवाली चमार बसते हैं 'चमरवा' नाम दिया है और इसे बांगड़ू हरियानी के अन्तर्गत माना है। इससे यह विदित होता है कि दिल्ली हरियाने की पूर्वी सीमा पर स्थित है और यह इस प्रदेश का प्रमुख नगर है।

जैसा कि पीछे कहा भी गया है, 'अखंड प्रकाश' पुस्तक को आधार मानकर जिला हिसार की १८६३ की बन्दोबस्त रिपोर्ट में हरियाना (हरिबाणक) प्रदेश की पूर्वी और पश्चिमी सीमाएँ इस प्रकार निर्धारित की गई हैं—"प्रालब (सम्भवतः हवेली पालम) जिसके पूर्व में है, और कुसुभ ग्राम (पटियाला इलाके का कोहन ग्राम) जिसके पश्चिम में है, वह विशाल भूभाग हरिबाणक (हरियाणा) है।" इसी रिपोर्ट में एक स्थान पर हरियाना की सीमाएँ इस प्रकार दी गई हैं—"पूर्व में झज्जर व बहादुरगढ़ (जिला रोहतक) और पश्चिम में अगरोहा व भूना (जिला हिसार), उत्तर में जींद व सफेदों इलाका, राजा जींद व कोहन इलाका, राजा पटियाला और दक्षिण में दादरी इलाका, राजा जींद।" राजस्थान के इतिहास के सफल मर्मज्ञ पृथ्वीसिंह जी मेहता हरियाने को राजस्थान के उत्तर में सिरसा से पालम तक फैला मानते हैं। उनका कहना है कि सिरसा से पालम तक उत्तर-पूर्वी सीमा पर हरियाने की बागरू बोली है।[1] डा० ग्रियर्सन ने अपने 'भाषासर्वे' में हरियानी, बांगरू व जाटू बोली का मानचित्र देते हुए गुड़गांव जिले के फरीदाबाद व बल्लभगढ़ स्थानों को भी उसमें सम्मिलित किया है। परन्तु ये स्थान भाषा, स्थानीय प्रथाएं एवं परम्परा आदि किसी भी दृष्टिकोण से हरियाने के भाग नहीं माने जा सकते। अतः हमारी स्थापना जो इस इलाके के परिभ्रमण पर आधारित है यह है कि हरियाने की पूर्वी सीमा पालम झज्जर, बहादुरगढ़ और दिल्ली को छूती है। फिर यह रेखा 'दुजाना' को छूती हुई दादरी पहुँचती है। वहां से सीधी भिवानी, हांसी, हिसार होकर और सिरसा की ओर आगे बढ़कर अगरोहा होती हुई टोहाना पहुँच

१. पृथ्वीसिंह मेहता—'हमारा राजस्थान', पृष्ठ ६।

जाती है। वहां से कैथल, करनाला, पानीपत होकर दिल्ली आ मिलती है।[1]

बन्दोबस्त रिपोर्ट जिला हिसार में हरियाने की लम्बाई बहादुरगढ़ से अगरोहा तक पूर्व पश्चिम '६५ कोस' (१०४ मील) और चौड़ाई जींद से दादरी तक उत्तर दक्षिण ५७ मील दी हुई है। इस आधार से हरियाना का क्षेत्रफल ५६२८ वर्गमील बैठता है, परन्तु भाषा के रूप और शैली के आधार पर हमने अपने भाषायी मानचित्र मे जो हरियाना का भाषायी क्षेत्र स्थापित किया है, उसका क्षेत्रफल इससे कई गुना अधिक है।[2]

इस विशाल प्रदेश के रोहतक, मेहम, हांसी, दादरी, हिसार, जींद, सफीदो, कैथल और नरवाना प्रधान नगर हैं। इनमे रोहतक, मेहम और जींद केन्द्रीय स्थान हैं।

यह सामान्य धारणा है कि 'बारह कोस पर पानी और बानो' बदल जाते हैं। यह बात अन्य बोलियों की भाँति हरियानी पर भी चरितार्थ होती है। यहा भी लोकसाहित्य-संग्रहकर्ता को स्थान-स्थान की बोली में भिन्नता मिलेगी परन्तु इस स्वाभाविक बदल के बावजूद भी एक छोर से दूसरे छोर तक वही उच्चारण (लहजा), क्रियाओं के वे ही रूप, विशेषण एवं क्रिया-विशेषण बनाने की वही प्रक्रिया बराबर मिलती है। सामाजिक दशा, परम्परा, रीति-रिवाज सब एक ही जैसे हैं। इस प्रदेश की जनता का सबसे अधिक भाग देसवासी जाटों से मिलकर बना है। इन्हीं लोगों की संस्कृति के दर्शन हरियाना संस्कृति के रूप में पाठक को मिलेंगे। यों दूसरी जातियां भी पर्याप्त मात्रा में हैं किन्तु प्रधानता जाट जाति की है।

आ. हरियाना लोकसाहित्य के विविध रूप

हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य के सग्रह का काम हमने स्वयं किया है। इस संग्रह-कार्य मे हमारी अपनी योजना रही है और अपना ढंग। हमने इस वीर-भूमि का चप्पा-चप्पा छाना है। इस प्रयास मे हमने लोकसाहित्य रूपी गगोदक प्राप्ति के लिए हरियाना प्रदेश का न कोई तीर्थ-स्थान छोडा है और न कोई घर। हमारे सामने इस कच्ची सामग्री की एक विपुल राशि पड़ी है। उसमें से रत्नो को चुनकर उनके मूल्याकन एवं परिगणन का अवसर इस पुस्तक के द्वारा मिला है।

आगे बढ़ने से पूर्व यह कहना भी अनुचित न होगा कि पाठक को हरियाणा लोकसाहित्य का अध्ययन एव अवलोकन करते समय चाहे मैथिली लोकसाहित्य जैसा मार्दव, भोजपुरी लोकसाहित्य जैसा गाम्भीर्य, अवधी लोक-साहित्य जैसा अर्थ-गौरव, ब्रज-लोकसाहित्य जैसी सरसता और अर्थ बहुलता, गुजराती लोकसाहित्य जैसी भव्यता और राजस्थानी लोकसाहित्य जैसा लोच न मिले, परन्तु इन गुणों के आंशिक आकलन में उसे निराश होना नहीं पड़ेगा। हरियाणी लोकसाहित्य मे वीर-प्रसवा-भूमि की शौर्यपूर्ण जनता की उस ओजस्विनी भावना के दर्शन होंगे, जो रूक्ष होते हुए रुचिकर एवं आकर्षक है।

हरियाणा प्रकृति पटरानी द्वारा उपेक्षित वह प्रदेश है जहाॅ न तो मिथिला प्रदेश जैसे बासों के झुरमुटों मे छिपी गिलहरियों के प्रेमालाप हैं, न अभिराम कुसुमोद्यान, न सुचित्रित पशु-पक्षी हैं। न यहाॅ झरझर करती बलखाती नदियों की अठखेलियाॅ, न धान से हरे-भरे लहलहाते खेतों की क्यारियाॅ हैं और न यहाँ भोजपुर-प्रदेश जैसे हरित-भरित मैदान, न पिक कलकूजन को जाग्रत करने वाले रसाल के रम्याराम, न सरस फल सम्पन्न पर्वत उपत्यकाएँ हैं। यहाॅ गढ़वाल जैसी तुषाराच्छन्न पर्वत-श्रेणियाँ भी नहीं हैं और न यहाॅ हैं ब्रजभूमि के कलित कुंज। रासलीलाओ की मृदु पदगति भी यहाॅ नहीं है। यह भूमि एक कर्मभूमि है। यहाॅ की असिप्रिय जातियों ने सदैव भारत-भाग्य चक्र को गतिमान् किया है। यहाॅ के कुरुक्षेत्र जैसे धार्मिक क्षेत्र, पानीपत के योजनों तक फैले हुए रणक्षेत्र, आज भी यहाॅ की जनता को कर्तव्य के लिए आह्वान करते-रहते हैं। यहाॅ के जलवायु में ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं जो शक्ति एवं उत्साह देते हैं। यहाॅ की ऋषिकल्प जनता सदा से अपने भुजबल पर

कमर कसे रही है। ऐसे प्रदेश मे किस प्रकार का लोकसाहित्य मिलेगा, यह पाठक अगले पृष्ठो मे भाककर देखेगे।

आज तक लोकसाहित्य का सर्वांगीण एव सर्वमान्य लक्षण दे, कोई विवेचक कृतकार्य एव सत्य-सकल्प न हो सका है। अतः यहाँ लक्षण देने का आग्रह छोड, प्राप्त लोकसाहित्य के विविध रूपो की जॉच-पडताल कर उसका विवेचन हम करेंगे।

(१) लोकसाहित्य के मूलतत्व

ग्रामीण लोगो की बोलो न तो शीनकाफ से जडी सफीह उर्दू होती है और न क्ष त्र ज्ञ सयुक्त पडिताऊ सस्कृत। वे अपनी टूटी-फूटी, सीधी-सादी असंस्कृत बोली मे सहज भावो को जो स्वर-लहरी का रूप प्रदान करते है, बस वही सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोकसाहित्य की पदवी पा जाती है। इस साहित्य मे जो तत्व मिलते हैं उनके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि :—

१. लोकसाहित्य संतति परम्परा से चलता रहता है अर्थात् औलाद दर औलाद चलता है।

२. लोकसाहित्य मनोरजन, शिक्षा या ज्ञानवर्धन का सरल मार्ग है।

३. लोकसाहित्य लोक के संस्कार, व्रत पूजादि से सबन्धित हैं।

४. लोकसाहित्य ग्रामीण खेलों एव वाक्प्रचार से सम्बन्धित है।

५. लोकसाहित्य मे लोकजन सुलभ विश्वास, श्रद्धा आदि के लिए स्थान है।

६. लोकसाहित्य लोक-भाषा में लिपटा रहता है और पूर्णरूप से लोक-वातावरण से ओतप्रोत होता है।

इन बातो के गम्भीर विवेचन से पता चलता है कि लोकसाहित्य बडा उपयोगी है। यह हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। अतः इसके समुद्धार के लिए राष्ट्रव्यापी योजना होनी चाहिए। हरियाने के लोकसाहित्य का क्षेत्र बड़ा विशाल है। उसके रूप विविध हैं एव अनेक प्रकार हैं। उनके विभाजन की भी कई शैलियाँ हैं। इन्हीं सबको हम आगे की पक्तियों मे देखेंगे।

(२) हरियाना लोकसाहित्य का वर्गीकरण

सर्वप्रथम, शास्त्रीय प्रणाली पर हरियाना लोकसाहित्य का विभाजन कर हम निम्न प्रकार से उसका विस्तार प्रस्तुत कर सकते हैं:—

श्रव्य
गद्य
पद्य
लोककहानी
बुझौवल कहानी
चुटकले
लघुछन्द कहानी
लोकगीत
अन्य (प्रकीर्ण)
मुक्तक
कथात्मक (प्रबधगीत)
संस्कार संबधी
ऋतु संबधी व्रत, पर्व, त्यौहार, देवी, माता, जाता मल्हार, भजन आदि
कृषि संबधी
राजनीति सबंधी गीत
अन्य
जन्म
विवाह
मृत्यु
पनघट, हुचकी, हास्यरस के गीत
राग, किस्सा, गाथा व अवदान
पवारा
देवी की यात्रा
पहेली
मुहावरा
सूक्ति
लोकोक्ति
खेलों में वाणी-विलास

विशेष व्याख्या इस प्रकार है :—

अभिनयात्मक (दृश्य) लोकसाहित्य के अन्तर्गत ग्रामीण साग, भगत, नौटंकी और सोरठ आदि आते हैं। इन दृश्य रूपो के अभिनय के लिए किसी विशेष आडम्बर की आवश्यकता नही होती। बस, अभिनेतृ-मडली, खुले मैदान मे एक तख्त और साधारण से साज-बाज की आवश्यकता है। इतने से ही ग्रामीण टाकीज का निर्माण हो जाता है। नगाड़े में चोब पड़ते ही हरियानी ग्रामीण युवक सज-धजकर, टेढ़ा साफा पहन, हाथ मे लट्ठ ले नगाडे का अनुसरण करता हुआ चल पड़ता है। ऐसे मनोरजक अवसर पर वृद्ध लोग भी दादा लखमी व प० मागेराम का खेल देखने का लोभ-संवरण नही कर पाते और युवकों से भी आगे बैठे मिलते हैं।

श्रव्य लोकसाहित्य के गद्य और पद्य दो भाग हैं। इनमे से कहानियां, चुटकले, बुझौवल, लघुछद, कहानिया आदि सामान्यतया गद्य की वस्तुएं हैं। पद्य के अन्तर्गत गीत (मुक्तक व प्रबन्धात्मक), पहेलिया और सूक्तियां आदि गेय वस्तुएँ होती हैं। गीत—छोटे गीत और बडे गीत—दो रूपो मे विभक्त किये जा सकते हैं। छोटे गीत वे गीत हैं जो विभिन्न उत्सव, त्यौहार, विवाहादि शुभ कार्यो के अवसर पर गाये जाते हैं यथा—होलड़ (पुत्र-जन्म के) लोरियां, मांडा (विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत), जिकडी के गीत, होली, ढोला[1], देवी की यात्रा के छोटे-छोटे भजन, मल्हार (वर्षाकाल के गीत) तथा कार्तिक-स्नान के गीत।

गद्य-पद्य के अतिरिक्त एक तीसरा विभाग 'मिश्र गीत' नाम से भी किया जा सकता है। लोकसाहित्य की इस विधा मे वह सामग्री आयेगी जो बाल-जगत् में प्रचलित 'वाणी-विलास' है। बालक खेल खेलते समय कुछ अश तो गद्य में कहते हैं, शेष कुछ पद्य में। इसे हम छोटे गीतों में भी स्थान दे सकते हैं। ऐसे अवसरों पर उन गीत अशों मे ही तो विशेषता है बाकी सब तो छूछ है।

राग या प्रबन्धात्मक गाथाएं भी गीत ही हैं किन्तु अंतर इतना है कि गीत गेय-तत्व प्रधान होता है और आकार में लघु होता है। गाथा कथाप्रधान गीत है और यह आकार में बड़ा होता है। कुछ गाथाएं तो जैसे आल्हा, ढोला मारू, निहालदे, गूगा का युद्ध, देवी की यात्रा इतनी विशाल हैं कि

१. ढोला घरों में महिलाओं द्वारा भी गाया जाता है, जो आकार में कुछ छोटा होता है। किसी शुभ अवसर पर गीत समाप्त करते समय स्त्रियाँ ढोला गाती हैं। 'ढोला मारू' इससे भिन्न एक लोक-प्रबन्ध है, जो आकार में बड़ा विशाल है।

गायक इनको पूरा गाने के लिए कई-कई मास का समय लेते हैं। राजस्थान मे 'ढोला मारू' को गाने के लिए ढुलैया तीन-तीन मास लगा देते हैं। ढोला गाने की एक विशेषता है। एक गायक पहिले गाता चलता है, फिर स्वरैया उसे अर्थाता है। इस प्रकार उसकी व्याख्या होती चलती है और गवैये को विश्राम मिल जाता है। बीच-बीच में चिलम-तमाखू का दौर भी आना जरूरी होता है। एक बैठक मे एक पड़ाव का समाप्त किया जाता है और दूसरे दिन दूसरे पड़ाव से प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार किस्से का विस्तार हो जाता है।

गाथा के अन्तर्गत जिन गीतो की गणना की जाती है, वे हैं—अवदान (ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्र को लेकर चलने वाले किस्से) तथा अर्द्ध-ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक पुरुषो के चरित्र पर आधारित स्यातें, आल्हा, पवारा[1] आदि लोक-प्रबन्ध। देवी की यात्रा के गीत भी बड़े-बड़े गीतो मे ही स्थान पाते हैं। पुण्य-श्लोक सर आर० सी० टैम्पल के अथक परिश्रम से पंजाब के ५८ अवदान लेखबद्ध मिलते हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से किस्से अभी हरियाना की वृद्ध जनता के पास हैं जो टैम्पिल जैसे कर्मठ व्यक्तियो के वरदान की प्रतीक्षा मे हैं। इन पक्तियो के लेखक ने भी बहुत से किस्से लेख-बद्ध किये हैं जिनमें कई तो नवीन हैं किन्तु गायकों के सकोच तथा निराधार भय के कारण बहुत-सी सामग्री हाथ न आ सकी है।

पहेली, पद्य के वे ज्ञानपूर्ण खंड हैं जिनसे बाल-जगत् की बुद्धि पर शान चढ़ाई जाती है। इन्हें बुझौवल भी कहते हैं। बुझौवल का अर्थ है जिज्ञासा। बुझौवल के द्वारा दूसरे साथी की ज्ञान-गठरी की तलाशी ली जाती है। पहेली को हरियानी बोली में 'फाली' या 'गाहा' भी कहते हैं। फाली का तात्पर्य है वह प्रश्न जिसे पूछकर प्रश्नकर्ता तुरन्त उत्तर (फल) चाहता है। फाली कहने के लिए किसी अवसर-विशेष की आवश्यकता नहीं। बस, दूसरे की जानकारी की परीक्षा लेनी हो तो फौरन फाली कह कर प्रश्न कर दीजिए।

---

१ क. पंवारा (वीरगीत) वीर और श्रृङ्गार के साथ करुण, अद्भुत और वीभत्स रस को लेकर चलता है। हरियाना लोकसाहित्य मे 'हर फूल जाट' एक प्रसिद्ध पंवारा है। 'जगदेव का पंवारा' तो हिन्दी लोकवार्ता की अपनी निराली विभूति है।

ख. बैलेड को राजस्थानी में 'स्यात' कहते हैं, यथा जयसिंह की स्यात। प्रसिद्ध राजाओं के रासो लिखे जाते थे और कम प्रसिद्ध राजाओं की 'स्यातें' लिखी जाती थीं।

न स्लेट और पेन्सिल की आवश्यकता है और न पेपर तथा पेन की। यदि फाली या गाहा खुल गया तो वाह-वाह नहीं तो बध गये। डा० सत्येन्द्र ने पद्य को गीत और अगीत दो भागो मे बाटा है और अगीत के अन्तर्गत-पहेलियाँ, क्रमबद्ध कहानिया, परसोकले आदि रखे हैं।

सूक्तियो मे ग्रामवासियों के शताब्दियो के अनुभवों का निचोड एवं सार भरा होता है। ये खेत-क्यार के मामले में तथा पशु-पक्षी सम्बन्ध मे यथोचित मार्ग-दर्शन कराती हैं और गुरु-मत्र का काम देती हैं। घाघ और भड्डरी के नाम से बहुत-सी सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इन सूक्तियों ने उस समय लोगों को अत्यधिक सहायता दी होगी जब कि देश में आज की भाँति अंतरिक्ष-विज्ञान के केन्द्र न थे। यों तो आज भी इनका मूल्य कुछ कम नहीं है। इनमें बड़ी तथ्यपूर्ण एव रहस्यात्मक बाते भरी पड़ी हैं। दैनिक जीवन और उसमे काम आने वाली बातों की गम्भीर जानकारी इनसे प्राप्त होती है।

ग्रामों में (लोक में) व्याप्त लोकसाहित्य को और कई प्रकार से भी बांटा जा सकता है। श्रीमती सोफिया बर्न ने लोकवार्ता में अन्तर्धान होनेवाले लोक-साहित्य की रूपरेखा इस प्रकार दी है:—१. कहानियां, २. गीत, ३. कहावतें।

१. कहानिया—(क) वे जो सच्ची मानकर कही जाती हैं।
(ख) जो मनोरंजन के लिए कही जाती हैं।

२. गीत तथा गाथायें (बैलेडस्)

३. कहावतें—तुकबंद-कहावते, स्थानीय कहावतें तथा बुझौवल।[1]

बर्न का उक्त विभाजन बाहरी नापजोख मात्र ही देता है और एक साधारण सी रूपरेखा प्रस्तुत करता है। किसी स्थान-विशेष के लोकसाहित्य की पूरी परख के लिए यह विभाजन अपूर्ण ही रहेगा, पर इससे पृष्ठभूमि अवश्य तैयार हो जाती है।

हरियाना-प्रदेश से संग्रहीत सामग्री के आधार पर हमने उसका विभाजन इस प्रकार किया है:—

क. गीत—१. लघुगीत—लोकसाहित्य में गीतों की ही प्रधानता है और गीत ही लोक-साहित्य की अनुप्राणिका शक्ति है। हरियानी गीतों का विस्तृत वर्णन एवं मूल्यांकन इस

---

१. बर्न-हैंडबुक आव फोकलोर, पृष्ठ ४ तथा डा० सत्येन्द्र, ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ७।

पुस्तक के तृतीय अध्याय मे मिलेगा। वहां पर सभी प्रकार के गीतों की परख की गयी है।

२. प्रबन्ध-गीत—वे बड़े-बडे गीत हैं जिनमें कथानक मुख्य होता है और वीरता, साहस एवं रोमांच का सम्मिश्रण अत्यधिक होता है। इनमें संघर्ष पक्ष प्रबल रहता है। हरियाना में राजा रसालू और शीलादे का अवदान (किस्सा) सुविख्यात है। गूगा या जाहरपीर यहां की वीर-जनता के वीरोल्लास का इष्टदेव है और 'निहालदे' यहां का एक रोमाचकारी राग (किस्सा) है।

ख. कथा—वे लोक कहानियां हैं जो बच्चे, बूढे और जवानों का एक समान मनोरजन करती हैं। हरियाना का लोक-मानस कथा के दृष्टिकोण से बड़ा संपन्न है। कहानी वह रोचक-साहित्य है जिसका शिशु के मन पर एकाधिकार है। शिशु ने इनके साथ परिचय दादी-नानी की गोदी से ही प्राप्त किया है।

ग. सांगीत—इस भाग मे हरियाना के प्रमुख सँगीत आते हैं जिनमें सामाजिक एव धार्मिक चित्र बडी सुन्दरता से उभरे हैं।

घ. प्रकीर्ण—हरियाना प्रदेश मे उस साहित्य का भी पर्याप्त प्रचार है जो उपरोक्त विधाओं से बाहर पडता है जिसमे शिशुओ का वाणी-विलास, पहेलिया, सूक्तिया और लघु छंद कहानियां (ड्राल्स) आदि मुख्य हैं।

उक्त विभाग को हम दूसरे शब्दों मे लघु गीत, बृहद्गीत, सांगीत, अगीत एव कथा का नाम देकर भी दिखला सकते हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोकसाहित्य को इस प्रकार वर्गीकृत किया है :— १. लोकगीत, २. लोक-गाथा, ३. लोक-कथा, ४, प्रकीर्ण।

आश्रय के आधार पर हरियाने के लोकसाहित्य को तीन बड़े विभागों में बाटा जा सकता है:—१—बाल लोकसाहित्य, २—युवक लोकसाहित्य, ३—वृद्ध लोकसाहित्य।

बाल लोकसाहित्य मे आटे-बाटे, अटकन-बटकन, चंदा मामा आदि से लेकर खेल के वाक्-प्रचार तथा पहेलिया और बुझौवल तक का साहित्य सम्मिलित है। मनोरंजक कहानियां भी बाल-साहित्य का ही अंग बनेगी। वास्तव में बाल लोकसाहित्य में वह सभी आ जाता है जिसके द्वारा अभि-भावक अपने अबोध शिशु को जीवन-जगत् का परिचय तथा ज्ञान कराता

है। चाहे वह पद्यबद्ध एवं ताल-लययुक्त हो, चाहे कोरी गद्य की शैली में कहा गया हो। बाल-साहित्य मे खेल के गीतों का, मनोरंजक कहानियों का और फाली का विशेष स्थान है।

युवक लोकसाहित्य मे वह समस्त साहित्य आजायेगा जो यौवन की रंगरेलियों एवं अठखेलियों से पूर्ण है। इस लोकसाहित्य का पट वीर, शृङ्गार, करुण एवं त्याग के विविध रंगों से अलंकृत है। वियोग-संयोग की सरस झांकिया इस साहित्य का विषय है। सांग, नौटंकी, पंवारे, आल्हा, अवदान, सतीत्व के प्रहरी चन्द्रावल आदि गीत इसकी परिधि मे समा जाते हैं। युवक लोकसाहित्य समस्त लोकसाहित्य का एक प्रमुख अग है। जीवन का वैविध्य इसमें आद्यन्त परिलक्षित हाता है। पं० रामनरेश त्रिपाठी जी 'नौजवानों का लोकसाहित्य' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "नौजवानो के कंठ में जवानी की उमंग को बढ़ाने वाले प्रेम और शृंगार रस के गीत, पूर्वजों के सच्चे अनुभवो को बतलाने वाली नीति की कहावतें, स्वास्थ्य के लिए चुटकले और धनोपार्जन के लिए खेती की कहावतें आदि ज्ञान-वर्द्धक पाठ सदा मौजूद रहते हैं।"[१]

वृद्ध लोकसाहित्य में जीवन-संध्या की वह शांति, पावनता एवं निस्तब्धता भरी मिलती है जो स्वत. स्पष्ट एव व्यक्त है। जीवन तथा जगत् का सुखोपभाग करने के पश्चात् आत्मानंद प्राप्ति की जो अभिलाषा प्राणी को होती है, वह समष्टिरूपेण वृद्ध लाकसाहित्य मे व्यक्त मिलेगी। इसके विषय हैं—भजन, हरजस, तथा महात्यागी गोपीचंद, भर्तृहरि आदि के उदात्त चरित्र का गान एव भक्त पूरनमल की लोकोत्तर सदाचारिता की महिमा। घर-घर अलक्ख (अलक्ष्य) जगाने वाले भिखमंगे, इकतार पर भजन गाने वाले जोगी तथा चिमटा बजाकर जनता का ध्यान आकर्षित करने वाले साधु फकीर इस साहित्य के प्रचारक हैं। वृद्ध-साहित्य का प्रमुख रस शांत है। इंद्रियां शांत, आकांक्षाएं शांत, बस शेष है मनस् की उपशांति और नित्यशः के प्रचार से यह भी पूरी हो जाती है।

लिंग-भेद के आधार पर भी लोकसाहित्य का वर्गीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार इसके तीन उप-विभाग होंगे :—

१. पुरुषों का लोक-साहित्य, २. महिलाओं का लोक-साहित्य, ३. बालकों का लोकसाहित्य। इसका विस्तार वृक्ष द्वारा इसका भाँति समझा जा सकता है :—

---

१. प० रामनरेश त्रिपाठी, 'ग्राम साहित्य की रूपरेखा' (भूमिका-भाग)।
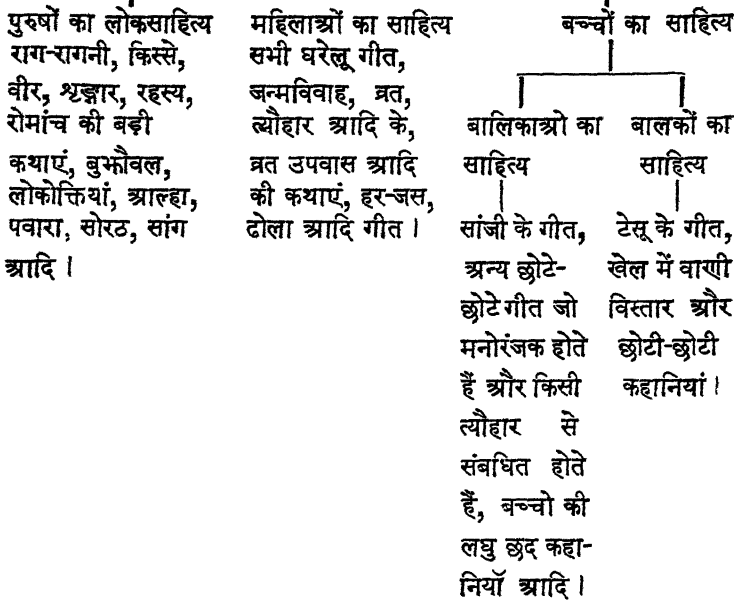
१. पुरुषों के *लोकसाहित्य* मे वह समस्त सामग्री आयेगी जो उसे अपनी टोलियों में सीखने को मिली है और समाज के वृद्ध गायक ने सारंगी, इकतारा अथवा चिमटा बजा कर जो प्रसारित की है।

पुरुषों के गीतों—राग रागनियो—मे अधिकतर वीरता और नीति के भाव होते हैं। किन्हीं रागनियों में—विशेषकर हरियाने के युवक की रागनियो में—स्त्रियों के प्रति घोर आकर्षण दिखाई पड़ता है। उनमे श्रृंगार रस छलछलाता है।

पुरुष लोकसाहित्य मे स्त्री लोकसाहित्य से एक पार्थक्य स्पष्ट मिलता है। पुरुष ने लघु गीतो को अर्घ्य नहीं दिया है। पुरुष पक्ष के अनुष्ठान आदि का बहुत सा कार्य पुरोहित शास्त्रीय विधि से करा देता है। इसके विपरीत महिलाओं को अपना पक्ष स्वय गीत गा-गाकर ही पूरा करना पडता है। इसी से स्त्री-गीत इतने व्यापक हो गये हैं जितना स्वयं मानव जीवन। स्त्री-प्रतिमा के लिए जीवन का कोई पक्ष अस्पृश्य नहीं है। पुरुष लोकसाहित्य की सीमाएँ—लोक-प्रबन्ध (लोक गाथाओं), वीरता और साहस की कहानियो होली, आल्हादि वीर, श्रृंगाररसपूर्ण वृहद् गीतो को छूती हैं। वृद्धावस्था के

आगमन पर भजन, हरजस, भक्ति के पद आदि पुरुषो के कंठाभरण बन जाते हैं।

२. *स्त्री लोकसाहित्य* मे गीतों की प्रधानता है क्योंकि पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों ने अपने कामो मे गीतो की सहायता अधिक ली है। स्त्री-जगत् के गीत जीवन की प्रत्येक अवस्था का वर्णन करते हैं। इन गीतो मे गुड्डे-गुडियो की सृष्टि के बालसुलभ गीतो से लेकर, प्रिय-वियोग तक के मार्मिक गीतो तक का समावेश है। इस प्रकार नन्ही-नन्ही बच्चिया बचपन से ही घर गृहस्थी के रहस्यो की जानकारी कर लेती हैं। किस प्रकार मधुर व्यवहार कन्या को गृहरानी अथवा गृहलक्ष्मी बना देता है? किस प्रकार बधू सास-ससुर की लाडली बन जाती है आदि बाते कन्याएँ सुन्दर व सरल रीति से इन गीतों द्वारा सीख लेती हैं।

स्त्रियों के लोकगीतों मे प्रायः शृंगार और करुण रस ही प्रमुख मिलते हैं। परन्तु इन गीतों के विश्लेषण से यह आश्चर्यजनक तत्व एक अध्येता को अवश्य मिलता है कि ये गीत सास के जीवन को स्पर्श करके ही चुप हो जाते हैं और उससे आगे नहीं बढ़ते मानो सासपन ही स्त्री-जीवन की चरम परिणति हो। स्त्री-गीतों मे त्याग और वैराग्य भावना की खोज तो एक दुराशामात्र है।

३. *बच्चों के लोकसाहित्य* मे शिशु की काकली से प्रारम्भ होकर वयस्कता की छटा भरी मिलती है। यह वह साहित्य है जिसमे हृदय का निश्छल प्रदर्शन होता है।

अभी तक हमने लोक-साहित्य के वर्गीकरण की शैलियों के बारे में बतलाया है। अब हम हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य के विविध रूपों की परिगणना नीचे की पक्तियों में कुछ विस्तार से करेंगे :—

१. हरियानी लोकगीत

लोकगीतों में वे सभी गीत समाविष्ट हैं जो भिन्न-भिन्न अवसरों पर घरों मे, कुओं पर और बावडियो पर एवं खेत-खलिआन में गाये जाते हैं। लोक-साहित्य का यह वह अंश है जो कलात्मक दृष्टि से समुन्नत है। कहीं-कहीं तो ये गीत शिष्ट कविता के भी कान काटते दिखाई पडते हैं। रतिगोपन का यह कलापूर्ण उदाहरण किस साहित्य-मर्मज्ञ को आश्चर्य-सागर में नहीं डुबा देगा।

गोरी सई सांज की कहाँ गई, कोई कहाँ लगाई सारो रात,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टांडा गेरिये।

राजा बडे जेठ के रतजगा, को ए वहीं गंवाई सारी रात,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टांडा गेरिये ।
गोरी ना तेरे हातन मंहदा रच रहे, को ए नाते रे नैनां नींद,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टांडा गेरिये ।
राजा मंहदा की विरियाँ सो गई, को ए न्यूं ना नैनां नींद,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टाडा गेरिये ।
गोरी कालज़ा तेरा धडक रह्या, को ए पैर रहे थर्राय,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टांडा गेरिये ।
राजा नांचत कालजा धड़क रह्या, को ए पैर रहे थर्राय,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टांडा गेरिये ।

इसी प्रकार की एक से एक निराली सूझ इन गीतो के आंचल में पाठक को मिलेगी ।

हरियाने मे जितने प्रकार के गीत उपलब्ध हुए हैं उनकी समष्टि पर विचार करके हम उन्हें पहिले दो भागो मे बांटते हैं :—अ. गीत (लघु गीत), आ. प्रबन्ध गीत । इन गीतों की संख्या बहुत अधिक है । छोटे गीतों के अध्ययन के लिए हम उन्हें निम्नप्रकार से बांट सकते हैं :—

१. संस्कार-सम्बन्धी गीत :—
   क. पुत्र-जन्म के सम्बन्ध में गाये जानेवाले गीत ।
   ख. विवाह के समय गाये जानेवाले गीत ।
   ग. मृत्यु समय गाये जानेवाले गीत ।

२ ऋतु-गीत :—
   क. तीर्थ, व्रत, पर्व-त्योहार, देवी-माता जाता आदि अवसरो के गीत ।
   ख. सावन और फागन मे गाये जानेवाले मल्हार आदि गीत ।

३. कृषि-गीत :—बैल, गौ, खेती (ईख, कपास) बारा आदि से संबन्धित गीत ।

४. राजनीति सम्बन्धी गीत :—राजनैतिक प्रभाव के गीत ।

५. अन्य गीत :—बचे-खुचे गीत ।

अ. लघु गीत

१ संस्कार-सम्बन्धी गीत :—

क. पुत्र-जन्म के गीत :—प्रजनन प्रकृति की महान् विशेषता है । इस अवसर पर समस्त प्रकृति में एक विशेष उल्लास होता है, किन्तु हम

हरियानी लोकसाहित्य मे इस अवसर को शुभाशुभ भावो से समन्वित पाते हैं। यहाँ पर पुत्र-जन्म के अवसर पर जो आनन्द उत्साह मनाया जाता है वह कन्या-जन्म पर नहीं। इसके विपरीत कन्या-जन्म पर शोक का वातावरण छा जाता है और गीत आदि नहीं गाये जाते। पुत्र-जन्म पर अनेक प्रकार के गीत गाये जाते हैं। उनमे से कुछ इस प्रकार हैं :—बिआई, बै (बैमाता), स्याबढ़ (सोभर), दाई, पालने के गीत, छठी, पीला, जच्चा आदि।

ख. विवाह के गीतः—सगाई के गीत, लगन, हल्दी, तेल, बनड़ा, बनड़ी, घोड़ी, फेरो के गीत, गारी, कन्या की विदायगी के गीत। इसी अवसर पर 'भात' नाम के गीत भी गाये जाते हैं।

ग. मृत्यु संस्कार पर भी शोकपूर्ण गीत गाये जाते हैं।

२. ऋतु गीत :—

क. देवी-देवता. तीज-त्यौहार सम्बन्धी गीत :—महादेव जी, माता (शीतला माता), भैरों, सेढलमाता, हनुमान, पंचपीर, जहारपीर आदि के। इनमें से कई गीत रतजने के समय विशेष रूप से गाये जाते हैं। मांगलिक अवसरों पर भी गीत गाने की प्रथा है। तीज, गणगौर, होली, नगरकोट की यात्रा के गीत, पिंडारा की यात्रा के गीत, सिद्ध पुरुषों के गीत—गूगा, पंचपीर, भूमिया आदि के।

ख. ऋतुओ के साम्मण, कार्तिक, होली, बारहमासा आदि के गीत।

३. **कृषि-गीत** :—खेती, किसान और बैल-गऊ आदि के गीत।

४. **राजनैतिक गीत** :—देश-प्रेम के गीत, युद्ध में भरती होने के गीत आदि।

५. **अन्य गीत** :—इस विभाग मे शेष सभी बचे-खुचे गीत आ जाते हैं :—

१. पणिहारी के गीतः— पणिहारी, कुआ, सरवर आदि के।

२. हुचकी गीत।

३. चर्खे और चाकी पर भी बड़े भावात्मक गीत गाये जाते हैं। इधर हरियाने की वयस्काएँ चर्खा कातती हुई गीत गाती हैं— "उड़ जा रे कागा बाँधू तेरे तागा, जैए तो जए म्हारा बाप कै।" आदि।

४. परभाती :—भजन, हरजस, कृष्णलीला और रामायण सम्बन्धी पद जो शांतरस से ओत-प्रोत होते हैं।

५. धमालेंः—धमाल विशेषकर फाल्गुन में गाई जाती हैं। इनमें घोर श्रृंगार और शांत रस दोनों आ जाते हैं। जैसा समय

और जैसी अवस्था का गाने-वाला अथवा सुनने वाला होता है उसी के अनुसार धमाल का गान छिड़ जाता है।

६. हास्यरस :—व्यंग गीत, छोटा, पति, खटमल आदि पर बने गीत।

७. नाट्य गीतः—जिन्हें क्रियागीत भी कहा जाता है और इनमें छोटा सा अभिनय भी रहता है। वास्तव मे अभिनयात्मक पक्ष ही इनमे प्रधान होता है। इसके बिना ये निष्प्राण हो जाते हैं।

८. जिकड़ी के भजन व गीत :—इनमें सार्थक एवं निरर्थक भावनाएं एक स्थान पर निबद्ध होती हैं। इसी आशय से इन्हें जकडी या जिकडी के भजन कहते हैं। ये आकार में बड़े होते हैं।

आ. प्रबन्ध-गीत

हरियाना मे प्रबन्ध-गीतो की संख्या बहुत अधिक है। ये आकार मे बड़े होते हैं और इनमे इतिवृत्तात्मक तत्व प्रधान होता है। वैसे ऐसे भी प्रबन्ध गीत हैं, जिनमें ऐतिहासिक पुरुष को छोड़कर अनैतिहासिक पुरुष का आश्रय लिया गया होता है। इन गीतों मे राजा रिसालू, गूगा, गोपीचंद, भक्त पूरनमल, निहालदे, रावकिशन गोपाल, जसवंत, हरफूल और आल्हा आदि मुख्य हैं।

२. लोक कथा

लोक-साहित्य मे लोक-गीतो की प्रधानता होती है और पाठक का मन अधिकाधिक गीत-साहित्य मे ही रस लेता है, परन्तु इतना होने पर भी समस्त वाङ्मय की जननी कथा ही होती है। चाहे उस कथा मे कोई आश्चर्य व्यक्त हुआ हो, चाहे कोई पराक्रमपूर्ण कृत्य का रोमाचकारी वर्णन रहा हो, अथवा किसी पशु-पक्षी का आश्रय लेकर जीवन की कोई पहेली सुलझाई गई हो किन्तु इतना निश्चित है कि कथा ही लोक अभिव्यक्ति की सर्वप्रथम वस्तु है। गम्भीर विवेचन द्वारा देखें तो यह सहज ही ज्ञात हो जायेगा कि गीत और पद्य गाथाएँ भी अपने मूल रूप मे कहानियाँ या कहानी के प्रसंग ही हैं। इन कहानियों अथवा प्रसगो को लोक-प्रतिभा ने छद, लय का पुट दिया है और वे ही गीत और गाथा बन गई हैं। रहा विविध या प्रकीर्ण लोक साहित्य, उसमें भी अल्पादल्प कहानी तत्व ही दृष्टिगोचर होता है। चुटकले तो

कहानियों के सारभूत परिणाम हैं ही। गीत कथाओं में एक सूक्ष्म सी कहानी कह कर ही शेष भाग को गीत रूप मे रखा जाता है। अतः हमे यह मानने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिए कि कहानी ही लोकसाहित्य, क्या शिष्ट साहित्य की भी उत्पादिका शक्ति है।

हरियाने मे लोककथाएँ प्रचुर मात्रा मे मिलती है। ये कथाएँ लोक-जीवन से व्याप्त है। इनके कहनेवाले भी अनेक समुदाय हैं। वृद्धाएँ बच्चों को कथा सुनाकर रात्रि में उनका मनबहलाव किया करती हैं। वृद्ध किसान चौपाल पर या ग्वाडे मे पूर पर बैठा हुआ नाना प्रकार की सुन्दर कहानियाँ कहता-सुनता है। बालक अपनी मित्र-मंडली मे कहानी कहते है और स्त्रियाँ व्रत-पर्वो पर कहानियाँ कहती है। कई व्रत तो ऐसे हैं जो तद्विषयक कहानी सुनकर ही समाप्त होते है। अतः हमे हरियानी लोककहानियो के कई प्रकार मिलते हैं :—

क. मनोरंजनात्मक कहानियाँ :—वैसे तो लोककहानियों मे उपदेश और मनोरजन दो ऐसे तत्व हैं जो न्यूनाधिक परिमाण में सभी कहानियो मे मिलते हैं किंतु फिर भी कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमे मनोरंजन तत्व की प्रधानता है। इनमे आश्चर्यजनक बातें रहती हैं यथा, परियो की कहानियाँ, दाने आदि की कहानियाँ, आदि।

ख. उपदेशात्मक कहानियाँ :—इनमे तन्त्रस्थान या पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ आती हैं।

ग. साहस एवं शौर्यपूर्ण कहानियाँ :—हरियाने मे इन कहानियों की सख्या बहुत अधिक है। इन कहानियों को 'जान जोखो की कहानी' भी कहते हैं। इनमें बुद्धि-चातुर्य के साथ जान को हथेली पर रखने का साहस प्रदर्शित किया जाता है। इन कहानियों मे भूत, डायन, और दाने आदि पात्र होते हैं। इनका उद्देश्य श्रोताओं मे साहस एव शौर्य भावना भरना होता है। घोर आपत्काल में भय तथा घबडाने से नहीं, रोदन एवं विलाप से नहीं अपितु अदम्य साहस से काम चलता है। ये कहानियाँ बच्चों के लिए नहीं होती। युवको एवं जीवट पुरुषो के स्नायुजाल मे ओज-संचार करना इनका काम होता है।

घ बुझौवल कहानियाँ :—बुझौवल वे कहानियाँ हैं जिनमें बडे चातुर्य से बात पूछी जाती हैं। ये बड़ी रोचक, मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक कहानियाँ होती हैं। हरियाने में बुझौवल के दो रूप मिलते हैं। एक—पहेलीका, दूसरा—कहानी का।

ङ. देव विषयक कहानियाँ :—इनमें किसी धार्मिक देवता का करतब दिखाया गया होता है। 'शिव पार्वती' की कहानी में पार्वती की उदारता दिखाई गई है। वह शिव को विवश करती हैं किसी गृहस्थ का सकट हरने के लिए। शिव जी बात टालते हैं। अधिक आग्रह पर शिव सकट दूर करते हैं और दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकार की असंख्य कहानियाँ यहाँ मिलती हैं।

च. व्रतात्मक या त्यौहार विषयक कहानियाँ :—ये वे कहानियाँ हैं जो व्रत या त्यौहार के मूल और मूल्य पर प्रकाश डालती हैं। इनमे से बहुत-सी व्रत तथा त्यौहारों का अंग बन गई हैं। ये कहानियाँ स्त्रियो मे विशेषकर प्रचलित हैं। कई व्रत तो कहानियाँ सुनने के उपरान्त ही समाप्त होते हैं। यथा, करवा चौथ तथा अहोई-आठे का व्रत तद्विषयक कहानी सुनकर ही समाप्त होता है। ऐसी ही प्रवृत्ति शनिश्चर के व्रत के सम्बन्ध मे भी है।

छ. विश्वास सबंधी कहानियाँ :—इनमे अधविश्वास का अंश काम करता है। कई स्थानों पर प्रकृति के किसी व्यापार का रहस्य जानने के लिए कहानियाँ कही जाती हैं। यथा, गीदड़ क्यो रोते हैं अथवा हरियाने मे नया कुआँ बनाते समय हनुमान मढ़ी क्यों बनाई जाती है, आदि।

ज. पद्यबद्ध अथवा लघु छन्द कहानियाँ :—ये कहानियाँ पद्यात्मकता लिए होती हैं, यथा, हरियाने की 'स्यामी और कौव्वे' की कहानी। ये बहुधा बच्चो में प्रचलित होती हैं।

चतुर्थ अध्याय में हमने हरियानी लोककहानियो के सभी भेद-प्रभेदो की खोज की है और उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है।

३. अभिनयात्मक लोकसाहित्य

साग, नौटकी, सोरठ आदि साहित्य का यहाँ बहुत अधिक प्रचार है। साग के मूल की खोज करना वास्तव मे बड़ा कठिन है। किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि साग हरियाने मे आकर समृद्ध हुआ है। हरियाने का साग अपनी एक विशेषता रखता है। यह बड़ा प्रभावशाली है। सांगियों की तथ्यपूर्ण उक्तियाँ सोने में सुहागे का कार्य करती हैं। हरियाने के सांगी उत्तर-प्रदेश और राजस्थान में दूर-दूर तक बुलाये जाते हैं। इनमे दीपचन्द, लखमी, मागे और धनपत के साग बड़े प्रसिद्ध और शिक्षाप्रद होते हैं। आजकल अवश्य इनमें यौन एपील (Sex appeal) बढ़ती जाती है, जो हानिप्रद है।

४. प्रकीर्ण लोकसाहित्य

क. बालकों के वाक् प्रचार :—इसमे वे समस्त तुकबंदियाँ आयेगी जो बालको के मनोरंजनार्थ दूसरे लोग कहते हैं अथवा बालक स्वयं खेल खेलते समय प्रयोग मे लाते हैं। ये निरर्थक एवं सार्थक दोनों प्रकार की होती हैं। यथा—अटकन, बटकन आदि।

ख. पहेलियाँ :—हरियाने में इनको, 'फाली' कहते हैं। इन मे पूर्व पक्ष बताकर उत्तर पक्ष की आकांक्षा रहती है कहीं-कही तो गम्भीर समस्या ही रख दी जाती है। 'गाहा, इनका दूसरा नाम है। यथा—

सासू की मैं सीसू लागूं सुसरे की मैं मा।
सगे पीय की दादी लागूं इसका अर्थ बता॥

कैसी विषमावस्था मे पाठक पड जाता है

ग. कहावतें और लोकोक्तियाँ :—ये ज्ञानपूर्ण 'नाविक के तीर' हैं जो देखने में छोटे लगते हैं मगर गम्भीर घाव करने वाले हैं। हरियाने में अनेक सारगर्भित लोकोक्तियाँ मिलती हैं जो इस बोली की समृद्धि को प्रमाणित करती हैं।

घ मुहावरे :—मुहावरा उस सुगठित लघुपद समूह को कहते हैं किसी साधारण अर्थ के बजाय विशिष्ट अर्थ की प्रतीति होती है।

ङ. सूक्तियाँ :—घाघ और भड्डरी की ज्ञानोक्तियाँ हैं।

द्वितीय अध्याय

हरियानी बोली का अध्ययन

१. भाषा-विज्ञान की दृष्टि से

भूव पीठिका

प्रथम अध्याय में हमने हरियाना प्रदेश के संक्षिप्त इतिहास का सिंहावलोकन किया है। उसके लोकसाहित्य का सर्वांगीण अध्ययन हमारा मुख्य लक्ष्य है। परन्तु हरियाना प्रदेशीय लोकसाहित्य के बीहड़ एवं अद्यावधि उपेक्षित वन प्रांत में प्रवेश करने से पूर्व यह अनुपयुक्त न होगा कि उस बोली से परिचय प्राप्त कर लिया जाये जिस बोली की यह थाती है। अतः हमें यहाँ निम्नलिखित प्रश्नों पर संक्षेप में कुछ गहराई के साथ विचार करना होगा—भारतीय भाषाओं में हरियानी का स्थान, नामकरण, क्षेत्र-विस्तार, तथा सामान्य एवं स्थूल व्याकरण आदि।

भाषा के अध्ययन से हमे एक बात अच्छी तरह देखने को मिलती है कि वाणी और लेखनी की दौड़ में लेखनी कदापि वाणी के साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सकी है। वाणी का स्वतन्त्र प्रसार और विकास हुआ है और लेखनी बोली को भाषा का रूप दे उसे पंगु बना देती रही है। यह सत्य है कि लेखनी का प्रसाद जिस भाषा को मिला बस, उसकी प्रगति रुक गई, उसका विकास धीमा हो गया। उसे साहित्य की गद्दी (सिंहासन) अवश्य मिली परन्तु उसकी अनुप्राणिका शक्ति क्षीण हो गई। इस दृष्टि से जब हम मध्यदेशीय भाषाओं पर विचार करते हैं तो भाषा-विज्ञान की खोज इस ओर स्पष्ट संकेत करती है कि विक्रम की नवमी-दशमी शताब्दी मे अपभ्रंश भाषाएँ साहित्य की सुखदशय्या पर निद्रा-निमीलित हो रही थीं और बोल-चाल की भाषाएँ अपने-अपने जनपदों में स्वतन्त्र रूप से विकास प्राप्त कर रही थीं। अपभ्रंश भाषा से अलग हटती हुई बोलियो का यह स्वतन्त्र विकास ही हमारी आधुनिक आर्यबोलियों का आधार है। हिन्दी इस प्रकार मध्यदेश की विकसित बोलियों के समुदाय का नाम है।

मध्यदेश की शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित पांच बोलियाँ—खड़ी बोली (कौरवी), हरियानी, ब्रज, कन्नौजी और बुन्देली पश्चिमी हिन्दी के नाम से पुकारी गई हैं। अर्द्धमागधी अपभ्रंश की तीन बोलियाँ—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी—पूर्वी हिन्दी के नाम से 'भाषा सर्वे' मे दी गई हैं। हमारी आलोच्य बोली हरियानी पश्चिमी हिन्दी की सबसे पच्छिमी बोली है।

डा० धीरेन्द्र जी वर्मा ने इस बोली को 'सरहदी' नाम से पुकारा है ।[1] सरहदी से तात्पर्य मध्यदेशीय भाषा बोलियों की पश्चिमी हद की (सीमा की) बोली से है। यह एक विस्तृत प्रदेश की बोली है । इसका क्षेत्र दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार, गुणगाव[2] जिलो और पडोस के पटियाला, नाभा और जींद रियासतों के गॉवो मे फैला पड़ा है ।

उपरोक्त विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया है कि हरियानी बोली भारतीय आर्य-भाषाओ की एक प्रमुख बोली है । इस बोली को किसी साहित्य महारथी की लेखनी का प्रसाद नहीं प्राप्त हुआ है, अतः इसके प्राचीनतम रूपो की खोज करना कठिन है । इसमे आज जो साहित्य उपलब्ध है वह केवल गीत (घरेलू गीत), लोककथाएं, अवदान (साके) तथा लोकोक्तियां आदि हैं । इस बोली में मुहावरों की एक अपनी विशेषता है जो श्रोता को एक साथ अपनी ओर आकर्षित कर लेती है । इस बोली के मुहावरे बड़े सम्पन्न एवं अर्थगांभीर्य पूर्ण हैं । यथास्थान इनका वर्णन दिया गया है । लगभग पिछले ३०,४० वर्षों से कुछ 'सागीत' की किताबें अवश्य इस बोली में लिखी मिलती हैं जिनमें भी बोली का शुद्ध रूप नहीं आ पाया है । उर्दू-फारसी के विदेशी शब्द जो जनमानस मे अपनी पैठ नहीं कर पाये हैं, पर्याप्त मात्रा में इन सागीत पुस्तको मे मिलते हैं । स्वतन्त्रता आन्दोलन को लेकर लिखे गये बहुत से नाटक भी मिले हैं जिनमे शास्त्री तारादत्त (हिसार) का 'ग्राम सुधार' नामक नाटक हरियानी बोली का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है । आर्य समाजी ढग पर लिखे गये 'भजन' भी भजनीक मडलियों के अखाडों में देखने को मिले हैं परन्तु इनमे विशुद्ध हरियानी बोली न होकर उर्दू, अंग्रेजी के साथ हरियानी की खिचड़ी पकाई गई है । फिर भी सांगियों, भजनीकों एवं नाटक रचयिताओं की यह विकासमान् बोली-भाषा विज्ञान के विद्यार्थी के लिए अध्ययन की खासी सामग्री जुटाती है ।

हरियानी बोली में ब्रज, अवधी, मैथिली, बगला और भोजपुरी की वह सरसता एवं मधुरता भले ही न मिले परन्तु इस बोली के स्वरों के उच्चारण की दीर्घता एव फैलाव (Broadness) इसकी अपनी वस्तु है और अवश्य ही

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा 'ग्रामीण हिन्दी' नवीन संशोधित संस्करण, १९५० का परिचय भाग पृष्ठ १९ ।

२. जिला गुड़गाँव के उस भाग में हरियानी बोली जाती है जो पालम रेलवे स्टेशन से लेकर गुड़गाँव के पश्चिम में पड़ा है और जिसमें देशवाली जाट बसे हैं ।

इसकी विशेषता कही जायेगी । हरियाना प्रदेश की शक्ति सम्पन्न जातियों का बलिष्ठ उच्चारण उनकी वाणी के प्रत्येक स्वर और व्यंजन से फूटा पड़ता है जो अपनी कर्कशता में भी आकर्षक एवं दीर्घता में भी मधुर है । आगे का विश्लेषण इस बात को स्पष्ट कर देगा कि इस बोली में कई ध्वनियां बड़ी प्राचीन हैं और कई अंश ऐसे हैं जिनमें अपभ्रंशकालीन अवशेष विद्यमान हैं जो शब्दों की प्राचीनता का इतिहास बतलाते हैं । इन्हीं सब प्रमाणों से यह कहा जा सकता है कि हरियानी बोली एक प्राचीन बोली है और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व लिए हुए है ।[1]

अ. नामकरण

हरियानी बोली को विद्वानों ने कई नामों से अभिहित किया है । यथा—बांगड़ू, जाटू, देसवाली या देसारी तथा चमरवा आदि । इनमें से हरियानी और बांगड़ू दो देश परक नाम हैं जो हरियाना और बागड देश के नाम पर पड़े हैं । यथा—बंगाली, मराठी, गुजराती आदि । शेष दो नाम जाटू और चमरवा दो जाति—जाट और चमार—के नाम पर हैं । इन्हीं दो जातियो की प्रधानता के कारण इस बोली में इनके व्यक्तित्व, उच्चारण और संस्कारों की छाप है । देसवाली या देसारी भी जाति परक ही है । देसवाल जाटों की भाषा ही यह भाषा है । अन्य जाट बागड़ी हैं जो बीकानेर की ओर से आये हैं और बागड़ी बोलते हैं । उनकी संख्या नगण्य है और उनकी बोली पर

१. डा० ग्रियर्सन मौजूदा हरियानी को खड़ी बोली की ही एक शक्ल मानते हैं । परन्तु हरियानी खड़ी बोली से अधिक प्राचीन है । यहाँ 'तारीख जबान-ए-उर्दू' के लेखक डा० मसूदहसन का तर्क विचारणीय है कि 'खड़ी बोली' हिन्दुस्तानी का अपना मयार स्तर (Standard) उस वक्त कायम होता है जब वह एक तरफ बद्दल, लोट्टा और गड्डी (हरियानी व कौरवी) के बजाय बादल, लोटा और गाड़ी को कबूल करती है और जोरी, लरी, लराई (ब्रज आगरा, मथुरा की) के बजाय जोड़ी, लड़ी, लगई को कबूल करती है । अतः ग्रियर्सन की खोजों के विपरीत यह माना जाना चाहिए कि हरियानी खड़ी बोली की एक शक्ल नहीं है, बल्कि इसके विपरीत खड़ी बोली, हरियानी और ब्रज का विकसित रूप है । फिर 'खड़ी बोली' नाम भी तो बहुत पुराना नहीं है । 'प्रेमसागर' की भूमिका में सम्वत् १८६० के लगभग लल्लूजी लाल ने सर्वप्रथम इसे यह नाम दिया है ।

देसवाल जाटों की इस बोली का प्रभाव बढ़ रहा है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसे दो नाम दिये हैं—बागरू और हरियानी। डा० पी. डी. गुणे ने केवल एक नाम—बांगरू से इसे अभिहित किया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इसे तीन नाम—बांगरू, हरियानी और जाटू के नाम से पुकारा है। डा० मसूद हसन ने भी इसी अनुकरण पर इसे उपरोक्त तीन नाम दिये हैं। केवल डा० ग्रियर्सन ने इस बोली का उपरोक्त तीन नामों के अतिरिक्त एक नाम 'चमरवा' भी दिया है जो इस बोली के देहली के उन मोहल्लों में प्रचलित होने के कारण जिनमें चमारों की आबादी है, इसे मिला है। परन्तु यह नाम प्रचलित नहीं है।

अब तक के विश्लेषण से एक बात स्पष्ट है कि डा० पी. डी. गुणे के अतिरिक्त सभी विद्वानों ने इस बोली का बांगरू नाम देकर—जाटू और हरियानी इसके लिए दो नाम और दिये हैं। किन्तु यह नामकरण डा० ग्रियर्सन के भाषा-सर्वे के आधार पर ही हुआ है। सर्वे के प्रकाशन तक जिले के गजटीयरस् ही स्थानीय भाषा और इतिहास जानने के साधन थे। इसीलिए कर्नाल और रोहतक की ऊँची और सूखी भूमि जो बांगड़ कहलाती है, उसकी भाषा बागरू कहलाई और इस प्रदेश में जाटों की अधिक आबादी होने के कारण वही भाषा जाटू भी कहलाई। हिसार जींद जिलों के हरियाना खड की भाषा हरियानी के नाम से पुकारी गई। अतः दो भूभागों के नाम पर दो नाम भाषा को मिले—बांगड़ खड के नाम पर बागरू और हरियाना खड के नाम पर हरियानी। इन दोनों खंडों में जाटो की अधिक संख्या होने के कारण उसे जाटू नाम भी दिया गया। परन्तु यह कल्पना उपयुक्त नहीं प्रतीत होती। खोज से पता चलता है कि हरियाना और बांगर की सभी जातियाँ—बावरिया आदि एक-दो नीची जातियों को छोड़कर-एक ही बोली बोलती हैं। न्यूनाधिक भेद है अवश्य, परन्तु वह स्थानीय प्रभाव के कारण है और नगण्य है। दूसरे, देश के नाम पर ही बोलियों के नाम होते हैं परन्तु ग्रियर्सन की जाटू और अहीरी अपनी निराली खोज है जो संसार के भाषा-चित्र में दूर से खटकती है। अतः जाटू नाम अनावश्यक (Super Fluous) मालूम पड़ता है। बांगरू नाम भी इस भाषा के लिए देना ठीक नहीं है क्योंकि जिस बोली का विवेचन हमारा लक्ष्य है वह बांगर के बाहर भी बोली और समझी जाती है—पूर्व की ओर भी और पश्चिम की ओर भी। फिर बांगर नाम भी जातिवाचक है। कोई भी ऊँची एवं सूखी भूमि बांगर के नाम से भूगोल-शास्त्र में पुकारी जाती है। इस प्रकार बांगर खंड कई हो सकते हैं और सब बांगर खंडों की बोली बांगरू कहलायेगी। भूगोल के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जैसी ऊँची और

सूखी भूमि कर्नाल और रोहतक जिले की है वैसी ही बलिया जिला (उत्तर-प्रदेश) में ऊँची और सूखी भूमि है। उसे भी बांगर के नाम से पुकारा जाता है। फिर वहाँ की बोली भी बांगरू कही जायगी। इस प्रकार यह बांगरू नाम अतिव्याप्त हो जायगा। अतः हम स्पष्टता के लिए इस बोली को हरियानी बोली के नाम से पुकारेंगे। आज हरियाने की परिसीमाएं खोजकर निश्चित की जा सकी हैं।[1] इस विस्तृत प्रदेश की भाषा, परम्परा एवं रीति-रिवाज प्रायः सब स्थानों पर एक से हैं, अतः हरियाने की बोली को हम हरियानी नाम से अभिहित करेंगे और बांगरू को हरियानी की उप-बोली मानेंगे।

आ. हरियानी का अध्ययन (आवश्यकता)

किसी भाषा (बोली) का अध्ययन एक रोचक विषय है। आजकल इस ओर विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से लगा है। वैसे आधुनिक भारोपीय भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास भी बहुत पुराना नहीं है। आज से लगभग एक शताब्दि-पूर्व सर रामकृष्ण भंडारकर और डा० बीम्स के अनुसंधानों से इसका श्रीगणेश हुआ। अनेक बोलियों पर विवेचनात्मक अनुसधान हुए हैं, परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि हरियानी बोली को अभी तक उपेक्षा भाव से देखा गया है। डा० ग्रियर्सन के भाषा सर्वे मे भी इस बोली के साथ दुभात की गई है। न इसके व्याकरण की पर्याप्त छानबीन करके व्यापक नियम निर्धारित किये गये हैं और न शब्द-सूची ही गम्भीर खोज के साथ तैयार की गई है। श्री ई. जोसेफ, आई. सी. एस., डिप्टी कमिश्नर, रोहतक ने अवश्य जाटू बोली का स्थूल व्याकरण एवं विस्तृत शब्द-सूची (ग्लौसरी) दी है।[2] हमने हरियानी के 'स्थूल व्याकरण' नामक उपखंड को तैयार करते समय इसे देखा है। इस दिशा मे लेखक को जो कमी अनुभव हुई उसे उसने हरियाना प्रदेश के पर्यटन काल मे भिन्न-भिन्न उपायों द्वारा प्राप्त साहित्यिक सामग्री से पूरा किया है।

इ. हरियानी का क्षेत्र-विस्तार

हरियाना प्रदेश कई भाषा बोलियों का संधि-स्थल है। एक ओर यह प्रदेश पटियाला (पेप्सू राज्य)[3] के क्षितिज से सटा हुआ है और दूसरी ओर

१. 'अखंड प्रकाश' का प्रमाण, पृष्ठ ३६ पर।

२. देखिए 'जनरल आव रोयल एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल' षष्ठ खंड, सन् १९१० पृष्ठ ६६५, प्रभृति।

३. पटियाला पेप्सू (Patiala and East Panjab States Union) अब वर्तमान पजाब राज्य में विलीन हो गये हैं।

राजस्थान, अहीरवाल, ब्रज और कुरु प्रदेश की सीमाओं को छूता है। इसलिए हरियानी का भाषा-पट पूर्वी पंजाबी, बीकानेर की बागड़ी, राजस्थान की मेवाती और अहीरवाल की अहीरवाटी बोली, ब्रज की ब्रज बोली और कुरु प्रदेश की खड़ी बोली के धागों से निर्मित है। हरियानी लगभग ६,००० वर्गमील मे फैली हुई बोली है। इसकी सीमांत रेखाएँ किसी एक प्रांत की राजनैतिक सीमाओं से संबद्ध नहीं हैं। हरियानी के प्रधान केन्द्र रोहतक, मैहम, हांसी, दादरी, दुजाना और नरवाणा हैं। हांसी, रोहतक और मैहम की बोली आदर्श हरियानी मानी जाती है। डा० मसूद हसन के ये शब्द तथ्यपूर्ण हैं कि "शहर देहली संयोग से इन तमाम बोलियों के संगम पर स्थित है अतः भाषा का स्टैन्डर्ड एक दीर्घकाल तक स्थिर नहीं हो सका। परन्तु मीर अब्दुल वासै हांसवी की 'गरायबुललुग़ात हिन्दी' (हिन्दी के विदेशी शब्दों का कोष) की रचना के पश्चात् हम कह सकते हैं कि हांसी के इर्द-गिर्द की हरियानी बोली स्टैन्डर्ड की मानी जाने लगी थी।[1] हरियानी बोली बोलने वालों की संख्या १६३१ की जनगणना के अनुसार २२ लाख थी।[2]

ई. हरियानी का समीपवर्ती बोलियों से पार्थक्य

भाषा बोलियों में सदैव आदान-प्रदान चलता रहता है। भाषाएँ अपनी पास-पड़ोस की बोलियों से बहुत कुछ सीखती चलती हैं। इसके प्रतिफल या शुल्क में भाषाएँ भी बोलियों पर पर्याप्त प्रभाव छोड़ती हैं। अतः पास-पड़ोस की बोलियों में भी चाहे वे एक ही उद्गम की क्यों न हो स्थान, स्थिति, जल-वायु से उच्चारण एवं मूल ध्वनियों में अन्तर आ ही जाता है। कभी-कभी तो वह अंतर इतना स्पष्ट होता है कि उन बोलियों को एक ही जननी के दो सहोदराएँ कहते भी संकोच होता है। उनके रूप आदि सब परिवर्तित हो जाते हैं। अगले पृष्ठों में हम देखेंगे कि हरियानी का अपनी अड़ोस-पड़ोस की बोलियों से कितना साम्य अथवा वैषम्य है।

क. हरियानी और पंजाबी

हरियानी पर सबसे अधिक प्रभाव पजाबी और राजस्थानी का है। यों तो

---

१. डा० मसूद हसन 'तारीख जबान ए उर्दू' पृष्ठ ३०।

२. डा० धीरेन्द्र वर्मा 'ग्रामीण हिन्दी' पृष्ठ ११

१६५१ की जनगणना में पंजाब में विशेषकर पंजाबी, हिन्दी और उर्दू के आंकड़े पृथक्-पृथक् नहीं दिये गये हैं। अतः प्राचीन रिपोर्ट को आधार माना गया है।

ब्रज और कौरवी भी समीपवर्ती बोलियाँ हैं किन्तु पारस्परिक एवं अन्योन्य-प्रभाव जानने के विचार से पहिले हम पंजाबी के साथ मिलान करेंगे :—

हरियानी और पंजाबी बोलियाँ बहुत-सी बातों में समान हैं। ध्वनि, स्वराघात और ध्वनि परिवर्तन आदि बातें दोनों में प्रायः एक-सी हैं। यथा :—

१. दोनों में पुल्लिंग चिह्न 'आ' और स्त्रीलिंग चिह्न 'ई' का इतना अधिक प्रचार है कि कृदन्त क्रियाओं तथा विशेषणों के साथ हो ये लगाये जाते हैं। यथाः—हरियानी—छोरा दौड़्या, छोरी दौड़्यी। पंजाबी—मुंडा दौड़्या; कुड़ी दौड़्यी। मां बोल्ली, बाबू बोल्ला; लील्ली घोड़ी, चिट्टी धोती, 'लील्ला (घोड़ा) का अस्वार' चिट्टा कापड़ा आदि।

२ दोनों में सकर्मक क्रियाओं के भूत कृदन्तों (Past Participles) से बनी हुई क्रिया केवल कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य में प्रयुक्त होती है। यथा—राम ने पैसा दिया, (पंजाबी) दित्ता; मन्ने इकन्नी दी। इन दो वाक्यो मे 'दिया' (दित्ता) 'दी' इन क्रियाओं के वाच्य (Subjects) पैसा और इकन्नी हैं जो 'दिया' (दित्ता) और दी इन क्रियाओं के कर्म हैं। कर्म-प्रयोग की विशेषता यह है कि क्रिया के कृदन्त अंश का लिग और वचन इसके कर्म के लिंग और वचन के अनुसार होता है। क्रिया के कृदन्त भी एक प्रकार के विशेषण ही हैं[1] और इनका विशेषण प्रयोग बड़ा पुराना है। वैदिक भाषा में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। जिस प्रकार विशेषण का लिंग और वचन विशेष्य के अनुसार होता है,[2] इसी तरह कृदन्त का लिंग और वचन भी वाच्य के

१. (अ) तत्पदं पश्यन्ति दिवीव चक्षुराततम्। ऋक् १ मण्डल, । २२ सूक्त

They see that step like an eye fixed in haven.

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥
१,२२.७

१. (ब) माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे। अथारिष्टाभिरा गहि॥
६.५४. २०

Let none be lost, let none suffer harm, None incur fracture in a pit, but come back with them uninjured.
—Vedic Grammar
'Macdonel'.

२. संस्कृत व्याकरण का यह नियम है—

यल्लिंगं यद्वचनं यादृशी विभक्तिः विशेष्यस्य।
तल्लिंगं तद्वचनं तादृशी विभक्तिः विशेषणस्यापि॥

अनुसार होता है। भावे प्रयोग में सकर्मक धातु 'कर्मकर्तृ प्रक्रिया' के रूप मे आती है, यथा—राम ने आगली तोड़ दी। राम ने आंगली के तोड़ दी, आंगली आपेह टूटगी आदि।

३. विशेष्य-विशेषण प्रयोग में—विशेषण विशेष्य का विशेषक होता है और विशेषण विशेष्य से पहिले आता है। यथा—काला घोड़ा, चिट्टी धोती, विशेष्य विशेषण प्रयोग मे विशेषण ही विधेय होता है। यथा—घोड़ा काला है। दोनों बोलियो में एक-सा प्रयोग मिलता है।

४. विकारी कारकों के बहुवचन के रूप 'आं' लगने से बनाये जाते हैं। यह प्रक्रिया दोनों बोलियों—हरियानी, पजाबी में समान हैं जबकि साहित्यिक हिन्दी में अन्तर है। हिन्दी में सब शब्दों के विकारी कारको के बहुवचन 'ओं' से बनाये जाते हैं अथवा उनके अंत में 'ओं' होता है 'यथा'—

पंजाबी		हरियानी	
बहुवचन		बहुवचन	
कर्तृकारक	विकारी कारक	कर्तृकारक	विकारी कारक
मुन्डे	मुन्डेआं	माणस	माणसां
डाक्कू	डाक्कुआं	खेत	खेता
		"खेतां की रुखाली बैठ्ठा सू"	
छुरीआ	छुरीआ	छोर्‌यां	छोर्‌आं

साहित्यिक हिन्दी

बहुवचन

कर्तृकारक	विकारी कारक
लड़के	लड़कों ने
माली	मालियो ने, से, पर
बालक	बालकों ने
नदी	नदियों पर
माता	माताओं
बहु	बहुओं आदि

५. स्वराघातः—स्वराघात का प्रयोग प्रायः दोनों में एक जैसा होता है:—

(क) द्वयक्षर वाले शब्दों के यदि दोनों अक्षर स्वर वाले हों, तो स्वराघात प्रथम अक्षर पर होता है। यथाः—हात्थी झोली, डोली, माली आदि।

(ख) त्र्यक्षर वाले शब्दों के यदि अंत के दोनों अक्षर दीर्घ स्वर वाले हों तो स्वराघात प्रायः मध्यम अक्षर पर होता है। यथाः—बिटोड़ा पुराणा आदि।

(ग) प्रेरणार्थक धातु के (क्रिया के) अंतिम अक्षर पर ही स्वराघात होता है। यथाः—करा, जगा, हटा, लिखवाओं आदि।

(घ) द्वयक्षर वाले शब्दों का अंतिम अक्षर यदि दीर्घ स्वर वाला हो और स्वराघात मुक्त भी हो तो उससे पहिला अक्षर ह्रस्व स्वर वाला होता है। यथाः—टका, मटा, शुदा आदि।

६. स्वर से आरंभ होने वाले शब्दों से पहिले दोनों भाषाओं मे कई बार 'हकार' का आगम होता है। यथाः—

संस्कृत	प्राकृत	पंजाबी व हरियानी
ओष्ठ	ओट्ठ	होंट, होट
अस्थि	अट्ठि	हड्डी
अरघट्ट	हरअट्ट	हरट
		रहट (अक्षर विपर्यय से)

७. कर्ता और सम्प्रदान का क्रम से 'नै' और 'नू' कारक प्रत्यय पंजाबी मे मिलता है। हरियानी का 'नै' प्रत्यय दोनों कारको के लिए समान रूप से व्यवहृत है जबकि खड़ी बोली में 'नै' का 'ने' रूप केवल कर्ता के लिए रह गया है। यथाः—राम ने मारा।

दोनों में इतना साम्य होने पर भी कई स्थानो पर बड़ा भेद है। उस भेद को परखने का प्रयत्न निम्नलिखित पंक्तियों में किया जायेगा—

(१) इन दोनों बोलियों की कई ध्वनियों मे पर्याप्त भेद है। इसी ध्वनि के भेद के कारण एक बोली को जानने वाले व्यक्ति के लिए दूसरी बोली के समझने में कठिनाई होती है और कभी-कभी समझ भी नहीं आती।

मूल ध्वनियों मे भेद —घ, झ, ठ, ध, थ, भ का उच्चारण
GH, JH, TH, DH, TH, BH

दोनो में भिन्न है। इनके पजाबी उच्चारण में (H) ह् की ध्वनि बहुत मंद होती है और प्रायः सुनाई नहीं पड़ती। एक पजाबी सिक्ख जब भ्राता शब्द का उच्चारण करता है तो आदि भ्रा की ध्वनि 'ब्रा' या 'प्रा' की सी होती है। वही सिक्ख 'घर' को 'क्ह्र' इस तरह उच्चारण करता है कि ह 'H' की अति सूक्ष्म ध्वनि सुनाई पड़ती है। धरती शब्द 'दैरती' जैसी सुनाई पड़ती है। हरियानी में इन ध्वनियों की ज्यों की त्यो स्थिति है। इस बोली में चौड़ाव या फैलाव (Broadness) के गुण के कारण इन ध्वनियों का एक विशेष स्थान है।

हिन्दी की 'ढ़' ध्वनि पंजाबी और हरियानी में नहीं मिलती। इसके स्थान 'ढ' हो जाता है। 'ड़' की भी यही दशा है। उसके स्थान 'ड' हो जाता है। यथाः—(हिन्दी) पढ़ना (हरियानी पंजाबी) पढना (अध्ययन)
(हिन्दी) पड़ना (” ”) पडना (गिरना)

यह 'ड़' सदैव ही हरियानी मे 'ड' हो जाता है जबकि पंजाबी में इसके दानों रूप 'ड़' और 'ड' मिलते हैं। यथा—जेड़ा (जिस), उडा दित्ता (समाप्त करना) आदि।

मूर्द्धन्य ' ळ ' हरियानी की अपनी विशेषता है। इसी प्रदेश से यह ध्वनि उत्तर भारत में फैली है। पंजाबी में भी मिलती है। यहाँ 'काला घोड़ा' के स्थान 'काळा घोड़ा' बोला जाता है[1]। इसी प्रकार 'ण' बहुल प्रयोग दोनों बोलियों में होते हैं। यथाः—हरियाणा, 'खाणा' जाणा; पंजाबी में हुण आदि।

२. ध्वनि परिवर्तन—पंजाबी में संस्कृत के ह्रस्व स्वर के पीछे आने वाले संयुक्त व्यंजनों के स्थान में द्वित्व दिखाई देता है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर स्थिर रहता है, वहाँ हरियानी में द्वित्व के स्थान में एक ही व्यंजन रह गया है और प्रतिकार में पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो गया है। यथाः—

संस्कृत	पञ्जाबी	हरियानी
लक्ष	लक्ख	लाख
हस्त	हत्थ	हाथ

१. ळकार की मुर्द्धन्य ध्वनि 'अग्निमीळे पुरोहितम्' आदि प्रयोगों में वैदिक काल से ही है और मराठी में 'तिळक' जैसे शब्दों में आज भी अपना अस्तित्व पृथक् रखती है; किन्तु उत्तर भारत की बोलियों में इसका प्रसार इन दो बोलियों के द्वारा हुआ है।

मस्तक	मत्था	माथा
शुष्क	सुक्खा	सूखा
कर्म	कम्म	काम

यह द्वित्व प्रवृत्ति पंजाबी की अपनी विशेषता है और खड़ी बोली के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों का ध्यान अचानक अपनी ओर आकर्षित करती है।

३. हरियानी में हिन्दी की भाँति संस्कृत 'क्त' प्रत्यय के 'त' का सदैव लोप हो जाता है। पंजाबी में इसका लोप विकल्प से होता है। यथा:—

संस्कृत	हरियानी व हिंन्दी	पंजाबी
दत्त	दिया	दित्ता
सुप्त	सोया	सुत्ता
गत	गया	गया (गत्ता नहीं)
कृत	किया	कीत्ता

४. पंजाबी के विशेषण में विकार संज्ञा की नाईं होता है। यह प्रवृत्ति स्त्रीलिंग बहुवचन में बड़ी स्पष्ट दिखलाई देती है। वहां विशेषण मे विशेष्य (संज्ञा) की भाति विकार हो जाता है। हरियानी या हिन्दी में यह बात नहीं पाई जाती।

पंजाबी

एकवचन	बहुवचन
चिट्टी धोत्ती	चिट्टीआं धोत्तीआ

हरियानी या हिन्दी

एकवचन	बहुवचन
काली धोती	काली धोतियां (कालीआं धोतीआ नहीं)

पुल्लिग बहुवचन में दोनों में विकार होता है।

	एकवचन	बहुवचन
पंजाबी	मोट्टा घोड़ा	मोट्टे घोड़े
हरियानी	मोटा घोड़ा	मोटे घोड़े

५. 'व' से आरम्भ होने वाले शब्दों में पंजाबी में 'वकार' शेष रह जाता है, जबकि हरियानी में वह अपभ्रंश की भांति 'ब' में बदल जाता है। यही दशा खड़ी बोली की है। यथा:—

पंजाबी	हरियानी
वैर	बैर
विरोध	बिरोध
वाट	बाट (पगडडी)
वारी	बारी (खिड़की)
वर्गा	बर्गा (सदृश)
	(तेरे बर्गी हूर मिलैना भइय्या की सूँ)
वेचणा	बेचणा
विरला	बिरला आदि

६. पंजाबी से हरियानी में एक अंतर और है। सम्बन्ध कारक का चिह्न पजाबी में 'दा' है जबकि हरियानी में इसके स्थान पर 'का' का प्रयोग किया जाता है। खड़ी बोली हिन्दी में भी यही प्रयोग है। 'दा' का प्रयोग पंजाबी की अपनी विशेषता है जो दूर से चमकती है।[1] यथाः—

पंजाबी	हरियानी
चाच्चे दा मुण्डा	चाचा का छोरा
भ्राता दी हट्टी	भ्राता की दुकान

७. व्यक्तिवाचक सर्वनामों के उत्तम पुरुष और मध्य पुरुष के रूपों मे बड़ा अतर है। हरियानी मे ये रूप तुम (तम) और हम हैं और पजाबी मे असीं और तुसीं (तुसा) हैं। पजाबी के ये सर्वनाम प्राचीन लहदा के अवशेष हैं।

ख. हरियानी और राजस्थानी

पजाबी और हरियानी के मर्म को समझकर अब हम राजस्थानी की ओर बढ़ते हैं। हरियानी पर राजस्थानी का प्रभाव कई रूपों में दृष्टिगोचर होता है। हरियानी बोली, उच्चारण, ध्वनि परिवर्तन, लिंग और वचन के दृष्टिकोण से राजस्थानी से पर्याप्त साम्य रखती है। उदाहरणों से पाठक सरलतया समझ जायेंगे।

---

१. पजाबी का 'दा' और हरियानी का 'का' दोनों संस्कृत 'कृतः' से निकले हैं जो प्राकृत किदओ या किदौ की परम्परा से वर्तमान रूप को पहुँचे हैं। विशेष-विवरण के लिए देखिए—डा० ग्रियर्सन "भाषा सर्वे" पंजाबी भाषा अध्याय।

उच्चारण

१. हरियानी की भाँति राजस्थानी में भी 'ल' का उच्चारण दंत्य और मूर्द्धन्य दोनों प्रकार का मिलता है। आजकल प्रायः मूर्धन्य 'ल' को दंत्य 'ल' लिखने की प्रवृत्ति बल पकड़ रही है परन्तु यह भाषा-शास्त्र की दृष्टि से एक हानि है। जिन शब्दों के आदि अथवा मध्य में मूर्द्धन्य 'ल' आता है। बहुधा उस 'ल' को दत्य कर देने से अर्थ में यद्यपि कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, यथा—काला और काला में तथापि उच्चारण की अशुद्धि तो माननी ही पड़ेगी। परन्तु बहुत से मूर्धन्य 'लकारात' शब्द ऐसे भी हैं जिनको दत्य लकारांत कर देने से उनका अर्थ बिल्कुल बदल जाता है। यथा :—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
पाल	बांध	पाल	बिछाने का कपड़ा
माली	जाति विशेष	माली	आर्थिक (फारसी)
महल	स्त्री	महल	राज प्रासाद
खाल	परनाला (बहाव)	खाल	चमड़ा

२. इन दोनों बोलियों में 'ष' का उच्चारण 'स' होता है और 'श' का भी 'स' होता है। कहीं-कहीं पर 'ष' का उच्चारण 'ख' भी होता है। प्रायः राजस्थानी में ऐसा होता है। यथाः—

संस्कृत	हरियानी	राजस्थानी
वर्ष	बरस	बरस
वर्षा	बरसा	बरसा, बरखा
भीष्म	भीसम	भीसम
शेष	सेस	सेस
केश	केस	केस 'खार करूँ सिर केस'—मीरा
दुश्मन	दुसमन	दुसमन
क्षीण	छीन	खीण (यहाँ हरियानी में 'ष' का छ हो गया है जब कि राजस्थानी में 'ख' हुआ है। यथा— "घूंघट में गोरी जलै खीन पुरस की नार।")

३. हरियानी और राजस्थानी दोनों में 'य' का उच्चारण 'ज' और 'य' दोनों प्रकार से होता है। जब 'य' किसी शब्द का पहिला अक्षर होता है तब

इसका उच्चारण प्रायः 'ज' किया जाता है और 'ज' ही लिखा जाता है। परन्तु जब 'य' शब्द के पहिले अक्षर के पश्चात् आता है तब वह अविकृत अवस्था मे रहता है, यथा :—

आदि यकार	मध्य यकार या अन्त्य यकार
युद्ध—जुद्ध	काया
यात्रा—जात्रा	माया
यमराज—जमराज	और जाया आदि

वर्णागम और वर्ण प्रत्यय

१. हरियानी में 'ऋ' के स्थान मे 'रि' सुना और लिखा जाता है। यह प्रवृत्ति राजस्थानी में भी है। कहीं-कहीं राजस्थानी मे मूल रूप में भी मिलता है। यथाः—

ऋषि	रिसी
ऋतु	रितु
स्मृति	समृति (राजस्थानी में)

२. हरियानी मे 'रेफ' का प्रयोग नहीं होता। यह रेफ पूरे 'रकार' में बदल जाता है। राजस्थानी में इसका स्थान्तरित रूप भी प्रयोग में है। यथाः—

संस्कृत	हरियानी व राजस्थानी	राजस्थानी में स्थानान्तरित प्रयोग	
वर्ण	वरन		
दुर्लभ	दुरलभ		
धर्म	धरम	धर्म	ध्रम
कर्म	करम	कर्म	क्रम आदि

३. हरियानी और राजस्थानी में सुखोच्चारण के लिए शब्द के आरम्भ में कभी-कभी कोई स्वर जोड़ देते हैं जिसे स्वरागम कहते हैं। यथाः—

हरियानी	राजस्थानी
रथ अरथ	थांण आथांण
सवार (असवार)	रण आरण आदि
(अस्वार) यथाः—	
लीली के अस्वार आदि	

४. इन दोनों बोलियों में 'स' का 'छ' और 'व' का 'म' हो जाता है। यथा—

'स' का 'छ'		'व' का 'म'	
सुदामा	छुदामा	सावन	सामण, सामन (मास)
तुलसी	तुलछी	रावण	रामण
सभा	छभा	सुहावणो	सुहामणों

५. इन दोनों भाषाओं में णकार बहुला प्रवृत्ति पाई जाती है। नकारांत शब्द प्रायः णकारांत कर लिए जाते हैं। यथाः—

कहना	कहणा
गहना	गहणा
रानी	राणी
जीवन	जीवण आदि

६. राजस्थानी में अकारात पुल्लिंग तथा अकारांत स्त्रीलिंग शब्दो का बहुवचन अन्त्य स्वर में 'आं' लगाने से बनता है। यही प्रवृति हरियानी में भी मिलती है। यथाः—नर नरा, खेत खेतां, रात राता, आँख आँखां, 'आँखां नै क्यूँ फोड़ै सै"—हरियानी।

राजस्थानी के आकारात, ईकारात और ऊकारात शब्दो के बहुवचन हरियानी और खड़ी बोली से प्रायः नहीं मिलते। यथाः—

हिन्दी		हरियानी	राजस्थानी
एकवचन	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन
घोड़ा	घोड़े	घोडां	घोड़ां
घोड़ी	घोड़ियाँ	घोड़ीआं	घोड़्या
बहू	बहुएं	बहुआं	बह्वा

७. दोनां बोलियो मे छुटपन लाने के लिए अथवा प्रेम-प्रदर्शन के लिए अपभ्रश की भॉति सज्ञाओं के अत मे 'ड़ा', 'ड़ी', 'ड़' जोड़ते हैं यथाः—

गोरी (सुन्दरी)	गोरड़ी	(अधिक सुन्दरी, एक खास सुन्दरी)
छोरी (लड़की)	छोरड़ी	(अप्रधानता द्योतन के लिए)

उपरोक्त विवरण से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हरियानी और राजस्थानी मे पर्याप्त साम्य है। इस भ्रम के लिए भी स्थान हो सकता है कि हरियानो राजस्थानी का ही एक रूप है किन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है। राजस्थानी का प्रभाव अवश्य पडा है और यह कोई दोष भी नहीं है। भाषाएँ सभी एक-दूसरी से लेती-देती रहती हैं। फिर इन दोनों बोलियों की कारक प्रक्रिया, क्रियाएँ, सर्वनाम और

क्रिया-विशेषण आदि में प्रचुर परिमाण में वैषम्य है। राजस्थानी का व्याकरण उसे अपनी पड़ोसी बोलियों से जुदा कर देता है। परन्तु भाषा-विज्ञान के दृष्टि-कोण से यह वैषम्य कोई चिंता का द्योतक नहीं है। इस वैषम्य में भी एक साम्य के दर्शन भाषा-शास्त्री को होंगे। कारण कि राजस्थानी स्वयं अन्तर्वर्ती चक्र की भाषा है जिसकी हरियानी, ब्रज, पंजाबी, कौरवी और गुजराती आदि हैं। डा० ग्रियर्सन ने भाषाओं का विभाजन उच्चारण और व्याकरण के आधार पर किया है। उच्चारण क्षेत्र में इन दोनो बोलियो में बहुत कुछ समानता है किन्तु व्याकरण भिन्न है। हरियानी के व्याकरण का वर्णन हम आगे चलकर विस्तार से करेंगे। राजस्थानी के व्याकरण पर दृष्टिपात करना इस लेख का विषय नहीं है।

ग. हरियानी और ब्रज

हरियानी और ब्रज पश्चिमी हिन्दी की शाखायें हैं और इन दोनों बोलियों की सीमाएँ भी एक दूसरी से मिलती हैं। इस विचार से इन दोनों में पर्याप्त साम्य की अपेक्षा की जा सकती है किन्तु वैषम्य के लिए भी स्थान है।

उच्चारण की दृष्टि से इन दोनों में कोई विशेष उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। बस ब्रज मे मूर्धन्य 'ण' 'ड़' और 'ळ' का प्रयोग नहीं होता है जो इन दोनों बोलियो के खड़ापन और पडापन का कारण है। यथा—हरियानी—खाणा; ब्रज में खाना और हरियानी सड़क ब्रज में सरक बोली जाती है आदि। ब्रज में दंत्य लकार के स्थान पर भी 'रकार' हो जाता है। यथा—बादर, मतवारो, करडारो आदि में रकार ही सुनाई पड़ता है। 'श' के स्थान में 'स', 'य' के स्थान में 'ज' तथा आदि वकार को बकार की प्रवृत्ति दोनों में एक सी है। विशेष विवरण अधोगत है:—

१. सर्वनाम

(अ) उत्तम पुरुष एक वचन में ब्रज में 'मैं' और 'हौं' दोनों का प्रयोग होता है। हरियानी में हौं का प्रयोग नहीं होता। ब्रज का कर्म 'मो' और 'मोहें' हरियानी में 'मझै' और 'मन्नै' हो जाता है। यथा—'मन्नै के ब्यौरा भई, (हरियानी) मोका पतो (ब्रज)।

(आ) मध्यम पुरुष (एक वचन व बहुवचन) ब्रज में 'तों' 'तौं' के साथ-साथ 'तें' 'तैं' भी आते हैं। हरियानी में 'तें' 'तैं' मिलते हैं। हरियानी के 'तेरा' और 'थारा' ब्रज में 'तेरो' और 'तुम्हारो' हो जाते हैं। ब्रज में इसके दूसरे रूप 'तिहारो' और 'तिहारी' भी मिलते हैं। 'जायेगी लाज तिहारी।'

हरियानी के 'थमैं' की जगह 'तुम्हौ' 'म्हारा' के स्थान में 'हमारौ' और 'मेरा' की जगह ब्रज मे 'मेरो' मिलते हैं।

२. वचन

संज्ञा का बहुवचन हरियानी मे पंजाबी, दक्खिनी और राजस्थानी की भाँति 'आ' लगाने से बनता है जैसा कि उपरोक्त उदाहरणों से व्यक्त है। ब्रज में बहुवचन 'न' के योग से बनता है।

हरियानी		ब्रज	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
घोड़ा	घोडा	घोड़ो	घोड़न

"बैलन नाज, घोड़न राज"
(बैलों के द्वारा अनाज और घोड़ो के द्वारा राज कायम होता है।)

३. क्रिया

ब्रज मे क्रिया का साधारण रूप धातु मे 'बो' 'वो' या 'नो' की वृद्धि से बनाया जाता है। हरियानी मे यह रूप 'णा' या 'ण' के द्वारा बनता है।[1] ब्रज की धातुऍ—करिबो, होबो, बूझबो, खाबो, चलनो, फरनो आदि हरियानी धातुऍ—करणा, होणा, खाणा, जाणा, कहण, जाण आदि (जाण लाग रहा सूं आदि)।

सामान्य वर्तमान या हेतुहेतुमद्भूत (फेलमुजारा) बनाने के लिए ब्रज में धातु में 'अत' लगाया जाता है। हरियानी मे खड़ी बोली की भाँति 'ता' लगता है। यथा, ब्रज—करत, परत, जात, खात आदि

हरियानी—करता, जाता, खाता आदि।

ब्रज में भूतकाल हरियानी की भाँति मारा या मार्‌या नहीं बनता वरन् मारो या मार्‌यो होता है। यथा, ब्रज—'तोकू कौन नै मारो'

हरियानी—'तन्नै कन्नै मार्‌या'।

ब्रज में भविष्यत् 'गो' के लगाने से बनाया जाता है। यही काल 'हौ' की वृद्धि से भी बनता है। यथा, ब्रज—मिलूंगो, खाऊँगो, राखूंगो, चलिहौ,

---

१. ब्रज और हरियानी में एक अन्तर बड़ा स्पष्ट है—ब्रज ओकारांत शब्द बहुला है और हरियाणी 'आ' कारांत बहुला है। यह विशेषता इसे व्यवहित चरित्र के कारण प्राप्त हुई है।

करिहौ। हरियानी में इसके विपरीत—सागा, करांगा, चलांगा, इव्वै चलांगा (अभी चलते हैं) आदि में 'गा' लगाने से बनता है।

सहायक क्रिया के वर्तमान काल में हरियानी में 'सै' 'सू' आदि रूप आते हैं। ब्रज में हिन्दी खड़ी बोली की भाँति 'है' के विभिन्न रूप प्रयोग में लाये जाते है। ब्रज में 'हूँ' का उच्चारण 'हौ' हो जाता है। यथाः—जात हौ बाबू, (ब्रज) 'जाऊॅ सू' हरियानी (मै जाता हूँ)। हरियानी मे भूतकाल के लिए 'था' के भिन्न रूप काम मे लाये जाते हैं। ब्रज में 'हौ' और 'हतौ' के रूप प्रयोग मे आते हैं।

तू कडै गया था ? (हरियानी)
तू कहाँ गयो हौ ? (ब्रज)

इस प्रकार हम देख सके हैं कि दोनों बोलियाँ एक सीमा पर मिलती हुई भी कितनी भिन्न हैं।

घ. कौरवी और हरियानी

हरियानी की पूर्वी सीमा पर जमना के उस पार कुरुवन प्रदेशी की 'कौरवी बोली' बोली जाती है। जमना के खादर मे कौरवी और हरियानी का मिश्रण रूप मिलता है। इन दोनो के मध्य मे ग्राड ट्रंक रोड बिछी है। निम्नलिखित अध्ययन के द्वारा हम इन दोनों 'बोलियो के अन्तर एवं साम्य को समझ सकते हैं :—

ध्वनि

१. कौरवी में दो स्वर मध्यवर्ती 'ह' का लोप हो जाता है। हरियानी में यह प्रवृत्ति नहीं है। उसमें तो 'हकार' की अधिकता मिलती है। यथा, कौरवी में "सैर कितनीक दूर अै ?"। यहाँ सहर (शहर) शब्द के बीच मे आने वाली 'ह' ध्वनि का लोप हो गया है और वह 'ऐ' मे परिवर्तित हो गई है। इसी प्रकार तुमारी (तुम्हारी) में 'ह' का लोप हुआ है।

हरियानी में "आड़ै तै सहर कितणीक दूर सै ?" में 'हकार' ज्यों का त्यौं ह गया है। "हमल्हुक छिप आई न्हाण" आदि स्थलों पर 'ल्हुक' (लुक) एवं ाण (स्नान) 'ह' का बहुल प्रयोग दर्शनीय है।

२. कौरवी में महाप्राण ध्वनियाँ बहुधा अल्प-प्राण मिलती हैं। हरियानी मे ध्वनियाँ सुरक्षित हैं।

यथाः—

कौरवी में:—	मुजै दो	(मुझे दो)
	तुजै	(तुझे)
	हात	(हाथ)
	जीव	(जीभ) 'जीव मच्चलावै'
	देक	(देख) "देक कै चल"
	बई	(भई) "रहन दे बई"

हरियानी में:—मझै के ? (मुझै क्या ?)
तझै के चाहना से ? आदि में महाप्राण ध्वनियों में कोई परिवर्तन नहीं आया है ।

३. दोनों बोलियों मे 'ड' और 'ढ' साहित्यिक बोली की तरह 'ड़' और 'ढ़, नहीं बोले जाते, यथाः—बड़ा । परन्तु इनके स्थान पर प्रायः 'ड' और 'ढ' ही मिलते हैं । यथाः—बडा, गाडी आदि ।

वचन

१. कौरवी मे संज्ञा का बहुवचन ब्रज की भाँति 'न' जोड़ने से अथवा खड़ी बोली की भाँति 'ओ' लगाने से बनता है, यथाः—

बैलन पै भूल गेर दी ?
बैलो पै भूल गेर दी ?

हरियानी मे सज्ञा का बहुवचन 'आ' लगाने से बनता है । यथाः—बुल्दा (बैला) की जोड़ी ।

२. ईकारात स्त्रीलिंग शब्दो के बहुवचन केवल 'ईकार' को अनुनासिक कर देने से बन जाते हैं । यह प्रवृत्ति अकर्मक धातुओं के कर्ता के रूप मे विशेष मिलती है । यथा—'कितनी घोड़ी हैं' । सकर्मक धातुओं के कर्मरूप मे आने-वाले शब्दो में 'न' बढ़ाने से बहुवचन बन जाता है । यथा—घोड़ीन कू पानी पिला दो (कौरवी) । हरियानी मे 'आ' लगाने से बनता है । यथा—घोड़ियां नै पाणी पिलाद्यो (हरियानी) ।

क्रिया

१. कौरवी की धातु का साधारण रूप हिन्दी की भाँति 'ना' की वृद्धि से अथवा 'ब्रज' की भाँति 'नो' के लगने से बनता है । यथाः—

कौरवीः—खाना < खानो, जाना < जानो आदि

हरियानी धातु में 'णा' अथवा 'ण' के द्वारा रूप बनते हैं । यथाः—

खाणा, जाणा, देखण, कहण, भूलण आदि ।

२. सामान्य वर्तमान या हेतुहेतुमद्भूत बनाने के लिए दोनों बोलियों—कौरवी और हरियानी—मे 'ता' जोड़ा जाता है । यथाः—करता तो क्यू मरता।

३. सहायक क्रिया के रूप मे कौरवी मे साहित्यिक हिन्दी की भाँति 'है' के विविध रूप प्रयोग मे आते हैं । हरियानी की सहायक क्रिया की भाँति 'सै' 'सू' आदि रूप प्रयोग मे नहीं आते । यथाः—जाऊँ हूँ, वह जा है आदि ।

सर्वनाम

१ इन दोनो बोलियो मे सर्वनाम शब्दो की बहुरूपता मिलती है :—

हरियानी	कौरवी
मभै, मन्नै	मुज, मुजको, मुजकू, मुजे
तभै, तन्नै	तुज, तुजको, तुजकू, तुजे

२. कौरवी मे अन्य पुरुष 'वह' का बहुवचन विकारी और अविकारी दोनों विभक्तियो में 'उनन' आदि है । हरियानी में 'उन्हाँनै' बनता है ।

३. परवाचक सर्वनाम और सम्मुच्चय बोधक अव्यय 'और' में साहित्यिक खड़ी बोली मे कोई भेद नहीं किया जाता; पर हरियानी और कौरवी में परवाचक सर्वनाम तो 'और' है तथा सम्मुच्चय बोधक 'अर' । यथाः—राम अर स्याम आदि ।

कौरवी मे 'हो' का स्थान बहुधा 'ई' ले लेती है; पर हरियानी मे 'ए' ही के स्थान मे प्रयुक्त होता है । यथा :—

आपी आप	(कौरवी)
आप्पै आप	(हरियानी)

ङ. दक्खिनी और हरियानी

हरियानी का समीपवर्ती भाषा बोलियों से सम्बन्ध जान लेना ही पर्याप्त नहीं है । इसका महत्व इस रूप में और भी अधिक है कि इसने संसार की दो महान् भाषाओं—हिन्दी (खड़ी बोली) और उर्दू को बल प्रदान किया । यह हरियानी बोली ही इन दोनों भाषाओं की पोषिका के रूप में रही है ।

हिन्दी खड़ी बोली के ऊपर इसका सीधा उपकार है । इन दोनों का संबंध इतना घनिष्ठ है कि कहीं-कहीं तो अन्तर सूक्ष्म अवलोकन से ही ज्ञात होता

है। उर्दू को तो इस बोली ने दक्षिण में जाकर स्तन्य-पान कराया है[1] और वहीं वली औरंगाबादी की कविताओं द्वारा इसे संजीवन मिला है। इस स्थान पर इन दोनों बोलियों—दक्खिनी और हरियानी—के विषय मे कुछ मोटी-मोटी बाते जानने का प्रयत्न करेंगे।

१. हरियानी और पुरानी दक्खिनी मे कई स्वर साम्य पाये जाते हैं। हरियानी में 'ड़' और 'ढ़' के स्थान में 'ड' और 'ढ' का प्रयोग पाया जाता है। दक्खिनी की भी यह प्रवृति है। यथाः—'कुतब मुश्तरी' मे छोड़ > छोड; पढ़े > पढे, बड़ा > बडा; चढ़ना > चढना आदि प्रयोग आते हैं।

२. हरियानी भाषा की साधारण प्रवृत्ति के अनुसार 'अ' 'इ' 'उ'; 'आ' 'ओ' 'ई' 'ऊ' में परिवर्तित हो जाते हैं। यथाः— रखे > राखे; लहू > लोहू; हड्डी > हाड आदि। दक्खिनी भाषा में भी ये सब शब्द प्रायः इसी रूप मे मिल जाते हैं। इसी प्रकार अन्य उदाहरण—लगा > लागा, मिट्टी > माटी; चलें > चाले आदि दक्खिनी साहित्य मे भरे पड़े हैं।

३. क्रियाओं के मूल रूप (Infinitive) मे अनुनासिक की प्रवृत्ति दोनो भाषाओ मे पाई जाती है। यथाः—चलना > चलनां; खाना > खाना आदि।

४. स्टैंडर्ड खड़ी बोली मे जहाँ शब्द के मध्य का दीर्घ व्यजन ह्रस्व हो गया है और प्रतिकार मे पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ, वहाँ दक्खिनी में बहुधा व्यंजन दीर्घ ही पाया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व और हरियानी मे इसके विपरीत स्वर भी दीर्घ हो जाता है और व्यंजन भी दीर्घ। यथा :—

खड़ी बोली		दक्खिनी	हरियानी
हस्ती	हाथी	हत्ती	हात्थी

---

१. डा० मसूद हसन—'तारीख जबान ए उर्दू' पृष्ठ २३३ प्रभृति।

प्राचीन उर्दू से सम्बन्ध बतलाते हुए भाषायी खोजके सिलसिले में प्रो० जूलियस ब्लाक ने अपने एक लेख "हिन्दी आर्यायी भाषाओं की कुछ समस्याए" मे हरियानी का महत्व प्रदर्शित किया है—(बुलैटिन स्कूल आफ़ ओरियन्टल स्टडीज़ पृष्ठ १९२८-३०) उन्होने कहा है कि पूर्वी पजाब के जिलों की भाषा फौजियो के जरिये दक्खिन तक पहुँची है और इसने समय के व्यतीत होने पर साहित्यिक भाषा का रूप ले लिया है। डा० ज़ूर ने अपनी पुस्तक 'लिसानियात' (भाषा शास्त्र) में भी यही विचार व्यक्त किया है। उनका कहना है कि उर्दू पर बांगड़ या हरियानी का भी प्रभाव है। 'प्रो० शेरानी ने हरियानी ज़बान को उर्दू की पुरानी शक्ल कहा है। इनका तात्पर्य यह है कि उर्दू हरियानी को मुख्य आधार बनाकर विकसित हुई है।

स्वर्ण	सोना	सुन्ना	सौन्ना
फीका		फिक्का	फिका, फीक्का

वचन

१. दक्खिनी और हरियानी में बहुवचन बनाने की एक ही रीति है। दोनों में हिन्दी खडी बोली की भांति 'ओं' के स्थान मे 'आ' लगाते हैं। यथाः—

हिन्दी	हरियानी व दक्खिनी
टुकड़ों	टुकडां
किताबों	किताबा
ऊटों	ऊंटॉ
गरीबों	गरीबां

(ऐसियां, औरतां, खातिर आदि [1]।)

२. स्त्रीलिंग संज्ञाओं की अविकारी विभक्ति का बहुवचन साहित्यिक खडी बोली में 'एं', 'ऐं' जोड़कर बनाया जाता है, पर हरियानी और दक्खिनी मे 'आं' ही जोड़कर रूप बहुधा बनाये जाते हैं यथाः—किताबें>किताबां।

क्रिया

१. हिन्दी की क्रिया खाकर, जाकर, आकर, सोकर के स्थान पर दक्खिनी में खाय, जाय, आय, सोय मिलते हैं। हरियानी में इनके रूप खाकै, जाकै, आकै, सौके हैं।

२. सहायक क्रिया के रूप में हरियानी में 'सू' 'सै' मिलते हैं परन्तु दक्खिनी में ये रूप नहीं मिलते। वहाँ 'हूं' और 'हैं' ही मिलते हैं।

३. साधारण भूतकाल बनाने के लिए हिन्दी की तरह 'आ' के स्थान पर 'या' लगाने से दोनों बोलियों में क्रिया बनती है। यथाः—

धातु	हिन्दी	हरियानी, दक्खिनी
मारना	मारा	मार्‌या
चलना	चला	चल्या
कहना	कहा	कह्‌या
लगना	लगा	लग्या

हरियानी में इनके दूसरे रूप मारा, चला, कहा, लगा भी मिलते हैं जिन पर खड़ी बोली का प्रभाव प्रतीत होता है।

---

1 डा० बाबूराम सक्सेना—'दक्खिनी हिन्दी' पृष्ठ ४८

सर्वनाम

हरियानी और दक्खिनी में सर्वनामों के रूप प्रायः एक जैसे हैं, यथाः—

	हरियानी	दक्खिनी
उत्तम पुरुष बहुवचन—	हम, हमें	हम, हमें
मध्यम पुरुष बहुवचन—	तम, तम्हें	तम

अन्य सर्वनाम भी दोनों भाषाओं मे एक से हैं।

परसर्ग

हरियानी और दक्खिनी दोनों भाषाओं में दीर्घ काल से 'ने' विभक्ति 'कर्ता' और 'कर्म' दोनों को बतलाती है। हिन्दी में 'ने' केवल कर्ता के साथ आता है और वह भी सकर्मक क्रिया के साथ।

हरियानी — मन्नै साहब ने मार्‌या (मुझे साहब ने मारा)
(कर्ता, कर्म का एक ही प्रयोग) अथवा
(मैंने साहब को मारा)

दक्खिनी—कर्ता—'इस खातिर जुलैख़ा ने क्या करी।[1]'
कर्म—'आदमी बरा अच्छे तो शराब ने क्या करना।[2]'

अव्यय

परवाचक सर्वनाम और सम्मुच्चयबोधक अव्यय 'और' में खड़ी बोली में, कोई भेद नहीं किया जाता पर दक्खिनी में परवाचक तो 'और' है तथा सम्मुच्चयबोधक 'हौर'। हरियानी में परवाचक 'और' एवं सम्मुच्चयबोधक 'अर' है। यथा, राम अर स्याम दोन्नू भाई-भाई सैं।

उ. हरियानी और समीपवर्ती बोलियों के नमूने

गत पृष्ठों मे हरियानी और समीपवर्ती बोलियों का साधारण-सा अध्ययन हमने किया है। अब इन बोलियों के नमूने दिखाकर इस अध्याय को समाप्त करते हैं जिससे पाठकों को भाषागत अन्तर समझने में सुविधा हो।

हम यहाँ हरियाना के प्रख्यात विद्वान् पं० शंभुदयाल जी दादरीवाले के साहित्य से कुछ अंश उद्धृत करेंगे। पंडित जी बहुभाषाविद् थे और उनकी 'हफ्तजबानी' 'भाषा सप्तक' इस प्रदेश में बड़ी प्रसिद्ध है। विशेषता यह है

१. डा० मसूद हसन—'तारीख जबान ए उर्दू' पृष्ठ ५६ (सब रस किताब)
२. डा० मसूद हसन—'तारीख जबान ए उर्दू' पृष्ठ १६ (सब रस किताब)

कि एक ही भाव को लेकर भिन्न प्रदेशो की महिलाएँ अपनी-अपनी बोली में कृष्ण के प्रति अपने हृदयोद्‌गारों को व्यक्त करती हैं। 'कृष्ण बालचापल्य वश यमुना में स्नान करती हुई महिलाओं के वस्त्र लेकर समीपस्थ कदम्ब पर चढ़ गए हैं। महिलाएं विवश अवस्था में प्रार्थना करती हैं :—

१. ब्रज गोपिका—

तुम बस्तर दो ब्रजवासी, करो मत हांसी, श्याम थारी दासी। टेक।
रिसभरी भयौ ब्रजबाल, कहा नन्दलाल बजावत बैन।[१]
एजी आ जमुना के तीर, हर्‌यो मेरो चीर कपटकर तैने।
इक तू ही अनोखो छैल, भयो बद फैल लगो दुःख दैने।
चल ढोर चरा दिन रैने, संखियन सै करा मत सैने।
हम जल में खरी बेचैने।
दई[२] मारे दुख दियो गाढो[३], चुराकर चीर कदम पै ठाडो।
ह्वै गयो त्रासी[४] ह्वै गयो त्रासी, तुम बस्तर दो ब्रजवासी।

२. पजाबन—

मुण्डे चक[५] कुरती कछु अंगियां, लक्खे सानु[६] नंगियां खडा हंसदावे।
फड़ लेजां कंस दे नाल[८] नन्ददाग्वाल[९] तू की दसदावे[१०]।
सखियां नु सुहावंदी न गल्ल,[११] हरे तेरा बल नी नसनसदावे।
मुण्डा हुणे[१२] तों[१३] दिन दसदावे, की अजल[१४] बिच फंसदावे।
की जाणै भोग रंगरसदावे।
त्वाडी[१५] हुण गल्लां नहीं मांवदी, मुण्डे तैंनु पंजाबण समझांवदी।
छड़ दे बदमांसी, छड़ दे बदमांसी, तुम बस्तर दो ब्रजवासी। टेक।

३. मारवारण (राजस्थानी)—

म्हें[१६] आधीनती रै साग्गे,[१७] स्याम थाके[१८] आगे बीनती करस्यां।
जो पड़ै[१९] छै म्हां[२०] कै ख्याल, लाल जी बुरै हाल दुखमरस्यां।

---

१. वीणा। २. दुर्भाग। ३. कठिन। ४. भयानक। ५. उठाकर, चुराकर। ६ हमें। ७. पकड़कर। ८. कंस के पास। ९. नन्द का पुत्र। १०. कहता है। ११. बात, हरकत। १२. अभी। १३. तू। १४. मौत। १५. तेरी। १६. हम १७. साथ। १८. तुम्हारे। १९. पड़ता है। २०. हमको।

हुंआ कैंय्यां[1] नीर से न्यारी, थारी लाजांरी मारी मरस्यां।
अठै ऊभी[2] प्राण बिसरस्यों, जल बाहर पगना धरस्यां।
डर बाई[3] जी रै डरस्यां।
कांईं भरोस्यो वांको, साक्को[4] करवादे पीव सै म्हां क्को[5]।
थांको कांईं[6] जास्सी, थांको कांईं जास्सी तुम बस्तर दो...। टेक।

४. हरियाणी—

कूंही[7] की मोही राम गाम तेरी दोही रे, दोही[8] रे।
हम ल्हुक[9] छिप आई न्हाण जलुंगौ कर्डे आण टोही रे।
यो सै आखिर नै हीर, बड़ो बेपीर निरोघोही[10] रे।
बिरा या के तन्नै सोही रे, म्हारो कद को जलैं लोहीरे।
नामान्नै निमोही रे।
तौं आइये म्हारै हेर,[11] राण्डका, किसीक प्यारु फेग,
देख तन्नै ल्हास्सी,[12] देख तन्नै ल्हास्सी, तुम बस्तर दो...। टेक।

५. अहीर वाटी—

तू ऐंढा[13]के बोल्ला सा, जलो खोयो डोल्ला सा कहं को?
बिरा मैं सूं अपणै नाम, जला घ्यूं गाम जाम सा जहं को।
त्या मेरो लूघड़ो[14] देदे फेर चाहे बेसक भेदे पुंह को।
यो जी[15] तब सै दिन छहको, मेरे पड़ैं कालजै जै दहको।
नू नाम लिया कर वंहको[17]।
जा क्यूं मजाक हांक्का, छोड कै खांड खाक फांक्कासा।
काल की गास्सी,[18] काल की गास्सी, तुम बस्तर दो...। टेक।

६. पूरबन—

कैसे मन्द मन्द मुस्कात गात ब्रज चन्द नन्द के छैया[19]।
कहा लटक[20]भरी बंसरी में खटक पमरी[21] मे रही रे दैया[22]।
मोरे उठत करजवा[23] पीर, धरत ना धीर नेक निरदैया।

१. कैसे। २. खड़ी हुई। ३. ननद। ४. संघर्ष। ५. म्हारे। ६. क्या। ७. बहुत देर से। ८. दुहाई है। ९. लुक। १०. निगुरा। ११. ओर, तरफ। १२. दही, मट्ठा। १३. इस तरह। १४. ओढना। १५. जीवन। १६. धडका। १७. उस भगवान का। १८. ग्रास, लुकमा। १९. लडका। २०. विशेष स्वरवाली। २१. पसली। २२. निर्दय, जिसकी मा मर गई हो। २३. कलेजा।

एहो सुनहो धैन चरैया, कहा थिरकत[1] ताता थैया।
तेरी रोय मरैगी मैया।
मैं ठाड़ी खरी कर जोरे, एहो रे सुन पाहिं नृप[2] मोरे।
तोरे तोहिं फास्सी तोरे तोहिं फास्सी, तुम बस्तर दो ...। टेक।

७ दिल्लीवाली—

हरदम हज़ूर रहते हैं दूर किस दम[3] जनाब के दम से।
दम कोई दमका महमान न फिर ये जान मिलै आ हमसे।
दमसाज़[4] बन मत चहो, दिलै आइना रहो इस दम से।
मुश्फ़क़[5] मुश्ताक[6] कदम से गोया लौटी जान अदम[7] से।
दे सबको फबन[8] एक दम से।
दम पर दम शम्भु[9] रटै सरासर यम का सीना फटै।
नटै चौरासी कटै चौरासी तुम बस्तर दो ब्रजवासी...। टेक।

आशा है इस तुलनात्मक अध्ययन से पाठकों को हरियानी बोली की विशेषताए स्पष्ट प्रतीत हो गई होंगी। यह बोली आने आप में समृद्ध एवं आकर्षक है।

ऊ. हरियानी में साहित्य सृजन के अभाव के कारण

शौरसेनी अपभ्रंश की पश्चिमोत्तरी बोली हरियानी एक प्राचीन बोली है और दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश में एक सुदीर्घकाल से जनपदीय जनता के व्यवहार की भाषा रही है। इस बोली के प्रति इसके बोलने वालों का अगाध प्रेम है, परन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि इस बोली में कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं है। इसके कई कारण हैं :—

१ (क)—यह रोहतक, हिसार, कर्नाल, दिल्ली तथा जींद आदि जिलों की बोली है। यह प्रदेश दिल्ली राज्य के अन्तर्गत रहा है। मध्य युग में दिल्ली पर तोमरवंशीय तथा पीछे चौहनवंशीय राज होने से इस प्रदेश की बोली को कोई गौरव नहीं मिला। राजपूतों के राजत्वकाल में राजस्थानी बोली राजभाषा के पद को सुशोभित करती रही और उसी बोली में तत्कालीन वीरगाथा-साहित्य की सृष्टि हुई।

---

१. नाचना। कंस। ३. किसी समय तो। ४. धोखा। ५. दोस्त, मित्र। ६. प्रेमी। ७. परलोक से। ८. सौन्दर्य, गति। ६. शम्भुदास जी, निर्माता।

(ख) इतिहास साक्ष्य से प्रमाणित है कि हरियाना के सैनिक दिल्ली की सेवा में बहुत अधिक संख्या में रहते रहे हैं, परन्तु वे केवल सैनिक ही थे। अतः उनकी मातृभाषा जिसका प्रयोग वे करते होंगे, छावनी-क्षेत्र तक सीमित रही। उसे राजाश्रय न मिला और वह उपेक्षित पड़ी रह गई।

(ग) दिल्ली के राजनैतिक परिवर्तनों का बड़ा गहरा प्रभाव इस इलाके पर पड़ा। फलस्वरूप इस इलाके की भाषा में कोई स्थायित्व न आ पाई और साहित्य-सृजन में बाधा पड़ी।

२. मुसलमानों ने जब लाहौर छोड़कर दिल्ली को राजधानी बनाया तो भाषा के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। दिल्ली के राजप्रासादों (शाही महलों) से बाहर 'उर्दू ए मुअल्ला' में एक अजीबोगरीब भाषा ने जन्म लिया और उसमें स्थानीय बोलियों के साथ विदेशी शब्दों का मिश्रण प्रारम्भ हुआ। इस मिश्रण में हरियानी का बडा प्रभाव था। कहीं-कही पूर्वी पंजाबी की छाप भी थी किन्तु नगण्य रूप मे। हरियानी के प्राचीन अवशेष दक्खिन के 'वली औरंगाबादी' की कविताओं मे देखने को मिलते हैं। यह काल हरियानी के भाग्योदय का था। यदि इस समय यह भाषा दक्खिनी के रूप मे मुसलमानों द्वारा बहुत देर तक अपनाई गई होती तो आज हमें हरियानी की बड़ी सुन्दर-सुन्दर बानगियाँ मिल जातीं। परन्तु दिल्ली और लखनऊ के फारसी शब्दावलि के प्रति विशेष रुचि रखने वाले लेखकों ने उस दक्खिनी पर नश्तर लगाना प्रारम्भ किया और परिणाम जो होना था वही हुआ। हरियानी जो उर्दू की धाय के रूप में थी उसे गंवारू बोली कहकर वहिष्कृत कर दिया गया। इस प्रकार, हरियानी साहित्य के आसन के सदा के लिए पदच्युत हो गई।

३. धार्मिक आन्दोलन काल में ब्रजभाषा के द्वारा साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने के कारण हरियानी को फिर एक प्रबल आघात पहुँचा। इस प्रदेश मे किसी धार्मिक परम्परा के अभाव में यहाँ की भाषा उपेक्षित रह गई। हरियाना प्रदेश के सतों ने अपनी वाणियों के लिए स्थानीय बोलियों का आश्रय न ले उसी साहित्यिक क्षेत्र में लब्ध-प्रतिष्ठ ब्रज और राजस्थानी को प्रश्रय दिया। गोरख सम्प्रदाय इस ओर एक ऐतिहासिक कार्य कर सकता था परन्तु उस संस्था ने भी इस बोली को नहीं संवारा। यों इन सभी संतों की वाणियों मे हरियानी के उदाहरण तो यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं परन्तु उनसे इसके साहित्यिक महत्व का कुछ अनुमान नहीं होता।

४. यह भी विचारणीय है कि इस प्रदेश के किसी प्रभावशाली एवं

प्रतापी नरेश का पता नहीं मिलता। इस प्रदेश मे अधिकतर ग्रामीण किसानों की ही बस्तियाँ हैं जो खेती-बाड़ी के काम में व्यस्त रहते हैं और साधारण एव सतोष का जीवन व्यतीत करते हैं। उनमे प्रतिभा का नवनवोन्मेष कहाँ? परिणाम स्वरूप किसी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति का प्रसाद न मिलने से हरियानी का साहित्य समृद्ध न हो सका। ब्रज को सूर और बिहारी का कला-वैभव प्राप्त था। अवधी को जायसी और तुलसी ने अर्घ्य दिया। विद्यापति को पाकर मैथिली धन्य हुई और बगला को "कोमलकात पदावलि प्रदाता" चंडीदास मिला। राजस्थानी को चन्द्र और नाल्ह के रूप में दो उपासक मिले। पंजाबी को बुल्लेशाह के बोलों पर गर्व है। परन्तु हरियानी को न तुलसी की प्रतिभा प्राप्त हुई और न बिहारी की वाग्विभूति, न विद्यापति का पिककंठ और न चंडी दास का मधुर-पद-विन्यास। ऐसी दशा में हरियानी का समृद्ध साहित्यिक भाषा के रूप मे न पनपना स्वाभाविक ही है। हरियाना मे पं० शम्भुदयाल जी जैसे प्रतिभा-सम्पन्न कवि अवश्य हुए परन्तु उनमे युग प्रवर्त्तक नेता के महान् गुण न थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा के प्रकाश के लिए लोकमान्य ब्रज-भाषा को ही अर्घ्य दिया।[1] उनके 'रुक्मिणी मंगल' आदि ग्रंथ जो ब्रज की सम्पत्ति हैं, उत्तम ग्रंथो की कोटि मे आते हैं। यही प्रतिभाशक्ति यदि हरियानी के सवारने मे व्यय होती तो इस भाषा का कितना उपकार हो जाता?

परन्तु इन सबसे यह न समझ लेना चाहिए कि हरियानी मे भाव-प्रकाश की शक्ति नहीं रह गई है। इस बोली का लोक-साहित्य बड़ा समृद्ध है। विशेषकर अवदान (बैलेड्स) और किस्से जो यहाँ के जातीय गायकों के पास सुरक्षित हैं, सम्पन्न कोटि के हैं। उनसे इस बोली की अभिव्यंजनाशक्ति का यथार्थ ज्ञान हो जायेगा। वस्तुतः हरियानी के किस्सो (गाथाओ) पर पृथक् ही अध्ययन की आवश्यकता है।

यहाँ तक तो बात हुई हरियानी में साहित्यिक कृतियो के अभाव की, परन्तु इस स्थान पर यह भी देख लेना चाहिए कि इस बोली मे भाषा-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए बडी रोचक सामग्री भरी-पड़ी है। कुछ पुराने नमूने भी हैं। इनमें ओरियन्टल कालेज, लाहौर, मैगजीन नवम्बर १६३१ और फरवरी १६३२ मे प्रकाशित प्रो० शेरानी के लेख मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त हमारे

---

१. पं० शम्भुदयाल जी दादरी के रहनेवाले थे जो रियासत जींद की तहसील है और महाराजा जींद के राजकवि थे। इन्होंने तीन पुस्तकें ब्रज भाषा में 'रीति शैली' पर लिखी हैं। पुस्तकें हैं—१. रुक्मिणी मंगल, २. कृष्ण-लीला, और ३. जोबन लीला।

सामने हरियानी के कई प्राचीन लेखकों के साहित्यिक नमूने भी हैं जिनमें शेख अब्दुला अन्सारी, शेख महबूब आलम, झज्जर निवासी, अकरम रौहतकी उपनाम 'कुतबी', शाहअब्दुल हकीम, शाह गुलाम जीलानी रौहतकी के लेख उल्लेखनीय हैं।[१] उपरोक्त लेखको के अतिरिक्त भाषायी दृष्टिकोण से सबसे अधिक माननीय लेख आलमगीर काल के मशहूर फारसी विद्वान् मीर अब्दुलवासै हासवी की 'समदबारी' और 'फरहंग गराबुल लुग़ात' हैं। किन्तु ये सब भाषा विषयक सामग्री से पूर्ण कुछ लेख मात्र ही हैं। इन्हें हम स्थायी साहित्यिक कृतियों में स्थान नहीं दे सकते।

———

१. डा० मसूदहसन "तारीख जबान ए उर्दू" पृष्ठ २३५

२. व्याकरण की दृष्टि से

हरियानी बोली का घर और क्षेत्र-विस्तार जानने के पीछे अब उसका स्थूल व्याकरण देख लेना शेष है। इन पंक्तियों मे इसी की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है।

उच्चारण

हरियानी बोली का समीपवर्ती भाषा बोलियों से शैली की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं है परन्तु स्वर एव उच्चारण की दृष्टि से यह इन पडोसी बोलियों से पर्याप्त मात्रा मे भिन्न है। शब्द का आरम्भिक 'अकार' सदैव विलम्बित खिंचा हुआ हो जाता है अर्थात् उसका उच्चारण खुला, मन्द एवं रुक्ष-सा होता है। ((a 'is pronounced with broadness' coarseness and with a drawl) हरियाने का निवासी 'अच्छा' शब्द का 'आच्छा' ही नहीं बल्कि 'आऽऽच्छा' उच्चारण करता है। यह प्रवृत्ति मध्यम एव अंतिम अकार मे भी देखी जाती है। आनेवाले या व्यतीत दिन के लिए जो 'कल' शब्द है वह भी 'काल' ही नहीं 'काऽऽल' बोला जाता है। पंजाबी भाषा मे सुनाई पडनेवाला 'जट' यहा केवल जाट ही नहीं 'जाऽऽट' हो गया है। और देखिए, 'जमूना' उत्पन्न होना 'जामूना', 'चलूना' (जाना) 'चालूना', और 'नहीं' निषेधार्थक 'नाहीं' हो जाता है।

स्वराघात युक्त दीर्घ स्वर के बाद के व्यंजन का इसमें द्वित्व हो जाता है। तब दीर्घ स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है। इस प्रकार द्वित्व व्यंजन के पूर्व के स्वर ई, ऊ, ए, ओ क्रम से ह्रस्व इ, उ, ऍ, ऑ मे परिणत हो जाते हैं। इसका अपवाद केवल 'आ' है। यथा—गाड्डी, बाप्पू, बुज्भा, सिक्खा (सीखा), बेट्टा, रोट्टी।

अकार के अतिरिक्त दूसरे स्वर भी परिवर्तित होते हैं। यथा 'पीछे' हरियानी में 'पाच्छे' हो जाता है। 'सीधा' शब्द 'सूधा' और 'उठना' शब्द 'ऊठना' हो जाता है। पंजाबी 'टब्बर' (बालक नन्हे) हरियानी मे 'टाबर' होता है।

हरियानी बोली में संस्कृत तथा प्राकृत के शब्दों का प्रयोग बहुत होता है। यह आश्चर्य होता है कि खेतिहर किसान ने कितनी श्रद्धा से अपने

पुराने शब्दों को पानी देकर हरा रखा है। भूमिहर के मुख में निवास करता हुआ बलद (बलिवर्द) तथा 'गेहुआ की रास ठाली के ?' मे रास (राशि) शब्द का ही फूहड़ अंश है।

क. नाम प्रक्रिया

(अ) कारक विभक्ति

१. साहित्यिक हिन्दी की भांति कर्ताकारक 'ने' लगाने से और सम्बन्ध कारक 'का' लगाने से बनता है किन्तु सम्प्रदान कारक की विभक्ति भी 'ने' है, हिन्दी की भाति 'को' नहीं लगती। अपादान कारक हिन्दी 'से' के स्थान में ब्रज की तरह 'ते' 'तैं' या 'के धोरेते' के प्रयोग से बनता है। अधिकरण कारक का चिह्न भी ब्रज की तरह 'मे' तथा 'पे' है। 'पर' का प्रयोग नहीं होता। एक विचित्रता यह है कि कर्मकारक या तो कर्तृकारक की भाँति होता है अथवा सम्प्रदान कारक की भाति जिसमे 'ने' विभक्ति लगी होती है। अतः ऐसे स्थानों पर जहां कर्म और करण दोनो कारको में 'ने' विभक्ति का प्रयोग हुआ है वहा अर्थ प्रकाश मे कठिनाई होती है क्योकि क्रिया के कर्ता और कर्म का एक ही जैसा रूप होता है यथाः—'मन्ने साहब ने मार्या'। इस वाक्य से पता चलना कठिन है कि किसने किसको मारा अर्थात् साहब ने मुझे मारा या इसके विपरीत मैने साहब को मारा। इस स्थान पर श्रोता भ्रम मे पड़ जाता है।[1] यह कठिनाई एक प्रकार बच जाती है जहां सकर्मक क्रिया है वहां कर्म को कर्तृवत् और कर्ता को करण की भाति रखना होता है। यथा—'मै साहिब ने मार्या' अथवा 'छोरा साहब ने पकड़्या'। उन स्थानों पर जहां क्रिया का अकर्मक प्रयोग है, वहां कर्म को सम्प्रदान रूप में और कर्ता को कर्तृकारक में रखें, यथा—'छोरे ने पोलीस ले गई' आदि।

२. हरियानी मे अपादान कारक को व्यक्त करने के लिए 'से' के स्थान म 'मेरेते' और 'मेरे धोरेते लिया' मे कुछ अन्तर नहीं है। जहां अपादान का भाव करणकारक द्वारा व्यक्त किया जाये वहा 'धोरेते' का ही प्रयोग

१. इस स्थान पर एक घटना स्मरण हो आती है कि हरियाने में चालीसा काल पड़ा हुआ था और जालंधर डिवीजन में प्लेग की महामारी आई हुई थी। जनता घरों को छोड़ शिविरों में पडी थी। उस समय इस अकाल-पीड़ित जनता को सहायतार्थ जालंधर में ले जाकर लगाया। परन्तु वहां भारतीय एवं अभारतीय अधिकारी वर्ग उनकी बात नहीं समझ पाते थे और वह उद्देश्य पूरा न हुआ जिसके लिए उन्हें भेजा गया था।

—'जिला रोहतक गजेटियर' भाषा विषयक भाग, सन् १६१०

नहीं होता। केवल 'मेरेते' का ही प्रयोग होता है यथा—'मेरे ते नाहीं हो सके' अथवा 'मेरे ते नाही दिया जा' आदि।

(३) (क)—'मारना' क्रिया के कर्म के साथ पुल्लिग सबंधवाचक विभक्ति लगाई जाती है। यथा—मन्ने इस छोरे के मार्या, मन्ने इस छोरी के मार्या, मन्ने इसके थप्पड़ मार्या आदि।

(ख) यह अवस्था तब भी दिखाई पडती है जब हिन्दी सम्बन्ध सूचक विभक्ति 'उसके पास' के स्थान मे पुल्लिंग सम्बन्धसूचक विभक्ति लगाई जाती है। यथा, इस प्रश्न के उत्तर मे—"क्या तुमने मेरा बलद देखा है?" उत्तर होगा 'मन्ने इस पाली के देखा' अर्थात् मैने इसे ग्वाले के पास देखा।

(४) कर्मकारक का चिह्न जहाँ दिशा का भाव द्योतित हो, छिप जाता है यथा 'गाम गिया', 'रोहतक गिया', आदि।

(आ) संज्ञा के रूप या विकार

१. संज्ञा में विकार प्रायः हिन्दी की भाँति होता है। विशेष अधोलिखित हैः—

(क) विकारी कारकों (Oblique Cases) पुल्लिग अथवा स्त्रीलिंग संज्ञाओ के बहुवचन के रूप 'आं' लगाने से बनते हैं, अंत मे हिन्दी की भाँति 'ओं' नही लगता। यथाः—

पुल्लिंग

छोरा (लड़का)

	एकवचन	बहुवचन
सबोधन	ऐ छोरे	ऐ छोरो
विकारी कारक	छोरे	छोरा

स्त्रीलिंग

छोरी (लड़की)

	एकवचन	बहुवचन
संबोधन	ऐ छोरी	ऐ छोर्यो
विकारी कारक	छोरी	छोर्यां

(ख) स्त्रीलिग संज्ञाओ के कर्तृकारक में एकवचन और बहुवचन के रूप समान होते हैं, यथा—

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक	छोरी गई	छोरी गईं

आपके कितनी लड़कियाँ हैं ? उत्तर मिलेगा 'तीन छोरी सैं'। यहाँ 'छोरी' शब्द में विकार नहीं आया है।

(ग) 'आं' लगाकर विकारी कारक बहुवचन बनाने की इस प्रक्रिया में एक अपवाद भी मिलता है। यथाः—'घरा जा', 'घर जाओ' मे एकवचन में भी यह विकार आया है।

ख. सर्वनाम के रूप

पुरुषवाचक सर्वनाम

सर्वनाम प्रक्रिया में हरियानी में हिन्दी से पर्याप्त अन्तर है। उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष के करण कारक और कर्म कारक एकवचन और बहुवचन में 'ने' विभक्ति का विकल्प से प्रयोग होता है। सम्भवतः 'ने', 'मै' और 'तैं' के अनुनासिक का ही अंश बन गया है, यथाः—

उत्तम पुरुष

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक	मैं	हम
कर्म कारक	मैं, मन्ने	हम, हमने
करण कारक	मैं, मन्ने	हमां, हमने
सम्प्रदान कारक	मन्ने	हमने
अपादान कारक	मेरे ते, मेरे धोरे ते मत्ते	म्हारे ते, म्हारे धोरे ते, हमते
सम्बन्ध कारक	मेरा	म्हारा

मध्यम पुरुष

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक	तु, तुं	तुम
सबोधन कारक	तु, तु	तुम
कर्म कारक	तु, तु, तन्ने	तुम, तुम्ने
करण कारक	तैं, तन्ने	तुमा, तुम्ने
सम्प्रदान कारक	तन्ने	तुम्ने
अपादान कारक	तेरे ते, तेरे धोरे ते, तुत्ते	थारेते, थारे धोरे ते, तुमते
सम्बन्ध कारक	तेरा	त्यारा

हरियानी में 'तुम' के स्थान पर 'तम' और 'थम' दोनों बोले जाते हैं।

संकेतवाचक सर्वनाम

(योह) (यह), ओह (वह)

यहाँ पर हिन्दी से विशेषता यह है कि कर्ता कारक एकवचन में स्त्रीलिंग सर्वनाम का रूप अपना पृथक् अस्तित्व रखता है। यथा :—

योह (यह)

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक	योह पुल्लिंग याह स्त्रीलिंग	ये
कर्म कारक	क. योह	ये
	ख. ईने, ईन्ने	इनने
करण कारक	इसने, ईने	इनने
सम्प्रदान कारक	ईने	इनने
अपादान कारक	ईते ईं धोरे ते	इनते, इन धोरे ते
सम्बन्ध कारक	इसका, ईंका	इनका

ओह (वह)

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक	ओह पुल्लिग वाह स्त्रीलिंग	वे
कर्म कारक	क. ओह ख. उसने	वे
करण कारक	उसने	उनने
सम्प्रदान कारक	उसने	उनने
अपादान कारक	उसते, उसते धोरे ते	उनते, उन धोरे ते
सम्बन्ध कारक	उसका	उनका

सम्बन्ध सूचक सर्वनाम

जो

कर्ताकारक	जो	जो

कर्म कारक	क. जो	क. जो
	ख. जिसने, जीनै	ख. जिस, जिसने

शेष, यथा—संकेतवाची सर्वनाम।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

कौन

एकवचन 'कौन' सदैव सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' के साथ आता है। विकारी कारकों में इसका रूप 'कीं' या 'किस' होता है।

के (क्या)

कर्ता कारक	के
कर्म कारक	के
सम्बन्ध कारक	क्यां का

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

कोई

इसका कर्म कारक का रूप 'कोई' या 'किस्से ने' होता है। विकारी कारक 'किस्से' के साथ विभक्तियाँ लगने से बनता है।

विशेषः १. करण कारक में जब 'ने' विभक्ति के बाद में निषेधवाचक शब्द हो तो 'ने' विभक्ति सर्वनाम में एकीभूत हो जाती है। यथाः—किस्सा ना कहा। (यह किसी ने नहीं कहा)।

२. हिन्दी 'किसी ना किसी' के लिए हरियानी मे 'किस्सै ते किस्सै' का प्रयोग होता है।

३. कर्तृ कारक में ही इसका बहुवचन होता है और किसी कारक में नहीं।

कुछ

इसके प्रयोग में 'वास्ताना' 'कुछ नहीं' से अच्छा माना जाता है।

ग. क्रिया-विशेष

हरियानी के क्रिया-विशेषण अपना विशेष स्थान रखते हैं। यथाः—
काल—(आनेवाला या गया हुआ दिन) हम्बे, घोरे, पाछे, इब (अब); जिब, (जब, तब); कद् (कब); बड़े (कहाँ); कित, कड़े, कितोड़; कींघे (जिधर); अड़े,

आड़े, इत (यहाँ); इत, ईंघे (इधर); उत, ऊड़े (वहाँ); उत (उधर); न्यूं (इस प्रकार, अतः)।

घ. क्रिया (कर्तृवाच्य)

भाव्यवाचक (The infinitive)

अविकृत भाव्यवाचक क्रिया मे (The uninflected infinitive) हिन्दी की नांईं 'ना' अंत मे आता है। यथाः—सच बोलना आछा सै।

विकृत भाव्यवाचक क्रिया में अंतिम अक्षर का लोप कर दिया जाता है और मधुरता लाने के लिए कभी-कभी अंतिम 'न' से पहिले ह्रस्व 'अ' का आगम कर लिया जाता है। यथाः—पीवन के लाइक पाणी।

खान जोग, मरन आला, **सोअन आला,** ऐह **जाअन** आला।

भविष्यत्कृदन्त (The Future participle)

भविष्यत्कृदन्त बनाने के लिए विकृत भाव्यवाचक क्रिया में 'आला' जोड़ा जाता है। यथाः—

करना	करन आला
मरना	मरन आला

वर्त्तमान कृदन्त (The Present Participle)

वर्त्तमान कृदन्त के रूप मे हिन्दी की तरह होते हैं. यथाः—जाता, खाता आदि। आना क्रिया के रूपों में अपवाद है। इस क्रिया के रूप होते हैं—आम्ता, आम्ते आदि।

भूत कृदन्त (The Past Participle)

भूत कृदन्त बनाने के लिए धातु और अंतिम 'आ' के बीच 'न' के स्थान पर 'य' कर दिया जाता है। यथाः—

मारना	मार्या
गाडना	गाड्या
करना	कर्या
सीमना	सीम्या

इस नियम में अपवाद भी है, यथा, होना—'हुआ' कहीं 'होया' भी देखने को मिलता है। यथाः—'राजा के पुतर होया'।

देना	दिया
लेना	लिया
जाना	गिया

आज्ञार्थक क्रिया (The imperative)

आज्ञार्थक क्रिया का एकवचन हिन्दी की भाँति शुद्ध धातु का रूप होता है। यथाः—मार, खा, जा आदि।

बहुवचन में भी हिन्दी जैसे रूप होते हैं। यथाः—मारो अथवा मार्यो या मारियो।

सहायक क्रिया (The auxiliary verb)

वर्त्तमान

एकवचन	बहुवचन
मैं सूं	हम सां
तु सै	तुम सो
ओह सै	वे सैं

भूत

भूत सहायक क्रियाएँ हिन्दी जैसी होती हैं, केवल इतनी विशेषता है कि स्त्रीलिंग बहुवचन का रूप 'थी' होता है, न कि 'थीं'।

सामान्य वर्त्तमान काल

इसके रूप होते हैं—'मे करूं सूं' या 'मैं करू' 'हम चलां सां' अथवा 'हम चलां'। ये हिन्दी के 'मैं जाता हूँ' अथवा 'मैं जाता' के ढग के हैं।

निश्चित वर्त्तमान काल

एकवचन	बहुवचन
मै कर रिहा सूं	हमकर रिहे सां
तु कर रिहा सै	तुम कर रिहे सो
ओह कर रिहा सै	वे कर रिहे सें

विशेषः—यदि इस काल में से सहायक क्रिया को हटा दें तो सामान्य वर्त्तमान का भाव हटकर पूर्ण वर्त्तमान का भाव आ जाता है, यथाः—'ओ आ रिहा' का तात्पर्य—वह आ चुका है।'

भविष्यत् काल

यह काल 'गा' जोड़ने से बनता है जैसा कि हिन्दी में होता है। उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप होता है, 'करांगे', 'करेंगे' नहीं होगा।

अपूर्ण भूत

मै करूं था	हम करां थे
तुम करे था	तुम करो थे
ओह करे था	वे करें थे

संभाव्य भविष्यत्

यह काल भी हिन्दी की तरह बनाया जाता है।

क. सामान्य भूत के प्रयोग द्वारा, यथाः—

जे पछुवा चल जाय तो समे की आस हो जाय।

ख. भविष्यकाल के प्रयोग द्वारा, यथा :—

जे तु काट लेगा तो मै मारूंगा।

इन रूपों के अतिरिक्त कुछ मुहावरेदार प्रयोग भी मिलते हैं जिनकी तालिका नीचे दी जाती है :—

१. भूत कृदन्त का प्रयोग, यथाः—मरे पाछे (हिन्दी—मरने के पीछे)
उसने गये ने कै साल हूए ?

२. लेना क्रिया अकर्मक धातु के साथ मिलकर अकर्मक क्रिया बन जाती है और इस प्रकार पूर्णता का अर्थ देती है, यथाः—

क. हो लिया (समाप्त हो गया)
ख. आ लिया (आ चुका है)

३. प्रभावशाली बनाने के लिए मुख्य क्रिया के साथ 'रखना' जोड़ा जाता है। यथाः—अर्जी दे रखना, बाड़ी बो रखना, भेज रखना, खोल रखना।

४. आज्ञार्थ क्रियाओं के साथ दो नकारात्मक शब्द जोड़े जाते हैं। यथाः—
मत ना चलियो।

५. 'रखना' क्रिया का भूतकालीन रूप एक विशेष मुहावरे के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ होता है—समाप्त होना, रुकना, या छोड़ देना। यथाः—देखन ते बैठरिहे सें (देखना समाप्त हुआ)।

रूख होअनते बैठ रिहासे [होना (बढ़ना) रुक गया है]।

कहन ते बैठ रिहासूं (कहना भी छोड़ा)।

कर्मवाच्य

कर्मवाच्य का बनाना हिन्दी की तरह होता है। परन्तु हिन्दी का 'मैं मारा जाता हूं' हरियानी में 'मैं मारा जाऊं सूं' होता है।

कर्मवाच्य का प्रयोग बहुत ही कम होता है। ग्रामीण लोग इस प्रयोग के स्थान में कर्तृवाच्य प्रयोग करते हैं। अपवाद स्वरूप एक दो स्थानों पर इसका प्रयोग आता है। यथाः—मैं मारा किया। ग्रामीण जन इस वाच्य को 'वृक्ष वायु द्वारा उखाड़ा गया, को कर्मवाच्य में नहीं प्रयोग करते बल्कि वे बोलेंगे कि 'वायु ने पेड़ को गिरा दिया' या वृक्ष वायु से गिर गया आदि।

यह हरियानी बोली का स्थूल व्याकरण है। हरियानी बोली समझने में कुछ कठिन है। यह फैले उच्चारण के साथ बिलम्बित गति से बोली जाती है। प्रत्येक व्यक्ति इसका अभ्यास नहीं कर सकता।

अ. लघुगीत

पूर्वपीठिका

हरियाना प्रदेश में लोक-गीत साहित्य प्रचुर मात्रा मे मिलता है। उसका प्रस्तार एवं विस्तार इतना अधिक है कि जीवन का कोई पक्ष, भाव तथा व्यापार ऐसा नहीं जो लोक-गीतों के बंधन में न आता हो। प्रत्येक भाव को वहन करने की क्षमता इन लोक-गीतों में विद्यमान है। परिष्कृत मेधा की ऊहापोह भले ही इनमें न दीख पड़े, पर कोमल से कोमल भाव इन गीतों के अंग बने हुए हैं। संस्कृत के एक विवेचक ने जिस बात को—

न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।

जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥—कहा है। वह हरियानी लोक-गीतो के ऊपर यथार्थरूप से घटित होती है।

लोक-गीतों की दुनिया की यह विशेषता है कि ये जीवन के साथ घुले-मिले हैं। शिशु नव अतिथि के रूप मे आता है। उस समय से लेकर जीवन भर वह गीतों के संसार में खेलता है और अंत में गीतों में ही लिपट कर अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर जाता है। गीतों की इस समष्टि का एक स्थान पर पूर्ण गवेषणायुक्त अध्ययन इस प्रकार की चेष्टा है जिस प्रकार एक गगरिया में सागर भरने का प्रयास। फिर भी हम हरियाने के लोक-गीत साहित्य का स्पष्ट अध्ययन पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं।

जैसा कि हमने पीछे कहा है हरियाने के लोक-गीतों के विभाजन की कई शैलिया अपनाई जा सकती हैं। सर्वप्रथम इन गीतों को हम स्त्री समाजगत लोक गीत एवं पुरुषसमाजगत लोक-गीत—नाम से दो रूपों मे बॉट सकते हैं। इनमे स्त्री लोक-गीत प्रायः सभी मुक्तक होते हैं तथा पुरुषसमाज मे प्रचलित लोक-गीत अधिकतर कथात्मक हैं जो लम्बे-लम्बे होते हैं। अतः हम इनका अध्ययन मुक्तक और कथात्मक रूप से भी कर सकते हैं। यह विभाजन गीतों के रूप की दृष्टि से है। हमने पीछे यह भी बताया है कि गीतों के विषय की दृष्टि से भी एक विभाजन किया जा सकता है। कुछ गीत ऐसे हैं जो सस्कारों के अवसर पर प्रचलित हैं। इनमें भी उद्देश्य के आधार पर कुछ तो अनुष्ठान के अंग होते हैं और शेष मनोरंजन, हर्षोल्लास एवं आनन्द की भावना से पूर्ण होते हैं। यथार्थ में, इन गीतों के बिना सस्कार पूरा नहीं होता। यों कहें तो और अच्छा होगा कि कोई भी संस्कार उस शोभा, उस स्फूर्ति एवं उस हृदय-हारिता से

वंचित रह जायेगा जो अवसरोपयोगी इन गीतों के द्वारा सस्कार को प्राप्त होती है।

हमारे यहाँ शास्त्रों मे षोडश संस्कारों का प्रतिपादन है। हिन्दू शास्त्रोक्त ये सोलह संस्कार मानव के पूर्ण एवं सही-सही विकास के लिए अत्यावश्यक हैं। पर आजकल इन संस्कारों में तीन संस्कार—जन्म, विवाह और मृत्यु—विशेष प्रचलित हैं। परिस्थितिवश कई संस्कार विलुप्त हो गये हैं और कई सस्कारों का महत्व घट गया है। लोकवार्ता की दृष्टि से उपरोक्त तीन सस्कारो के अतिरिक्त 'मुडन' सस्कार का कुछ महत्व अवशिष्ट है। कर्णवेध और जनेऊ (यज्ञोपवीत) आदि ऐसे सस्कार हैं जो शास्त्रोक्त विधि-विधान के सहारे खड़े हैं। उपनयन सस्कार के समय गीतो का प्रचलन हरियाना प्रदेश मे है परन्तु वे सभी गीत आर्यसमाजी ढग के हैं जिनमें सुधारवाद की ही प्रधानता है। उनमे लोकवार्ता के पावन तत्व प्रायः विलुप्त हैं। उनमे गुरुकुल और ब्रह्मचर्य की साधारण-सी महिमा वर्णित होती है। वस्तुतः, देखा जाये तो इन तीन प्रमुख संस्कारों मे ही प्रकृति मे क्रियाशीलता के दर्शन होते हैं, विकास और ह्रास के द्वारा। इनमे भी प्रथम दो संस्कार प्रकृति के औत्सुक्य को लेकर चले हैं। अतः हमें जो गीत सम्पदा उपलब्ध हुई है वह प्रथम दो सस्कारों—जन्म और विवाह—पर गाये जाने वाले गीतों को ही अधिक है। अवसान अवसर के गीत भी मिले हैं परन्तु अल्प संख्या मे और महत्व भी उनका नगण्य है।

उक्त गीतों के अतिरिक्त कुछ गीत वे हैं जिनमें सांस्कारिक भावना नहीं हैं, अपितु वे ऋतु-विशेष पर गाये जाते हैं। बहुत सी ऐसी बातें हैं जो अपने समय पर फबती हैं और 'बिन अवसर नीकी पै फीकी लगत'। भला, मल्हार और कजली की जो बहार सावन के मनभावना मास मे है वह जेठ के छाहौं चाहती छांह' के भीषण ग्रीष्मकाल में कहाँ? वृद्ध-वृद्धाओं तक को मस्त बनाने वाले फाल्गुन मास में जो ओजपूर्ण एव उन्मत्त गाने गाये जा सकते हैं वह अघन-पूस के ठिठराते शीतकाल में कहाँ संभव हैं? कार्तिक मास में गंगा-यमुना स्नान के समय जो हरजस या परभाती गाई जाती है वे अन्य मासों में कहां शोभा देती हैं? चैत मास में स्त्रियों द्वारा देवी और देवताओं के दरबार में यात्रा और पूजा के रूप में जो फरियाद भरे गीत गाये जाते हैं, उनकी अपनी निराली छटा है। अतः हम इस दूसरी श्रेणी में उन गीतों को स्थान देंगे जो ऋतु सम्बन्धी हैं। इम ऋतुपरक गीतों में व्रत, पर्व, त्यौहार एवं देवी देवताओं के गीत आते हैं। भारतीय संस्कृति ही कुछ ऐसी है कि उसका रूप नाना व्रत पर्वों में निहित है। प्रत्येक ऋतु का पट विविध प्रकार

के सांस्कृतिक एवं धार्मिक कृत्यों से निर्मित हुआ है और इन्हीं विभिन्न ऋतुओं में भारतीय संस्कृति का स्फुरण होता है ।

संस्कार एवं ऋतु सम्बन्धी गीतों के अतिरिक्त एक तीसरी श्रेणी उन गीतों का है जिनमें किसान की आत्मा की झंकार है और कृषि एवं धरती माता की दुहाई है । इन गीतों को हमने कृषि विषयक गीत नाम दिया है । एक बहुत बड़ा भाग जो बच गया है उसे अन्य नाम से अभिहित किया है ।

मुक्तक गीतों के विभाजन की शैली को जानकर 'कथात्मक गीतों' की ओर भी ध्यान जाता है । इस विभाग में जैसा ऊपर कहा गया है पुरुष समाज के गीत हैं, जिन्हें पुरुष ने अपने रिक्त समय में मनोरंजन के लिए, विशृंखल इतिहास की कड़ियों को जोड़ने तथा पौराणिक महापुरुषों की स्मृति को सजग रखने के लिए गाया है । इनमें बड़े-बड़े कथागीत—अवदान, पंवारे एवं साके आदि आते हैं ।[1] कई गीत तो इतने बड़े-बड़े हैं कि जिन्हें प्रवीण गायक भी महीनों में गाकर समाप्त कर पाते हैं । 'निहालदे' ऐसा ही अवदान अथवा गाथात्मक गीत है । 'शीलादे' भी पर्याप्त लम्बा गीत है । आल्हा की प्रसिद्धि तो अपने विस्तार के लिए समस्त उत्तर भारत में है । आल्हा विशेषतः पावस-काल की अपनी वस्तु है । एक किंवदन्ती में उसके गाने के विषय में इस प्रकार कहा गया है, 'आल्हापंवारा उस दिन गाओ, जिस दिन भारी हो बरसात' । आल्हा की समस्त कथावस्तु एक विख्यात वृत्त पर आधारित है जिसमें मोहबे के बनाफरियों का शौर्यपूर्ण वर्णन है ।

उपरोक्त विवरण को हम एक वृक्ष की सहायता से इस प्रकार समझ सकते हैं ।

---

१ क. साका किस्सा या गाथा नाम से भी विख्यात है । इनमें ऐतिहासिक वीरचरित्र का वर्णन होता है यथा राजा रसालू आदि । विशेष प्रसिद्ध राजाओं की 'रासो' होती है ।

ख. अवदान—पौराणिकतत्वों से पूर्ण कथा होती है । यथाः—गुरुगूगा, शीलादे' निहालदे आदि ।

ग. पंवारा—स्थानीय वीरों के किस्से जिनमें उनके अपूर्व बल-विक्रम का वर्णन होता है । 'जगदेव' का पंवारा, तथा हरफूल जाट जुलाणीवाला, आदि ।
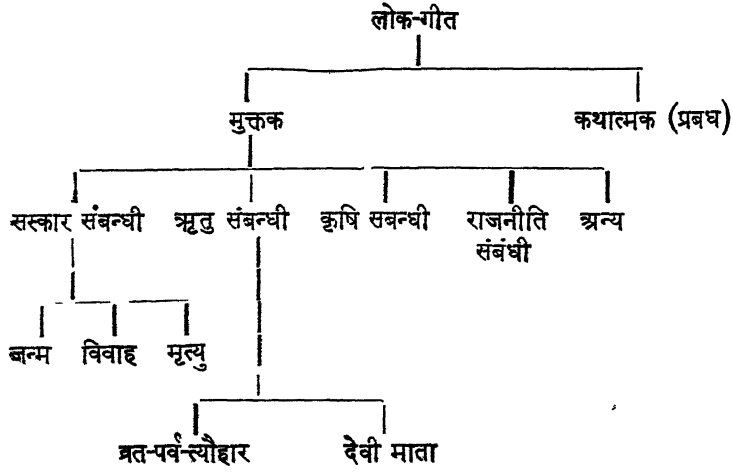
क. संस्कार संबंधी गीत

जन्म के गीत

यों तो बच्चे के जन्म से पहिले भी कई संस्कार—गर्भाधान, पुंसवन एव सीमन्तोन्नयन का शास्त्रों में वर्णन मिलता है पर वे आजकल, प्रचलित नहीं हैं। लोक-गीतों में गर्भावस्था के नौ महीनों का सांगोपांग वर्णन आता है जिनमे गर्भिणी की अवस्था, दोहद आदि की चर्चा होती है। समाज में उन्हीं स्त्रियों का मान होता है जो आशावती एव गर्भवती हो सकने की सामर्थ्य रखती हैं। इस प्रक्रिया में उन्हें वर्णनातीत यंत्रणा सहनी पड़ती है परन्तु माता बनने की प्रसन्नता सब कष्टों को भुला देती है। इसके विपरीत बंध्या स्त्रियो का वह आदर समाज में नहीं होता। उनका स्थान सामाजिक दृष्टि से कोई उच्च एवं शुभ नहीं माना जाता। उनके जीवन में एक उपेक्षा एवं नीरसता रहती है। इस प्रकार स्त्री-जीवन की सफलता ही जननी बनने मे व्यक्त हुई है। इस विवेचन में एक विचित्र बात यह दिखलाई पड़ती है कि कन्या का जन्म हर्ष एवं उल्लासदायक नहीं होता, अपितु कन्या की उत्पत्ति एक भार स्वरूप मानी जाती है। संस्कृत के कवि (पंचतंत्रकार) ने भी पुत्री-जन्म को एक सकट बतलाया है:—

पुत्रीति जाता महती हि चिंता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वानवेति,
कन्या-पितृत्वं खलु नाम कष्टम्। मित्रभेद, कथा ५,
× × × श्लोक २२२

जननीमनोहरति जातवती परिवर्धते सह शुचा सुहृदाम् ।
परसात्कृतापि कुरुले मलिनं दुरतिक्रमा दुहितरो विपदः ॥ श्लोक २४

हरियाना तथा उत्तरी भारत के सभी लोकगीतों में इस अवसर को शुभ नहीं माना जाता । कन्योत्पत्ति पर पिता परदेश चलने की सोचता है । माता का निरादर होता है, न खाने को दिया जाता है । और तो और एक शोक-सा छा जाता है और कोई आनुष्ठानिक कृत्य भी नहीं होता । जहाँ पुत्रोत्पत्ति पर प्रथम १०-१२ दिन आनन्द-उत्साह के दिन होते हैं, गाना-बजाना और आनन्द बधावा होता है वहाँ पुत्री-जन्म पर एक ठेकरा फोड़ दिया जाता है । हरियाने की छोरी ने इसी बात को एक गीत में इसी प्रकार कहा:—

म्हारे जनम में बाजैं ठेकरे भाई के में थाली ।
बुड्ढा की रोवै बुढिया बी रोवै रोएं हाली पाली ।

परिणामस्वरूप लोकगीतों की दुनियां मे जन्म के गीतों में पुत्र जन्म के ही गीत मिलते हैं ।

गर्भिणी की नौ मास की अवस्था तथा दोहद आदि का वर्णन इस गीत में बड़ी खूबी से हुआ है :—

जी पहला मास जै लागिया दूध दही मन जाय,
मेरे अंगणा में अमला बोदिया ।
दूजा मास जै लागिया मेरा निबुआं में मन जाय,
मेरे अंगणा में अमला बोदिया ।
तीजा मास जै लागिया मेरा बेराँ में मन जाय,
मेरे अंगणा में अमला बोदिया ।
चौथा मास जै लागिया मेरा लाडुआं मे मन जाय,
मेरे अंगणा में अमला बोदिया ।
पंचवा मास जै लागिया मेरा खीर पूड़ में मन जाय,
मेरे अंगणा में अमला बोदिया ।
छटा मास जै लागिया मेरा गूंद गिरी मन जाय,
मेरे अंगणा में अमला बोदिया ।
सातवां मास जै लागिया मेरा फलियां मे मन जाय,
मेरे अंगणा मे अमला बोदिया ।
आठवां मास जै लागिया मेरा धाणी[1] में मन जाय,
मेरे अंगणा में अमला बोदिया ।

---

१. धाणी—भुने हुये जौ ।

नौवां मास जै लागिया मेरा होलड़ सबद सुणाय,
मेरे अंगणा मे अमला बोदिया।

गर्भिणी की इच्छा को हरियानी मे 'ओजणा' कहते हैं। इस दोहद (ओजणा) का एक दूसरा गीत है जिसमें गर्भिणी अपने पारिवारिक पुरुषो से—श्वसुरादि से—हरी हरी किशमिश मांगती है, परन्तु वे बात को टाल जाते हैं:—

सुसरै तैं अरज करूं थी मन्नै हरी हरी दाख[1] मंगादयो,
थारी प्यारी कै ओजणा लाग्या।
थम लाडू पेड़ा खाल्यो, हरी हरी दाख नहीं सैं
थारी प्यारी कै ओजणा लाग्या।

इसी प्रकार जेठ-देवर भी क्रमशः दूध मलाई, खीर खाने के लिए कहते हैं। अंत मे पति के दरबार मे 'विनय-पत्रिका' पहुँचती है वहां उस पर अमल होता है—

कन्था तैं अरज करूं थी मन्नै हरी-हरी दाख मंगादयो
थारी प्यारी के ओजणा लाग्या।
सहरां में दाख घणी सैं, तमनै भावैं उतनी खाल्यो,
थारी प्यारी ओजणा लाग्या।

ठीक है इस यंत्रणा का कारण भी तो पतिदेव है उसी को सहानुभूति होनी चाहिए।

इस प्रकार चलते-चलते एक दीर्घ प्रतीक्षा के पीछे वह दिन भी आ पहुँचता है जब आसन्न प्रसवा के गर्भ से पुत्ररत्न का जन्म होता है। ठीक उस समय जब बच्चा होता है 'बे' गाई जाती है। यह 'बेमाता' विधिमाता ही है जो प्रजनन की अधिष्ठात्री देवी है। इस अवसर के गीतों में मातृकाओं से बच्चे की सुरक्षा के लिए प्रार्थना भरी होती है। हरियाना में 'बे' का जो गीत गाया जाता है उसकी प्रमुख पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"वै दीख्या वै दीख्या हरियल रूंखजी, तरपना सी म्हारी माता बे बसैं।
बे भरोस्सै मैं दास कलाल् काजी।"

प्रसव काल में, प्रसूता के लिए विशेष प्रकार के खान-पान का प्रबन्ध किया जाता है। सास 'चरुआ' चढ़ाती है। चरु मिट्टी का छोटा घड़ा अथवा कमोली होती है जिसमे जच्चा के लिए औषध डालकर पानी औटाया जाता है। यह कार्य सासू करती है। सूतिकागृह, जिसे हरियाने में 'स्यावड़' कहते हैं, के द्वार पर अग्नि प्रज्वलित रखी जाती है। घर की बूढली स्त्री बराबर सूतिका-

---

१. दाख—(द्राक्षा) मुनक्का या किशमिश।

गृह की रक्षा करती है जिससे कोई हानिकारक प्रभाव नवजात शिशु पर न होने पाये। इन दिनो स्यावड मे बिल्ली का जाना बड़ा निषिद्ध माना जाता है। विश्वास है कि बिल्ली बच्चे की आंखे निकाल लेती है। बिल्ली के रूप में शिशु को यमराज छू जाता है, यह विश्वास भी कहीं-कही प्रचलित है।

पुत्र उत्पन्न होने पर घर-बाहर सर्वत्र एक आनन्द की लहर दौड़ जाती है। गीतो के निर्झर फूट पड़ते हैं। स्त्रियों के श्रुतिमधुर स्वर चाव भरे गीत गा-गाकर नवागंतुक का स्वागत करते हैं। इस अवसर के गीतों के प्रमुख गीत 'स्यावड के गीत' जिन्हे हरियाने में 'दाई, बिहाई अथवा होलड़' नाम से अभिहित किया जाता है, गाये जाते हैं। इन गीतों का भावपट पुत्रकामना, पीडा, विविध नेग, माता की अभिलाषा और आनन्दबधावा आदि से निर्मित होता है।

कामना :—भारतीय ललना की पुत्रोत्पत्ति की साध उसकी श्रद्धासमविन्त कामनाओं का सुखद परिणाम है। इस अवसर पर रमणीय गीतों को सुना-सुनाकर स्त्रियाँ जच्चा का मनोरंजन किया करती हैं। कामना गीतो में कई गीत हमे मिले हैं। एक गीत मे 'सत्ययुग की रानी' माता शीतला से पुत्रेहा की गई है:—

जैरी माता तू सतजुग की कहिए राणी, रसते मे बाग लुगाया माता सतजुगकी।
पाछा तो फिरके देखो रे लोगो आम्ब अर नीबू झड़न लागे माता सतजुग की।
माता के राह मे बांझ पुकारे माता देहरी पुत्तर घरजांए माता सतजुग की।
पाछा तो फिर के देखो रे लोगो पुत्तर खिलांदी घरजाएं माता सतजुग की।

कितनी आशुतोष हैं शीतला माता, यह इस गीत मे व्यक्त है।

एक दूसरे गीत मे, एक स्त्री सन्तान के दुःख से दुःखी है। जब उसकी सखिया पूछती हैं कि क्या उसे सास का दुःख है अथवा वह प्रोषितपतिका है। तो वह उत्तर देती है कि उसे कुछ भी दुःख नहीं है, केवल 'कुखी का कष्ट' है। भोली सखिया उस नायिका के मर्म को नहीं जान पातीं और प्रस्ताव करती हैं कि वह अपनी बहन के सात पुत्रों में से एक उधारा ले ले। पर पुत्र उधारा कहा मिलता है? वह मर्माहत होकर लुहार से छुरी घड़ाने और अपनी कोख को चीरने की बात सोचती है। वह भुस-भराकर उसमे आग लगा देने के लिए समुद्यत है। किन्तु एक सुदीर्घ प्रतीक्षा के पीछे उसे पुत्र-रत्न के दर्शन होते हैं—

क्या दुःखरी तन्नै सास का, क्या तेरे पिया परदेस।
ना दुःखरी मन्नै सास का, कोए ना मेरे पिया परदेस।

इक दुःखरी मन्नै कोख का, कोए या मेरे मारे सैं मान ।
तेरे री बाहण कै सात पुत्तर, कोए एक उधारा जै लेय ।
सुन्नै री चाँदी मिलैंसें, उधारे, कोई लाल उधारे ना देय ।
गेहूं चावल मिलैंसें उधारे, कोए लाल उधारे ना देय ।
मेरे पिछोकडैं[1] खात्ती का, कोए ल्वाऊं छुरीअ घडवाय ।
चीरू अै फोडूं या कोखनै, या कोए मेरे मारे सैं मान ।
खाल कढा के भुस भराऊँ, कोए भुस मे दिलादयूगी आग ।
बारह बरस में कोख बाहड़ी[2], जनमे सैं अरजन सरजन से लाल ।
सास बुलाऊँ नणद बुलाऊँ, कोए नेग दिलादयूं जी आज ।

यहाँ बध्यात्व के कलंक से छूटने में स्त्री की पुत्र-कामना झलक रही है । बध्यात्व से मुक्ति, फिर यदि पुत्ररत्न के रूप में मिले तो कहना ही क्या है ?

प्रसव-पीडा :—प्रथम प्रसव के अवसर पर गर्भिणी को विशेष पीड़ा व चिता रहती है । पूर्वानुभव के अभाव में ऐसा होना स्वाभाविक ही है । एक गीत में इसी प्रकार की पीडाजन्य चिता का स्पष्टीकरण हुआ है :—

घमड घमड़ आंवैं पीड़ कदीक तै कोई जागेगी ।
जागैगी सास म्हारी वाई तै म्हारे आवैंगी ।।

एक अन्य गीत मे प्रसव की पीडा से व्यथित गर्भिणी अपने पति से पीडा में भाग लेने के लिए कह रही है । पतिदेव मौन साधे बैठे हैं । अतः कोई उत्तर न प्राप्त कर वह घर छोड जाने की धमकी देती है । देवरानी और जिठानी सब हास-परिहास के द्वारा उसे चिढ़ाती हैं । उस समय सास-ननद सांत्वना देती हैं और प्रिय देवर दाई को बुलाकर कष्ट दूर कराता है । इस गीत में देवर को एक अच्छा पारितोषिक भी मिला है । नायिका कृतज्ञतास्वरूप अपनी कनिष्ठ भगनी से देवर का विवाह करायेगी :—

कौड्डी कौड्डी बगड़ बुहारूं दर्द उठा सैं कमर में हो राजीड़ा[3],
इबना रहूंगी तेरे घर में ।
दयौर जिठानी मेरी बोल्ली ठोल्ली मारैं जिबक्यों सोवै थी बगल में हो राजीड़ा,
इबना रहूंगी तेरे घर में ।
सास नणद मेरी धीर बंधावे होत्तं आवैं से जगत मे, हो राजीड़ा,
इबना रहूंगी तेरे घर में ।

---

१ घर के पीछे । २ लौटी; सफल हुई । ३ राजा तात्पर्य पतिदेव से है ।

छोट्टा देवर खरा रसीला दाई नै बुलावै इक छन में, हो राजीड़ा,
इबना रहूंगी तेरे घर में।
छोट्टा देवर नै बाहण विवाहादयूं, दाई बुलाई इक छनमें, हो राजीडा,
इबना रहूंगी तेरे घर में।

एक अन्य गीत है। आसन्न प्रसवा को दर्द है। पति ने उसके कष्ट मे कोई हाथ नहीं बटाया और न कोई सहानुभूति ही प्रदर्शित की है। प्रसव के उपरांत पति को पजीरी[1] खाने का लालच होता है। वह साझे की पंजीरियां खाने का प्रस्ताव करता है परन्तु पत्नी का उत्तर बड़ा तथ्यपूर्ण एवं स्पष्ट है :—

मेरे उठे थी पीड तन्ने आवैथी नींद ठोस्सा[2] खाले,
ना दयू ना दयूं पंजीरियां।
मेरे उठै था गुस्सा तेरा बाजै था हुका ठोस्सा खाले,
ना दयूं ना दयू पजीरियां।

हरियानी पति की क्रूरता का मीठा परिहास है। ब्रजबाला का पति तो एक मीठी सहानुभूति प्रकट करता हुआ अपनी प्रेयसी का मन रख लेता है :—

गोरी छप्परु होइ उठाऊं, जने दस लाऊं, भैया दस लाऊं।
गोरी जे करतार गठरिया, सखिन बिचखोलौ,
जाय रामु छुडावैं, जाय कृष्ण छुड़ावैं[3]।

जच्चा को उत्कट पीडा है। बच्चा हो नहीं रहा है। इस अवसर पर कृष्ण-जन्म का बड़ा सुन्दर गीत है जिसमे बच्चा अपना भय प्रकट करता है। उसे आश्वासन दिलाया जाता है कि सूत का पलग देंगे, मखमल का गद्दा बिछायेंगे और प्यारा कृष्ण कह पुकारेंगे :—

मैं पड़ीसू वीर कों कैद लाल मेरी कैद छुटाओ जी महाराज।
मा मैं क्यूंकर जन्म जे ल्यूं ?

टुट्टी खटड़िया फटी गुदड़िया, छोरड़ा[4] कह कै बोलो जी महाराज।
जो लाला थम जनम जे ल्यो, सूत्तों के पलका मखमल के गद्दा,
किरसन कह कै बोलें हर कह कै बोले जी महाराज।
आधी सी रात अर खुले हैं किवाड पहरेदार सोये जी महाराज।

---

१ जच्चा का पौष्टिक भोजन। २. अंगूठा जो ताने के रूप में दिया जाता है। ३. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ १३०। ४. छोटा लड़का

इसी प्रकार का प्रसंग गूगा के जन्म के विषय मे भी आता है। मां बाच्छल को बारह महीने का गर्भ हो गया है। बच्चा उत्पन्न नहीं होता। गूगा गर्भ से कहता है कि मै ननसाल मे कदापि जन्म नही लूगा। मुझे कलंक लगेगा। जेवर बाछल को अपने यहाँ मंगा लेता है और गूगा का जन्म होता है।

प्रसवकाल के अवसर पर हरियाना मे 'दाई' नाम का एक प्रसिद्ध गीत गाया जाता है। गीत लम्बा है। स्त्री को पीड़ा है। वह अपने राजा को, जो चौपड़ खेल रहा है, बुलवाती है और दाई के पास भेजती है। वर्षा हो रही है। पतिदेव घोडे पर चढ़ दाई बुलाने जाते हैं। दाई शर्त रखती है:—

राजा जी जे थारै जन्मैगा पूत मोहर हम पचास लेवां—हां जी हां।
जे थारै जनमेगी धीए, ओढां हम चुंदडियां—हां जी हां।

इसी बीच होलड़ जन्म ले चुका है। दाई आती है और अपना नेग मांगती है:—

राजाजी, कौल बचन करलो जी याद, मोहर पचास हम लेवां—हां जी हां।

दाई आग्रह करती है तो उसे कैसे धता बताई गई है:—

दाईए! पूत जनमा हमारी नार, तेरा दाई क्यारे ल ा—हां जी हां।

पर दाई भी उत्तर देने में चूक नहीं करती:—

राजाजी! दोए बरस की सै बात दाई कै पैरां फेर पड़ो—हां जी हां।

दाई को बुलाकर लाते समय राजाजी ने अपनी छतरी से वर्षा को रोका था। अब चलते समय दाई उसी अनुग्रह की प्रार्थना करती है तो उत्तर मिलता है:—

दाईए! छिन्न-भिन्न बरसैं मेह, ओढो थारी[1] घाघरी—हां जी हां।

अंधेरी रात है, बादल छा रहे हैं। दाई की इच्छा है कि उसके घर तक पहुँचा दिया जाये। परन्तु स्वार्थी पुरुष कितना निर्मम है:—

राजाजी! मेह अधेरों[2] ड़ी रात
चतर दाई कैसे चले—हां जी हां।
दाईए! काली कुत्ती दोए गेलकरां—हां जी हां।

---

१ अपनी। २. अंधेरों बनी हुई।

प्रसूता की कारुणिक स्थिति में भी संग की सहेलियां उपहास करने से नहीं चूकतीं। उपहास के बोल लीजिए:—

जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरै,
हांडी सा पेट घुमाती फिरै।
दाई आवै होलड़ जनावै उसको भी नेग दिलाती फिरै,
जच्चा हाय मैय्या हाय दैय्या करती फिरै।

पुत्ररत्न की उत्पत्ति पर हरियाना का गृहपति बडा खर्च करता है। इन पंक्तियो मे इसी प्रवृत्ति की ओर सकेत किया गया है:—

कहियो कहियो री होलड़ के दादा नै,
ज्योड़ा री जकोड्या आज खर्चै,
म्हारे बाज रह्या थाल हुया नंदलाल,
हुया नंदलाल अर मुंसी सूबेदार ।।'

पुत्र-जन्म के पीछे कई प्रकार के आचार होते हैं और उनके साथ-साथ नेगों की झड़ी लग जाती है। यों तो नेग नाई, ब्राह्मण और दाई से लेकर देवरानी, जिठानी और सास तक सबको ही दिये जाते हैं पर नेग के गीतों में ननद को दिये जाने वाले नेगो का ही मुख्य वर्णन आया है। इससे पूर्व कि हम नेग के गीतो का विस्तृत वर्णन करें यह भी देख लेना अनुपयुक्त न होगा कि ये नेग किस उपलक्ष्य में किस-किसको दिये जाते हैं। गर्भिणी की सेवा-सुश्रूषा के लिए परिवार के सभी लोग उद्यत रहते हैं। यदि सास चरुवा चढ़ाती है तो जिठानी पलंग बिछाती है। द्योरानी परदा लगा रही है तो जच्चा के स्तनों को धोकर शिशु के पीने योग्य करने के लिए ननद अपनी सेवाएँ अर्पित करती है। सबको कुछ न कुछ उपहारस्वरूप दिया जाता है। मगर प्यारी नणदल[1] के लिए तो पहिले से ही बदनी हुई होती है। वह खूब झगड़-झगडकर नेग लेती है। जब 'बदनी' की वस्तुओ के मिलने मे देरी होती है तो वह हठ भी करती है। अधिकतर हरियानी नेग गीतो मे ननद ने अभिलषित वस्तुएं प्राप्त तो कर ली हैं परन्तु वे उसे बडी मँहगी पडी हैं। ननद-भावज का वह सौहार्द जो प्रसव से पूर्व था, अब नहीं रहा है। कहीं-कहीं तो ननद को अपमान भी सहना पड़ा है। एक गीत मे परिवार के सभी लोगों के जच्चा के प्रति कर्त्तव्य एवं उस उपलक्ष्य मे मिलनेवाले नेगों का वर्णन हुआ है:—

---

१. ननद

दाई आवै होलड़ जनावै वानै बी नेग दिवावती फिरै ।
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरै ।
सासड़ आवै सथिया धरावै वानै बी नेग दिवावती फिरै,
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरै ।
जिठानी आवै पलंगा बिछावै वानै बी नेग दिवावती फिरै,
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरै ।
दौरानी आवै दीवा बलावै वानै बी नेग दिवावती फिरै ।
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरै ।
नणदल आवै दुद्धी धुलावै वानै बी नेग दिवावतो फिरै,
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरै ।
पड़ौसन आवै गीत गवावै वानै बी नेग दिवावती फिरै ।
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरै ।

किसी-किसी स्थान पर इन कर्त्तव्यों मे भिन्नता भी मिलती है । सास का प्रधान कर्त्तव्य 'चरुवा चढ़ाना' है । एक दूसरे स्थान पर ननद का कर्त्तव्य साथिया लगाने का बतलाया गया है । द्योरानी को परदा लगाने का नेग मिलता है ।

भावज ने पुत्रेहा मे ननद को कई वस्तुएं देने की प्रतिज्ञा की है । कान की बाली से लेकर 'डिव्वे की तीवल'[१], गले का कठला, कंगनवा[२], फूलगजरा फूलडडिया, गले की तिलड़ी और टिकावलहार तक देने की बदन[3] हो गयी है । एक स्थान पर यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि पुत्री होगी तो ननद को कुछ नहीं मिलेगा । परन्तु भावज के सौभाग्य एवं ननद की शुभाकांक्षा से यथाकाल पुत्र जन्म लेता है । भावज के मन में भेद उत्पन्न हो गया है । वह चाहती है कि अच्छा हो ननद को पुत्र जन्म का पता ही न लगे । अतः वह संग की सुहेलियों एवं पाड़[४] पड़ोसिनों को 'बिहाई' गाने से रोकती हैं :—

सुणोरी म्हारी पाड़पडोसन, सुणोरी म्हारी दौर जिठानी ।
नणदी तै कोए मत कहियो आज म्हारे होलड़िया हुए ।

वह ढोलिया से भी कहती है कि वह ढोल न बजाये, पर बात छिपनेवाली

---

१. मूल्यवान् लंहगा । २. आभूषण विशेष । ३. प्रतिज्ञा, ४. पड़ोस की स्त्रियों को ।

कहां है ? अब, ननद भावज को उसकी प्रतिज्ञा की स्मृति कराती है। भावज अपने वचनों से मुकर जाना चाहती है। वह अनुदार भी बन गयी है :—

पड़छायां की छां नणदभावज दोन्नों बतलावै
हीराबंद चूंदड़ी जे।
जे म्हारी नणदी धी जणांगे, री बाई न्यू आई न्यू ए जा,
हीराबद चूदड़ी जे।
जे म्हारी नणदी पूत जणांगे, री बाई, द्यांगे टिकावलहार,
हीराबंद चूंदड़ी जे।
ये नौए दस मास नणदी, होलड सबद सुणाए,
हीराबंद चूदड़ी जे।

गायां मे आच्छा बैडा नणद री,
जि सायबा, म्हारी बाई नै द्यो,
गऊ री बैड़ा म्हारे घरीं घणेरा,
जो वचन भरया सोई द्यो।
ओच्छी, ल्यांगे टिकावलहार, ल्यांगे टिकावलहार,
हीराबंद चूंदडी जे।
म्हैंसां मे आच्छी फोटी नणदरी,
जिसायबा, म्हारी बाई जीनै द्यो।

इसी प्रकार नणद को एक बच्छेरा, 'टूमां में आच्छी हंसली 'और' मोहरां में आच्छा रुपया' देने का प्रलोभन दिया जाता है। परन्तु ननद इन वस्तुओं को नही लेना चाहती। वह तो वचन-भरी वस्तु ही लेगी। इस हठ के कारण ननद को एक अच्छी खासी धमकी सहनी पड़ी है :—

म्हारै री आंगण कैरको खूटो उसकै रेसम डोर।
नणद नणदेऊ कस कै बाधू, ढीला बाई जीरोबीर।
हीराबद चूदडी जे।

बेचारी नणद आधी रात निशीथ बेला मे घर से भाग जाती है। 'लीली का अस्वार' भाई उसे सात्वना देकर वापिस ले आता है :—

'ऐ बेबे जो कौल करया सोई ल्यो।

परन्तु भाभी का क्रोध अभी शात नही हुआ :—

हार टिकावल लेजा नणदी,
फेर मत आइये म्हारे बार जी—हीराबंद चूदडी जे।

इस समय बहन का आत्माभिमान सजग हो जाता है और वह सहोदर के स्नेहाचल को पकड कर कह उठती है :—

आवां री जावां अपणा बीर कै
थारै ढगरां[1] पै मारै लात री—हीराबंद चूदडी जे ।

एक दूसरे गीत मे भावज ने पुत्र होने पर ननद को गले की तिलड़ी देने के लिए वचन दिया है :—

बेब्बे जै हम होलड़ जनांगी द्यांगी गले की तिलड़ी,
ओहो मन रजना ।

ननद के कथनानुसार पुत्र उत्पन्न होता है । ननद भाभी से गले की तिलड़ी मांगती है; परन्तु भावज के निर्भय वचन हैं :—

बेब्बे तिलडी कहां से ल्याऊं,
ले जाओ न भतीजा उठाय—ओहो मन रजना ।

ग्लानि की कैसी अभिव्यंजना हुई है ? परन्तु गीत की नणद बड़ी चतुर है । उसने वह उपहार स्वीकार कर लिया :—

बा तो लेगी भतीजा ए ठाय—ओ हो मन रजना ।

भावज का मातृहृदय परास्त हो गया है :—

उमड़ उमड़ जिया आवे—ओहो मन रजना ।
बेब्बे दोए म्हारा हुलड़वा,
ले जाओ गले की तिलडी—ओहो मन रजना ।

परन्तु यह पराजय अधिक काल तक नही रही है । कुछ दिन पीछे ननद अपने घर जाती है । उसने अन्य आभूषणों के साथ वह तिलड़ी भी पहनी हुई है । चलते समय भावज से गले मिलना एक आवश्यकीय आचार है । भावज को अवसर की तलाश थी । उसने गले की तिलड़ी तोड़ ली है । उसने ननद से तिलड़ी ही नहीं ली इसके साथ कुछ व्याज भी लिया है :—

भावज राणी नै मिलन संजोया, ओहो मन रजना ।
गले मिलती की तोड़ली तिलड़ी, ओहो मन रजना ।
पांव पडती को काढ़ली पाजेब, ओहो मन रजना ।

भावज पाजेब लेकर प्रसन्न है । वह अपनी चतुराई भरी विजय की बात पतिदेव के सामने कहती है :—

---

१. कूल्हे पर ।

राजीड़ा, देखो म्हारी चतराई, ओहो मन रजना।
मैं तै दोन्नो काम कर ल्याई, ओहो मन रजना।

परन्तु भावज की विजय क्षणिक रही है। उसके गर्व मृगशावक को एक तीक्ष्ण व्यंग्यवाण आहत कर देता है और यह नाटकीय दृश्य इस प्रकार समाप्त होता है :—

गोरी देखी तेरी चतराई, ओहो मन रजना।
तेरे पीहर मे ऐसी होती आई, ओहो मन रजना।

एक अन्य गीत मे ननद ने 'फूलडड़िया' मांगा है। ननद को वांछित वस्तु तो मिल गयी परन्तु उसे एक तीव्र अवमानना भी सहनी पड़ी :—

हठीली नणद हठमतमांड[1] या ले फूल डंडिया,
फेरमत आइए मेरे बार।

एक दूसरे गीत में नणद ने हठ की है। भावज उसकी हठ से खिन्न होकर कह गई है :—

जै मैं ऐसी जाणू नणद हटोड़ी होगी,
नणदल के वीरा सेत्ती कदीए न सोत्ती।
जिब सोत्ती जिब करवट लेती,
नैणा तै नैणा लगण ना देती,
छाती तै छाती भिड़न ना देती।

दूसरी ओर हरियाना के नेग गीतों में जहाँ ननद की साध पूरी कर दी गयी है वहा वह भाई को शुभाशीः देने में भी किसी से पीछे नहीं रही है :—

रे तेरे दूधी[2] वधियो बेल
बीर! मुन्नै[3] राजी कर दई रे।

नेग के इन गीतो के पीछे साधारण नेग के गीत भी कुछ मिलते हैं जिनका वर्ण्य-विषय इतना रोचक एवं भव्य नही है। एक गीत में गितनियो (गीतगाने वालियो) के नेग की बात आई है :—

मैं आई थी मीठियां की लालच,
फीकी दे भुलादई।
मैं आई थी गेहुआं की खात्तर[4]।
बाजरा की दे भुलादई।

---

१. करना, ज़िद करना। २. दूध से। ३. मुझको। ४. लिए, कारण से।

मैं आई थी वणियां की खात्तर,
दो दो दे भुलादई।

गीतगानेवाली अगड़ पड़ोस की स्त्रियो का कैसा उपालभ है? दो-दो मे कृपणता का एक तीखा व्यंग्य है।

इसी आनद मे अभिलाषा का भी स्थान है :—

वा घड़ी सुभ दिन जाणूंगी
मेरारी होलड़िया अपणा दादा कै घर जावैगा।
दादा कै घर जावैगा रे, दादी हंसहंस लाड़ लड़ावैगी।

इस गीत मे माता की अभिलाषा का सजीव चित्रण हुआ है।

पुत्र-जन्म के इस आनन्द उत्साहभरे समय मे बधावे की बहार भी गाई जाती है। एक बधावा गीत में कहा गया है कि आगन मे बाजे बज रहे हैं, भात की चर्चा है, 'पीला' ओढ़ा जा रहा है आदि-आदि। इस आशय का गीत निम्नाकित है। गीत कुछ बड़ा है। गीत की भाषा ठेठ हरियानी है। समूचा वातावरण भी हरियाने का है :—

म्हारे आंगण बाज्जा बाजियो जी म्हारा राज।
मैं तै नित उठ लिप्पां आंगणों,
किण मोस्सर[1] लिप्पां पछली[2] पछीत,
बधावा म्हे सुणूयो जी म्हारा राज।
म्हें तो नित उठ रांधां खीचड़ो जी,
किण मोस्सर ओ साएबा जिन्दवा का भात,
बधावा म्हें सुणूयो जी म्हारा राज।

❀ ❀ ❀

म्हे तो नित उठ ओड्ढां चूँदड़ी जी,
किण मोस्सर ओ साएबा पीला का भेस,
बधावा म्हें सुणूयो जी म्हारा राज।

'स्यावड़' के गीतों का यह एक सूक्ष्म-सा वर्णन है। पुत्र-जन्म के इन गीतों में आनन्द और उल्लास का वर्णन होना स्वाभाविक ही है। इनके अन्तर्गत जच्चा के हृदय को विभोर कर देनेवाले भाव लबालब भरे होते हैं।

आनंद उत्साह का यह क्रम पांच दिन तक चलता रहता है। छठे दिन छठी का संस्कार होता है। जन्म के संस्कारों में यह एक प्रमुख सस्कार है।

---

१. कारण से। २ पिछली दीवार।

उस दिन जच्चा और बच्चा स्नान करते हैं। घर लीपा-पोता जाता है और प्रातःकाल मीठा दलिया बांटा जाता है। देवर उसी दिन जच्चा को प्रसूतिका-गृह से बाहर निकालता है। इसके लिए उसे नेग मिलता है। इस सस्कार के पीछे और लोग भी प्रसूता और नवजात शिशु के पास आ जा सकते हैं। इससे पहले अपवित्रता मानी जाती है। यह विश्वास है कि छठी की रात को 'बेमाता' नवजात शिशु का भाग्य लिखती है। उस रात को जच्चा और बच्चा की बड़ी सावधानी रखी जाती है। रात्रि भर जागरण होता है।

दसवें दिन नवागतुक को उपयुक्त सामग्री भेंट की जाती है। खात्ती उसे गड्डलना लाता है, कुम्हार स्नान के लिए नाद, तो लुहारिन पेंजनी भेंट करती है। डूम बशावली गाता है और चमार तगड़ी प्रदान करता है। नाई दूब लाकर पुत्र और पिता के सिर पर रखता है। इससे यह कामना की जाती है कि उनका वंश दूर्वा घास की भांति बढ़े।

नवजात शिशु के स्वागतार्थ कैसा सुन्दर आचार व्यवहृत होता है? सभी उसे सम्मान, सहायता और सहानुभूति प्रदान करते हैं।

छठी के दिन प्रसूतिका-गृह के द्वार के दोनों कौलो पर सातिये मांडे (सातिये रखे) जाते हैं। यह कार्य सास करती है। कहीं-कहीं नणद भी करती है और उन्हें नेग मिलता है। दई-देवताओ के गीतो के पीछे 'बिहाई' गाई जाती है। छठी के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत निम्नाकित है :—

बड़ए बगड़तै[1] सती राणी नीसरी,[2] भर गोबर की हेल[3]।
गोबर छिड़का भोली राणी भोंपड़ी,[4] धरती में हुवाए लिपाव।
बड़ए बगड़तै सती राणी नीसरी, भर गीव्हां[5] की हेल।
गीह्व छिड़का भोली राणी भोंपडी, धरती मे राख्यो ए बीज।
बडए बगडतै सती राणो नीसरी, भर लोटा जल नीर।
गडवा तो छिटको भोंपड़ी, धरती हुयाए सिलाव।

❀ ❀ ❀

इन रे गाना के बीरा गोरवे[7] लम्बी-लम्बी ए खजूर।
जे चढ सती राणी सतलियो सुरग नेडै घर दूर।
मेरा बीरा ए बीरा ढोलिया गहरा ढोल बजाय।
पीहर सुणियो बीरा सास रै लाडलडी[8] नणसाल।
उतका तो ल्यावैं बीरा चूद्डी, उतका नागर पान।

१. मुहल्ला। २. निकली। ३. टोकरा। ४. भूमि पर गिर पडी। ५. गेहूं। ६. छिड़काव ७. समीप। ८. प्रेमपूर्वक पाली गयी।

ओढ सुहागण रानी चूंदडी, चाब्बो न नागर पान।
सीलै री हुयों सापूतडी, जिन्हे रै लिवाया म्हारा नाम।

इस गीत मे सत्ती देवी की प्रशंसा की गयी है जो बच्चा और जच्चा को आशीर्वाद देती है। सत्ती देवी (छठी देवी) के स्वागतार्थ गोबर से स्थान लीपा जाता है। उस पर अनाज के दाने छिडके जाते हैं और पानी से छिड़काव किया जाता है। फिर सत्ती रानी ऊँचे खजूर पर से उपासको को शुभाशीः देती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि सत्ती रानी भाग्य निर्मातृ देवी है।

छठी के गीत कोई अलग नहीं हैं। सभी विहाइयां, दाइयां एवं होलड़ इसके विषय हैं। इस दिन के गीतो में एक गीत विशेष देखने योग्य है। इस गीत मे बच्चे की तात्कालिक इच्छाओ की मांग तथा उसकी पूर्ति की बात कही गयी है :—

जनम लिया नन्दलाल लाला मेरा घूंटी मांगे जी राज।
एक घूंटी दूजी चूंची तीजी रे तेरा धाय लगादयां जी राज।
जनम लिया नन्दलाल लाला मेरा घूंटी मांगे जी राज।

गीत की अंतिम पंक्तियों में ननसाल के लोगों पर हास-परिहास के छींटे भी आये हैं :—

चल नाना कै दरबार लाला तन्नै बनड़ी विह्वाद्यां जी राज।
एक नानी दूजी मामी तीजी तन्नै मौंस्सी विह्वाद्यां जी राज॥

छठी के दिन जच्चा के पिता के यहां पुत्रोत्पति की सूचना भेजी जाती है। सूचना के बोल इस प्रकार हैं :—

जीथम सोओ कै जागो म्हारै पीहर द्यो तिल चावली जी।
जीथम कहो तो भेज्जें नाई का पूत नाहीं तो परेवा[1] भेज दूं जी।

कुलवधू को उत्कंठा है। वह यथाशीघ्र पुत्रोत्पत्ति की सूचना दे देना चाहती है :—

जीवा नाई का चलैगा ठुमरी[2] चाल,
परेवा चलैगा तावला जी।

परेवा भेजा जाता है और वह वृत्तांत कह सुनाता है। सर्वप्रथम परस (चौपाल) में बैठे हुए जच्चा के बाप से कहता है :—

जी थारी धीहड़ कै जायो सै लाडलपूत,
बधाई लै घर आइयो।

---

१. कबूतर। २. मंदी।

तदुपरान्त माता, भ्राता और भावज आदि को सूचित करता है। वे सब प्रसन्न होते हैं और संदेशावाहक का सम्मान करते हैं :—

जी थारे दूध पखालें परेवा पांव,
चौकी चावल थमनै बैठणा जी।

भाई अपनी बहन के लिए छूछक तैयार करता है।

जन्म के गीतो में एक गीत खीचड़ी नाम का है। बच्चा पर जच्चा का एकाधिकार है। पति भी इस रत्न में साझा चाहता है। पत्नी ने शर्त रखी है। अमुक-अमुक वस्तुएँ यदि लाकर दी जायें तो होलड़ में साझा मिल सकता है। शर्त की वस्तुएं हैं खिचड़ी (यह जच्चा की दुर्बल अंतड़ियों के लिए लाभकारी वस्तु है), पीला (यह एक विशेष प्रकार का ओढ़ना की जाति का वस्त्र है जिसे प्रथम प्रसव पर, विशेषकर पुत्र-जन्म पर हरियाने की स्त्रियां ओढ़ती हैं), खैर वृक्ष का गूंद, अजमेरी अजवायन, खंडवे की खांड़, सुरभी घृत, खिचडी पकाने के लिए सास तथा खिचड़ी चखने के लिए छोटी ननद आदि। गीत के बोल इस प्रकार हैं :—

हम धनी[1] जी खिचडी की साध,
खिचडी हाल मंगा द्यो जी।
खिचड़ी ए गोरी मायड़[2] भावज पै मांग,
हम पै मेवा मीसरी जी।

❀ ❀ ❀

हम धन जी पीला की साध,
पीला हाल मंगा द्यो जी।
पीला ए गोरी मायड भावज पै मांग,
हम पै नौरंग चूंदड़ी जी।

❀ ❀ ❀

इस विशद शर्तावलि के पीछे पत्नी कथचित् पुत्र में साझा देने की बात सोचती है :—

इतनी जै म्हारी साध पजोय[3] जिद होलड़ म्हें सीरद्यां[4]।

पर भोले पति का उत्तर भी बड़ा मार्मिक है :—

भूली री धण[5] असलगंवार,
होलड़ शारा म्हारा सीर का।

---

१. स्वामी, पति। २. माता। ३. पूरी करना। ४. साझा। ५. पत्नी।

शायद पत्नी को पुत्रोत्पत्ति का रहस्य समझ आ गया है और वह चुप हो गयी है। यह गीत जच्चा के साथ उपहास के गीतो की शैली पर है। उनमे भी इसे स्थान दिया जा सकता है।

जन्म के इन आचारो के पीछे १०वें दिन या जैसी प्रथा हो आगे-पीछे 'स्थावड़' निकाली जाती है। पुरोहित यज्ञ आदि कराता है। नामकरण भी इसी दिन किया जाता है। बच्चा के कठी बाधी जाती है। 'दशोटन' होता है जिसमे विशेषकर प्रथम पुत्र की उत्पत्ति पर कौटुम्बिक भाइयों को भोज दिया जाता है। शुभ मुहूर्त पर दसवे दिन अथवा किसी अन्य दिन जलवा[1] पूजन अथवा 'कुआ धोकण'[2] जिसे कुआ पूजना कहते हैं, होता है। इस अवसर पर पीला ओढ़ना ओढ़ा जाता है जो पुत्रवती स्त्रियो के लिए एक गौरव की वस्तु है। यह पीला जच्चा की माता के यहाँ से 'छूछक' के रूप मे आता है। छूछक में जो भेंट दी जाती है उसमे वस्त्र, आभूषण, मिठाई और कुछ धन होता है। 'कुआ पूजन' के अवसर पर जो गीत गाया जाता है वह गीत पीला के नाम से विख्यात है। गीत कुछ बड़ा है :—

पीला तौ ओढ म्हारी जच्चा सरवर चाली जी,
सारा सहर सराही पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
पीला तो ओढ म्हारी जच्चा मुंडलै बैट्ठी,
सास नणद नै मुखमोड्या पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
के पीला तेरी माय रंगाया
के नणसालां तैं आया, पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
सास्सू का जाया भोली[3] बाई जी का बीरा,
उन म्हारी साध पजोई, पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
आंख्यां ना देक्खै जच्चा मुखड़ै ना बोल्लै जी,
कन रै निरासी नजर लगाई, पति प्यारा जी,
पीला रगा दयो जी।
दिल्ली सरहतैं साहबा बैद बुलादयो जी,
जच्चा की नबज दिखादयोजी, पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।

---

१. जल का स्थान, कुआं। २. पूजन। ३. बहन, ननद।

झाड़े तो झाड़े बेदा रोक रुप्पैया जी,
मुख तै बोल्लै मोहर पचीसी जी, पति प्यारा जी,
पीला रंगा द्यो जी।
अपणा चढण का साहबा घुडला बकस्यो जी,
जच्चा के जीव की बधाई, पति प्यारा जी,
पीला रंगा द्यो जी।
तू रे बेदका बेटा बहुत ठगोरिया[1] जी,
भोले हाक्किम[2] नै ठग लिया पति प्यारा जी,
पीला रंगा द्यो जी।

यहा ग्रामीण नायिका दृष्टिदोष (नजर) से हत हुई है। दूर-दूर से वैद्य बुलाये गये हैं। दिल्ली शहर के वैद्य ने अपना महनताना बड़ा कराड़ा लिया है। एक दूसरे गीत में नायिका ने चूँदड़ी ओढी है। उसे नजर लग गई है। देहली से फिर वैद्य बुलाया गया है। इस वैद्य ने अपना पारिश्रमिक विलक्षण ही मागा है। वह न पाच रुपया चाहता है, न पच्चीस। वह चाहता है नायिका का 'यौवन'। उसी यौवन को शुल्क (फीस) में लेने का आग्रह वह करता है :—

पाँच दे दूँगी पचीस दे दूँगी वैद का झाड़ो मेरी नजरिया।
पाँच नही लेता पचीस नहीं लेता
हे गोरड़ी[3] ! मैं तो लूगा 'जोबनिया।'

नायिका अपना बचाव करती हुए एक युक्ति से काम लेती है :—

सास दे दूँगी ननद दे दूँगी,
हो वैद का झाड़ो मेरी नजरिया।
सास नहीं लेता ननद नही लेता,
हे गोरडी ! मैं तो लूगा 'जोबनिया।'

नायिका का यौवन अपूर्व है।

जन्म के अनुष्ठानों एवं तत्सबंधी गीतो का यह एक संक्षिप्त-सा अध्ययन दिया गया है। ये आचार एवं अनुष्ठान सामान्य परिस्थिति में उत्पन्न होने वाले पुत्र के जन्म से सबंधित हैं। जब बच्चा 'मूल' नक्षत्र में जन्म लेता है तो जन्म के आचारों एवं अनुष्ठानों में कुछ अतर आ जाता है। मूल-शांति की

---

१. छलिया, ठग। २. पति, स्वामी। ३. सुन्दरी के लिए प्यारभरा सम्बोधन।

जाती है। मूल की शांति के लिए विभिन्न आचारों का आश्रय लिया जाता है। उनका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जाता है।

मूल में उत्पन्न पुत्र का मुख पिता तब तक नहीं देखता जब तक कि मूल शाति नहीं हो जाती। इसकी शांति के लिए पिता सत्ताईस खेड़ों की कंकडी एकत्र करता है, सत्ताईस कुओं का पानी लाता है और सत्ताईसवें दिन हलकी हलस पर बैठकर उस पानी से स्नान करता है। फिर तेल मे बच्चे की परछाईं देखकर उसके मुख को देखता है। पीछे एक टाटी से जो फूस की गोलकुडलाकार बनाली जाती है, बच्चे को निकाला जाता है। पिता जैघड़ (जलघट) में मूसल मारकर भागता है जो सामने आ जाता है मूल उसी पर चढ़ जाते हैं और पहले के शांत हो जाते हैं।

यह विश्वास है यदि मूल शात नहीं कराये जाते तो बच्चा बहुत ही क्रोधी होता है और उससे अनिष्ट की आशंका रहती है।

विवाह के गीत

विवाह के गीतों का अपना अलग महत्व है। विवाह-संस्कार पर गाये जाने वाले गीतों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। इसमे एक परिवार नहीं अपितु कई परिवारों का आनद सम्मिलित होता है। इस संस्कार मे अनेक आचार शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों प्रकार के सम्पन्न होते हैं। अतः इस अवसर पर अनेक प्रकार के गीतों का प्रचलन पाया जाता है।

विवाह-संस्कार जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। यह इतना व्यापक है कि सभ्य-असभ्य सभी जातियों मे समान रीति से मनाया जाता है। इस उत्सव पर गीत गाने की प्रथा प्रायः ससार के सभी देशों में पाई जाती है। विवाह की धूमधाम महीनो पहले से प्रारंभ हो जाती है। इसका विस्तार देखें तो वर के रोकने से लेकर बधू के सुसराल से पीहर लौट जाने तक होता है। पूरा विवरण इस प्रकार है :—

विवाह संस्कार का आरंभ वर को रोकने से होता है। इस प्रथा के अनुसार वर को और उसके पिता को भेंट दी जाती है। फिर टीका भेजा जाता है जिसमें अंगूठी और कुछ मिठाई वस्त्र आदि होते हैं। इसके पीछे विवाह से एक-दो मास पूर्व पीली चिट्ठी जाती है जिसमे विवाह की तिथि शोध कराकर वर के यहाँ भेज दी जाती है। विवाह से ७, ६, ११ या १५ दिन पूर्व लग्नपत्रिका भेजी जाती है। लग्न चढ़ जाने के पीछे विवाह के कार्य गंभीरता से आरंभ हो जाते हैं। दोनों पक्ष, वर पक्ष व कन्या पक्ष, में विवाह

से पूर्व के विभिन्न कृत्यह लदातबान, उबटण आदि होने लगते हैं। लग्न पत्रिका में ही बान, छेई तथा फेरों आदि का विवरण दिया होता है। लग्न के पीछे किसी दिन वर और कन्या की माता अपने भाई को विवाह का निमंत्रण देने जाती है जिसे भात न्यौतना (भ्रातृ निमंत्रण) कहते हैं। फिर विवाह दिन तक इसी प्रकार आनन्द एवं उत्साह मनाया जाता है। बरात (वरयात्रा) जाने से पहिले वर पक्ष में ज्यौनार होती है। भोज दिया जाता है। उसी दिन मांढ़ारोपा (मंढा गाड़ा) जाता है और भात लिया जाता है। यह एक प्रथा है कि लग्न आने के बाद से लेकर जब तक भात नहीं दे दिया जाता, भातई अपनी बहन के यहाँ नहीं आता। वह भात देकर ही घर जाता है और भोजन करता है। यथासमय, बरात चलती है जिसे निकासी कहते हैं। इस समय कई आचार किये जाते हैं। वर मौड़ बांधकर घोड़े पर चढ़कर देवी-देवताओं की पूजा के लिए चलता है। इसे घुढ़चढ़ी कहते हैं। इस समय वह समस्त ग्राम की परिक्रमा करता है। घुड़चढ़ी पर बहन चावल बखेरती है। मा दुद्‌धी पिलाती है। इन कृत्यों से माता और भगिनी का प्रेम प्रदर्शित किया जाता है। इस समय हरियाना में एक गीत गाया जाता है जो बड़ा ही मार्मिक है। इसी दिन अर्थात् विवाह वाले दिन कन्या-पक्ष मे चाक-पूजन होता है। बरात निश्चित समय पर कन्या के यहाँ पहुँचती है और जाजलवासे (जनवासे) में ठहराई जाती है। वहाँ पर वर एवं बरात का स्वागत होता है। संध्या में ढुकाव (बारौठी) संस्कार होता है। वर घोड़ी पर चढ़कर कन्या के गृहद्वार पर पहुँचता है। यहां पर साली आरता करती है। वर अपनी छड़ी से द्वार पर लगी ३, ५, या ७ चिड़ियों को छुवाता है जिसे तोरण[1] चटकाणा कहते हैं। यह एक युद्धस्थल का प्रतीक है। ऐसा विश्वास है कि एक पिता ने अपनी छोटी-सी कन्या को बात-बात मे चिड़ों से ब्याहने की बात कह दी। कन्या बड़ी हुई। कन्या ने पिता को पुरानी बात स्मरण कराई और आग्रह किया कि यह उन्हीं से विवाह करायेगी। चिड़े भी बरात लेकर आ पहुँचे। निर्णय हुआ कि जो शक्तिशाली हो वही कन्या ले जाये। अतः वर आजतक इन चिड़ियों से लड़ता दिखाया गया है। यह प्रथा हरियाना प्रदेश में प्रायः सभी जातियों में प्रचलित है।

लग्न जाने के पीछे से बरात पहुंचने तक कन्या पक्ष में भी तेलबान आदि नियमानुसार होते हैं।

---

१. तोरण का अर्थ है 'द्वार'। पर इस संस्कार के लिए तोरण से अभिप्राय लिया जाता है—द्वार पर लगी एक काठ की टिकटी जिस पर ३, ५ या ७ काठ की चिड़ियाएँ लगी होती हैं। इनको गेरू से रंग दिया जाता है।

ढुकाव के पीछे प्रधान संस्कार 'फेरो' की बारी आती है। यह सस्कार पौरोहित्य सस्कार है और पुरोहित ही शास्त्रोक्त विधि से इसे सम्पादित कराता है। परन्तु लौकिक संस्कार भी होते चलते हैं। महिलाएँ अवसरोचित गीत गा-गाकर उस सस्कार प्रक्रिया को अधिक रोचक, मार्मिक एव कारुणिक बना देती हैं। सभवतः जब से महिलाओं का वेद-पठन-पाठन छूट गया था तभी से उसकी (छदस की) पूर्ति उन्होने अपने सुरीले गीतों से की। परन्तु गीतो की प्रथा तो और भी पुरानी प्रतीत होती है। निस्सदेह, यह उतनी ही पुरानी है जितनी विवाह-सस्था। ठीक भी है, आनन्दातिरेक मे हृदय जब खिलता है वह गीतों की भाषा का रूप ले लेता है। फेरों के पीछे वर को 'देवघर' मे ले जाते हैं। दई-देवताओं का पूजन कराया जाता है। वर को भेंट मिलती है। दूसरे दिन ही बढ़ार का दिन होता है। उस दिन कोई विशेष आचार नहीं होते। तीसरे दिन अथवा दूसरे दिन ही जैसी प्रथा हो, बरात कन्या को साथ ले वापिस जाती है। उस दिन भी कई आचार होते हैं। वर को घर बुलाकर टीका किया जाता है। बंद खुलाया जाता है। वह भट्टी में पैर मारकर एक ईंट गिरा देता है। इसके पीछे वह भट्टी काम में नहीं लाई जाती।

बरात जब कन्या को साथ लेकर वर के यहॉ पहुँचती है तो वधू का स्वागत किया जाता है। बन्नी से वर के दई-देवता पुजवाए जाते हैं। अगले दिन गठजोडे से वर-बरनी दोनो फिर ग्राम-देवताओ को पूजते हैं और छंटी खेलते हैं। इन्हीं दिनों 'कागण जूआ' खेला जाता है। तीन दिन बन्नी अपनी ससुराल में रहती है। इसके पीछे बरनी वर के साथ अपनी माता के यहॉ लौटती है। एक दिन के पश्चात् दोनों वापिस चले जाते हैं। इसे गौना कहते हैं।

इस समस्त आचार को लोकवार्ता-तत्वों के विचार से इस प्रकार दिया जा सकता है :—

सगाई (टीका) :—१. चौक पूरा जाता है। एक कलसा पानी भर के रखा जाता है। वह उस चौक पर सीदा रखता है जिसे नाइन लेती है।

२. टीका में जो सामग्री मिलती है वर उसे अपनी मां की गोद में देता है।

३. गीत गाया जाता है :—

सुइयां सार की तागा पाट[1] का पोया,
पोता टीकिया[2] दादा ढल्लुराम का कहिए।
सुइयां सार की तागा पाट का पोया,

१. रेशम। २. टीकिया, जिसका टीका चढ़ाया जा रहा है। विशेषण है पोते का।

इस गीत को बढ़ाकर गाने के लिए स्त्रियाँ दादा के स्थान पर काका, ताऊ, भाई शब्द लगाकर कई-कई बार गाती हैं।

लगन

लग्न के आचार एवं अनुष्ठान दो रूपों में मिलते हैं—कन्या पक्ष के तथा वर-पक्ष के। लग्न कन्या के पिता द्वारा भेजी जाती है, अतः कन्या-पक्ष के आचार मुख्य होते हैं।

कन्या-पक्ष—१. कन्या का सिर धुलाया जाता है। आभूषण प्रायः सब उतार लिए जाते हैं। केश खुले रखे जाते हैं। विदा समय ही 'वेणी संहार' होता है।

२. लग्न-पत्रिका जिसे पंडित या पुरोहित लिखता है, उसमें २ सुपारी, हरी दूब, ५ या ७ हल्दी की गाठ और चावल होते हैं। साथ में दो पैसे भी रखे जाते हैं। इस लग्न-पत्रिका को कन्या की गोद मे रखा जाता है। वह इस पत्रिका को अपनी मा अथवा बूआ को लाकर देती है।

३. प्रायः हसने के लिए निषेध होता है। हंसना अपशकुन माना जाता है। ऐसा विश्वास है यदि लग्न पर कन्या हंसेगी तो अकाल पड़ेगा।

४. गीत गाये जाते हैं। इस समय के गीतों में दई-देवताओ के गीत आरंभ में गाये जाते हैं। एक गीत भूमिया का यह गाया जाता है :—

ऊँची तेरी खाई ऊँचा-नीचा कोट,
ढाणा[1] बसै बाबा भूमिया की ओट।
काहे का दिवला काहे की बात,
काहे का घी बलै सारी रात।
अगड़ चंदन का दिवला निर्मल बात,
सुरही को घी बलै सारी रात।
तेरी बाबा भोमिया उत्तम जात,
तू जन्मो छुट्ट[2] चौदस की रात।
बेटियां को बाबा माइयर बाप,
बहुआं को सै बाबा रिछपाल[3]।

वर-पक्ष—१. लडका को चौकी पर बैठाया जाता है। पडित मन्त्रोच्चारण के साथ लग्न-पत्रिका को लड़के की गोद मे देता है। वह इसे अपने दादा जी

१. ग्राम विशेष। २. ठेठ, ठीक। ३. रिछपाल (रक्षपाल), स्त्री-मर्यादा रखनेवाला।

को दे देता है। फिर पंडित उसे खोलकर पढ़ता है और सब पञ्चों को सुना देता है। तेल, बान, फेरे आदि का कार्यक्रम इसमे लिखा होता है। उसी के अनुसार कार्य होते हैं।

२. इस अवसर पर भी गीत गाये जाते हैं। उनका प्रारंभ भी देव-विषयक गीतों से होता है। एक गीत यह गाया जाता है :—

काहे की तेरी ओबरी[1], काहे का जडाए किवाड़,
सच्चा हनुमान बली।
अगड़[2] चंदन की ओबरी, चन्दन जडाए किवाड़,
सच्चा हनुमान बली।
केरै चढ़ै तेरै देहरै, केरै तुम्हारो भेंट,
सच्चा हनुमान बली।
सवाए तो मण को रोट सै, सवाए रपय्या की भेंट,
सच्चा हनुमान बली।
बैरोड़ा[3] तो मारकै दफै करो, छारा कै सिर सै जीत,
सच्चा हनुमान बली।

भात न्यौतना

१. बहन-बहनोई भात का निमंत्रण देने जाते हैं। साथ मे एक गुड की भेली, चावल और एक रुपया जाता है। इस सामग्री के साथ बहन चलती है। साथ में दौरानी-जिठानी भी जाती हैं।

२. घर से चलते समय गीत गाती हैं :—

कोरो घड़ियों बीरा पीली हल्दी नौतण आई भातई।
मेरे घर अइये बीरा मेरा माका जाया मेरे घर बिरद[4] उपाइये।
क्योंकर आऊं मेरी माकी जाई ढैर[5] खडी मेरी लावणी[6]।
ढैर जै बीरा मजूर खंदादे गाड़ी लगा दे ढोवणी।
मेरा घर अइये.................. ......बिरद उपाइये।
क्यूंकर आऊं मेरी जामण[7] जाई मेरे घर बालक रोवणा।

---

१. अटारी के रूप में बनाया गया छप्पर। २. अगरु, एक सुगंधित पदार्थ। ३. शत्रु। ४. प्रशंसा। ५. डहर, नीची कड़ी भूमि जिसमें फसल बहुत अच्छी होती है। ६. पकीं फसल। ७. जन्मदाता (पिता) की पुत्री अर्थात् सहोदया बहन।

बालक रै बीरा धाय लगा दूं पलणा[1] घालूं बीरा झूलणा ।
आती जाती बीरा झोटा लगा दूँ मेरे घर अइये बिरद उपावणी ।
मेरे घर अइये बीरा मेरा माका जाया मेरे घर बिरद उपाइये ।
क्यूंकर आऊं मेरी माकी जाई मेरे घर नार सुलाखनी[2] ।
अपणा वीरा नै चारए विह्वादयूं दो गोरी दो सांवली ।
सांवली तो बीरा तपै रसोई गोरी ढोलै बीजणा ।
मेरे घर अइये बीरा मेरा माका जाया मेरे घर बिरद उपाइये ।

३. बहन संग की अन्य महिलाओं के साथ भाई के ग्राम में पहुँचती है । उधर से स्त्रियाँ जलपूर्ण कलश लेकर स्वागत के लिए आती हैं ।

४. बहन अपने भाई के घर पहुँचती हुई यह गीत गाती है :—

क्यां तै[3] नूंतूं बाबल राजा,
क्यां तै नूंतूं काका ताऊ,
क्यां तै नूंतूं जाम्मण जाया वीर, जिसतै मैं ऊजली[4] ।
मेली नूंतूं बाबल राजा,
डलीए नूंतूं काका ताऊ,
मिश्री रै कूंजै हजारी बीरा, जिसतै मैं ऊजली ।
क्यां चढ़ आवै बाबल राजा,
क्यां चढ़ आवैं काका ताऊ
क्यां चढ आवै हजारी बीरा, जिसतै मैं ऊजली ।
अरथीं[5] आवै बाबल राजा,
बहलीं आवैं काका ताऊ,
हाथी होदै जाम्मण जाया, जिसतै मैं ऊजली ।
के बरसैगा बाबल राजा,
के बरसैगा काका ताऊ,
के रैजे बरसै हजारी बीरा, जिसतै मैं ऊजली ।
रोक रपय्या बाबल राजा,
टकाए बरसै काका ताऊ,
पीलड़ी[6] मौर[7] हजारी बीरा, जिसतै मैं ऊजली ।

---

१. पालना । २. कुलक्षणी (व्यंग्य से) । ३. निमंत्रण देना । ४. यशस्वी । ५. रथ, स्यंदन । ६. पीली; सुनहरी । ७. मौर = मोहर (अशरफी) ।

कित उतरैगा बाबल राजा,
कितरै उतरै काका ताऊ,
कितरै उतरै जाम्मण जाया, जिसतै मैं ऊजली ।
परसीं[1] उतरै बाबल राजा,
पौलड़ी[2] काका ताऊ,
महलां में उतरै हजारी बीरा, जिसतै मैं ऊजली ।
के जीम्मेगा बाबल राजा,
के रै जीम्मै काक ताऊ,
के रैज जीम्मै जाम्मण जाया, जिसतै मैं ऊजली ।
दूध बतासा बाबल राजा,
झिनवैं[3] काका ताऊ,
सरस मलीदा[4] हमारा बीरा, जिसतै मैं ऊजली ।

५. भात न्यौत कर लौटती हैं । गीत गाती हैं :—

बीरा थे[5] दाम्मण[6] भल ल्याइयो,
चुंदड़ी पर रतन जड़ाइयो ।
म्हारा रिमक[7] झिमक भात्ती आइयो ।
बेस्सर[8] थे भल ल्याइयो ।
झुम्मर पर रतन जड़ाइयो ।
म्हारा रिमक झिमक भाती आइयो ।
चुड़लो[9] थें भल ल्याइयो ।
बोरलै[10] पै रतन जड़ाइयो ।
म्हारा रिमक झिमक भाती आइयो ।

हलदात बान

१. चौक पूरा जाता है ।
२. छोटा पटड़ा या छोटी चौकी चौक पर स्थापित की जाती है ।
३. सात हल्दी की गांठ और थोड़े से जौ लिए जाते हैं ।
४. सात स्त्रियों के हाथ में, जिनमें कोई गर्भिणी नहीं होनी चाहिए, कलाया बांधा जाता है । उन्हें 'सात सुहागन' कहते हैं ।
५. पॉच सेर गेहूँ लिए जाते हैं ।

---

१. चौपाल । २. दुवारी । ३. चावल । ४. चूरमा । ५. तुम । ६. लहंगा । ७. शान के साथ । ८. नथ । ९. चूड़ी । १०. मांग पर पहना जानेवाला आभूषण ।

६. सात मूसलों में कलावे बांधे जाते हैं।
७. ऊखल में जौ डाले जाते हैं और सात सुहागनें क्रम से सात-सात चोट लगाती हैं।
८. दो-दो सुहागण मिलकर कोरे मांट में दो-दो खौंज[1] जौ डालती हैं।
९. वह ऊखल और सातों मूसल पारस में विवाह की समाप्ति तक रख दिये जाते हैं।

रतजगा[2]

१. स्थान को पवित्र कर लिया जाता है।
२. कोरी झाल या मूंण (बडा मटका या गोल) भरी जाती है।
३. एक कोरा घी का दीपक जलाया जाता है।
४. इस दीपक पर घरवाले सवा रुपया डालते हैं। अन्य स्त्रियाँ दो-दो पैसे दीपक में डालती हैं। भूआ या बाहण आरता करने वाली उस धन को लेती हैं।
५. सारी रात भूमिया आदि दई-देवताओं के गीत गाकर प्रायः सभी अन्य गीत गा दिये जाते हैं। विवाह से पहिले वाले रतजगे में भूमिया, देवी, माता, देवता, घरवत गृहाधिष्ठात्री देवी), बधावा, दीपक और मेंहदी तथा दांतन के गीत गाये जाते हैं।
६. थापे लगाये जाते हैं। शुभदिशा की ओर मुंह करके, वर के यहाँ, वर घी का थापा लगाता है और कन्या अपने यहां मेंहदी का थापा लगाती है।

उबटणा (तेल)

१. चौक पूरा जाता है।
२. गांव या मोहल्ले में सूचना दी जाती है। सम्मिलित होने वाली स्त्रियां थोड़ा-थोड़ा अनाज साथ लाती हैं।
३. वर या कन्या को बुलाया जाता है। चौक पर दो पटड़ियां बिछाई जाती हैं।
   क. लड़के के साथ छोटा अविवाहित लड़का बैठाया जाता है। वह क्वारा लड़का विन्नायक या लोकड़िया कहलाता है।

---

१. अजली। २. रतजगा—वर के यहां दो बार होता है, तेल से पहिले और वधू आने पर। कन्या-पक्ष मे चाक-पूजन के दिन एक बार होता है।

ख. कन्या के साथ भी एक छोटी लड़की बिठाई जाती है।

४. जौ का आटा और हल्दी मिलाकर रख ली जाती है। उसमे तेल डाला जाता है। दूब से अंग-स्पर्श किये जाते हैं।

५. दो राखडी[1] बनाकर गडरनी लाती है। राखड़ी में लोहे का छल्ला, लाख का छल्ला, कौड़ी, कंद का टुकडा और उस टुकडे में नूणराई होता है। ऊन की रस्सी (धागा) में बांध दिये जाते हैं। एक राखड़ी वर के बाध दी जाती है और दूसरी को बरात के साथ ले जाते हैं। ऊन की रस्सी काली होती है।

६. पंडित आकर सात सुहागणों के कलावे बांधता है। ऊखल और कलश को भी कलावा बांधता है।

७. दूब से सात सुहागन तेल चढ़ाती हैं और फिर सातों हल्दी चढ़ाती हैं। गीत गाती हैं:—

जौ गीवूहां को उबटणो राय चमेली को तेल,
अत लाडो बैठ्यो उबटणै।
मैल झड़े झड़ भैं[2] पड़े नूर चढ़े गोरे अंग,
अत लाडो बैठ्यो उबटणै।
आ मेरी मायड़ देखले तम देख्यां सुख होय,
अत लाडो बैठ्यो उबटणै।
आ मेरी भुआ भाण्यो[3] देखल्यों तमने आरतड़ा[4] रो चाव,
अत लाडो बैठ्यो उबटणै।

८. भुआ या बहण रोली से अथवा हल्दी से टीका करती हैं। फिर आरता करती हैं। गीत गाया जाता है:—

तेरो हरयो ए पीपल सुंपल फलियो बैलड़ी फलछाइयो।
एक दूर देसां तैं मेरी भुआ ए आई कर बड़ गोत्तण आरतो।
एक दूर देसां तैं मेरी भाखल आई कर मेरी माकी जाई आरतो।
एक आरता को मैं भेद न जाणूं कें विध की जो मैण्यो आरतो।
एक हाथ लोटो गोद बेटो कर मेरी माकी जाई आरतो।
एक हाथ कसीदो गोद भतीजो कर बड़ गोतण आरतो।
एक आरता की गाय लेस्यां और ज अलल[5] बछेरियां।
उस गाय को हम दूधो री पीवां अलल बछेरी म्हारो पिवचढ़ै।

१. राखी, पहुँची। २. भूमि पर। ३. बहनो। ४. आरते का। ५. चंगी, हृष्ट-पुष्ट।

वातो इतणो सो लैकै बाई घरवी चाली दे मेरी मा की जाई असीसड़ो ।
तम तो लदियो रै बधियो मेरी माका रै जाया फलियो कड़वा नीम जूं ।
तेरी सास नणद रल बूझण लागी के रै ज लाग्यो बहुअड़ आरतै ।
वै तो पान तो रै पचास लाग्या सुपारी तो लागगी पूरी डयोढ़ सै ।

उबटना साधारणतया सौंदर्य-सज्जा का एक उपाय है, परंतु वैवाहिक कृत्यों में इसने आचारिक स्थान ले लिया है। पितृष्वसा अथवा भगनी अपने भाई भतीजे को उबटना लगाती हैं और हरे पीपल के वृक्ष की भाँति उसके बढ़ने की आशा करती हैं। शुभ शकुन के लिए वे जलपूर्ण लोटा लेकर आरता उतारती हैं अथवा पुत्र को गोद में लेकर। इस उपलक्ष्य में उन्हें यथाशक्ति नेग दिया जाता है। प्रस्तुत-गीत में 'अलल बच्छेरी' नेग में दी गयी है। गाय भी नेग में मिली है जिसका दूध बड़ा पुष्टिकर है। बहन वांछित नेग मिल जाने पर आशीः देती है। वह अपने भाई को कड़वे नीम के सदृश बढ़ता देखना चाहती है। लोकवार्ता में नीम ने अपना शुभ स्थान बना लिया है और उसकी कड़वाहट दूर हो गयी है।

इस गीत की भाषा और लहजा ठेठ हरियानी है परंतु पड़ोस की अहीर-वाटी का यत्किंचित् प्रभाव झलकता है जो नगण्य है। हरियानी का स्वरूप आदर्शरूप मे इस गीत में आया है।

६. स्नान कराया जाता है।

विशेष :—तेलों की संख्या पंडित बतलाता है। यह लग्न के दिन ही बतला दी जाती है और वरपक्ष के लिए लग्न-पत्रिका में लिख दी जाती है। तेल चढ़ाने के लिए शनिवार शुभ दिन माना जाता है। रविवार को तेल नहीं चढ़ाया जाता।

गोरवा पूजन[1] :—१. यह तेल वाले दिन ही पूजा जाता है। अपने घर के गोरवे को न पूजकर सार्वजनिक गोरवे को पूजते हैं। बनदड़ा या बनदड़ी को आंख बंद करके या चादर उढ़ाकर ले जाते हैं। साथ में यह सामग्री होती है—चून का चारमुख वाला दीया, एक गुड़ की डली, हल्दी की सराई, एक पैसा और एक तकुआ। यह सामग्री थाल मे रखकर ले जाई जाती है।

२. गोरवे पर पानी छिड़ककर सातिया करते हैं। हल्दी से पूजते हैं। दीया प्रज्वलित करके घर वापिस आ जाते हैं। चावल चारों दिशाओ में फेकते हैं।

---

१. घूरा।

३. लौटते समय एक खौंच रेत बंदड़ा या बंदड़ी लाती है और उसे अटोक (मुख से कुछ उच्चारण किये बिना) भंडारे में रख देते हैं। यह विश्वास है कि इस गोरवे के रेत के कारण भण्डारा एक कूड़ी की भाति अक्षय हो जाता है और जय रहती है।

४. दीया देई देवताओं के सम्मुख रख दिया जाता है।

मांढ़ा रोपण[1]

१. बरात आने वाले दिन प्रातःकाल पंडित आता है। एक हाल[2] (हलस) मंगाई जाती है। इसके साथ ही खात्ती के यहां से तिखुटा[3] या चौखुटा बजारा जो लकड़ी का बना होता है, लाया जाता है। कुम्हार के यहां से पांच सात सराई और एक करवा[4] मंगाया जाता है। दर्जी डोवटी[5] से मांढा (मन्डप) बनाकर लाता है। दर्जी को नेग दिया जाता है।

२. हाल और बजारे को, जो लकड़ी का बना होता है, गेरू से रंग दिया जाता है।

३. चौक पूरा जाता है।

४ लड़की बुलाई जाती है।

५. नवग्रह पूजन होता है।

६. कन्या के हाथ से माढा रोपण के स्थान पर तेल और चावल छुड़वाये जाते हैं।

७. कन्या और उसका मामा रंभा[6] से धरती खोदते हैं।

८. गढ़े में हल्दी की गांठ, सुपारी, टका डाला जाता है। कुटुम्ब की शेष स्त्रियाँ गढ़े में मूंग और चावल छोड़ती हैं।

९. बजारे के साथ पंडित तुली से बना धनुष बाण जिसका मुँह दखिन की ओर हो बांधता है।

विशेष—सराइयों को संपुटित करके ऊपर की सराई का मुँह ऊपर को रखकर कलावे में बांधकर मांढे की ५वीं तणी में बांध दी जाती है। वर के

---

१. गाडना। २. हल का वह भाग जो लम्बी लकड़ी का बना होता है और जिसे जुआ से बांधते हैं। ३. त्रिकोण या चतुष्कोण कटघरा। ४. मिट्टी का पात्र। ५. लाल कपड़ा, कंद। ६. धरती खोदने वाला लोहे का यंत्र।

यहाँ केवल सराइयों को संपुटित करके एक स्थान पर बांध दी जाती है।

भात भरना

१. भातीं एक साथ घर में नहीं जाते और न अपनी बहन से मिलते हैं। तभी मिलते हैं जब भात पहना लिया जाता है।

२. निश्चित लग्न पर भातीं भात भरते हैं।

३. बहन दूसरी स्त्रियों के साथ थाली में चौमुखी दीपक (प्रज्वलित), हल्दी, चावल, लड्डू और जितने भाई हों उतने रुपय्ये डालकर द्वार पर आती है।

४. नाइन जलपूर्ण गडवा लेकर खड़ी होती है। भातीं उसमें कुछ पैसे डालता है।

५. जिस द्वार पर भात लिया जाता है। वहां एक चौक पूरा जाता है। उस पर एक पटड़ा रखा जाता है। उस पटड़े पर ही भातीं आकर खड़ा होता है। बहन तिलक करती है। भाई बहन को चूंदड़ी उढाता है। चूंदड़ी का गीत गाया जाता है :—

आज सीमा में रै वीरा जगमगो।
आया री मेरी माका जाया बीर हीराबंद ल्याया चूंदड़ी जी।
जैरै ओढूं तौ हीरा झड़ पड़ै, डिब्बे धरूं तो लरजै जी।
सादी सी क्यूं ना ल्याया चूंदड़ी जी।

आज बागां मैं रै बीरा जगमगो।
आया मेरी री माका जाया बीर, हीराबंद ल्याया चूंदड़ी जी।
जैरै ओढूं तौ हीरा झड़ पड़ै, डिब्बे धरूं तो लरजै जी।
सादी सी क्यूं ना ल्याया चूंदड़ी जी।

इसी प्रकार—आज परसां में |
आज पोल्यां में | रै बीरा जगमगो।
आज चौक में |

आया री मेरी माका जाया बीर हीराबंद ल्याया चूंदड़ी जी।
जै रै ओढूं तौ हीरा झड़ पड़ै, डिब्बे धरूं तो लरजै जी।
सादी सी क्यूं ना ल्याया चूंदड़ी जी।

इस गीत में बहन का भयमिश्रित औत्सुक्य व्यक्त हुआ है।

६. भातीं यथाशक्ति धन बहन के थाल में डालता है। इस धन को लेकर बहन लौटती है। भाई भी साथ ही घर में जाता है। दोनों मिलते हैं।

७. भात की समाप्ति पर जब भाई खूब लुट पिट लेता है तो उससे उपहास स्वरूप एक गीत गाया जाता है। आदि में भाई की प्रशंसा है परन्तु अंत के बोल परिहासयुक्त हैं :—

ऊवड़ी तो घर की पोल[1] नीच्चा रे घर का बारना।

❀ ❀ ❀

जीम्मण लाग्या देवर जेठ दलक[2] पडी मेरो टोकणो।
जीम्मण लाग्या माई जाया बीर उफल[3] पड्यो मेरो टोकणो
सारो तो पीगयो माई जाया मांड मूतभरो मेरो ओबरो[4]।
भाज्यो सै टाटी[5] पाड़, मूसल मारयो कारव में।

कैसी सांसारिकता है 'पैसा रहा न पास यार मुख से ना बोलै'? मौके का मजाक है।

ब्याह का दिन (अ) वरपक्ष में

घुड़चढ़ी या निकासी

(१) चौक पूरकर उस पर चौकी बिछाई जाती है।

(२) स्त्रियाँ मिलकर स्नान कराती हैं। स्नान के समय गीत गाया जाता है :—

हलबल[6] हलबल नदी बहसै रायजादा न्हाण सिंजोया जी राज।
गैर बखत मत न्हाओ रायजादा, न्हाओ रायजादा कठिन कठारो[7]
होय सै जी राज।
सांझ बखत थम रायजादा न्हाओ,
रायजादा बात सुगन की होय सै जी राज।
किसीयां को सै रतन कचौडी,
किसयां का सै मोतीड़ारां[8] हार जी राज।
समधी की सै रतन कचौड़ी,
बन्ना जी का सै मोतीड़ारां हार जी राज।

---

१. दुबारी। २. रिक्त हो गया। ३. भर गया। ४. उसारा, छप्पर। ५. टाप, टट्टा या टट्टी। ६. छलछल करती। ७. घाट। ८. मोतियों का।

हार सोहवै हीवड़ै[1] के ऊपर,
मोतीड़ा लेंगा झिलाराजी राज ।

३. पंडित वस्त्र पहनाता है और मौड़ बांधता है। मौड़ का गीत गाया जाता है। मुँह सेहरा भी बँधता है जिसका गीत यह है :—

कठया की से मालणी अर कठे लाम्बी खिजूर ए,
इब गूंथ मालण सेहरो ।
गढ दिल्ली की मालणी अर ढाणा मे लाम्बी खिजूर ए,
इब गूंथ मालण सेहरो ।

❀ ❀ ❀

अंत के बोल हैं,

तेरैं अंत[2] लाडा सेहरो और अड़िया[3] से चारों राव,
इब गूंथ मालण सेहरो ।
दिल्ली को अड़ियो बादसाह अर सांभर को सिरदार,
इब गूंथ मालण सेहरो ।
चारों तो राव बाहड़ा[4] अर व्याह ल्यायो जैना का पूत,
इब गूथ मालण सेहरो ।

मुकुट और सेहरा बन्ने के विशेष आभरण हैं। इनके द्वारा बन्ने को सम्राट् के रूप में चित्रित किया जाता है। प्रस्तुत गीत में सुन्दरी नायिका के लिए दिल्लीश तथा सांभर नरेश भी अड़े हुए हैं परन्तु जैना के पुत्र के प्रताप के आगे सब झुक गये हैं और उन्हें लौटना पड़ा है। बन्ने के गौरव का रक्षक एक सुन्दर उदाहरण है।

४. मौड़ में ५ सुइयाँ चुपके से लगा दी जाती हैं।

५. छांत करना—नाई कंद के टुकड़े को वर के ऊपर फैलाता है। इस क्रिया को छांत करना कहते हैं। नाई को नेग मिलता है।

६. भावी स्याही लगाती है और आरता किया जाता है।

७. मां या घर की प्रतिष्ठित स्त्री कलेवा, जिसमें सात गांठ लगी होती हैं, पहनती है। कलेवा पहनाने का कार्य सुहागन करती हैं। यह विरध[5] विवाह के अंतिम दिन तक पहननी होती है।

८. घुड़चढ़ी होती है और बन्ना घोड़ी पर चढ़कर चलता है। इसे निकासी भी कहते हैं। इस समय अनेक गीत गाये जाते हैं। कुछ

---

१. हृदय, वक्ष। २. तेरे लिए। ३. अड़े हैं। ४. वापिस लौट आये। ५. कलेवा।

गीतों का विषय वैवाहिक वातावरण के इर्द-गिर्द घूमता है और उनमे कुछ सरसता होती है। कुछ में बन्नी की ओर से निमन्त्रण भी गाया जाता है। माता और बहन के हृदय को छू-छू जानेवाले भाव भी एक गीत में आये हैं। इन गीतों का मार्मिक विवेचन आगे होगा। यहाँ हम केवल एक गीत जो हरियाने का जातीय निकासी गीत है, दे रहे हैं :—

घुड़ला[1] तै बल ल्याइओ, घुड़ला रे चाबक आओ,
अनोखा लाडला हो राई बर धीरे धीरे चाल,
मंजलै मंजलै चाल।

करवा[2] तै बल ल्याइओ, करवा रे रड़कत आओ,
अनोखा लाडला हो राई बर धीरे धीरे चाल,
मंजलै मंजलै चाल।

धूप पड़ै धरती तपै करूं अडाणी छांए,
मंजल मंजल डेरा दिया, तम्बू दिया ढलकाय,
मंजल मंजल कै चालणे, हो राई बर धीरे धीरे चाल,
मंजलै मंजलै चाल।

धमड़ा[3] तै बल ल्याइओ समधी की पौल बखेर,
अनोखा लाडला हो राई बर धीरै-धीरै चाल,
मंजलै मंजलै चाल।

मंहदी तै बल ल्याइओ बंदड़ी रै हाथ रचाए, अनोखा......
काजल थे बल ल्याइओ बंदड़ी रै नैन घुलाए, अनोखा......
गहणा थे बल ल्याइओ गहणा पाट[4] बलाय, अनोखा......
बंदड़ी थे बल ल्याइओ बंदड़ी सें हंस बतलाय,
अनोखा लाडला हो राई बर धीरै-धीरै चाल,
मंजलै-मंजलै चाल।

इस गीत में बन्ने के चाव का वर्णन है। औत्सुक्य के कारण उसे त्वरा है। परन्तु गीत में इस प्रकार की उत्सुकता को समीचीन नहीं माना गया है। अतः बारबार प्रार्थना की गई है कि मध्यम गति से चला जाये।

६. दूल्हा घोड़ी पर सवार होता है। मा चूची पिलाती है। बहन हाथ में सींक लेकर झाड़ती है और चावल बखेरती है। इस समय एक

---

१. घोड़ा। २. ऊंट। ३. दाम। ४. रेशमी तागे से बलवाकर।

हृदयस्पर्शी गीत माता और बहन की ओर से संवादात्मक रूप में गाया जाता है। कुछ पंक्तियां नीचे उद्धृत हैं :—

दूधी की धार मारू, माता नै कदे तू गुमानी[1] भूल नहीं जा।
याद दिलाऊं सूं अक आवेगी इब नई बहू रानी बेटा भूल नहीं जा।
भाई का सुखी हो शरीर, जुग जुग जीवो मेरा बीर।
याद दिलाऊं सूं अक मा जाई की यासै निसानी बीरा भूल नहीं जा।

१०. मंदिर मे जाते हैं। पुजारी आशीर्वाद देता है।

११. मदिर से लौटकर भूमिया धोकणे[2] जाते हैं। वहीं पुरोहित मौड़ खोलता है। बरात गाँव से चलती है। बहन या बहनोई बन्ने का मार्ग रोकते हैं। उन्हें नेग दिया जाता है। इसे 'बाग पकड़ना' कहते हैं।

१२. बरात चलती है और सब स्त्रियाँ मिलकर गीत गाती हैं :—

बन्ना ए कित बाजा रै बाजियो,
बन्ना ए कित धरारै निसान,
छोटा छैल उतरयो बाग में।
तेरी बंदड़ी रै बूझै रै बन्ना,
तूं ए सवेरी आय, छोटा छैल उतरयो बाग में।
बंदड़ी गहणा घड़ावन मैं गया,
सुनरे[3] नै लादई बार रै छोटा छैल उतरयो बाग में।
बंदड़ा गहणा घड़ावै तेरा दादा जी, तेरा ताऊ जी,
तूं तड़के ए तड़के आय छोटा छैल उतरयो बाग में।
बन्नी कपड़ा बिसावण[4] मैं गया,
बणिया नै लादई बार रै, छोटा छैल उतरयो बाग में।
बंदड़ा कपड़ा बिसावै, तेरा बाबल[5] जी तेरा चाचा जी,
तू सम्हेरी[6] ए सम्हेरी आय छोटा छैल उतरयो बाग में।
बंदड़ी मेंहदी बिसावण, मैं गया,
पंसारी ने लादई बार, छोटा छैल उतरयो बाग में।
बंदड़ा मेंहदी बिसावै तेरा बीर जी, तेरा मामा जी,
तूं रे सम्हेरी ए सम्हेरी आय छोटा छैल उतरयो बाग मे।
बंदड़ी बंदड़ी तो व्याहण मैं गया,

---

१. अभिमानी। २. पूजने। ३. सुनार। ४. खरीदना, व्यवसाय करना। ५. पिता। ६. सुबह।

मेरे साथिड़ा नै लादई बार छोटा छैल उतर्यो बाग में ।
बंदड़ी तो ब्याहै तेरा कूणबा बंदड़ा,
बंदड़ी तो ब्याहै तेरो कूणबा,
तूं रे सम्हेरी ए सम्हेरी आय छोटा छैल उतर्यो बाग में ।

खोड़िया

बरात चली जाने के बाद वर-पक्ष के घर में कई आचार होते हैं । उनमें एक प्रमुख आचार 'खोड़िया' मनाने का है । यह वर के घर पर स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है । इस आचार के द्वारा स्त्रियाँ कृत्रिम विवाह रचती हैं । विवाह के समस्त कार्यों की आवृत्ति करती हैं । इस प्रथा से कई लाभ होते हैं :—

१. मनोरंजन हो जाता है ।
२. जागरण होने से घर बार की रखवाली हो जाती है ।
३. विवाह सम्बन्धी शिक्षा मिल जाती है ।

इस आचार में लोकवार्ता के कई तत्व निहित हैं । आजकल भी आसाम-बंगाल की आदिवासी जातियों में यह प्रथा चली आ रही है कि कन्या बरात बनाकर वर के यहाँ जाती है । बहुत सम्भव है कि उसी प्रथा के अवशिष्ट चिह्न इधर भी इस रूप में बचे हुये हों ।

यह ध्यान देने की बात है कि इधर बरात में कन्या का शामिल होना बुरा माना जाता है । यह हो सकता है कि समाज में पितृसत्ता युग आने के बाद इस प्रथा को घर की चार दीवारी में बन्दकर दिया गया हो ।

बरात की पहुँच

१. बरात पहुँचने की सूचना बरात का नाई देता है । यह जाल (वृक्ष विशेष) की हरी टहनी के साथ कन्या के पिता के यहाँ जाता है । इस आचार को 'हरी डाली ल्याणा' कहते हैं । उसके पीछे बरात को जाजलवाला (जनवासा) में पहुँचा दिया जाता है ।

२. ढुकाव—सायंकाल, वर घोड़ी पर चढ़कर कन्या के द्वार पर जाता है । यहाँ पर साली आरता करती है और उसकी तनी खोलती है । तनी खोलने से तात्पर्य लड़के के वक्षः को देखकर स्वास्थ्य ज्ञान करने से है । लड़का अपनी छड़ी से द्वार पर लगी ३, ५ या ७ चिड़ियाओं को जो काठ की बनी होती हैं और गेरू से रंगी होती हैं, छुवाता है । इसे 'तोरण चटकाणा' कहते हैं ।

ब्याह का दिन—*कन्या पक्ष में*

१. माता पिता, ज्येष्ठ भ्राता, भावज सब व्रत रखते हैं। मंढा रोपने के पीछे पानी पिया जा सकता है।

२. भात लिया जाता है।

३. मामा चाँदी की बाली (मुरकी) लाता है जिनकी संख्या चार होती है। ये लोहे की बालियों के स्थान में पहना दी जाती हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रथा है और इसे 'मामा बाली' नाम से पुकारा जाता है।

४. मामा कन्या को चौला पहनाता है। चौला पीले रेजे का बना हुआ लँहगा और चुन्नी होती है। इसे 'मामा चौला' कहा जाता है।

विशेष—यदि मामा निर्धन भी है तो 'चौला और बाली' अवश्य लाता है। लड़के के विवाह मे 'मौड़' अवश्य देता है।

५. चाक धोकणा—कन्यापक्ष की स्त्रियाँ एक थाली में कुछ मिठाई, सवा रुपया, पानी का लोटा, हरी दूब, सराई मे भीगी हुई हल्दी और कलावा लेकर कुम्हार के यहाँ जाती हैं। चाक को टीका लगाया जाता है और सातिया काढ़ा जाता है। मिठाई और सवा रुपया चाक पर रख दिया जाता है। लौटते समय कुम्हारिन अपने सर पर मूण (गोल या बड़ा मटका) उसके ऊपर मिट्टी का करवा, सोना या चाँदी का कठला मूण के गले में डाल कर बेटीवाले के यहाँ लाती है। कठले को उतार लिया जाता है। मूण को माढ़े की हलस (बाली) के पास रख देते हैं और उसमें सात सुहागण पवित्र पानी भर देती हैं। उसमें थोड़ा-सा गंगाजल भी छोड़ा जाता है। उसके पास ही आम या पीपल की टहनी रख दी जाती है।

६. जाजलवासा धोकणा (पूजना)—कन्या का भाई अपनी पत्नी के साथ गठ-जोड़ा करके कन्या को चादर उढ़ाकर अपनी गोद में ले लेता है। लड़की अपने दोनों हाथों में कुछ पीले चावल ले लेती है। फिर पीछे-पीछे स्त्रियाँ गीत गाती हुई जांजलवासे के पास जाती हैं। यहाँ लड़की अपने हाथ से चावलों को छोड़ देती है। इस कृत्य का तात्पर्य यह है कि लडकी ने लड़के को फेरों के लिए आहूत किया है।

फेरे या चौरी (भांवर)

१. बेटेवाले की ओर से संजोवे का सामान आता है। इसमे टिक्की, बिन्दी, रोली, हिंगलू, सीसा, रखड़ी (कंगन), मेंहदी, खांडपूड़ा, सात

कलावे (नाल), सात बादाम, सात छुहारे, सात बताशे, सात सिंघाडे, सात टके (पैसे) आदि गठजोडा की सामग्री होती है।

२. हंस ली लाई जाती है।

विशेष—दूजवर (दुहेजवां) के विवाह में भावरो पर सोने या चांदी की छोटी बाली लाई जाती है। व्याहली को नथ के स्थान में पहना दी जाती है।

कन्या-पक्ष की सामग्री—१. पाणिग्रहण संस्कार कराने वाला पंडित निम्न-लिखित सामान बेटीवाले के यहां से लेता है। हवन की सामग्री, चावल, गोघृत, पत्थर का बाट, छाज, खील (लाजा), शमी पत्र, पंखा, चदोवा जिसमे पॉच गज कंद का कपड़ा, कुछ लड्डू, एक नारियल, सवा रुपया और चार सरकड़े होने हैं। इस चदोवे को परिक्रमा के समय बेटी वाले की ओर से उनका ध्याणा (भाणजा या फूआ का लड़का) और दूसरी ओर से लड़के वाले का ध्याणा लेकर खड़े होते हैं। उसके नीचे से वर-कन्या परिक्रमा करते हैं।

२ कुम्हार चौरी का सामान लाता है। इसमे दो झावली (झाये) दस सराई, पांच मटकणे होते हैं। सराई मधुपर्क आदि के काम आती है। झांवलियों को वेदी की रक्षा के लिए संस्कार समाप्ति पर औधा मार देते हैं।

३. खाती आहुति डालने के लिए सुवा, चार खूटी, पीपल, शमी अथवा पलाश की समिधाए लाता है।

४. वर को बुलाकर पटडी पर बैठाते हैं। पीछे से व्याहली बुलाई जाती है। पहिले वर के दायें बैठती है फिर कन्या वामांग आ जाती है।

५. कन्यादान—व्याहली के माता-पिता का गठजोड़ा किया जाता है। फिर पिता लड़की के दाहिने हाथ के अगूठे को अपने दोनो हाथों में लेता है। साथ मे यह सामग्री पान, सुपारी, दूब, सवा रुपया, शंख और फूल भी लेता है। पडित कन्यादान का संकल्प पढ़ता है। संकल्प के पश्चात् पिता यह कहकर कि हे विष्णु रूप वर लक्ष्मीरूपिणी यह कन्या तुझे भार्या रूप मे देता हूँ, लडकी का अंगूठा वर के दोनों हाथों में पकड़ा देता है। स्त्रियां हथलेवा और फेरों का गीत गाती हैं। हथलेवे का एक गीत यह है :—

हथलेवो, दादा की ए पोती कर हथलेवो कराइयो।
हथलेवो, ताऊ की ए बेटी कर हथलेवो कराइयो।

हथलेवो बावल	**बेटी**	
हथलेवो भाई	**की ए भाण**	**कर हथलेवो कराइयो।**
हथलेवो मामा	**की ए भाणजी**	**कर हथलेवो कराइयो।**

कन्यादान की महत्ता को प्रदर्शित करनेवाला नीचे लिखा गीत है :—

सोन्ना का दान, चांदी का दान अर कन्या का दान दुहेला[1] हो राम।
कन्या का दान म्हारे बसाराम देना जैंकी छाती भारया जी राम।

इसी प्रकार दूसरे नाम जोड़कर गीत बढ़ाया जाता है।

भांवरों के समय एक गीत गाया जाता है। कन्या को वर के पास आते कुछ लज्जा है, कुछ विघ्नस्वरूप उसके पूर्वज तथा सेवक अड़े हैं। इसी बात को इस गीत का विषय बनाया गया है। वर उसे आशा दिलाता है और कन्या को फेरों के लिए बुलाता है :—

गढ छोड रुक्मण बाहर आई, चौंरी[2] तो छाई म्हारे साजना।
इन साजनां नै हम धीय देसां, चौंरी तो करसां लाडल निरोली।[3]
इन साजनां नै हम दान देसां, चौंरी तो करसां लाडल निरोली।
गढ़ छोड़ रुक्मण बाहर आई, चौंरी तो छाई म्हारै बामणा।
इन बामणां नै हम नेग देसां, चौरी करसां लाडल निरोली।

इसी प्रकार नाई, डूम और खाती को भी विविध नेग देकर अपना मार्ग अकंटकित कर लिया जाता है। वरनी के उत्साह सचय कर लेने तथा वर के पास चलने पर सहेलिया एक मीठी चुटकी लेने से नहीं चूकतीं।

हौलै हौलै चाल म्हारी लाडो हसेगीं सुहेलड़ियां।
मोठ सा यतपाड़ म्हारी लाडो रात है घणेरियां।

इस गीत के बोलों में ग्रामीण-वातावरण बड़ा खुल कर आया है जो चित्रात्मक है।

६. भांवरों के समय माता-पिता और ऊँचे रिश्ते के सभी पुरुष अलग हो जाते हैं।

७. छोटा भाई वर-कन्या के बीच मे खड़ा होकर दोनो के हाथ में खीले देता है और लाजा-होम कराया जाता है। इसके पीछे सब कार्य पडित जी कराते हैं।

फेरों के पीछे

१. वर कन्या भीतर घर मे जाते हैं। वहाँ दई-देवताओं का पूजन कराया जाता है।

२. सालाहेली (सलज) दोनों का मुँह मीठा कराती है।

---

१. कठिन। २. मंडप में। ३. निर्विघ्न।

३. वर से छन कहलाये जाते हैं। एक छन नीचे दिया गया है :

सड़क पै सड़क, सड़क पै इक्का।
एक तो ब्याह चले, दूसरी को देवे टिक्का[1]।
छन पर छन छन पर आरसी।
थारी बेट्टी राज करैगी, हम पढांगे फारसी।

यह समय हांसी-मजाक का होता है। इन छनो का विषय भी शृङ्गार से भरा होता है। किसी-किसी छन में तो बडा ही अश्लील वर्णन होता है।

४. लड़का वापिस चला जाता है।

बढ़ार का दिन

१. गौर पूजन—(१) सात सुहागण अपना सिर धोती हैं और स्नान करती हैं।

(२) सात पत्तल मंगाई जाती हैं। उन सातों पत्तलों पर मेंहदी, बिंदी, एक-एक टका रखकर मढे के नीचे रख दिया जाता है।

(३) बेटेवाले के यहां से तील[2], काजल, बिंदी, मेंहदी, कघी और सिर बांधने के धागे आदि लाये जाते हैं।

(४) वर बुलाया जाता है और बीच में कपड़ा देकर एक ओर दूल्हा और दूसरी ओर दुल्हन न्हलाई जाती है।

(५) पीली मिट्टी के गौरा और गौरी (शिव-पार्वती) बनाते हैं। पहिले कन्या उनका पूजन करती है फिर घर की सब स्त्रियां पूजती हैं।

(६) मढे नीचे लड़का, कन्या और सात सुहागण घर के भीतर जिमाई जाती है।

२. बसोड़ (कंवर कलेऊ) के लिए वर और उसके साथियों को बुलाया जाता है।

३. मध्याह्न की दावत के समय 'गस्समगस्सा विधि' होती है। सबसे वृद्ध बराती के मुंह में गस्सा देते हैं।

४. पत्तल बांधना भी होता है। पडित उसे किसी कविता से खोलता है। उसे इसका नेग मिलता है।

---

१. सगाई करना। २. लंहगा।

विदा

१. कन्या को श्रृङ्गार कराया जाता है, उसके बाल बांध दिये जाते हैं।

२. कन्या अपने पिता की देहली पूजती है। देहली पर छुहारे, बादाम, खजानी (बताशे) और पैसे रखे जाते हैं। हल्दी का टीका लगाया जाता है। इन पैसों आदि को नाइन ले लेती है।

३. लडके को बुलाया जाता है। उससे भट्टी में लात लगवाई जाती है। लड़के को नेग मिलता है।

४. लडकी बिदा होती है। गीत गाये जाते हैं। इस समय का वातावरण करुणापूर्ण होता है। एक ओर कन्या अपनी माता, सहेलियों से गले मिलती है दूसरी ओर सबकी आंखें छोटे-छोटे करुणा-ताल बने होते हैं। पिता-माता को एक ओर कन्या के हाथ पीले करने की प्रसन्नता, दूसरे लाडली के सर्वदा के लिए पराई हो जाने की टीस हृदय को हर्षशोक का क्रीडास्थल बना देती है। इस प्रकार शहनाई की मधुर ध्वनि और माता-पिता, भाई-बधु तथा सहेलियों की सिसकियों के बीच लाडो का अरथ चल देता है। इस समय बहुत से छोटे-बड़े गीत गाये जाते हैं जिनमें कन्या की मनोव्यथा व्यंजित होती है। इसका पूर्ण विवेचन आगे करेंगे। यहां दो गीत देते हैं। प्रथम गीत :—

ठाडा मेरा दादा ठाडा रहिए आजकी रैन पहर दोए।
अपणा कटक ले उतरूँगी पार, धारा नगर सुबस बसो।

इसी प्रकार ताऊ, बाबल, चाचा, भाई और मामा का नाम लेकर गीत बढ़ता चलता है। कन्या समझती है कि वह परकीय धन है और वह भार-स्वरूप है। यहाँ कन्या अपने दादा आदि पितृपक्ष के लोगों को सांत्वना दे रही है।

दूसरे गीत मे सहेलिया रथ में दुल्हन को बिठाती हैं और परवश अवस्था मे यह गीत गाती हैं :—

'परियण'[1] की लाडो परियण छोड़ कहां चली ?"

कितनी कातरता है ? बालिका की सुबुद्ध चेतना उत्तर देती है। "मेरे दादा ने बोले थे बोल साजन घर हम चले"। यहा लाडो केवल इसलिए दूसरे के यहा जा रही है कि दादा जी ने वचन दे दिये हैं। दादा जी के वचनों का पालन करना तो पुत्री का धर्म है। इस प्रकार वह ताऊ, चाचा, भाई, मामा आदि की बचनवद्धता के कारण पराई हो रही है।

---

१. कुटुम्ब।

५. लडकी का पिता कुटुम्बियो सहित गाव के जोहड तक अथवा सीमा तक बरात को छोडने जाता है। लड़की का पिता यथाशक्ति ५ या अधिक रुपये समधी को भेट करता है और दोनो ओर से 'रामरमी' की जाती है।

वर के घर पहुँचने पर

१. बरात के आगमन की सूचना मिलने पर कुटुम्ब की सभी स्त्रियां मगल-कलश के साथ रथ के पास आती है। वर की माता कलश-जल से दूब के द्वारा वर-कन्या के ऊपर छीटे मारती है। स्त्रिया वधू का स्वागत करती हैं और गीत गाती हैं :—

डोले तै तलै उतरिया हे बहुअड करके नीची नाड।
सासु जी के पांय लिए सैं लिए चरण पुचकार।
जीओ हे तेरे भाई भतीजे, बणा रहो भरतार।
मेरे बेट्टे की बेल बधाई, जाम्मे हें राजकंवार।

एक दूसरे गीत में नवीन अतिथि का स्वागत करते हुए स्त्रियाँ कहती हैं :—

आइये बहुअड इसघरां तेरी सासड आई सुसरघरां।
आइये बहुअड़ इसघरां तेरी जिठाणी आई जेठ घरां।

इस प्रकार स्वागत के साथ घर की ओर ले जाती हैं। गृह-प्रवेश से पूर्व बहन द्वार रोकती हैं। नेग दिया जाता है।

२. जुआनेती होती है। लड़के की भाभी वर को तीन बार और बधू को चार बार हलके जूए से तथा दूध बिलोने की नेती से नापती हैं।

३. सात सुहागणों को भोजन कराया जाता है। दई-देवताओ का पूजन कराया जाता है।

दई देवता पूजन (धोकना) और बहू नचाना

१. गठजोड़े से बन्ना-बन्नी मैयां (भूमिया) पर जाते हैं। भूमिया की धोक लगाई जाती है। पुजापे को कुम्हारिन लेती है।

२. इसके पीछे जाल की सूटकियों (पतली-पतली कमचियाँ) से बदडा-बदड़ी आपस में मार-मारकर खेलते हैं। वर की भाभी भी बंदडो की ओर से खेलती है। इस प्रकार आनन्द मनाकर घर को लौटते हैं। बहन द्वार रोकती है, नेग दिया जाता है।

कांगण जूआ

१. वर-वरनी को दो पटडों पर पूर्वाभिमुख बैठा दिया जाता है। एक मिट्टी की कूंडी मे दूध, पानी, दूब और सवा रुपया डालते हैं। वर की अगूठी लेकर उसी पानी में डाल दी जाती है। फिर वर-वरनी अगूठी को ढूंढते हैं। इस प्रकार यह कृत्य सात बार होता है। अगूठी को पुरोहित डालता है। जो अगूठी को चार बार चुगले उसकी जीत मानी जाती है। इस कृत्य से वर-वरनी की चतुरता का ज्ञान हो जाता है।

२. परस्पर एक-दूसरे का कांगणा और राखडी खोलते हैं। उस कांगण, राखड़ी और पानी को जोहड़ या कुए मे सिला दिया जाता है। पुरोहित और नाई को नेग दिया जाता है।

३. कांगना खोलते समय यह गीत गाया जाता है :—

खोल ऊधली की कांगना, तेरी माए बाहण का भागना।
खोल रानी के डोरियां, तेरी मा बाहण गोरियां।

नवागंतुक अतिथि से बडा कटुतम परिहास किया गया है।

दई देवता और मांढा सिलाना

१. वेदियो की मिट्टी को लडकी की भाभी अन्य स्त्रियो के साथ परात में भरकर जोहड मे सिला आती हैं।

२. मौड़ को अपने घर में एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जाता है।

३. कहीं-कहीं मौड़ को भी सिला देती हैं। इसी ओर लक्ष्य करके कवि रहीम ने कहा है :—

समय पड़े पै और है समय पडे पै और।
रहिमन भंवरा के परत, नदी सिरावत मौर।

यह हरियाना प्रदेश के विवाह-संस्कार के लोकवार्ता तत्वो से युक्त, अनुष्ठानो आदि का सामान्य परिचय है। देश जाति भेद से कहीं-कही अंतर भी मिल सकता है।

इस विवेचन के पीछे हम विवाह-सस्कार सम्बन्धी गीतो का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। विवाह-संस्कार का कार्य लग्न के पीछे गभीरता से आरम्भ होता है। लग्न के दो गीत बड़े महत्त्व के हैं। एक गीत मे वर अपनी दुल्हिन के पास लग्न भिजवाने के लिए सदेश भेजता है परन्तु पूर्वानुरक्ता लाडो लाज के भार में दबी हुई अपनी विवशता प्रदर्शित करती है। नाना

प्रकार के प्रलोभन दिये जाते हैं परन्तु लाडो का अतिम उत्तर बड़ा मार्मिक है। उसकी निश्छलता दर्शनीय है—"राय भर म्हानै लाजधणी आवै"। प्रलोभन की वस्तुएँ वही ग्राम की गुड़धानी, बताशे और ढोल नगारा रही हैं। ग्रामीण कन्याएँ प्रकृति की गोद मे पलती हैं। उनके हृदय है पर वह वाणी कहाँ जो भावभार को सभाल ले ? एक दूसरे स्थान पर लाडो कुछ मुखर है। वह लग्न लिखवाने के लिए दादा जी द्वारा सुबुद्ध ज्योतिषी बुलवाती है "दादा जी म्हारा लगन लिखाय, सच्चा ल्याओ जोसियाँ जी"। दादा जी लाडो की बात को मानते हैं पर एक बात और कह गये हैं—"सच्चा म्हारी लाडो सच्चा सरजनहार करम लिखा सो पाइयो जी"। दादा जी ने लाडो के विवाह में जी खोलकर व्यय किया है, मामा जी ने यथाशक्ति भात भरा है और पिता ने दुधार गाय एवं बच्छेरा सहित श्रेष्ठ घोड़ियाँ दान मे दी हैं। अंत में फिर सभी अपनी-अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करते दिखाये गये हैं—"मुड़ तुड़ म्हारी लाडो देवं असीस, राज करो परिवार में जी"। माता-पिता की यह इच्छा होती है कि उनकी सतान सदैव समुन्नत हो और सुखी रहे।

लग्न के पीछे और विवाह-संस्कार के पहिले भी कई प्रथाएँ पाली जाती हैं, उनमे भात न्यौतना और भात भरना मुख्य हैं। बहन-भाई के अभिन्न प्रेम का उपमान संसार मे नहीं है। भाई के ऊपर बहन को गर्व होता है। जब भी कोई भार अथवा आपत्ति आती है, झट भाई का आश्रय उसे मिल जाता है। भात के गीतों मे भाई-बहन के इसी पवित्र स्नेह की निधि मिलती है। बहन के यहाँ पुत्र-पुत्री का विवाह है। वह भात नौतने जाती हैं। समस्त प्रकृति उसका स्वागत करती है। गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं :—

ओ पिया आई सूं बाप मेरे कै बाग, कोयल सबद सुणाइया।
ओ पिया आई सूं बाप मेरे की बाणी, बणी झंगारे[1] मोरणे।
ओ पिया आई सूं बाप मेरे कै गोरै[2], गोरै गऊवैं छाइयां।

शुभशकुनों का यह सुन्दर वर्णन है।

एक गीत में बहन, भात में अतुल धनराशि देने वाले (बरसने वाले) भाई के समक्ष इन्द्र को ललकारती हुई कह रही है। हे इन्द्र ! आज इधर-उधर बरस लो। हमारे यहाँ तो मेरा भाई बरस रहा है :—

बागां में मेंहा बरसै, सरवर पै मेहा बरसै।
मत बरसै इन्दर राजा, मेरी माका जाया बरसै।

---

१. फूकते हैं। २. ग्राम के समीप।

मालाम्पै रंग बरसै, चम्पा पै रंग बरसै।
मत बरसै इन्दर राजा, थाली में बीरा बरसै।

भाई के बरसने में कैसी सुन्दर व्यंजना है ?

एक अन्य प्रबन्धात्मक गीत है। हरनंदी भक्त-प्रवर नरसी की इकलौती पुत्री है। हरनदी के यहाँ विवाह है। दौरानी-जिठानियों के व्यग बाण चलने लगते हैं। इनसे आहत हो वह पिता के यहाँ भात न्यौतने सिरसागढ़ जाती है। विरक्त नरसी को पुत्र का अभाव खटकता है। वे पुत्री को धैर्य बँधाते हैं और निश्चित तिथि पर भात भरने के लिए चलते हैं। छकड़े में दो डूडे बैल हैं। जूनागढ़ (हरनंदी की सुसराल) पास है। इस समय भक्त को अपनी दयनीय दशा की स्मृति हो आती है। दीनबंधु का स्मरण करते हैं। भगवान् उपस्थित होते हैं और स्वयं भाती बन जाते हैं। जूनागढ़ की समस्त जनता को यथेष्ट वस्तुएँ प्रदान की गयी हैं। काणी धोवन के लिए सुरमा विशेष रूप से बरसाया गया है। इस गीत की एक विशेषता यह है कि इसमे ब्रज के 'भात-गीत' की भाँति विषाद की रेखा नहीं आई है[1]—"मैना नैं बैंया पसारिये, और बीर न गये ऐं समाय" आदि ब्रजगीत में एक मर्माहत स्थिति का चित्रण हुआ है। यहाँ तो भक्त का भगवत्प्रेम मूर्तिमान् हो उठा है। परन्तु गीत में 'बहन को भाई की कितनी प्रबल अपेक्षा होती है' सहज ही झलकाया है। पूरा गीत दे देना अनुचित न होगा :—

ना मेरा सहा ना कोई साथी ना कोई बेटा मैं भाती हो राम।
धूणी मे पडूंगी बाबू जलके मारूँगी,
मैं सिरसागढ नहीं जांगी हो राम।
दुराणो जिठानी बाबुल बोली हो मारैं,
के नरसी पत्थर ल्यावेगा हो राम।
सासु नणदी बोली हो मारैं,
के नरसी तील पहरावे हो राम।
देवर जेठ बोली हो मारैं,
के नरसी मोहर ल्यावै हो राम।
तेरा जमाई बोली हो मारै,
के नरसी अरथां में आवै हो राम।

---

१. 'ब्रजलोक गीत साहित्य का अध्ययन'—डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ १६३।

काणी सी धोबण बोलली हो मारै,
के नरसी सुरमा ल्यावे हो राम ।
भेली कसार लेकर हरनन्दी चाली,
होली सिरसागढ की राही हो राम ।
बुझे सैं उसनै हाली पाली,
नरसी भगत कित पावै हो राम ।
काका ताऊ के चाली हे जाई,
नरसी भगत अस्तल[1] मे पावै हो राम ।
कूण किसै के काका ताऊ,
नरसी कै मैं जांगी हो राम ।
बुझी सैं उसने कुए की पणिहार,
नरसी कै मैं जांगी हो राम ।
दूरे तैं हरनंदी देखी आंवती,
नरसी भगत खड़े होगे हो राम ।
दोनों हाथां सिर पुचकारा,
हे ईश्वर तेरी माया हो राम ।
बेटी तैं दई राम जी बेटा भी दिए,
आज मनै बहुत रंज आया हो राम ।
बेबे भी दई भाई बी दिए,
आज मैंने भाती भी चाहिए हो राम ।
टुट्टी सी गाडी बूढ़े से नारे,
आप नरसी गडवाला हो राम ।
टूटगी गाड़ी बैठगे नारे,
खड़े लखावें नरसी भगत हो राम ।
धौले धौले नारे[2] बाजणां सा रथ,
आप कृष्णगड वाले हो राम ।
कित म्या हे हरनंदी राजमाई,
कड़े सी रथ डटावै हो राम ।
चार घड़ी लग तील बरसी,
पहरी मेरी नणदी हो राम ।
चार घड़ी लग मोहर बरसीं,
बरतो मेरे देवर जेठ हो राम ।

---

१. वैरागी साधुओं का स्थान । २. नये-नये शक्तिशाली बैल ।

चार घड़ी लग पत्थर बरसे,
महल बणाओ सारी दुनिया हो राम ।
चार घड़ी लग सुरमा बरसा,
सारो काणी धोबिन हो राम ।

हरनंदी को भात की सम्पन्नता पर सुख और गर्व है परन्तु दौरानी-जिठानियों की ईर्ष्या में व्यंग्य की फॉस विषमान है :—

दयोराणी जिठाणी बुझण लागी,
कुणसा हे हरनंदी तेरा भाई हो राम ।

हरनदी हर्षातिरेक मुख से बोलता है :—

औरों के आवैं भाई भतीजे,
मेरे कृष्ण जी आये हो राम ।

गीत की पृष्ठभूमि मे आस्था, आस्तिकता एवं दयार्द्रता की भावना दर्शनीय है ।

भात के गीतो का ताना-बाना प्रेम और सौहार्द से मिलकर बना है । परन्तु कहीं-कहीं लोभ ने उसकी सुकोमल भावना पर तुषारापात भी किया है । एक गीत मे बहन ने भारी भात की मॉग की है । भाई-बहन के मन की टोह लेने के लिए कहता है :—

"जिन के है जिज्जी इतना ना हो, वे क्यूं आवैं है जिज्जी भातई ।"

परन्तु बहन का स्वार्थांध मन उसे कितना निर्भय बना गया है :—

"अपणी रै बीरा अपणी जोयण[1] ने बेच तूं आइये मेरे भातई ।"

ऐसा प्रतीत होता है कि बहन संभवतः भाभी के दुर्व्यवहार का प्रतिशोध करना चाहती है ।

एक स्थान पर भाभी की उदासीनता की पराकाष्ठा हो जाती है । भात नौतने जब नणद आती है तो भावज उसके स्वागतार्थ उठती भी नहीं है । नणद जब मिलना मॉगती है तो उत्तर मिलता है :—"री नणदल हम तैं उठा ना जा, कौली तो भरले थामकी जी" । इस कथन मे मर्मातक रुलाई है । स्तम्भ के आलिंगन मे सहज असौहार्द का भाव भरा है । बहन लौट पडती है, परन्तु भाई ने बहन का मान रख लिया है :—

---

१. पत्नी ।

री सुण कै डोलै ढलते बीरा भाज्या,
हे बेब्बे भात भरांगे पूरे सौ का, नारग ल्यावां चूदड़ी।

बहन को केवल एक ही शिकायत है कि भावी ओच्छे (तुच्छ) घर की है और वह तुच्छ बाते करती है :—

"हे बीरा ओच्छे घर की ओच्छी भाब्बो ओच्छो बोलै बोलणे।"

भात के गीतो में कुछ उपहास की मात्रा भी मिलती है। एक भात की कतिपय पक्तियाॅ आगे दी जाती हैं, इनमें हास्य भाव व्यक्त हुआ है :—

सारो तो पीगयो माई जाया मांड, मूतभरा मेरा ओबरा।
भाज्जो से टाटी पाड़, मूसल मार-यो काख में जे।
बाह्मण भाई जाया बीर, मुस्सल छोर जिठानिया का सीरका।
थोरे ए बेबे की करयां को बाग, और घडा ओ मूसल सीरका।

भात समाप्त हो जाता है और भाई लुट-पिट लेता है तो हॅसी-ठट्ठा की बारी आती है। गीत मे मनोवैज्ञानिक सफलता दर्शनीय है।

भात के गीतों में दौरानी जिठानी के भाइयों द्वारा दिये गये भात से तुलना करने का भाव भी रहता है। कभी-कभी यह एक तीखे व्यंग्य का भी कार्य कर जाता है और कौटुम्बिक कलह का कारण भी बन बैठता है।

रतजगा

रतजगा, जिसमें रात्रि जागरण होता है, कई अवसरो पर मनाया जाता है। विवाह-संस्कार में इसका विशेष महत्त्व है, क्योकि वर-कन्या दोनों पक्षों में इसका मान है।

रतजगे में एक साथ अनेक कृत्य होते हैं। स्त्रियाॅ रात भर जागती हैं। इस प्रकार एक दीर्घकाल उन्हें गीत गाने के लिए मिल जाता है। अतः प्रायः सभी प्रकार के गीत रतजगे की रात्रि के घुप्प अंधकार को चीरकर इधर-उधर उड़ते रहते हैं। रतजगे के गीतों में विवाह के बंदड़े, बंदडी, घोड़ी और लाडो आदि विवाह के प्रतिदिन के साधारण गीतों से लेकर रतजगे के कृत्यों तक के गीतों का वर्णन होता है।

हरियाना प्रदेश में सभी कृत्य दई-देवताओं के गीतों से आरम्भ होते हैं। रतजगा भी इसका अपवाद नहीं है। हरियानी रतजगे के गीत घरवत (गृहाधिष्ठात्री देवी) के गीत से आरम्भ होते हैं। इसके पश्चात् दीपक गीत (दीवो गीत) गाया जाता है। एक घरवत गीत में रामचन्द्र जी गृहाधिष्ठात्री

देवी की स्थापना करते हैं। फिर 'खात्तण' 'घरवत' माता के लिए दीवट लाता है जिससे आंगन में प्रकाश हो। खातन विविध वस्तुओं को लेकर चलती है। रामचन्द्र और लक्ष्मण के रतजगे में पहुँचना उसका लक्ष्य है। घरवत का गीत एक लम्बा गीत है परन्तु उसे यहाँ दे देना उचित होगा :—

ए वा भरकै मोतियां का थाल पंडत बूझण धण गई।
हो म्हारा घर का पंडत घड़ी सैं मूरत साथ घरवत माता सूंचे धरे जे।
ए वै आठैं सातैं बार कुबार छठ चौदस भदरा लगया जे।
ए पूरणमासी पुन पूनम कों बार दोयज को दिन निरमलो जे।
ए वै चंगा-चंगा गभरू[1] बुलाए गारया [2]घमंड घलाइयो जे।
ए वै गज-गज ईंटपथाय गज ल्याओ सुलतान का जे।
ए वै पाथणिया तो चतर सुजान उथलो बालक बेदन जे।
ए वै ल्याया गाड्डी में घाल ल्या उतारी चौक मे जे।
ए वै खोदण लाग्या सैं नीव फेरण लाग्या सूंतली[3] जे।
ए वै ढलकण लाग्या तेल बांट्टण लाग्या गुड डली जे।
ए वै बुलाओ जसरथ का रामचंद्र नै अपनी घरवत सूंचै धरै जै।
ए वै चिणी चिणाई हुई संजोग तो लिप्पण आली लोडिये[4] जे।
ए वै लिप्पैं पोत्तैं घाल मंडेरे हाथ थारी जसरथ कुल बहू जे।
ए वै चित्ते मांड्डे लिखैं कलाई मोर थारी लिछमन भाणली जे।
ए वै चिणी चिणाई हुई सजोग कड़ी करंजा लोड़िये जे।
ए वै कांधै कुहाड़ घाल कै वणखन्ड जोहड़ लीकड़यो जे।
ए वै डस-डस रोवै बणराय यो खात्ती कित जाय सैं जे।
ए वै म्हारे पिछोकड़ै राय चन्दन को रुख वो खात्ती कै चित्त चढ़यो जे।
ऐ वै हड़हड़ हंसै बणराय आयो मूरख टल गयो जे।
ए म्हारे ईलों चीलों घूंघरू लगा मंगरी मोर नचाइये जे।
ए वा चिणी चिणाई हुई संजोग खातण डोहो[5] ल्याइये जे।
ए वा बूझैं सैं नगरी का लोग या खात्तण कित जाय सैं जे।
ए म्हारे रामचन्दर कै रातजगै या खातण उतजाय सैं जे।
ए वा खात्तिका नै पिलंग बिछाओ खात्तण घालो बैडणो जे।
ए वा खात्तिका कै पंचरंग पागड़ो[6] खात्तण मोरंग चूंदड़ी जे।
ए वा खात्तिका नै करो बिदा, खात्तण दिन दस राखल्यो जी।
ए तम भला खात्ती घर जा आपणे खात्तण घड़ले काठकी जे।

---

१. नवयुवक। २. गारा। ३. डोरी। ४. आवश्यकता है। ५. फूलझड़ी बांधना। ६ पगड़ी।

ए हम घड ल्यांगा दो ए रै चार ओस्सी खात्तरा ना मिलै जे ।
ए वा ओस्सी खात्तण दे सै असीस लधो बधो परवार में जे ।
ए तम लधियो बधियो जसरथ का बेट्टा पोत्ता फलियो कड़वा नीम ज्यों जे ।

घरवत माता की स्थापना के पश्चात् दीपक गीत गाया जाता है । इस प्रकार भवन-निर्माण और गृहाधिष्ठात्री देवी के संस्थापन एव आह्वान के उपरान्त लौकिक अभ्युत्थान के प्रतीक दीपक की आराधना बड़ी उपयुक्त है । इन दो मांगलिक गीतो के पीछे अन्य गीत आरम्भ होते हैं । यहाँ दीवा (दीपक) गीत देना भी अनुपयुक्त न होगा ।

दीवा कै मण रे दीवा कैमण गाल्या लोहरे तो कैमण जाल्या कोयला जे ।
दीवा नौमण रे दीवा नौमण गाल्या लोहरे दीवा दसमण जाल्या कोयला जे ।
बात्ते रे तेरे बात्त घाल्यूं सवासेर की घड़ो ए उजेऊं[1] तेलकोजे ।
भर चास्सूं[2] रे भर चास्सूं म्हारै शंकर की धमसाल[3] घर प्यारे कै चांदणो जे ।
भर चास्सूं रे भर चास्सूं म्हारै रामसिंह की धमसाल घर रामसरन कै चांदणो जे ।

रात्रि के आरम्भ में मेंहदी, काजल आदि कृत्यो का उल्लेख रहता है। इनका उपयोग रात्रि में होता है। मेंहदी और काजल शृंगार के उपकरण हैं । विभिन्न त्यौहारो और उत्सवों पर सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने करतल और पदतल दोनो पर मेंहदी रचाती हैं । रमणियों को मेहदी इतनी प्रिय रही है कि उस पर नाना प्रकार के लोकगीतों की सृष्टि हो चुकी है । मेंहदी इतनी शुभ एवं मांगलिक मानी गयी है कि विवाह-संस्कार के पहिले दिन रतजगे मे मेंहदी का गीत अवश्य गाया जाता है । बात यहाँ तक पहुँची है कि मेंहदी की गहरी रचावट बन्नी-बन्ने के दाम्पत्य प्रेम का प्रतीक मानी जाती है ।

मेहदी के एक गीत मे आगरा-दिल्ली की मेंहदी अच्छी बताई गयी है । अजमेर भी इसका एक स्थान है । देवर-देवरानी, जिठानी और नणद का वर्णन आया है । गीत की पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं :—

मेहदी बोई दिल्ली आगरे जी कोई रंग पाट्यो अजमेर, मेहदी रंगभरी जी राज ।
मेंहदी सींचण मैं गई जी कोई छोट्टा देवर साथ, मेंहदी रंगभरी जी राज ।
मेंहदी घोलण मैं गई जी कोई दयोर जिठाण्या साथ, मेंहदी रंगभरी जी राज ।
मेंहदी लावण मैं गई जी कोई छोट्टी नणदल साथ, मेहदी रंगभरी जी राज ।
छोटी बूझै ए बडी तमकहो रात की बात, मेहदी किसीक रची जी राज ।
मेंहदी तो मैं लायलई तू आई न आधी रात, मेंहदी अधिक बणी जी राज ।
दयोरे जिठानी सब कोई आई तूं नहीं आई आधी रात, मेहदी रंगभरी जी राज ।

१. उडेलना । २. बालना, जलाना । ३ दालान, पौली ।

रतजगे के अतिरिक्त अन्य पर्व-त्यौहारों पर भी मेंहदी रचाई जाती है। यह एक अलकार तथा शुभ चिह्न माना जाता है। वात्सल्य युक्त एक गीत में माता अपने बेटे के लिए मेहदी को हिरणी के दूध मे घोलती है। 'हिरनी-घास' के दूध में मेंहदी का रंग अच्छा गहरा हो जाता है :—

मेरी मेहदी के औडे चौडे पात रे, बीरा वारी वारी जां।
मैं तो पीसूगी चकले के पाट रे, बीरा वारी वारी जां।
मैं तो घोलूगी हिरणी कै दूध रे, बीरा वारी वारी जां।
मैं तो लाऊंगी देवेन्द्र भाई के हाथ रे, बीरा वारी वारी जां।

प्रातःकाल के गीतों मे 'दांतन' का गीत मुख्य है। माता यशोदा ने रुक्मिणी जी से दातन माँगी है। रुक्मिणी आज्ञोल्लघन कर जाती है। उसे इस अवहेलना का परिणाम भुगतना पड़ता है। 'दांतन' का गीत एक लम्बा कथागीत है जिसमें आज्ञाकारी पुत्र एव प्रियाप्रेम के व्यवहार की सुन्दर झाँकी देखने को मिलती है। सम्पूर्ण गीत दे देना समीचीन होगा।

हरजी उगन[1] तै परभात मात जसोदा दांतल मांगियो जे।
बाहर तैं आया किसन मुरार माता तो बैठी ऊमण धूमणी[2] जे।
माता क्यू तेरा मेला सै भेस क्यू तू बैठी ऊमण धूमणी जे।
बेट्टा दांतल मांगी बरचार[3] बहू ए हठीली दांतल ना दई जे।
माता ल्याऊं गंगाजल नीर दांतल ल्याऊं चोरवा केल की जे।
बेट्टा या दांतल रुक्मण नै दयोय मेरा तो नाम की सेल्यां[4] हो गई जे।
माता कहो तो दयूं रै बिडार कहो तो घालू धण नै बाप कै जे।
रुक्मण उठो न करो ए सिंगार बिरदरवांसी[5] तेरे बाप कै जे।
हरी जी झूठा तम झूठ न बोल सामण मांसी कैसी बिरदड़ी।
रुक्मण उठो न करो ए सिंगार बेट्टा तो जायो तेरा बीर कै।
हरी जी इब तो तम बोल्या सो साच आसा[6] तो कहिए मेरी भावजे।
हरी जी आप घोडे असवार रुक्मण नै बहल जुडाई बाजणी जे।
हरी जी रमक्यो[7] सै मांझल रात दिन उगायो सुघड सासरै जे।
रुक्मण में तेरा पीहरिया का रूँख ये बड दीखे आमण धूमणा जे।
हरी जी कौल बचन कर जाय कद[8] हर आओ म्हारै पहावणा[9] जे।
रुक्मण सामण बरसैगो मेह भरभादुवै हरिया बन बणैं।
रुक्मण आसौज पितर संजोए कातक आवैं ते ताहुणा जे।

---

१. उत्पन्न, आरंभ। २. उदास। ३. चारबार, कई बार। ४. समाप्त। ५. विवाहोत्सव। ६. गर्भ। ७. चलन। ८. कब। ९. अतिथि, महमान।

हरी जी आया सै रुक्मण घाल आंगण बैठ्या ऊमण धूमणा जे।
मा मेरी क्यां बिण घोर अंधेर क्यां बिन लाग्गे आंगण भिणभिणा[1] जे।
बेट्टा बहुआं बिन घोर अंधेर पोतां बिण लाग्गे आंगण भिणभिणो जे।
हरी जी रमक्यो सै मांझल रात सूरज उगायो सुघड सासरै।
हरी जी दूध परवालैं[2] धारा पांव चौकी तो घालैं थमनै बैठणै।
हरी जी हस्थाएँ मूंगा की सै दाल चावल तो रांधां हरनै ऊजला।
हरी जी बूरा की रेलमठेल[3] घी बरतावै हरनै टोकणी।
हरी जी जीमो न बड्बड गास रुक्मण देगी हरनै ओल्हणा[4]।
हरी जी वो दिन करल्यो न याद् ऊभी[5] तो छोडी सीला बड़तलै।
रुक्मण वो दिन करल्यो न याद् मात जसोदा दांतल ना दई।
रुक्मण तूं मत बेदल[6] होय मैं मन राख्यो बुढ़िया माय को।
रुक्मण तूं मेरा माथा को मोड़ मात जसोदा सिरको सेहरो जे।
रुक्मण ब्याहूं तेरा वर्गी दो ए चार मात जसोदा वर्गीकुल में कोए नहीं।
रुक्मण उठो न करोए सिगार तड़कै तो चालां अपणा देस नै।
मा मेरी खोलो न अजड़ किवाड सांकल तो खोलो लोहा सार कीजै।
माता महलां तैं नीच्चै उतर आये पांव पड़ै तेरी कुल बधू जे।
बेट्टा तम जीओ कोड़ बरास पांय पडैगी अपणी माय कै जे।
माता अबला सा बोल न बोल पांय पड़ैगी सासु नणद् कै।

रुक्मिणी पतिपरायणा सहधर्मिणी के रूप में कृष्ण जी के साथ लौट आती है; पर यशोदा के मन में अभी 'हुक्म अदूली' का गिला शेष है और वह उसकी सेवा स्वीकार नहीं करतीं। यहाँ पर यशोदा में कलहारी सास के स्वभाव की झाँकी मिल जाती है। सास के ललाट में पुत्र व पुत्रवधू दो नेत्र हैं परंतु दोनों में इतना पक्षपात? जीवन की कैसी विडम्बना है। इस गीत में कृष्ण के जीवन की एक और घटना की ओर पाठक का ध्यान जाता है कि यहाँ रुक्मिणी बहू के साथ देवकी सास का वर्णन नहीं है यशोदा सास का है।

व्याह के रतजगे में, मेंहदीं रचाते समय (तिलवा) गीत भी गाया जाता है। इस गीत के पूर्वार्द्ध में तो नणद तिलकी खेती के विषय में वार्त्तालाप है, किन्तु अंत में भाई के परकीया-प्रेम की शिकायत बहन से की गई है। अंतिम भाग इस प्रकार है :—

---

१. उदास, निर्जन। [illegible] गेवैं। ३. अधिकता। ४. उपालंभ। ५. [illegible]।
६. निराश।

अपने वीरा नै बरजले मेरी नणदी बरजले अलबेली परघर चोरी जायें।
देवर हो तो वरजल्यां मेरी भाबो वरजल्यां अलबेली, भइया न बरजे जायें।
घर की खांड़ किरकिली मेरी नणदी किरकली अलबेली पर घर रालो चाट्टण जायें।

इस गीत में भाई-बहन के संबंध के उस स्वरूप को दिखाया गया है जहाँ बहन का विशेष दखल नहीं है। वासनामयी चित्तवृत्तियो पर तो हृदयेश्वरी भाभी का अकुश ही कार्य कर सकता है।

आश्चर्यभाव समन्वित जकड़ी के बड़े-बड़े गीत भी इस रात में गा लिये जाते हैं। इनमे कुछ बातें तो सार्थक एवं समझ में आने वाली होती हैं; शेष निरर्थक, केवल एक आश्चर्यभाव की शान्ति उनसे होती है।

जकड़ी के गीत उन गीतों को कहते हैं जो अवसर-विशेष पर गाये जाने वाले गीतों के बीच-बीच में गा लिये जाते हैं। इस शैली के गीतों का आकार प्रायः विशाल होता है और भाव-पक्ष विस्मयकर तत्त्वयुक्त होता है। जकड़ी के इन गीतो मे हास्यरस का भी सुन्दर समावेश मिलता है। अश्लीलता एवं यौन संकेतपूर्ण गीत भी इसकी परिधि में स्थान पा जाते हैं।

आश्चर्यभाव की उद्भावना कैसी अनहोनी बातों के संयोग से की गयी है, यह निम्नलिखित जकड़ी गीत मे देखिए :—

झूठ नहीं बोल्लूंगीं झूंठ की सै म्हारै आण।
पानीपत की सड़क ऊप्पर मिंडक बॉठूटे बाण॥ टेक॥
बिल्ली तो म्हारे दूध बिलौवै,
कुत्ता आवै शीतलैंण, सिर पर धरकै झाव।
चिड़िया तो म्हारै करै लावणी मोरदांती दे।
झूंठ नहीं बोलूंगी झूठ की सै म्हारै आण॥ टेक॥
कच्छुआ तो म्हारै भैंस चरावै पाली बणकै,
मींडकी तो रोटी लेजा बहु बणकै॥ टेक॥
पहाड़ पर तैं कीड़ी उतरी नौ मण पीगी तेल,
भूठ नहीं बोलूगी है सिर पर धररी रेल॥ टेक॥
मरी पड़ी कीड़ी में सौ मन होग्या बोझ,
धीसणिया पै घिसदी कोन्या, घीसण चले चमार।
सौ जोड़े तो जुत्ती बणगे सांट्टे कई हजार॥ टेक॥
कीड़ी तो या दिल्ली चाली सिर पर धरली सोने की ईंट।
सहर का बाणिया न्यू उठ बोल्या लट्ठा लेगी था छींट।

झूंठ नहीं बोल्लूगी झूठ की सै म्हारै आण ।
पानीपत की सडक ऊप्पर मिंडक बांट्टे बाण ।

एक दूसरे गीत मे अनमेल वृद्ध विवाह के पक्ष मे विलक्षण एव अतर्कित समाधान किये गये हैं। सोलह श्रृङ्गार करके एक युवती अपने हृदयेश्वर के पास आशा-दीप संजाने जाती है। पतिदेव जर्जरकाय हैं। नवोढा पत्नी को निराशा होती है। वह आत्मघात की बात सोचती है। इस अवसर पर वृद्ध महाशय वार्द्धक्य की विशेषताओं की परिगणना कराने लग जाते हैं। अन्य विशेषताओं के साथ एक विशेषता यह भी बतलाई गई है कि वृद्ध की उत्पादन शक्ति प्रमाणित है। इस जकड़ी में लोकमेधा की तर्क (दलील) की उड़ान दर्शनीय है :—

अमां मेरी री कर सोलहा सिंगार बूढ की सेजां धीरै गई ए मेरी मां।
ज्यानी मेराओ, पल्ला उघाड़कै देख सिराहनै खड़ी पदमनी ओम्हारा श्याम।
गोरी म्हारी ए डगमग हालै नाड़, गोडा में पानी[1] पड़ रहूया ए म्हारी नार।
अमां मेरी ए मरूंगी जहर विष खा, बूढ़े नै बेटी क्यूं दई ए मेरी मां।
गोरी म्हारी ए छैल अडे अड़े बोल न बोल कदे तो कबड्डी खेलता ए म्हारी नार।
गोरी म्हारी ए छैल तो जावै परदेश, बूढ़ां तो सोवै सेज में ए म्हारी नार।
ज्यानी मेराओ, घर होती छैला नार इकली मैं तो सो जाती ओ म्हारा श्याम।
गोरी म्हारी ए छैला की हांडे बांझ बूढ़े कै टाबर खेल ए म्हारी नार।
गोरी म्हारी ए दमडा की लोभी थारा बाप माया की लोभण मायड़ी ए म्हारी नार।

जकड़ी के इन गीतों में जुआरी, खोटा, काला और याणा (अल्पवयस्क) पति का भी वर्णन पत्नी की शिकायतभरी वाणी से हुआ है।

आश्चर्य के साथ हास्यभाव का एक चित्र हरियाणे की एक जकड़ी में अपूर्व छटा से आया है। इसमें एक भोले जाट को हास्य का आलम्बन बनाया है। चित्र मे एक सजीवता है :—

मन्नै तो पिया गंगा न्हुवादे जारी सै संसार, हां ए जारी सै संसार।
तन्नै तो गोरी क्यूकर न्हुवादयूं हात्तड़ पड़री भैंस, हां ए हात्तड़ पड़री भैंस।

एक जतन पिया मैं बतलादयूं :—

खुंटी पै मेरा दामण लटकै चुंदड़ी छाप्पेदार, हां ए चुंदड़ी छाप्पेदार।
डब्बे मे मेरी नाथ धरी सै पहर काढ़ियो धार, हां ए पहर काढ़ियो धार।
बाहर तैं इक मोडिया आया,

बेब्बे भिच्चा डाल, हां ए बेब्बे भिच्चा डाल ।
बेब्बे तो तेरी न्हाखगई सै,
जीज्जा काढै धार, हां ए जीज्जा काढै धार ।
खुंटा पाड़गी जेवड़ा तुड़ागी भाजगी सै भैंस, हां ए भाजगी सै भैंस ।
डंडा लेकै पाछै होलिया लैण गया था भैंस, हां ए लैण ग्या था भैंस ।
गात्ती खुलगी पल्ला उडग्या मूंछ फड़ाके लैं, हां ए मूंछ फड़ाके लैं ।
गलियां में वा चरचा हो रही, देखी मुंछड़ नार, हां ए देखी मूंछड़ नार ।
कोटठे चढ़कै रुक्के मारे कोई मत भेज्जो न्हाण, हां ए कोई मत भेज्जो न्हाण ।

उपरोक्त जकड़ी गीत छोटे आकार के हैं; परन्तु इन गीतों मे एक प्रबध कथात्मक गीत भी गाया जाता है। 'रजमल' नामक राजकुमार अपनी सहोदरा 'गौरा' से विवाह की हठ करता है। सब लोग उसे इस अपकृत्य से विमुख करते हैं, पर वह अपनी वृण्य हठ को नहीं छोड़ता। गौरा स्वय अपने सत की रचा करती है और कामांध रजमल को अपने पाप पर प्रायश्चित करने के लिए छोड़ जाती है :—

एक राजा के बेब्बे सात पुतर था ।
सातां बिचालै दो ए बाहण थीं ।
एक पीसे री एक रोटी बी पोवै,
पोय पोय कै लेकैरे चाली ।
छऊं भाइयां नै रोटी बी जीमीं,
नहीं जीमीं मेरे रजमल भाई री ।
के बेट्टा रे तेरे ताप चढ़ो,
के बेट्टा रे तेरे सिर में दर्द ।
ना बाबू मेरे सिर में दरद,
ना बाबू मेरे ताप चढ़ा ।
फेरा दिवा दे बापू गोरा भाण सैं ।
ऐसी मत सोचै रजमल हुई ना जगत में ।

कथा के उत्तर पच्च की मार्मिकता दर्शनीय है :—

हंस हंस तै रजमल न्हाण संजोवै,
रो रो कै वा गौरा न्हाण संजोवै ।
हंस हंस कै रजमल कपड़ा बी पहरै,
रो रो कै वा गौरा कपड़ा बी पहरै ।
हंस हंस कै रजमल पट्ठा बहावै,

रो रो कै वा गौरा सीस गुंथा वै ।
हंस हंस कै रजमल घोड़ा पै बैठ्या,
रो रो कै वा गौरा अरथां में बैट्ठी ।
एक पैंड चाला रजमल दो डग चाला,
एक पैंड चाली गौरा दो डग चाली ।
तीजी पै मरीए तिसाई ।
ना इत कुआ ना इत जोहड़, कितै ल्याऊं जल भर झारी ।
फाटगी धरती, समा गई गौरा, खड़ा हे लखावै वा रजमल भाई ।
तेरी तो बेट्टी बापू सत की निकली, सत की निकली,
फट गई धरती समा गई गौरा, समा गई गौरा ।

गौरा के पावन चरित्र की कथा सतीश्वरी सीता के उदात्त चरित्र की परिधि को छू गई है । साम्प्रतिक इतिहास की यह वस्तु कितनी प्रभविष्णु है, यह अस्पष्ट नहीं है ।

हरियाने का नवयुवक फौज का धनी है । उसका दृष्टिकोण नवीन तथा आधुनिक है । उसकी ग्रामीणा कुलवधू को भी नई रोशनी का चस्का लगा है । नई रोशनी के आगे उसको पुराना वैभव फीका जॅच रहा है । साड़ी, जंफर और मोटरकार का मोह इतना तीव्र है कि वह अपनी पैतृक सम्पत्ति को भी बेच देने का सुझाव देती हैं :—

ऊची एडी बूंट बिलाती पहरन खात्तर ल्यादे,
जै तेरे बसकी बात नहीं तो म्हारे घरां खंदा[1] दे ।
बाग बेक दे विरसा[2] बेक दे मन्नै रमझोल घड़ा दे,
जै तेरे बसकी बात नहीं तो म्हारे घरां खंदा दे ।
बैल बेक दे भैंस बेक दे साड़ी जम्फर ल्यादे,
जै तेरे बसकी बात नहीं तो म्हारे घरां खंदा दे ।
नौहरा[3] बेक दे महल बेक दे मोटरकार मंगा दे,
जै तेरे बसकी बात नहीं तो म्हारे घरां खंदा दे ।

गोरी सई सांज की कहां गई कोई कहां लगाई सारी रात।
एरी बनजारा, नवल बनजारा टांडा गेरिये।
राजा बड़े जेठ कै रतजगा, कोई वहीं गंवाई सारी रात,
एरी बनराजा, नवल बनजारा टांडा गेरिये।
गोरी न तेरीं हात्तन मंहदा रचरहे, कोई ना तेरे नैनां नींद,
एरी बनजारा, नवल बनजारा टांडा गेरिये।
राजा मंहदा की बिरियां सो गई, कोई न्यूं ना नैनां नींद,
एरी बनजारा, नवल बनजारा टांडा गेरिये।
गोरी कलेजा तेरी धड़क रह्या, कोई पैर रहे थर्राय,
एरी बनजारा, नवल बनजारा टांडा गेरिये।
राजा नांचत कलेजा धड़क रह्या, कोई पैर रहे थर्राय,
एरी बनजारा, नवल बनजारा टांडा गेरिये।

लोकमानस किस प्रकार रस ध्वनि समन्वित ऐसे काव्यमय अंशो की उद्‌भावना कर लेता है, यह बात भी उक्त गीत से प्रकट होती है।[1] यहाँ विपश्चित प्रयोगार्थ एक संस्कृत श्लोक तुलना के लिये उद्धृत है :—

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो,
नेत्रे दूरमनंजने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।
मिथ्यावादिनि दूति बांधवजनस्याज्ञातपांडागमे,
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ॥

हे तन्वी! तेरे स्तनतट चंदन रहित हैं, अधरों की लाली दूर हो गयी है, आँखों से अंजन पुंछ गया है और तुम्हारा शरीर भी पुलकित हो रहा है। प्रतीत होता है कि तुम वापिका में स्नानार्थ गई थीं?

संस्कृत श्लोक की नायिका दूती से हार मान गयी है, परन्तु लोक-गीत की नायिका अपने प्राणवल्लभ की कचहरी से भी छूट गयी है। उस पर दोष स्थापित नहीं हो सका है।

इस अवसर के गीतों में एक गीत काली गोरी स्त्री का अन्तर स्पष्ट करता है। भले ही पत्नी सुजाति, सुलक्षणी एवं सुभूषिता हो, परन्तु उसका सुवर्णा होना परमावश्यक है। इसी कसौटी पर गोरी काली नायिकाओं की परख हो रही है :—

---

१. यह गीत लेखक को 'शिक्षा-संस्कार-विहीन' चमारों के रतजगे में मिला है।

बेकार उनका जीना जिनकी काली हैं लुगाइयां ।
जब वो काली पानी को चालीं काले काले कलसे उनकी काली हैं सुराहियां ।
बेकार उनका जीना जिनकी काली हैं लुगाइयां ।
शाबाश उनका जीना जिनकी गोरी हैं लुगाइयां ।
जब वो गोरी पानी को चालीं गोरे गोरे कलसे उनकी गोरी हैं सुराहियां ।
बेकार उनका जीना जिनकी काली हैं लुगाइयां ।
जब वो काली रसोई में चालीं, काले काले बेलन उनकी काली हैं कलाइयां ।
शाबाश उनका जीना जिनके गोरी हैं लुगाइयां,
जब वो गोरी रसोइयां में चाली, गोरे गोरे बेलन उनकी गोरी हैं कलाइयां ।
बेकार उनका जीना जिनकी काली हैं लुगाइयां ।
जब वो काली सेजां मैं चाली, काले काले टाबर[1] उनकी कौन करे सगाइयां ।
शाबाश उनका जीना जिनकी गोरी हैं लुगाइयां ।
जब वो गोरी सेजां में चाली, गोरे गोरे बालक उनकी हाल[2] करे सगाइयां ।

कैसा अवमूल्यन है मानव का । सगाईमात्र ही उसका चरम लक्ष्य बन गया है । यह रतजगे के गीतों का एक साधारण वर्णन मात्र है। वैसे इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतो का बहुत विस्तार है ।

लाडो

विवाह संबंधी गीतो में 'लाडो' का अपना एक विशिष्ट स्थान है[3] । इन गीतों में कन्या के हृदय में उमड़ती हुई भावनाओ को शब्दों मे चित्रित किया जाता है । जितनी रसात्मकता एवं सामाजिकता इन गीतो मे मिलती है, अन्य गीतों में नहीं मिलती । बन्नी की मनोदशा की जीवित मूर्ति इन गीतों में अंकित होती है । इनमे पूर्वानुराग से लेकर वर की छाट, सात्वना, सुन्दर गृहस्थी की कल्पना और शिक्षा, शिव-पार्वती की पूजा आदि के गीत होते

---

१. बालक, बच्चे । २. तत्काल, फौरन ।

३. हरियाना में इन गीतों को 'सुहाग' और 'बंदड़ी' या 'बन्नी' नाम से भी पुकारा जाता है । इन चारों नामों में से लाडो और सुहाग ही अधिक प्रचलित है । ये गीत कन्या-पक्ष में गाये जानेवाले गीत हैं । वर-पक्ष में जो गीत गाये जाते हैं वे घोड़ी, बन्ना, बंदड़ा अथवा लाडा के नाम से विख्यात हैं । इन दोनों प्रकार के गीतों की रूपरेखा तथा विषय सामग्री पूर्णरूपेण पृथक होती है ।

हैं; यह कहा जा सकता है कि सोहाग के गीत सौभाग्यकांक्षिणी कन्या के मनोविज्ञान के शब्द चित्र हैं। कन्या के विवाहित जीवन की शुभ कामना इन गीतो का उद्देश्य है। परिवार के लोगों को इन गीतों द्वारा कर्तव्य का स्मरण कराया जाता है। कई गीत वर के प्रति प्रार्थना एवं आकांक्षाओ से पूर्ण होते हैं, इनमें वर-पक्ष के सदस्यो से कन्या के प्रति उदार एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार की कामना की जाती है। विस्तृत विवरण आगे दिया गया है।

यौवन का उभार है। हरियानी पुत्री पिता से अपनी मनोदशा का वर्णन करती है। वह नींबू तोडने के लिए उद्यान मे गई है। उस शात एकात वातावरण मे उसकी मनस्कामना जाग्रत होती है। साथ की सहेलिया अपनी सुसराल मे हैं, यह भाव उसे और भी चुभता है। अंत में, लज्जावरण में ढकी दबी हरियानी कन्या कह जाती है :—

बिर बाबल हो तन्नै के कहूं,
मन्नै कहती नै आवै लहाज[1], निबुआ तोड़न मैं गई।
म्हारा जोड़ा की सास रे,
कोई हमनै दे परणाय[2], निबुआ तोड़न मैं गई।
बेट्टी, धोरी[3] रह मेरी धीयडी,
धीरां सब कुछ होय, निबुआ तोड़न मैं गई।
गाड्डी भर दूँ दायजा[4],
तन्नै भूरी दे दूँगा भैंस, निबुआ तोड़न मैं गई।
बाबल[5], आग लगाऊं तेरे दायजै,
भूरी नै ले जा चोर, निबुआ तोड़न मैं गई।
बाबल या जोबन दिन चार का,
बाबल बाजीगर का खेल, निबुआ तोडन मैं गई।

युवती पिता की शिक्षा की असारता प्रकट करती है। उसे अपने अनायास उभरते यौवन की चिता है। युवती की भावनाओ का मार्मिक चित्र है :—

बाबल, जे मैं ऐसी जाणती, जोबन धरती जिमाय[6],
मंहगा करके बेचती, नूण मिरच कै भाव, निबुआ तोड़न मैं गई।
बाबल, चढ़ता जोबन न्यूं चढ़ै,
जाणों, चिखा की रास, निबुआ तोडन मैं गई।

---

१. लज्जा। २. ब्याह कर दे। ३. शांत। ४. दहेज की वस्तुएं। ५ पिता के लिए संबोधन। ६. जमाकर रखती।

बाबल, ढलता जोबन न्यूं ढलै,
जाणु, चिणा की रास, निबुआ तोड़न मैं गई ।
बाबल, जै मैं ऐसी जाणती,
जोबन नै धरती जिमाय,
मंहगा करके बेचती, नूण मिरच के भाव, निबुआ तोडन मैं गई ।

युवती की चिंता में विवशता मिली हुई है :—

बाबल, छींके धरूं तो ढै पड़े,
बाबल, तलै धरूं तो बिलिया खाय, निबुआ तोडन मैं गई ।

अपने यौवन को छींके पर धरती हूँ तो गिरने का भय है; यदि भूमि पर धरती हूँ तो बिल्ली आदि धृष्ट रसिको द्वारा खाये जाने का डर है ।

लाडो या सुहाग गीतों की मार्मिकता उस स्थल पर अवर्णनीय है जहाँ पुत्री अपने पिता से मनोवांछित वर खोजने के लिए प्रार्थना करती है । इन गीतों का संबंध उस युग से है अथवा ये गीत उस युग के अवशेष हैं, जब कि कन्या से स्वयंवर की स्वतंत्रता छिन गई थी । परन्तु कन्या से उसकी रुचि-अभिरुचि जानी जाती थी । कहीं-कहीं पर स्वयंवर की प्रथा भी लोक-गीतों के झीने पर्दे के पीछे झांकती प्रतीत होती है । एक गीत में वरयंवर की विशेषताएँ कन्या अपने मुख से कह रही है :—

अमरबेल उदय पर छाई जी राज,
जिस तलै म्हारी लाड्डो खेलण आई जी राज ।
कहो म्हारी लाड्डो कैसा वर ढूंढ़ें ?
काला मत ढूंढो कुल नै लजावैजी राज,
भूरा मत ढूंढो चलताए पस्सी जै जी महाराज ।
लम्बा मत ढूडो खड़ाए सांगर[1] तोड़ै जी राज,
छोट्टा मत ढूंढो सब दिन खोट्टा जी महाराज ।
इसा वर ढूडो कंवर कन्हैया जी राज,
कंवर कन्हैया मथुरा बन के बासी जी राज ।

एक अन्य गीत में सुखद गृहस्थी के लिए आदर्श पात्रों की कल्पना भी बड़ी अनूठी है । इस गीत में राम की सुखमय गृहस्थी को ही लौकिक आदर्श माना गया है । कन्या के सही मनोविज्ञान का विश्लेषण इस गीत की सम्पत्ति है :—

---

१. शमीवृक्ष की फलियां ।

तेरा ताऊ ए खड्या हथ जोड़,
लाड्डो हे कुछ मांग लिए।
मेरी सीता सी ढूंडी सास,
सुसर मेरा जसरथ सा।
मेरा बालम सिरी भगवान्,
छोट्टा री देवर लछमन सा।
अजुध्या सी नगरी जै राज रजां ॥

यहाँ राम के मातृपक्ष में से कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकयी को छोड़, सन्नारी सीता में सास की भावना की कल्पना अपूर्व है। किसी-किसी गीत मे पाठ 'कौसल्या सी दूडो सास' भी आया है। यहाँ, इस गीत के ऊपर किसी टीका-टिप्पणी, ननु नच की आवश्यकता नहीं। आर्य जाति के सस्कार एवं उसकी परम्परा ही इसका एकमात्र आधार है।

पंजाबी लड़की ने भी इसी प्रकार वर के विषय मे अपनी बात कही है :—

बाबल ! इक्क मेरा कहना कीजे।
मिन्नूं राम रत्नवर दीजे।

इन गीतों में वर के प्रतीक राम, देवर के प्रतीक लक्ष्मण और कन्या का आदर्श सीता मानी गयी हैं। ससुर के लिए दशरथ की कल्पना है। इनमे गौरवमयी भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं मर्यादा के चित्र अंकित हैं।

एक अन्य गीत में सांवले वर को देखकर लाडो को क्षोभ हुआ है। वह अपने दादाजी से शिकायत कर रही है। दादा जी उसे आश्वासन देते हैं।

छज्जै तो बैट्ठी लाड्डो कंवर निरखै,
दादा हो वर सांवला।
राहे तो बिचालै लाड्डो ताल खुदादयां,
न्हाया तो धोया वर ऊजला।
किस्तूरी मंगादयां बर कै अंग लगादयां,
केस्सर प्यादयां बर नै घोल कै।

लाड्डो को अंत मे यह भी बतला दिया गया है कि वर का सांवलापन स्थायी नहीं अपितु अस्थाई एवं सहेतुक है :—

अरथां कै हलकै [1] लाड्डो गरद उडै,
गरद ए उडै वर सांवला।

---

१. समूह, झुंड।

विभिन्न उपचारों से भले ही बर 'गौर न हो पर सामयिक सांत्वना तो समुचित ही है। केवल इच्छामात्र से बर गौराग नही मिलता। भारतीय कन्या उसके लिए तपस्या करती है, साधना करती है। उसकी इष्ट हैं पार्वती जी। प्राक्काल से ही भारतीय पुत्री श्रेष्ठवर के लिए पार्वती जी की साधना करती आई हैं। सीता ने भी ऐसा ही किया था। हरियाना की लाड्डो भी गौरीशंकर की उपासना में रत हैं :—

मेरी छोटी सी बन्दडी पारबती शिव की पूजा करती है।
अपने बाबल के बागां में जाती, फूल तोड़ कर लाती,
फूलां का हार बनाती शिव शंकर को पहनाती है।

इन 'लाड्डो' गीतो मे कन्या को उपयुक्त शिक्षा भी दी जाती है। वह जीवन के नये मोड़ पर होती है। अतः उसे कुछ अनुभव बतला दिये जाते हैं। ये सुहाग गीत 'लगन' के पीछे नित्यप्रति इसी कारण से संभवतः गाये जाते हैं कि उनका प्रभाव 'बन्दड़ी' के मन पर स्थायी रूप से पड़ जाये। उदाहरण :—

मैं समझाऊं समझ मेरी लाडो अपना धर्म निभाणा है।
भाई भतीजे तेरे आडै रहजां, किसनै रोकै सुणावै है।
जोहड बिराणा, कुआं बिराणा नीची नज़र लखाणा है।
बारी[1] सोणा बखतै[2] ऊठना, यो हे परण[3] निभाणा[4] हैं।

हरियाना मे पानी की एक समस्या है। जल के साधन पोखर और कुएं मात्र हैं। उन स्थानों पर जाने-आने के आचार की एक सुन्दर सीख इन गीतों में दी गयी है और नववधू के ऊपर तो सबका आधिपत्य होता है। उसे सबकी सेवा करनी होती है। अतः ऐसी सेवा के लिए देर से सोना, प्रातः उठना लाभकारी होता है। जीवन-दर्शन की ऐसी अनेक व्याख्याएं इन गीतों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं।

सुन्दर वराकांक्षिणी कन्या को 'गेहूँ बाजरा' भक्षण की लाभ हानियां किस प्रकार हंसी-हंसी में समझा दी गयी हैं :—

लाडो बाजरे की रोटी मत खा साजन काले आवेंगे,
लाडो गीन्हां के झावर[5] झल्ले खा साजन गोरे आवेंगे।

---

१. देर। २. शीघ्र, प्रातःकाल 'अरली इन दि मोरनिंग'। ३. प्रण, प्रतिज्ञा। ४. पालन करना। ५. मोटी-मोटी रोटियां।

एक कहावत है 'जैसा खाये अन्न वैसा हो जा मन, जैसा पीवै पानी वैसी हो जा बानी'। परतु यहाँ तो बरनी के अन्न-विशेष के भक्षण से वर का कायाकल्प होता दिखाया गया है। लोक-गीतों की दुनियां में अन्ध-विश्वासों का भी विशिष्ट स्थान है।

बन्दड़ा

वर-पक्ष के गीत बंदड़ा, बन्ना, लाडो, अथवा घोड़ी के नाम से पुकारे जाते हैं। पंजाबी गीतों मे तो 'घोडी-गीत' वर-पक्ष के सभी गीतो का प्रतिनिधित्व करते हैं। पर इधर हरियाने मे इन दो प्रकार के गीतो, बन्दडा और घोड़ी मे कुछ अन्तर आ गया है। बन्दडा का विषय वर के स्वभाव, रूप, गुण, शिक्षा, कर्तव्य और नखरे आदि को लेकर चलता है। उसके वस्त्राभरण की गणना भी इनके अन्तर्गत आ जाती है। घोडी में प्रायः घुड़चढ़ी के समय के गीत होते हैं। इसी समय सेहरा या मौड के गीत भी गाये जाते हैं। घुडचढ़ी के एक गीत में माता एव भगनी अपने लाडले बन्ने के प्रति अपने-अपने सबध की महत्ता प्रकट करती हैं। यह सवादात्मक गीत बड़ा ही रोचक है। माता कहती है :—

> **दूधी की मारूं धार, गुमानी बेटा मा नै करे भूल नहीं जा।**
> **याद दिलाऊं सूं अक आवैगी नई बहू रानी बेटा भूल नहीं जा।**

बहन भी इसी प्रकार कहती है :—

> **गुड़िया में मारी मन्नै लात,**
> **बीरा खिलाया दिन रात, बीरा भूल नहीं जा।**

'घोडी' मथुरा की श्रेष्ठ बतलाई गई है। उसका मूल्य भी बहुत अधिक है। नौ लाख की वह घोड़ी है। दादा जी से एक ऐसी अनोखी घोड़ी की माग निम्नलिखित गीत मे की गयी है :—

> **चंचल घोड़ी चांदणी मुथुरा तै आई।**
> **ले म्हारा दादा जी मोल ले थारी होय बड़ाई।**
> **कै लख लीली का मोल कै एक लख चुकाई,**
> **दस लख लीली का मोल नौ लाख चुकाई।**
> **चढ़ म्हारा अहलाडा[1] एड दे अब देखू तेरी चितराई।**

ठीक है ऐसी बहुमूल्य एव चपल घोड़ी पर वर की परीक्षा का अच्छा अवसर खोजा गया है।

---

१. लाडला, दूल्हा।

एक अन्य घोड़ी में वर के सौन्दर्य की स्पष्ट झांकी मिलती है :—

घोड़ी ले दीजो दादा जी म्हारा मोल है रस घोड़ियां।
अगल बगल भरी निबुआं सैं,
वाका हाथ रचा चोखी मेंहदी सै,
वाका नैण घुला चोखा सुरमा सैं,
वाका दिलभर आया चोखी बनडी सै,
ऐ मैं वारी मैं वारी बन्ना जी थारा रूप सै रस घोड़ियां।

घोड़ियों में वर की श्रृंगारमयी मूर्ति का खुला वर्णन आया है। इन गीतों में वर की समता साक्षात् कामदेव के साथ की गयी है।

'बंदड़ा' गीतों में 'घोड़ी' से कुछ अलग हटा हुआ वर्णन होता है। इनमें वर की सज्जा आदि का वर्णन आ जाता है। एक बन्दड़ा गीत में अल्पवयस्का वरनी की युवक वर से प्रार्थना है और साथ ही चेतावनी भी है :—

हरियाला बन्ना ! काची कली मत तोड़िये माली को देगी गालियां।
सहजादा बन्ना ! पाकण दे रस होण दे तेरे ताईं[1] नवा[2] दूंगी डालियां।

इस बन्दड़ा गीत में साफा, पाजामा, अंगूठी का वर्णन है जो वर की सज्जा के लिए आवश्यक है, परंतु वर को इनसे भी बढ़कर एक चाहना और है। वह है बरनी की :—

हरियाला बन्ना ! बंदड़ी तो ले दूं तेरी मौज[3] की,
पिलंग चढ़ पौढ़ता[4] क्यूं नाहे।

इस गीत में 'कमसिन बाला की जवां होने तक' की प्रार्थना की बात एक प्रतीक प्रयोग द्वारा सुन्दरता से कही गई है जो बड़ी प्राभवशाली है। इसके समक्ष अच्छे-अच्छे काव्य-खंड भी फीके लगते हैं।

कुछ गीतों में आधुनिक प्रभाव भी आ गया है। ब्रह्मचर्य की महत्ता और गुरुकुल की विशेषता इनका विषय है—

चलती मोटर नै डाट्टै,
बाणों से निसाना काट्टै,
सांकल तोड़ै भारी जी हमारा बनड़ा।
गुरुकुल का ब्रह्मचारी री हमारा बनड़ा।

---

१. ओर, प्रति। २. झुका दूँगी। ३. इच्छा की। ४. सोना।

ढुकाव

ढुकाव जिसका नाम बारौठी भी दिया जाता है 'श्वश्रुगृह प्रवेश' कार्य से संबद्ध है। इसे 'तोरण चटकाना' भी कहते हैं। इस अवसर के गीतों में प्रायः गालियां होती हैं। कहीं मा को हड्डो [1] बतलाया गया है, तो कहीं दूल्हे को काला। देवर जेठ को नौकर कहा गया है। जिठानी-दौरानी की ईर्ष्या की व्यंजना भी एक गीत में हुई है।

उतरे बन्ना घोड़ियां साहेजादा बन्ना,
बन्ना की मायड़ हांडनी साहेजादा बन्ना,
हाथ अटेरन कूकड़ी साहेजादा बन्ना,
डेढ़ तुली को बंगलो चिणादयूं तो मेरा कामण साच्चा।
सारी तो सारी जान बठादयूं तो म्हारा कामण साच्चा,
ऐसा तो कामण म्हारा राई बर नै सोहै।
डेढ़ मूंग का बड़ां[2] उतारूं तो मेरा कामण साच्चा,
सारी तो सारी जान जिमादयूं तो मेरा कामण साचा,
ऐसा तो कामण म्हारा राई बर नै सोहै।
बिण बदली को मेंह बरसादयूं तो मेरा कामण साचा,
सारी तो सारी राई बर जान भिजवादयूं तो मेरा कामण साचा,
ऐसा तो कामण म्हारा राई बर नै सोहै।
छोटटा देवर पीसै पोवै बडा भरैगा पाणी,
द्योर जिठाणी झुलझुल झाकैं, बंदड़ी घर की राणी।

गीत में आश्चर्यजनक तत्त्वों की उद्भावना बड़ी खूबी के साथ हुई है। 'डेढ मूंग का बड़ा' समस्त जनेत (बरात) को पर्याप्त है। अनौखी अन्नपूर्णा है।

ढुका के एक गीत में वर को फौजी आफिसर के रूप में दिखलाया गया है :—

बाजा रै नगाडा म्हारै रणजीत का जणु हाकम आया।
अपनी सीमण छोड़कै बनदड़ी विवाहण आया॥

एक दूसरे बारौठी के गीत में, जो हमे यमुना के खादर के मिला है, वर को काला और वरनी को चांद सूरज की भांति उजली दिखाया गया है। भाषा अलबत्ता हरियानी नहीं है, खड़ी बोली है :—

---

१. हांडनेवाली, भ्रमणशीला। २. दहीबड़ा।

नहीं ब्याहूं राधे जी कन्हैया तेरा काला ।
तेरा कान्हा ऐसा काला, जैसा कम्बल काला ।
मेरी तो राधे ऐसी जिसी चंदा पै उजाली, सूरज पै उजाली ।
नहीं ब्याहूं राधे जी कन्हैया तेरा काला ।
छीन छीन दुद्ध खाय मुलक का, मक्खन खा गया सारा,
कैसे करेगा री मेरी राधे का गुजारा ।

काला काला मत करै ग्वालन मुझको जगत उजाला,
औरों के दो चार कन्हैया, मेरे तो एक राम रे खिलौना ।
नहीं ब्याहूं राधे जी कन्हैया तेरा काला ॥

एक अन्य गीत में वर को भैंसा जैसा काला और वरनी को कागज से भी धोली कहा गया है । दोनो स्थानों पर उपमान लोक के सहज जीवन से लिए गये हैं :—

फेरां पै ना जांगी बाहण मेरा बिल्कुल टाला सै ।
बारौठी पै देख लिया मेरा देख्या भाला सै ।
कागज तैं बी धोली बाहण, वा झोट्टे तैं काला सै ।
फेरां पै ना जांगी बाहण मेरा बिल्कुल टाला सै ।

इस गीत में ढुका प्रथा की उपयोगिता के विषय मे भी संकेत मिलता है । कन्या वर को फेरा संस्कार से पहिले देख लेती है ।

फेरे

फेरों पर गाये जाने वाले गीतों में कन्या के विवाह मंडप में आने की कठिनाई आदि का वर्णन है । वर बड़ी चतुराई से उन पुरुषो को प्रलोभन देता है जो वरनी के मंडप में आने में बाधक हैं । बरनी के दादा को वह अपनी दादी देने की बात कहता है और ताऊ के साथ ताई विवाहने की :—

मैं क्यूंकर आऊं मेरा राय दुल्हवा आगे मेरा दादा अड़ रह्या ।
तेरा दाद नै अपणी दादी विन्हायां चौंरी[1] नै राक्खां जगमगी ।
मैं क्यूंकर आऊं मेरा राय दुल्हवा आग्गे मेरा ताऊ अड़रह्या।
थारा ताऊ नै अपणी ताई विन्हायां चौंरी नै राक्खां जगमगी ।

फेरों पर कन्यादान की शास्त्रीय क्रिया होती है और कन्यादान की महत्ता का एक लोक गीत भी अवश्य गाया जाता है :—

---

१. मंडप ।

"सोन्ना को दान, चांदी को दान और कन्या को दान दुहेला हो राम ॥"

एक गढ़वाली गीत मे भी कन्यादान को सभी दानों से ऊंचा बताया गया है :—

देदेवा बुवा जी कन्या को दान,
दाना मा कू दान होलो कन्यादान ।

गीत में आगे कहा है कि हीरा, मोती, अन्न, धन, भूमि और गो-गजदान तो सब कोई कर सकता है, कन्यादान का अवसर कठिनाई से प्राप्त होता है। इस महा संकल्प के बाद विवाह पूरा हो जाता है।

फेरो के लोक-गीतों मे एक स्थान पर उस समस्त क्रिया को लोकवाणी मे आकृति हुई है जिसे पडित शास्त्रीय रूप से कराता है :—

पहला फेरा दादा की पोतड़ियां,
दुज्जा फेरा ताऊ की बेटडियां,
तीजा फेरा बाबल[1] की बेटडियां,
चौथा फेरा चाच्चा की बेटड़ियां,
पांचम फेरा भाई की भणेलियां,
छटा फेरा मामा की भाणजियां,
सतवें फेरै लाड्डो हुई परायेड़ियां ।

इस गीत मे 'सखा सप्तपदीभव, सा मामनुव्रता भव' वाली सातवीं प्रतिज्ञा का उल्लेख हुआ है। 'लाडो हुई ए पराई' की मार्मिकता दर्शनीय है।

गाली

हरियानी में गाली के लिए 'सींटणा' शब्द का व्यवहार होता है। ये सींटणे कई अवसरों पर गाये जाते हैं। उबटणा मलने के बाद स्नान कराते समय समधन को गालियां दी जाती हैं। खोड़ियॉ की रात में गाली का प्रयोग होता है। 'छनों' मे भी अश्लील कथन के प्रसंग होते हैं। हरियाना में 'कुसुम्बा' नाम की एक प्रकार की गाली बहुत प्रचलित है। बरात को दावत के समय अनेक गालियां दी जाती हैं। इन गालियों का कथापट बहुरंगी है।

विवाह के इन सींटणों में प्रेमातिरेक का प्रकाश होता है। इनकी यह विशेषता है कि जिसे गाली दी जाती है, उसे भी रुचती है और सुनने वाले को भी अच्छी लगती है। वस्तुतः विनोद की पूर्णता इसी का नाम है।

---

१. पिता ।

श्लील एव अश्लील दोनो प्रकार की गालियां विवाहोत्सव पर दी जाती हैं। विवाह के ये सींटणे अश्लील होते हुए भी नीके हैं। हिन्दी के एक कवि ने इस बात को यों कहा है :—

फीकी पै नीकी लगै कहिए समय विचारि ।
सबको मन हर्षित करै ज्यों विवाह में गारि ॥

विवाह अवसर पर गालियों का चलन कोई नवीन प्रवृत्ति नहीं है। इनका प्रचार प्राचीनकाल से है। महाराजा दशरथ को भी ये गालियां राम-विवाह के अवसर पर रुची थीं। महात्मा तुलसीदास इन वैवाहिक गालियों के प्रति आकृष्ट हुए थे। उन्होंने राम के विवाह मे एक स्थान पर गालियों का वर्णन किया है :—

पंचकौर करि जेवन लागे, गारिगान सुनि अति अनुरागे ॥
जेंवत देहिं मधुर ध्वनि गारी, लै लै नाम पुरुष अरु नारी ॥
समय सुहावनि गारि विराजा, हंसत राव सुनि सहित समाजा ॥

महिलाओं के इन गारी गीतों में एक अपूर्ण आकर्षण है और उनका यह सौन्दर्य प्रेमातिरेक का प्रतीक बनकर आया है। इनमें प्रेम और विनयपूर्ण विनोद की मात्रा होती है।

उबटन के समय नीचे लिखी गाली समधन को दी जाती है :—

एक लाडा न्हाया टेढ़े खाल चलाये बेम्रां ।
सिंभल सिंभल पगधर रे छिनलिया,
रिपट पड़ेगी टूट शीकण का हाड बेम्रां ।
भैंसा का गोबर खा रे छिनलिया,
नली ए नली सठ जाए बेम्रां ।

दूल्हा स्नान कर रहा है, पानी बहने से कीचड़ हो जायेगी और छिनाल समधन रपट कर गिर पड़ेगी और उसकी हड्डियां टूट जायेगी।

खोड़ियां की रात को एक गीत गाया जाता है। इसके बोल व्याहले की मा को छू गये हैं :—

देखो देखो हे इस टुडलिए का काम
टुडलिए के हाथ ना पां सिर धरकै टुंडा ले गया।
देखो देखो टुडलिया पराई मानै ले गया,
बंदड़ा गया सै बैरात मायड़ नै टुंडा ले गया,
देखो देखो हे टुंडा पराई मा नै ले गया।

इस गाली मे कैसा न्याय है ? एक स्थान की प्राप्ति, अन्यत्र की हानि। एक ओर नई दुल्हन की प्राप्ति की आशा दूसरी ओर माता की हानि हो गयी है।

विदा

इस समय के गीत बड़े मार्मिक होते हैं। आनंद उल्लास के क्षण देखते-देखते बीत जाते हैं। 'लाडो' की विदा का समय आ जाता है और माता, पिता, भाई तथा कौटुम्बी जनों के हृदय का धैर्य अपना बांध तोड़ देता है। विदा के इन गीतों में कन्या, माता, पिता, भाई आदि की मनोदशा का हृदय-विदारक चित्रण रहता है। जहाँ भाई, माता, पिता अपनी चिड़कली[1] को यथाशीघ्र बुला लेने का आश्वासन देते हैं, वहां भावज छठे मास आने की बात कहती है। एक स्थान पर तो बात यहाँ तक पहुँची है 'भावज कहे बेबे कौन यहाँ तेरा काम।' कैसी विडम्बना है कि वह पुत्री जिसने अपने माता-पिता के घर मे जन्म लिया है, आज उसका वहाँ से अनायास सम्बन्ध विच्छेद हो गया। वह कन्या जो अभी तक अपने स्वजनो मे पली है, खेली और बड़ी हुई है, हिचकियों द्वारा रोती हुई पत्थर को भी पिघला देती है। विदा गीत में 'डब-डब भरआ ये नैन' यह एक आलंकारिक वर्णन मात्र नहीं है। साथी ही नहीं, पालित पशु-पक्षी भी रोते हैं। तपस्वी कण्व के आश्रम मे शकुन्तला के श्वसुर-गृहगमन पर ही ऐसा हुआ हो सो बात नहीं, साधारण से साधारण गृहस्थ के यहाँ अहरह ऐसा ही होता रहता है।

हरियाना किस प्रकार सकरुण स्वर में अपनी लालित-पालित छोरियों को विदा करता है :—

यो घर ले मेरा जामी[2], छोड्डी तेरी देहली।
न्यूं मत बोल म्हारी लाड्डो, मैं राक्खूं आण जांण धारे तैं।

पिता को अपनी लाड्डो के ये वचन 'छोड्डी तेरी देहली' बड़े मर्मांतक लग रहे हैं। वह नहीं चाहता कि पुत्री को किसी प्रकार की ग्लानि हो। 'साथण चाल पड़ी री, मेरे डब-डब भरयाये नैण' के साथ पिता, माता, भाई, भतीजे ही नहीं अपितु साथ की सहेलियाँ साश्रु करुण-कथा कहती हैं।

समस्त भारतीय हिन्दू समाज के सदृश हरियाना में भी कन्या माता-पिता पर भार स्वरूपा बन गई है। यह रहस्य कन्या पर प्रकट हो गया है। परन्तु

१. चिड़िया, प्रियपुत्री। २. जन्मदाता।

जब भांवर पड़ चुकी है और समाज ने उसे लक्ष्मी-रूप में सम्मानित कर लिया है तो वह अपने कौटुम्बिक जनो स्नेह-सिंचित पर औदासीन्यपूर्ण आश्वासन देती है :—

ठाडा मेरा दादा ठाडा रहियो आज की रैन पहर दोए।
अपणा कटक ले उतरूंगी पार, थारा नगर सुबल बसो।
ठाडा मेरा ताऊ ठाडा रहियो आज की रैन पहर दोए।

इसी प्रकार पिता, भाई और मामा आदि से कहा जाता है। इस गीत मे नैराश्यपूर्ण भावनाओं का चित्रण हुआ है।

इस गीत के भावपक्ष पर यह विवेचना भी दी जाती है कि विवाहोपरांत कन्या का कार्य-क्षेत्र विशद एवं विस्तृत हो जाता है। उसके लिए यह समीचीन होता है कि वह यथाशीघ्र अपने पुराने स्थान को छोड़ दे। अतः वह बरात वाहिनी को लेकर चली जाना चाहती है।

एक अन्य गीत मे, कन्या को अपने परिजन से बड़ा मोह हो गया है। उसे संभवतः हार-जीत के गाम्भीर्य की अभी प्रतीति नहीं है। अंत में, विदा की वेला में रहस्यमयी परिस्थिति का उसे ज्ञान होता है। वह विविध प्रकार से उपयोगिता की बात कहती है; परन्तु पिता जिसे वस्तु स्थिति का पूरा ज्ञान है अपनी पुत्री की प्रत्येक बात का समाधानिक उत्तर दे रहा है। बेचारी चिड़कली विवश है। उसका जन्म का घर छिन रहा है। आज उसके मौलिक अधिकारों का कोई महत्त्व नहीं है। उसकी सेवाएँ भी अपेक्षित नहीं है। उदाहरण :—

तुलियां का बगला हो बाबल चिड़ियें खोस गिर्‌या।
मेरा गाड्डा अटक्या हो बाबल तेरा महल तलै,
दो ईंट कढादयां हे धीअड़ घर जा आपणे,
मेरा डोला अटक्या हो बाबल तेरे बागां मे,
दो पेड़ कटादयां हे धीअड़ घर जा आपणे।
तेरा पनघट सून्ना हो बाबल तेरी धीये बिना,
म्हारी बहुअड़ भरेंगी पानी हे धीअड़ घर जा आपणे।
तेरा गोब्बर सुक्खे हो बाबल तेरा ठाणां में,
म्हारैं चूहड़ी भतेरी हे धीअड़! घर जा आपणे।
मैं तो गुडियां भूली हो बाबल तेरा आला में,
म्हारी पोत्ती खेलैंगी धीअड़! घर जा आपणे।

यह एक 'उपेक्षा गीत' हैं। पुत्री विवश है क्या करे? अन्त में प्रति-स्पर्धी के ज्ञानमात्र से उसे क्षोभ होता है और वह अपने अन्तस् से बोल गई है :—

"तेरी पौत्ती मरियो हो बाबल! मेरी ठौड़ लई।"

हे पिता जी तेरी पोती मर जाये जिसने मेरा स्थान अपहरण कर लिया है।

अन्यत्र, एक गीत में विदा होती हुई पुत्री तथा जमाई के शुभ गमन पर प्रकृति से शुभ शकुनों की मांग बडी ही उपयुक्त हुई है। तीतर और कोयल से शकुनकारी एव सगीतमय शब्दों के लिए प्रार्थना है, तो सूरज से प्रखर किरणें समेट लेने और बादल से 'झीनी वर्षा' की याचना है। वायु को मदगति का आदेश है तो टीले-टिले आदि को नीचा होने के लिए कहा गया है जिससे जमाई की पंचरंग पाग दूर तक दीखे। अनेक मगल कामनाओं से यह गीत भरा है :—

तीतर रै तूं बामै दाहने बोल, चढ़ते जमाई का सूण मणाइये जी मैं का राज।
कोयल हे तूं बागां मे जा बोल, चढते जमाई नै सबद सुणाइये जी मैं का राज।
सुरज हे तूं बादल में बड़जा, चढ़ दे जमाई नै लागै घामड़ा जी मैं का राज।
बादल रे तूं झीणा झीणा बरस, चढ़ती लाडो की भीजे नौरंग चूंदड़ी जी मैं का राज।
आंधी हे तूं झीणी झीणी चाल, चढते जमाई का गरद भरै कापडे जी मैं का राज।
टीबी हे तूं ऊंची नीची हो, चढ़तै जमाई की दीखै पंचरंग पागडी जी मैं का राज।

लोकगीत की आत्मा का प्रकृति के साथ अनुपम तादात्म्य हुआ है।

दुल्हन की विदायगी पर गाये जाने वाले गीतों की रूपरेखा ऊपर दी गई है। यहाँ एक गीत जिसे 'साथण' के नाम से हरियाणा की समस्त जनता कन्या की विदायगी पर गाती है, दे देना असंगत न होगा। यह गीत हरियाणा का राष्ट्रीय गीत है जो विवाह के अतिरिक्त कन्या विदायगी पर सर्वत्र गाया जाता है। 'छोहरी' के जाने पर जब तक यह गीत न गा लिया जाये तब तक करुणा की वह स्थिति नहीं उपस्थित होती जो पत्थर को भी पिघला दे। ऊट पर अथवा अरथ आदि में बैठी होती है। वह लाडली और धरती पर नीचे सहेलियों की एक विशाल वाहिनी अपनी मंद गंभीर विरह व्याकुल ध्वनि से वातावरण को शोक समन्वित कर देती है। इस गीत में 'डब-डब भरयाए नैण' कैसी निश्चल अभिव्यक्ति है :—

म्हारे री घेर में आये री बटेऊ, साथण के लण थार।
साथण चाल पड़ी री, मेरे डब डब भरयाए नैण।

अपणी बहाण का करूं चूरमा, करद्यूं मकर[1] कसार।
साथण चाल...
अपणी बहाण का मैं दाम्मण[2] सिमायदूँ, लायदूँ घोट्यां की लार।
साथण चाल पडी ..
अपणी बहाण की मैं चूंदड़ी मंगा दूँ, दौहरी घोट्यां की लार।
साथण चाल पडी ..
अपणी साथण का मैं कुरता सिमाय दूँ, बटणा की ल्यादूँ लार।
साथण चाल पडी...
अपणी साथण नै सास रै खंदादयूं[3]. करके भणोटया[4] साथ।
साथण चाल पडी...
अपणी बहाण नै तावली[5] मंगाल्यूं, पालकै[6] छोटला[7] बीर।
साथण चाल पड़ी री, मेरे डब डब भरयाये नैण ॥

विदा होती हुई कन्या के लिए यथाशीघ्र बुलाने का आश्वासन बड़ा संतोषप्रद होता है। वह इसी आशा-सबल से अपने दुःख का विनोदन करती है।

नीचे लिखे गीत के अन्तर्गत समस्त वैवाहिक कृत्यों का समावेश हो गया है। एक प्रकार से यह गीत 'विवाह कृत्य गुटका' है अथवा यों कहिए एक 'श्लोकी विवाह संस्कार'। हरियाना मे विवाह मे पालत सभी आचार, प्रथा तथा रस्मों का क्रमपूर्वक परिगणन इस गीत मे हुआ है। गीत कुछ बड़ा है।

पान सुपारी पानां का बिड़ला, पान सुपारी पानां का बिड़ला।
उमराव बनी का बर ढूंडण निकला, सरदार बनी का बर ढूंडण निकला।
आग्यं ढूंढी पाच्छयं ढूंढी ढूंडी गढ गुजरात घणी।
एक सहर रावलधी बी पाया, उसमें दूल्हवा राव बी बैसत सै।
बाजा संख जुड़ा बराती ऊं तेजण में तेज घणा।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजा बर बागां में आया।
बागां आया म्हारे मनभाया कोयल सबद सुणा दिया।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजाबर सीमां में आया।

---

१. बढ़िया। २. सुन्दर लंहगा। ३. भेज दूँ। ४. बहनोई। ५. यथाशीघ्र। ६. भेजकर। ७. छोटे भाई को।

सींमां आया म्हारे मनभाया निपजैं सात्तौं नाज घणा।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजाबर गोरवै[1] आया।
गोरवै आया म्हारे मनभाया लम्बा खरड़[2] बिछा दिया।
लम्बा-लम्बा खरड बिछाया ओछा सजन बुला लिया।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजा बर सहरां में आया।
सहरीं आया म्हारे मनभाया बणिया बींद[3] सराहय दिया।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजाबर तोरण[4] आगे आया।
तोरण आया म्हारे मनभाया खाती बींद सराह दिया।
छोटी साली बड़ी साली करैं आरता सीखं[5] सीखं होय रही।
जगमग-जगमग करै सेहरा मोती की लड़ लूम रही।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजाबर फेरां में आया।
फेरीं आया म्हारे मनभाया लम्बा खरड़ बिछाय दिया।
लम्बा-लम्बा खरड़ बिछाया ओच्छा सजन बुला लिया।
चार भांत की चारों खूंटी काच्चो सूत पुराय लिया।
हयेला[6] मे हाथी दिया अर कन्यादान मे ऊंट दिया।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजाबर जीम्मण आया।
जीम्मण आया म्हारे मनभाया सोरण थाल परोस दिया।
छोटा लाडू बड़ा लाडू और मट्ठलु[7] घेर घिराली[8] कौन गिनै।
मंगोड़ी डबकौड़ी पापड़ और इमरती कौन गिनै।
बड़ा-बड़ा पिहाण[9] परोस्सा दो-दो आंगल मिर्चं धणी।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजाबर बिदा पर आया।
बिदा पर आया म्हारे मनभाया लम्बा खरड़ बिछा दिया।
लम्बा-लम्बा खरड़ बिछाया ओच्छा सजन बुला लिया।
बड़ा टोकणा सब कुछ दैद्‌यो अंटा बंटा कौन गिणै।
देवगरी[10] थाली देद्‌यो एल्ला बेल्ला कौण गिणे।

उपरोक्त गीत में विवाह का विशद वर्णन आया है। लोकमेधा अपनी अभिव्यक्ति के लिए किस प्रकार शब्द-निर्माण मे प्रवीण है, यह 'घेर घिराली' आदि शब्दो से प्रकट है। लोक मे इसके लिए कभी चिन्ता नहीं व्यक्त की गई कि अमुक वस्तु को क्या कहना चाहिए अथवा 'कोषकार' अमुक

---

१. ग्राम समीप। २. चौपट। ३. बनड़ा। ४. द्वार। ५. होड़ा होडी। ६. हथलेवा। ७. मैदा की खांड लिपटी मिठाई। ८. जलेबी। ९. पहाड़सा। १०. बड़ी थाली।

वस्तु को क्या नाम देते हैं। यहाँ तो वस्तु का स्वरूपात्मक प्रतिबिंब शब्द व्युत्पत्ति का कारण बनता है। इसी कारण लोक में कभी भी शाब्दिक अभिव्यक्ति के लिए अड़चन नहीं होती। लोक ने पक्षी के सदृश एक वस्तु (हवाई जहाज) को आकाश मे उड़ते देखा, सहसा बिना किसी के पूछे-ताछे 'चीलगाड़ी' नाम दे दिया। कितना सार्थक है यह नाम। इसी प्रकार, साईकिल को 'पैरगाड़ी' नाम देना, लोक की अपनी सूझ है।

मृत्यु-गीत (Elegy)

लोक प्रतिभा ने अपनी शक्ति का प्रकाश जन्म और विवाह के गीतों के रूप मे अधिक किया है। इन दो संस्कारो एवं अवसरो के गीतो के आगे बहुत थोड़े गीत रह जाते हैं। मृत्यु जो अन्तिम संस्कार है, उस पर भी कुछ गीत गाये जाते हैं। मृत्यु शोक और विषाद का समय होता है, अतः इस अवसर के गीतों मे शोकभाव ही भरा होता है।

मृत्यु-गीतों का उर्दू साहित्य में विशेष स्थान है। वहाँ 'मरसिया' नाम के गीत साहित्य की विशेष निधि है। मृत्यु-गीतों का वर्ण्य-विषय मृतव्यक्ति के गुणों का परिगणन होता है।

हरियाना मे मृत्यु पर जो गीत गाये जाते हैं वे बड़े ही मर्मस्पर्शी एव हृदय-द्रावक हैं। 'जामाता की मृत्यु पर' एक गीत जो इधर मिला है, बड़ा ही शोकपूर्ण है :—

जब तौं घर तैं लीकड्या गभरू[1] सेर जुआन,
होगया सौख कसौरा गभरू सेर जुआन, हाय हाय गभरू सेर जुआन।
बाम्मै बोल्ली कोतरी दहणै बोल्या काग, गभरू सेर जुआन, हाय हाय गभरू सेर जुआन।
मारी क्यों ना कोतरी तैंने मारया कों ना काग, हाय हाय बनड़ा पेच्ची आला।
कनअ तेरी बांधी पालकी कनअ तेरा करया सिंगार, हाय हाय गभरू सेर जुआन।
भइयां बांधी पालकी भइयां नै करया सिंगार, हाय हाय गभरू सेर जुआन।
सुसरा का प्यारा हाय, सालां का प्यारा हाय हाय,
चुड़ला की सोभ्या हाय, नाथ की सोभ्या हाय हाय,
मेरी बेसर टूटी हाय, सासड़ का प्यारा हाय हाय।

कैसी व्यथा है ? जो समस्त शृंगार का आश्रय था वह उठ गया। सासु जिसके सुख सौविध्य के लिए प्राणपण से चेष्टा करती थी वह आज जंगल-

---

1. हृष्टपुष्ट।

वासी हो गया है। किंतु जीवनसाथी हृदयेश के रूंठ जाने पर तो विधवा का संसार ही समाप्त हो जाता है। विगत परिस्थितियां आन्तरिक कष्ट का हेतु हो जाती हैं। वियोग व्यथिता नायिका को अनंत वियोग की स्मृति काँटे सी चुभती है।

'विधवा विलाप' नामक नीचे दिये गये गीत में विषाद की रेखाएँ उभरी हैं :—

अरे मेरे करम के खारे जल गये अरू मोभी दूदाभ[1]।
अरे मेरे करम के सुनरा मर गए, रूठ गये मनिहार।
बहू री मेरी मत रोवै मुझे लगारी लाल का दाग।
मां अरी धौले धौले पहरा कापड़े रांडा भेष भरावै।
अरी चले सूनरा के मेरी नाथ उतरवावे।
अरी देही जले जैसे कांच की भट्टी पकावे।
अरी बिच्छू ने मारा डंक लहर क्यूं ना आवै।
अरी अपणा मन समझावण लागी, दो नैनां में भर आया पाणी।
ए सास्सू जब धंसूं महल में दरी बिछौना सूना।
कुछ एक दिनां की ना है मुझे सारे जनम का रोना।
अरे याणी थी जब रही बाप के मझे सोच कुछ ना था।
इब क्यूं कटैं दिन रात मझे कोए एक दिना की ना सै।

गीत आद्योपान्त शोक के ताने-बाने से बुना हुआ है। "मेरी कंचनयष्टि भट्टी के सदृश जल रही है, यमराज रुपी बिच्छू ने डंक मारा है!" ये शब्द पढ़कर किसका हृदय खंड-खंड न हो जायेगा? 'अरी बिच्छू ने मारा डंक लहर क्यू ना आवे' कितनी मर्मभेदक उक्ति है। वियोग के क्षण ही जब कल्पसम हो जाते हैं तो जीवन पर्यंत का यह वियोग कितना मर्मान्तक है, पढ़कर रोमांच हो जाता है।

गृहलक्ष्मी का प्रताप जब घर से उठ जाता है तो रंडवे की गृहस्थी चौपट हो जाती है। उसकी आशा-आकांक्षा धूल में मिल जाती हैं। जीवन में प्रेमसिंचन समाप्त हुआ कि नीरसता छा जाती है। प्रेयसी के वस्त्राभरण वियोग चिनगारी को प्रज्वलित करते रहते हैं, उसके प्राणों को कचोटते हैं।

विधुर की अवस्था का दिग्दर्शन इस गीत मे हुआ है :—

डाल खटोल्ला बगड़ बिच सोया,
एक बार सुपने में आइये, प्यारी ए।

---

१. सुन्दर वस्त्र।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक विधुर राम तथा अज का विलाप साहित्य की विभूति है। अन्यान्य कवियो ने भी अपनी विरह-विदग्धा भावना का प्रकाश इस विधि से किया है। कविवर बच्चन का "निशा निमंत्रण" किस पाठक के अंतस् को नहीं छू जाता है।

विवाहिता कन्या की मृत्यु पर गाये जाने वाला एक गीत यहाँ दिया जाता है :—

हाय हाय बांगां की कोयल।
कन तेरी बांधी पालकी बांगां की कोयल,
कन तेरा कर्‌या सिंगार, हाय हाय बांगां की कोयल।
देवर जेठां नै बांधी पालकी, हाय हाय बांगां की कोथल।
दयौर जिठाणियां नै कर्‌या सिंगार, हाय हाय बांगां की कोयल।
मार मंडास्सा[1] ले गये बांगां की कोयल,
बिन्द्रावन के पास हाय हाय बांगां की कोयल।
बिन्द्रावन की गोपनी न्यों कहैं या कौण राणी जाये, हाय हाय बांगां की कोयल।
अपणा बाबल की धीअड़ी बांगां की कोयल।
अपणा भाइयां की भाण हे बांगां की कोयल, हाय हाय बांगां की कोयल।
बाबल की धोअड हाय, भइयां की बाहण हाय।
भावजां की प्यारी हाय, परहण[2] की प्यारी हाय।
पीहर की प्यारी हाय, हाय हाय बांगां की कोयल हाय, हाय हाय बांगां की कोयल।

माता-पिता का आगना आज लाडली पुत्री के बिना सूना है। बांगां की कोयल आज उड़ गई है। विह्वल हृदय की करुणा गीत के शब्द-शब्द से ध्वनित हो रही है।

खादर से प्राप्त 'विवाहिता पुत्री की मृत्यु' के गीत में पुत्री की अंगयष्टि का बड़ा आलकारिक वर्णन हुआ है[3] :—

मूंगफली सी आंगुली, हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया।
नाक सुए की चोंच, हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया।
होठ पीपल के पात से, हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया।

इस गीत की अन्तिम पक्तिया ये हैं :—

अरी तेरा बाबल फिरै उदास, तेरी अम्मां जोहै बाट।
भैया तेरा लेने आया, एक बार नैहर जाय।

---

१. साफा। २. पति। ३. इस गीत की भाषा खड़ीबोली है, हरियानी नहीं है।

चाची ताई तेरी रोवें, उनको रोकन आय।
गहनों का डिब्बा भराधरा है, एक बार पहन दिखाय॥

लाडली की छबि आँखों के सामने घूम रही है। अन्तिम पंक्तियों में माता की वेदना का बाँध टूट गया है।

ख. ऋतु-गीत

दूसरे प्रकार के लोक-गीत वे हैं जो मौसमी गीत के नाम से विख्यात हैं। ऋतुएँ आ-आकर प्रकृति का शृंगार करती हैं। आरम्भ में नूतन पत्र, पुष्प, फलादि से वसत नववर्ष का स्वागत करती है। ग्रीष्म की भी अपनी छटा होती है, वर्षा की अपनी बहार होती है और शरत् समय मे कई पर्व-त्यौहार आकर इस ऋतु की पावनता बढ़ाते रहते हैं। ऋतुओं द्वारा सुसज्जित ऐसी ही पृष्ठभूमि मे मानव मनोवेग तरगित होते हैं।

जीवन के प्रमुख प्रचलित संस्कारों—जन्म, विवाह और मृत्यु—पर प्राप्त गीतों का अध्ययन विगत पृष्ठों मे हुआ है। इस स्थान पर, ऋतु सम्बन्धी गीतों का परिचय प्राप्त करेंगे। ये ऋतुगीत भी कई प्रकार के होते हैं। इन्हीं गीतों मे ऋतु-विशेष में होनेवाले उत्सव, पर्व, त्यौहार और देवी-देवताओं के गीतों की अन्तर्निहिति हो जाती है। अतः हम भिन्न-भिन्न कालों में मनाये जानेवाले उत्सव-पर्व-त्यौहारों की तथा देवता विशिष्ट के धोकने (पूजने) की चर्चा करके आगे बढ़ेंगे। फलतः यह कहा जा सकता है कि ऋतु-विशेष की छाप तथा महत्ता इन्हीं उत्सवादि के रूप में मानव ने अपने जीवन में अंकित कर ली है। सावन में तीज और झूले की सरसता एवं फाल्गुन में होली की मादकता दर्शनीय है। स्पष्टता के लिए हरियाना प्रदेश में आवर्ष मनाये जानेवाले पर्व-उत्सवों का विवरण दे देना असंगत न होगा। संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

महीना	पर्व-त्यौहार	विवरण
चैत्र	१. नौदुर्गा (व्रत-पूजन)	चैत कृष्ण अष्टमी-नवमी को व्रत रखते हैं। महिलाएँ गीत गाती हैं और मन्दिर में दुर्गा की पूजा करती हैं। देवी की यात्रा भी इसी महीने मे होती है।
	२. गणगौर पूजन अथवा गौरी पूजन	चैत सुदी में हरियाना में गणगौर पूजन होता है। चैत्र शुक्ल ६ से पूर्व मिट्टी के गौरा और गौरी बनाये जाते हैं, उनका प्रति-

		दिन पूजन होता है। सभी बगड़ः (मुहल्ले) की स्त्रियाँ मिलकर गीत गाती हैं। अन्तिम दिन वस्त्राभरण से सजाकर नृत्य गीतादि के साथ उन्हें सर-सरितादि मे बहा देते हैं। इस उत्सव के द्वारा बालिकाएँ पार्वती के आदर्श पर शिव जैसे प्रतापी नर की कामना करती हैं।
ज्येष्ठ	निर्जला दकादशी	ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी के दिन व्रत रखा जाता है। खरबूजा, पंखा और सुराही आदि दान देते हैं।
आषाढ़	माता पूजन आदि	महीने के प्रति सोमवार को माता पूजी जाती है।
श्रावण	तीज या हरियाली तीज	यह बालिकाओ के विनोद का समय होता है। मेंहदी रचाई जाती है, चूड़ियाँ पहनी जाती हैं और भूला भूल कर सायंकाल मे तीज खेलती हैं। इसके लिए पहिले से भीगे चनों को डलिया में रखकर सभी स्त्रियाँ श्रंगार करके मिलकर गाँव के बाहर जाती हैं। इस बाहर जाने को "बिरवा बोना" कहते हैं। वहाँ भीगे चनों को कैर की डालियो मे पिरोते हैं और महिलाएँ नृत्य इत्यादि करके आनन्द मनाती हैं। भीगे चनों को एक दूसरे के मुँह पर मारती हैं। घर आ जाती हैं। चनो को तेल में तलकर खाती हैं।
	रक्षा बन्धन या श्रावणी (गुरु पूर्णिमा)	राखी बांधी जाती है। घरों मे उगाये हुए जौ की खूद सिर पर और कानों पर रखी जाती है। सूण (द्वार पर 'राम राम' लिखे जाते हैं) काढे जाते हैं। श्रावणी को गुरुओं की पूजा होती है। दक्षिणा दी जाती है। यज्ञोपवीत बदले जाते हैं।
भाद्रपद	कृष्णाष्टमी	व्रत रखा जाता हैं। पलने मे कृष्ण को बच्चा बनाकर भुलाते हैं।

	गूगा नौमी	जंगल से 'ऊंगा' पाड़कर लाते हैं। दीवार पर गूंगे का चित्र हल्दी से बनाया जाता है। उसके सामने स्याही से काला साप बनाया जाता है। ऊंगा को दीवार के साथ रख देते हैं। पूजा की जाती है।
	अनत चौदस	"अणत" हाथ के बाजू मे बांधा जाता है।
आश्विन	कनागत	प्रथम १५ दिन कनागत के होते हैं।
(असौज)	दशहरा	शुक्ल पक्ष के प्रथम नौ दिन तक दुर्गा पूजन होता है तथा दसवें दिन विजयादशमी मनाई जाती है। अस्त्र और पुस्तकें पूजी जाती हैं। लीलटांच अर्थात् गरुड़ सखा के दर्शन शुभ माने जाते हैं।
	सांझी	दशहरे तक साझी रखी जाती है। पूजा होती है। यह देवी का रूप है। गॉवो की सभी जातियॉ इसे पूजती हैं। निर्धन कन्याएँ सांझी मांगती हैं और गीत गाती हैं।
	शरत्पूर्णिमा	खीर बनाई जाती है। चांद की चांदनी मे रखकर प्रातः खाते हैं।
कातिक	कार्तिक स्नान	पूरे महीने प्रातःकाल स्नान किया जाता है। स्वामी कार्तिकेय की पूजा करते हैं। गीत, भजन और हरजस गाये जाते हैं। तुलसी की पूजा होती है।
	करवा चौथ और अहोई आठे	कहानी होती है, अहोई के दिन स्याहू का कठला बनाते हैं।
	देव उठान	कार्तिक शुक्ल एकादशी को देवोत्थान होता है। रात्रि मे थाली बजाते हैं। देवताओं की पूजा होती है। गन्ने आदि से पूजे जाते हैं।
		... ...
मार्गशीर्ष पौष (मगसिर पौह)	माघ स्नान और गीत	तिलकी लकड़ियों को जलाकर सेकते हैं। तिलधानी खातें हैं।

	संक्रांति	मकर सक्रांति हरियाना का बड़ा भारी पर्व माना जाता है। इसकी पृष्ठभूमि धार्मिक पावनता से ओत-प्रोत है। प्रातःकाल उठकर स्नान करते हैं। ब्राह्मणो के यहाँ सीदा देते हैं। तिल के लड्डू बाँटते हैं। भिखारियों को पूड़े और गुलगुले खिलाते हैं। गौओं के लिए चारा डालते हैं। तिल की लकड़ियो से तापते हैं।
	बसंत पंचमी	बसंत रखा जाता है। बसंती कपड़े रगते हैं।
फाल्गुन	होली	होली का विशेष जोर उत्तर पक्ष में होता है। माघ सुदी पूर्णिमा को पंडित कैर का डंड्डा गाँव के बाहर कालर में गाड़ता है। एक महीने तक गाँव वाले उस डंडे के चारो ओर लकड़ियाँ डालते रहते हैं। उत्तर पक्ष मे होली गाई जाती है। इन्हीं दिनों रात्रि को ढप बजाते हैं और मिलकर धमाल गाते हैं।

होली वाले दिन सायंकाल स्त्रियाँ शृंगार करके, साथ में जौ की बाल, कच्ची कूकड़ी, पानी का लोटा, चावल, हल्दी और गोबर की बनी ढाल तलवार आदि ले जाती हैं। होली के स्थान पर सभी बैठकर कच्ची कूकडी का तागा पूरती हैं और हल्दी चावल से पूजन करती हैं।

लड़कियाँ दो दलों में बँटकर आमने-सामने खड़ी होती हैं। बीच में एक रेखा खींच ली जाती है। एक बार एक ओर की लड़कियाँ कंधा पकड़कर गाती हुई रेखा तक आती हैं और फिर गाती-गाती वापिस लौट जाती हैं। दूसरे पक्ष की लड़कियाँ भी इसी प्रकार करती हैं। रात्रि में शुभ लग्न पर होली जलाई जाती है। अगले दिन 'धूलन्डी' को

स्त्रियाँ छाज में आग लाती हैं। होली जलाते
समय पुरुष जौ की बाल भूनते हैं, परिक्रमा
करते हैं। गाँवखेड़े की जय बोलते हैं।

यह प्रचलित तथा महत्वपूर्ण त्यौहारों का साधारण विवरण मात्र है। अन्य अनेक कम महत्व के त्यौहार भी मिलते हैं जिनकी स्थानीय प्रकृति होती है।

१. दई देवता आदि के गीत

वर्षारम्भ में चैत्रमास में देवी-देवताओं की पूजा का विशेष महत्त्व होता है। हरियाना के विभिन्न शहर व गाव इन देवी-देवताओ के स्थान हैं। इन स्थानों पर चैत्रमास में मेले भरते हैं। यों तो ये मेले तिथि-विशेष पर वर्ष भर लगते हैं पर चैत्र की जो महत्ता देवी धोकने की होती है, वह किसी दूसरे महीने में नहीं होती। इन देवी-देवताओं के दो रूप स्पष्ट देखने में आते हैं—एक, रोग सम्बन्धी देवी-देवता तथा अन्य—शक्ति संपन्नता के देवी-देवता।

रोग सम्बन्धी देवता—ऐसे देवी देवता जिनका सम्बन्ध किसी रोग के साथ होता है इन्हें शीतला, माता अथवा गणवाली देवी, कंठीमाता और मसाणी के नाम से पुकारते हैं। इनके पूजने के दिन चैत्र में सोमवार और कहीं-कहीं मंगलवार हैं। कहीं बुद्ध भी धोकने का दिन होता है। जिला गुड़गांव में ग्राम कुतबपुर में 'बुद्धोमाता' का मेला प्रति बुद्धवार को भरता है, जबकि गुड़गांव की ललिता माता प्रति सोमवार को पूजी जाती हैं। चैत के महीने में माता धोकने का विशेष माहात्म्य है। इस मास में इन स्थानों पर विशेष मेले भरते है। रोहतक जिले में बेरी कस्बे में बेरी वाली माता, जिसका नाम भीमेश्वरी है, का बढ़ा भारी मेला चैत्रमास में लगता है।

इन विशेष माताओं के अतिरिक्त वह मंदिर सबसे शुभ माना जाता है जो चौराहे पर बना हो। ऐसे मन्दिरवाली माता चौगानवा अथवा चौरास्ता माता कहलाती हैं।

शीतला एक संक्रामक रोग है और प्रायः बालकों को होता है। सावधानी बरतने पर १५ दिन मे स्वतः शांत हो जाता है। औषधोपचार न होने से यह रोग देवता रूप माना जाता है। आरम्भ से लेकर अंत तक इसका शीतल उपचार होता है, घर के अन्दर और बाहर पानी छिड़का जाता है। मीठी बासी रोटी खाई जाती है। इसी शीतोपचार के कारण से माता का नाम शीतला माता प्रचलित हुआ है। डा० तारापुर वाला का मत है कि-

मनुष्य की प्रवृत्ति होती है कि वह नीच तथा भयंकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। जैसे रसोई बनाने वाले ब्राह्मणों को महाराजा, (बहुत बड़ा राजा) कहकर पुकारते हैं। इसी प्रकार इस भयकर बीमारी को शीतला कहने लगे हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। शीतला देवी को माता देवी भी कहते हैं।

शीतला देवी का वाहन गधा है और कुम्हार (जाति विशेष) देवी का भक्त और प्रिय पात्र समझा जाता है। माली-मालिन भी देवी के भक्त और सेविकाएँ बतलाई गई हैं। नीम के वृक्ष के नीचे माता का निवास माना जाता है। अतः भक्त नीम की टहनी से रोगी को झाड़ता है जिससे शीतला माता प्रसन्न होती हैं। इस रोग में परिवार वालों को भी कई प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है। यथा—कढ़ाई न चढ़ाना और पूरी परावंठा आदि न बनाना। झौंक देना भी निषिद्ध माना जाता है। अधिक न बोलना हितकर होता है।

हरियाना में धूलैंडी से अगले दिन बासोड़ा बनाया जाता है। बासोडा मे पहिले दिन का ठंडा खाना खाया जाता है। माता पूजी जाती हैं। यह गीत गाया जाता है जिसमे बसन्ती माता की स्तुति गाई गई है :—

माता किन तेरा बाग लगाइयां, किन तेरा सींजा[1] सै पेड़।
माली के नै बाग लगाइयां, मालण सींजा सै पेड़।
सोवे सोवे हे मजेन्दरा राणी नींद में।
माता कनतेरी डाल झुकाई अरकन तेरा तोडा सै फूल,
माली का नै डाल झुकाई, मेरी मालन तोड़ा फूल।
सोवे सोवे हे मजेन्दरा राणी नींद में।
माता! बालक छैल गाल में खेले चढ़गा ताप।
माता! लकडती माता न्यूं लकड़ जनौं बाजरीय[2] की डुनियार[3],
सोवो सोवो हे बसन्ती राणी नींद में।
माता! भरदी माता न्यूं भरै जणों पील्हां[4] की डुनियार,
सोवो सोवो हे गुमानण राणी नींद में।
माता! ढलदी माता न्यूं ढल जणों पाले[5] ज्यू झड़जाए,
सोवो सोवो हे बसन्ती राणी नींद में।

माता से प्रार्थना की गई है कि वह बालक को सुहाता-सुहाता कष्ट दे और भरती हुई ऐसे भरे जैसे पील (पीलु) के दाने में शनैः शनैः रस भरता

१. सींचना। २. बाजरे की। ३. सदृश। ४. पील, पीलु वृक्ष का फल। ५. बेर के सूखे पत्ते।

है और ढलती उतरती ऐसे ढले जैसे झड़बेरी के पत्ते सूखने पर झड़ जाते हैं। इस गीत में सादृश्यमूलक चित्रण सुन्दर बना है। यह गीत बच्चो के माता या मोतीझरा निकलने पर भी गाया जाता है।

मसाणी माता के एक गीत में माता देवी की विशेष पूजा की सामग्री तथा माता की प्रिय वस्तुओं का सांगोपांग वर्णन आया है :—

मैया राणी! मसाणी सेढ मनाहीं सां।
मैया! जै मेरी परोब[1] सीख तौ मर कंडवारो[2] धोकसां[3]।
मैया! दरिया बहवै तेरे बार[4] मलमल न्हायसां।
मैया! किक्करियां को बाग तेरे बर छांय बलाई[5]सां।
मैया! लाल पिलंग तेरे बार लेट लगाई सां।
मैया! तकिया को पीड्ढो तेरे बार केस सुकाई सां।
मैया! काली सो कुत्तो तेरे बार टूक गिराई सां।
मैया! काला सो गधो तेरे बार दाल चराई सां।

इस गीत में माता देवी के दो वाहन—कुता और गधा आये हैं। गधा काला आया है। इस गीत की भाषा राजस्थानी से प्रभावित है विशेषकर क्रियाएँ।

माता की पूजा सामग्री मे पूड़ों की विशेष महत्ता है। शीतला माता के एक गीत मे धांकने के लिए गुलगला (पूड़ा) का बिशेष वर्णन आया है। उदाहरण :—

करूँ कढाई गुलगुला सेढल[6] माता धोकन जाय।
इब म्हारी सेढल माता राज्जी होय, दादी दायला[7] फूल्या नहीं समाय।

इसी चैत्रमास में "नौ दुर्गा पूजन" का शास्त्रीय विधानवाला व्रत भी किया जाता है। इन नौ दिनो में शक्ति की पूजा की जाती है। दुर्गा सप्तशती का परायण विशेष फलदायक होता है। स्त्रियां व्रत रखती हैं और देवी के गीत गाती हैं। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं वे स्फुट और कथात्मक प्रबन्धगीत दोनो प्रकार के होते हैं। स्फुट गीत घरों में महिलाएँ प्रतिदिन गाती हैं। भक्त लोग जिनके सिर पर देवी आती हैं, रतजगेवाले दिन प्रायः प्रबन्ध गीत गाते हैं। रतजगे वाले गीत बडे-बड़े होते हैं और पूरी-पूरी रात गाये जाते हैं। अतः यहा देवी के स्फुट गीत ही उद्धृत किये जाते हैं। इनमें देवी की यात्रा, महत्ता और सुन्दरता का वर्णन होता है :—

---

१. पूरी करना। २. एक परिमाण-विशेष। ३. पूजेंगे। ४. द्वार। ५. लेंगे, उपयोग करेंगें। ६. शीतला माता। ७. दादाजी।

देवी के पर्वत चढती चौलगा पाट्या ए मा।
कै गज चौलगा पाट्या, कै गज रह्या ए मा।
दस गज चौलगा पाट्यो, नौ गज रहिया ए मा।
काहे की तो सुई री मंगाऊं, काहे को तागो ए मा।
सार की तो सुई री मंगाऊं, रेसम को तागो ए मा।
सीमै दर्जी को री बे बे बहौत बिनाणी[1] ए मा।
पहरै म्हारी आदमबानी सदा मनमानी।
धौला गढराणी भगतां की ध्याई ए मा।
देवी के नाक में बेसर सोहे, मेरा मन लग्या ए मा।
ल्यावै सोनी का री बेट्टा बहौत बिनाणी ए मा।
पहरै म्हारी आदमबानी सदा मनमानी,
धौलागढ राणी भगतां की ध्याई ए मा।

रतजगे वाले दिन जो गीत गाये जाते हैं वे लम्बे होते हैं। उनकी रूप-रेखा कुछ विस्तार लिये होती है। इन गीतों में वर्णन की विशदता होती है। देवी के प्रति बलिदान, देवी की महिमा, मन्दिर की शोभा और ल्हौकड़िया (लांगुर वीर) के पराक्रम का वर्णन रहता है।

देवी के धामों में नगरकोट का विशेष महत्त्व है, वहाँ पर 'ज्वालाजी' की प्रधानरूप से मानता होती है। ज्वाला जी ही 'मन्त्रमयी देवता' रूप से अन्य सभी धामों में दर्शन देती हैं और भगतों की साध पूरी करती हैं। हरियाना में बेरी[2] वाली भीमेश्वरी जगदम्बा ज्वाला जी का ही रूप मानी जाती हैं। एक गीत में भक्त प्रार्थना करता है:

मुझ सेवक की लाज राख जगदम्बा बेरी वाली हे।
मात संत हितकारी करी तन्नै सिंह सवारी हे।
छत्र सुवर्ण साजै नगरकोट तज मेले के दिन बेरी आन बिराजै।

एक स्थान पर स्तुति में माता जगदम्बा भीमेश्वरी के दो सेवकों का वर्णन आया है। ये दो सेवक लौकड़ियाँ और भैरूँ जी हैं जो बड़े बलशाली हैं। ये माता के इंगित पर कार्य करने को तैयार रहते हैं:—

अजी सुन्दर गल में माल मात, तेरी सुन्दर सिंह सवारी है।
सुन्दर लौकड़िया खडा तेरे सुन्दर भैरों बलकारी है।

---

१. चतुर। २. एक प्रसिद्ध ग्राम, जिसमें भीमेश्वरी देवी का मन्दिर है। यह स्थान रोहतक के समीप है।

सुन्दर चौरासी भवन तेरे सुन्दर जगजोत तिहारी है।
सुन्दर तेरे चरण निरख माता दुर्वासा रिसी बलिहारी है।

भगवान के दरबार मे उन सबकी सेवा स्वीकार होती है जो कर्तव्य पालन के लिए प्रतीक्षा करते हैं और तत्पर रहते हैं, खड़े रहते हैं। इसी भाव को अंग्रेजी के कवि मिल्टन ने इस रूप मे कहा है "दोज हू स्टेन्ड एन्ड वेट आल्सो सर्व।"

माता भक्त की मनोवांछा की पूर्ति करती है। आपत्काल में सहायता पहुँचाती है। वह सर्वशक्तिमती है। एक भक्त जो कुम्हार जाति का है। देवी से पुत्र कामना करता है, उसकी इच्छा है कि यदि मा दो पुत्तर दे तो एक पुत्र की भेंट चढ़ाऊँ। पुत्रोत्पत्ति पर कुम्हारी इन्कार करती है। परन्तु भक्त अपने वचनो पर दृढ़ है। बलि दी जाती है। जगदम्बा को भक्त पर करुणा आती है और वह पुरस्कार-स्वरूप मृत पुत्र को जीवित कर देती है। ऐसे अनेक अवसरों पर देवी अपने भक्तों की प्रतिज्ञा रखती है। भक्तभयहारी देवी का स्वरूप एक गीत में इस प्रकार दिया गया है :—

परजापत नै दे दी ध्याई।
हो दरबारी जात कुम्हार भवन मे टेया सीस।
तेरे चूके धरम कै न्याव मंदर कै बीच।
दो पुत्तर दे जालामाई एक चढ़ाऊं तेरा भवन।
दो पुत्तर दिये जालामाई,
जिब जाला की करी तियारी। घर में नाट गई कुम्हारी।
घर में नाट गई कुम्हारी दरबारी कुणवा सै पाटै।
छः महीने पहिले पाट्या आया भवन मे डाट्याना डाक्या।
दुर्गे ले सीस मैं कोन्धा नाक्या।
धड़ तै सीस कर्‌या जिब न्यारा बही रकत की धार।
पड़ा सवेरा हुया उजाला आपन्डो नै खोल्या ताला।
पन्डे कहैं बड़ा होग्या चाला।
दिखा सकत ना मुंदग्या ताला।
धौलागढ़ तै चली भवानी,
अपणा भगत का सीस लगाया बांह पकड बैठ्या कर दीना।
अरे भई भगतो यो तौ जात कुम्हार और मत करियो रीस।

देवी अपने कुम्हार भक्त पर विशेष रूप से सदय है।

ज्वाला देवी ने विधर्मी यवनों की फौज से भी टक्कर ली है। मुगल फौज को माता ने काट डाला है, परन्तु यवनों में इतना पराक्रम कहां कि माता के

आगे रुक सकें। वह भी एक विनयावनत भक्त की भाँति ध्वजा नारियल लेकर सम्मुख आता है। देवी का ऐसा तेजोमय रूप भक्त को श्रद्धावनत किये है। उदाहरण :—

नगरकोट में बासा राणी,
तेरी कला कुल जग नै जाणी।
कथा बखाणै बिरमा ज्ञानी,
दुआरे तेरे पीपल री खड़ा।
मुगला उतर्‌या सतलज नद्दी,
सूती हो उठ जाग री नंद्दी।
लौकड़ लहीं खड़्‌या है झंडी।
जिब जाला नै चकर चलायी,
फौज मुगल की काट बगाई[1]।
मुगल कहै मन्नै बकसो माई।
जिब जाला की करी चढाई।
खीर खांड के थाल भराए।
धजा नारियल लेकर आये।
मुगला भेंट ले कैरी आया।
जिब लौकड नै कथा सुनाई।
सूती ऊठ जागरी माई।
मुगल भेंट भवन तेरे में लहैं[2] री खडा।
धजा नारियल भेंट चढाई।
मुगल कहै मन्नै बकसो माई।
लौकडिया तेरे अगवाणी खड़ा।

माता की आरती में गाये गये एक छंद मे माता के भक्तो के (कृपा-पात्रों के) नाम आये हैं जिन्होंने देवी के तेज का परिचय प्राप्त किया है और माता के नाम पर अनेक अपूर्व एवं अलौकिक कार्य किये हैं। माता का पराक्रम दर्शनीय है :—

पहलं सारदा तोहे मनाऊ तेरी पोथी अधक सुनाऊ।
इतना बूटकसम्या भाई, राजा चंद भगत तेरे भाई।
अधबिच गेर्‌या भंग नीच घर नीर भराया।
अरे भगत ने बेकूंठी[3] बढ़ाया,
धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया। १।

---

१. कांट अली, मार डाली। २. लिए हुए। ३. स्वर्ग।

मोरधज से राजाभारी लड़का लिया बला[1], सीस पर धरी करौंती।
अरे, भगत ने हेला[2] दे बलवाया,
धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया। २।
धानूं बोया खेत बीज नै आप्पै चाब्बा,
लोग करैं गिल्लान ऊपरा तोता आया।
अरे भगत ने बिना बीज निपजाया। ३।
दीना अवा लगा आंच अवा में डारी।
मंझारी के बच्चे चणदिये[3] चार कूंट काकरै कुम्हारी।
कुल कै लाग्या दाग, आप उतरे गिरधारी।
अरे भगत ने बच्चा का सो बरतन कच्चा पाया।
धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया। ४।
ताता खंभ करया राम तेरा कित ग्या भाई।
देख खंभ की राह खड्या तुरग बरहाई।
अरे खंभ पै कीडी नाल दरसाया।
धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया। ५।
तुरकमान आथूणी गाज्जै नौबत झड़े रात दिन आगै।
लछमन कथै कुम्हार सकल पंचां के आगै।
धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया।

देवी के भवन के सामने पीपल का वृक्ष और केवड़ा लगा है और चमेली छाई हुई है। वह स्वयं गोरख की शिष्या बतलाई गई हैं। देवी दुष्टों के दलन के लिए अपने चंडी-चरित्र को दिखाती तथा रौद्र-रूप का प्रदर्शन करती हैं।

चढ़ी मल का खाड़े दाने तन्नै दल के मारे।
कोपचढी खंरवाली लटा तन्नै दल में फेरी।

भक्त लोग देवी के अलौकिक पराक्रम के वर्णन में 'कलसा' या पकड़ के भजन भी गाते हैं। कलसा नाम के ये भजन पहेलियों जैसे हैं जिनमे एक 'रहस्य भावना' पर विचार हुआ है :—

कब सै तो लिखमत चली कद सै रब की गैल।
मैं पूछूं संतजी पहलां गऊ हुई थी कै बैल।
गऊ हुये थे कै बैल जल सुन्नतै[4] ऊपर कै नीचै।
कहाँ टेके पैर धरती जब नहीं थी व्हां कै।

१. बुलाया। २. हांक देकर। ३. चिन दिये। ४. शून्य, आकाश।

जल सून्न चीर वह बैल आया कहां कै ।
चार दिसा का बोझ धर्या सिर ऊप्पर व्हां कै ।
कहै पिरजो सुनो संत जी जइयो सब्द का अर्थ लगा कै ।

ऐसे ही लम्बे गीतो मे देवी के दर्शन के लिए यात्रा का वर्णन भी रहता है । यात्रा की कठिनाई यात्री का ध्यान विशेष आकर्षित करती है ।

देवी के गीतो मे ल्हौकड़िया का वर्णन आया है । यह देवी का सेवक दिखाया गया है । इसमे देवी के प्रताप से अनोखी शक्ति का समावेश हुआ है । ब्रज मे प्रचलित नगरकोट की यात्रा से सम्बन्धित रतजगे के जो गीत अथवा भेंट मिले हैं उसमे वात्सल्य भाव एव पतित्व भाव दोनों के दर्शन होते हैं । ब्रज के इन गीतों में लागुर परपुरुष के रूप मे भी आया[१] है ।

अनौखी मालिनी मैना करै तौ डरपै का एकूं ।
तेरे हाथ को मूंदरा, लांगर दियौ गढ़ाई । अनौखी मालिनी...
तेरे सिर की चूंदरी, मैना लांगुर दई रंगाई । अनौखी मालिनी...

हरियाना के गीतों में ल्हौकड़िया के साथ सेवक रूप मे भैरो भी आया है । यह अलौकिक शक्ति सम्पन्न देवी के गणो में से एक है ।

हिन्दू वर्षारम्भ के पहिले नौ दिनों में देवी पूजन होता है परन्तु इन नौ दिनो मे भी तीसरे दिन का महत्व विशेष है । इसी दिन गणगौर का त्यौहार मनाया जाता है । गणगौर की पूजा सामूहिक रूप से होती है ।

गणगौर का प्रसंग धार्मिक दंत कथाओं में आया है । एक कथा के अनुसार इस दिन पार्वती का विवाह हुआ था । कुछ लोगों की धारणा है कि इस दिन मुकलावा (गौणा) हुआ था । आज भी बालिकाएँ गौरी के आदर्श को सामने रखकर आदर्श पति प्राप्ति के लिए कामना करती हैं और इसीलिए गणगौर अथवा गौरी को पूजती हैं । सुख-सौभाग्य की आकांक्षा इस उत्सव के मूल में है । आशुतोषा गौरा अपने भक्तों की प्रार्थना को व्यर्थ कदापि नहीं जाने देती, यह बालिकाओं का अटल विश्वास है ।

वैशाष-ज्येष्ठ में निर्जला एकादशी आदि एक-दो व्रत तो होते हैं परन्तु आनुष्ठानिक कोई कृत्य नहीं होता । एकादशी माहात्म्य वाला एक गीत उदाहरण के रूप में नीचे दिया जाता है :—

बरत करो ए राधा एकादशी को,
राम जी के नाम बिना मुक्ति किसी को ।

१. डा० सत्येन्द्र—'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ २४८-४९ ।

पुण्योपार्जन से मुक्ति मिलती है। पाप-कार्य बंधन तथा अधम योनियों के कारण हैं। आगे की पंक्तियों में बड़ी दक्षता से यह समझाया गया है कि एकादशी व्रत न करने से पाप की वृद्धि होती रहती है और परिणामतः नीची योनियों में जन्म मिलता है। भिन्न-भिन्न योनियो का हेतु भी कथा में दिया गया है :—

गोड्‌डे बांध पंच्चां में बैट्‌ठै,
चुगली चांट्‌टी वो करसी।
ऐसी ऐसी करणी मैं बण गंडकी,
रात्तूं गलियां मे वो फिरसी।
सास बयाद की चोरी करसी,
चोर चोर बुगचा[1] बाईं भरसी,
ऐसी-ऐसी करणी में बन सिबकली[2], भित्तां पर वा फिरसी।
अपणं खेत मे काकड़ी दूसरां के खेत सूं ल्यास्सी,
ऐसी ऐसी करणी मे वो गाइड़ बण खेतां में फिरसी।

इन गीतो के साथ भजन भी गाये जाते हैं जिनका स्नान के साथ विशेष महत्त्व होता है।

आषाढ़ माता धोकण का महीना है। देवी-देवताओ के धामों की यात्राए फिर आरम्भ होती हैं। शीतला माता की विशेष पूजा होती है। प्रायः महीने के प्रति सोमवार को माता की पूजा होती है।

२. भिन्न-भिन्न मासो में गाये जाने वाले गीत

श्रावण मास वर्ष के अन्य महीनों मे अपना विशेष स्थान रखता है। इस महीने मे मनोवेग तरगित होने लगते हैं और कामनियों के मधुर कंठ से फिर गीत-स्रोत फूट पड़ते हैं। इनकी अपनी एक विशेषता यह होती है कि इनके गाने के लिए अधिक साज-बाज की आवश्यकता नहीं होती, कठ ही मधुर स्वर-लहरी उत्पन्न कर देता है।

क. श्रावण

श्रावण की मादकता पशु-पक्षी, नदी-नद और प्रकृति पर प्रत्यक्ष लक्षित होती है। मेंढको की टरटर, मयूर की पीकू पीकू और वन-उपवन की निराली छटा मन को मोह लेती है। समस्त प्रकृति उल्लासमय है। श्रावण के गीतों

---

१. गठरी। २. छपकली।

की सृष्टि इसी पृष्ठभूमि में होती है। इस मास मे मिलनेवाले गीत इतने अधिक तथा अनेक रंगी हैं कि यदि इस मास को गीतो का मास कहा जाये तो अप्रगल्भ न होगा।

श्रावण में झूले का विशेष महत्त्व है। छोहरियाँ तत्ते तत्ते पूड़ों से उसका स्वागत करती हैं और वयस्काएँ रेशम डोर और चदन डाल से। सभी महिलाएँ एवं बालिकाएँ झूलने के लिए लालायित रहती हैं। ये झूले विशेष दृश्य दिखाते हैं। कहीं पैंग बढ़ाई जाती है तो कही सहेलियाँ आपस मे झूलती दीखती हैं। काली घटा का उभार, घनगर्जन और विद्यु त्तर्जन विप्रयुक्त स्त्री पुरुषों के मनोजाक्रात हृदय मे हूक उत्पन्न कर देता है। प्रोषितपतिका ललनाएँ इस सुहावने मास मे अपने स्वामियों की प्रतीक्षा करती हैं।

श्रावण संयोग करानेवाला मास माना जाता है। इसी मास मे पति परदेश से लौटकर प्रेयसी से मिलता है। बहिनें भाइयों के यहाँ समादृत होती हैं। माताएँ अपने पुत्र-पुत्रियो को देख सुख अनुभव करती हैं। इस मास के गीत संयोग और वियोग के दो झोटों मे आन्दोलित होते हैं। दोनों पक्षों का हृदयहारी वर्णन इन झूले के गीतों मे आया है, परन्तु विप्रलम्भ की जो मार्मिकता बन पड़ती है वह संयोग की नहीं। वियुक्तावस्था की कारुणिक स्थिति श्रावण की सरसता एवं उन्मत्तकारिता से मिलकर द्विगुणित हो जाती है। मयूर, मंजीर और पपीहा सभी कामियों के हृदयों को सालते हैं।

इस मास में प्राप्त हुए गीतों की संख्या अधिक है, इन गीतों के रंग भी विविध हैं। उन पर विस्तृत रूप से विचार करना आवश्यक है।

श्रावण के गीतों में ऋतु शोभा का वर्णन विशेष रहता है। रेशम पाट की बरही, चंदन की पटरी, वर्षा की रिमझिम, कोथली, मेघों का झुकझुक बरसना और चम्पा बाग में पंजाली पाठक का विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं। इन गीतों की यह विशेषता है कि इनका आरम्भ सदैव ऋतु शोभा से होता है।

हरियाना कृषि प्रधान प्रांत है। यहाँ की बहू-बेटियों के हृदय में सावन की पुकार है परन्तु अत्यधिक कृषि-कार्य उनका उत्साह भंग कर देता है। बाला के प्रस्तावों पर वज्रपात का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

आया री सासड़ सावन मास, सावन मास बेड़ बटा दे री पीला पाट की।
आया तो बहु मेरी श्रावण देय, जाय बटाइयो जी अपणे बाप कै।
आया री सासड़ सामण मास, सामण मास, पटड़ी घड़ा दे री चन्दन रूख की।
आया तो बहु मेरी श्रावण दे, हे जाय घड़इयो री अपणे बाप कै।

आया री सासड़ सामण मास, सामण मास हमनै खंदा[1] दे री म्हारे बाप कै।
इब कै तो बहुमारी खेती का काम, कातक जइयो री अपणे बाप कै।
कुण तौ बहु मेरी करेगा नुलाव[2] कोण जै पीस्सै घर का पीसणा जै।

वस्तुतः इन दैनिक कार्यों की अधिकता ने मानव को हार्दिक सरसता से रहित कर दिया है।

श्रावण की मल्हारो मे कोरा वर्णन ही नहीं होता। वहाँ हृदयपक्ष भी खुलकर आया है। सावन का महीना एक ही है परन्तु उसमे माता का दुलार और सासू के उपालम्भपूर्ण व्यंग्यवचन नायिका पर दो प्रभाव छोड़ते हैं। एक गीत में पीहर और सासरे की तुलना हरियानी बालिका अपने मुख से कर रही है। इस गीत की उपमाएँ बड़ी स्वाभाविक हैं :—

हरी ये जरी की हे मां! मेरी चुंदड़ी जी,
हे जी कोई दे भेजी मेरी मांय इन्द राजा नै झड़ी ए लगा दई जी।
अलां तो पलां[3] हे मां मेरी घुंघरू जी,
ए जी कोई बीच मायडके लाड इंद राजा नै झडी ए लगा दई जी।
बैठुं तो बाजै हे मां मेरी चुंदडी जी,
ए जी कोई प्यारे मायड़ के बोल, इंद राजा नै झडी लगा दई जी।
पीहर मे बेटी हे मां मेरी न्यूं रह जी,
ए जी कोई ज्यूं घिलड़ी बीच घी, इंद राजा नै झड़ी लगा दई जी।

चित्र का दूसरा पक्ष

सासड़ नै भेजी हे मां मेरी चुंदड़ी जी,
ए जी कोई दे भेजी मेरी सास इंद राजा नै झडी लगा दई जी।
अलां तो पलां हे मां मेरी छेकले[4] जी,
ए जी कोई बीच सासड़ के बोल[5], इंद राजा नै झड़ी ए लगा दई जी।
ओढूं तो दीखै हे मां मेरी छेकले जी,
ए जी कोई रड़ कै सासड़ के बोल, इंद राजा नै झडी एक लगा दई जी।
सासरे मे बेट्टी हे मां मेरी न्यूं रमै जी,
ए जी कोई ज्यूं रै कढाई बिच तेल, इंद राजा नै झड़ी ए लगा दई जी।

मा और सास की बडी मार्मिक तथा रहस्यपूर्ण तुलना इन पक्तियों मे की गई है।

श्रावण शुक्ला तृतीया को बालिकाएँ 'तीज' अथवा 'हरियाली तीज'

---

१. भेज दो। २. नलाई। ३. पल्ले, किनारे। ४ छिद्र। ५. व्यंग्य।

नामक एक विशेष उत्सव मनाती हैं। इस शुभ पर्व पर बहुधा कन्याएँ अपनी माता के यहाँ जाती हैं। जो नहीं जा पाती उन्हें "सिंधारा" भेजा जाता है। एक ऐसे ही गीत मे भाई बहन के यहाँ सिधारे की कोथली लेकर गया है। बहन बड़ी दुर्बल है। भाई कारण पूछता है :—

मीट्ठी तो कर देरी मोस्सी कोथली, सामण री आया गूंजता।
जाऊंगा री मेरी बेब्बे के देस, सामण आया री गूजता।
किसीयां के दुःख में बेब्बे दूबली[1],
किसीयां ने बोल्ले सैं बोल, सामण आया गूंजता।
सासड़ के दुःख में दूबली,
नणदी ने बोल्ले सैं बोल।

भाई तत्काल ही उपाय बतलाता है :—

नणदी नै भेजांगा सासरै,
सास्सु नै चक[2] लेगा राम।

हरियाने की छोरी को सास और नणद का दुःख है। इसी कारण वह दुबली है, परन्तु कुरु प्रदेश की बाला के विरुद्ध तो समस्त परिवार ही है। उसे अपने प्रियतम से भी आशा-रश्मि कभी-कभी मिलती है। कौरवी बाला, अतः अपने भाई के समक्ष सब का खुलकर परिचय देती है :—

सासू तो बीरा चूले की आग,
ननद भादों की बीजली।
सौरा तो बीरा काला सा नाग,
देवर साप संपोंलिया।
जेठा तोरे बीरा बीछू का डंक,
उपले पाथन डस जाए जी।
राजा तो रे बीरा मेंहदी का पेड़,
कदी रचै रे कदी ना रचै॥

वास्तव में, अपने प्राणवल्लभ के औदासीन्य पर अवश्य ही बाला को क्षोभ होगा। मेंहदी के पेड़ से प्रियतम की तुलना करके एक गंभीर मर्मभेदी पीड़ा की ओर संकेत किया गया है।

एक नायिका सखियों के साथ झूल रही है। उसका पति परदेश मे है। वह मैले भेष से है। इसी बीच एक बटोही आता है और उस मृगनैनी से

१. दुर्बल। २. उठा लेगा।

प्रस्ताव करता है कि वह उसके साथ चले—"गेर पुराणा लो नया म्हारी मृगानैणी चलो हमारी साथ।" मगर लाज के बोझ में दबी नायिका उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है :—

लाज्जेगा पीहर सासरा लाडलडी नन्दसाल।
लाज्जेगा बापल केसरी, बटेऊ। ठोला राता देनी माय।

इसी प्रकार वह परिवार के सभी लोगों के मान की रक्षा करती है। यह एक लम्बा गीत है। पर अत मे जब ज्ञात होता है कि वह नायक था तो नायिका पर बज्राघात होता है और वह पछताती रह जाती है :—

भाजूं तो दौडूं ल्हाज मरूं हेल्ला दिया ना जाय।
मुट्टी तो घाल्लूं खोज पै मुठ्ठी तो आवै रेत॥

एक मल्हार में नायिका के मान का चित्र बड़ी कुशलता से आया है। नायिका सावन के मनभावने समय मे बाग मे बगला छिवा देना चाहती है और बारणा ऐसा बनवाना चाहती है जिसमे चन्द्र सूर्य का पर्याप्त प्रकाश पड़े। जब उसकी इच्छा पूरी नही होती तो वह रथ जुड़वा कर अपने पिता के यहाॅ चली जाती है। जेठ, देवर, ससुर सब उसे मनाने जाते हैं। वह उन्हें प्रलोभन देती है, मगर अपने आग्रह पर अड़ी रहती है। अत में जब धनी (पति) जाता है और वचन पूरा करने को कहता है तो वह लौटती है। गीत कुछ बड़ा है :—

बागों बंगला छिवादे मेरे मारूजी रखा दे राज! चांद सूरज सोंही बारणा[1] जी।
बागां बंगला ना छिवै गोरी म्हारो रे नहीं राखें राज, चांद सूरज सोंही बारणा जी।
रुण झुण अरथ जुड़ाऊं मेरे मारू जी चली जाऊँ राज अपणे बाप कै जी।
सुसर मनावण आया मेरे मारू जी चलो क्यूं ना राज, चाल बहु घर आपणे जी।
अपणे सुसरे नै चादर दिवा दूँ मेरे मारू जी,
नहीं चालूं राज तेरे बेटे सेती ओलणा[2] जी।
जेठ मनावण आया मेरे मारू जी चालो क्यूं ना राज, चाल बहु घर आपणे जी।
अपणे जेठा नै घुड़ला दिवाद्यूं मेरे मारू जी,
नहीं चालूं राज तेरे बीरण सेती ओलणा जी।
देवर मनावण आया मेरे मारू जी चलो क्युं ना राज,
चाल भाबो घर आपणे जी।
अपणे देवर नै बाहण विवाह दुं मेरे मारू जी,
नहीं चालूं राज थारे बीरा सेती ओलणा जी।

१. द्वार। २. उपालंभ।

सभी व्यक्तियों को उनके उपयुक्त वस्तुओं का प्रलोभन देकर नायिका ने अपना पक्ष प्रबल कर लिया है। अंत में, पति देव स्वयं जाते हैं और मनाकर लाते हैं :—

कंथ मनावण आया मेरी साथणों, चलो क्यूं ना राज,
चाल गोरी घर आपणे जी।
बागां बंगला छिवा दे मेरे मारू जी रखा दो न राज,
चांद सुरज सोंही बारणा जी।
बांगा बंगला छिवा दूँ गोरी मेरी री रखा दूँ राज,
चांद सुरज सोंही बारणा जी।

यह लोक मे तिरिया हठ का एक सफल उदाहरण है।

एक गीत मे पौराणिक मान का चित्र आया है। राधा ने मान किया है। उसे शिकवा है कि जिन सखियो को कृष्ण ने फूल दिये हैं उन्ही के पास जायें। कृष्ण बाग से पुष्प चुनकर लाये हैं। उन्होने पुष्प बांटे हैं, मगर राधा को उसका भाग नहीं मिला है। फूल पहिले ही समाप्त हो गये हैं। राधा को कृष्ण के इस व्यवहार पर क्षोभ हुआ है। वह उत्तर देती है :—

ए जी जित बाटे झोलीभर फूल,
उडै पड़ सो रहो भगवान्।

कृष्ण प्रतिकूल परिस्थिति के प्रति राधा का ध्यान आकर्षित करते हैं :—

ए जी रिमझिम बरसे सैं मेघ,
बाहर भीज्जें एकले भगवान्।

इसी प्रकार कृष्ण अंधेरी रात में डर की बात कहतै हैं, पर राधा ने बड़े कौशलपूर्ण ढंग से उत्तर दिया है :—

ए जी थारे धोरै साथियां का साथ,
कैसे डरपो एकले जी भगवान्।

इतना ही नहीं राधा को कृष्ण द्वारा घर की दीवारें छूना भी सह्य नहीं है उसे भय है कि भित्ती पर की चित्रकारी भ्रष्ट हो जायेगी और चौतरा पर चढ़ने से वह उपड आयेगा :—

ए जी म्हारै चौंतरै पग ए ना देय,
लीप्या पोत्या ऊपड़ै भगवान्।

राधे के ये संकीर्ण विचार कृष्ण को खल जाते हैं।

ए जी इतनी सी सुण कैनै किशन महिलां ऊतरे भगवान्।

राधा को पछतावा हुआ। वह भी तुरत कृष्ण की खोज में निकली। बहुत छानबीन के बाद कृष्ण सोते हुए मिले। दोनों पक्षों से अपनी-अपनी कठिनाई एवं शिकायत पेश की गई। कृष्ण ने तर्क दिया :—

ए जी एक चणा दोय दाल,
दले पीछे ना मिले भगवान्।
ए जी एक दही दूजे दूध,
फटे पीछे ना मिले भगवान्।
ए जी एक पुरुष दूजी नार,
लडे पीछे ना मिलें भगवान्।

राजा ने अपील की है :—

ए जी एक चणा दूजी दाल,
पिसे पीछे रल मिले भगवान्।
ए जी एक दही दूजै दूध,
बिलेए[1] पीछे रल मिले भगवान्।
ए जी एक पुरष दूजी नार,
मनाए पीछे मन ए भगवान्।

अत मे कातरावस्था राधा के मुँह में आकर बोल उठी है :—

एजी रोवै राधे जार बेजार,
आंसू गेरै मोर ज्यूं भगवान्।
ए जी राधे रुसै बारबार,
किसन रुसै ना सरे भगवान्।

ठीक है, घर में झगड़े हो ही जाते हैं। दो भांडे होते हैं तो खटकते ही हैं। पर पति-पत्नी का सम्बन्ध बडा कोमल तथा निर्मल है, जो "किसन रुसे ना सरे" उक्ति से और भी मार्मिक हो गया है।

एक गीत में बडी मर्मस्पर्शी कल्पना है। पतिदेव ने सुख सुविधा की सामग्री एकत्र की है। छाया के लिए वृक्ष लगाया और दूध के लिए बछिया पाली है। बड़ी साधना के उपरात में चीजें समर्थ हुई हैं, पर भाग्य का खेल कि उनके बिलसने के समय प्राणदेव परदेश चले हैं। कैसी करुणा है ?

लाय चले थे भंवर हो पीपली, हांजी कोए हो गई गहरी छांय।
बैठन की रुत चाले नौकरी।

---

१. बिलोये जाकर।

छोड़ चले बे भंवर हो बाछड़ी, हांजी कोए हो गई लागड़ गाय।
दुहन की रुत चाले नौकरी।
पांच बरस की भंवर हो ब्याही, हांजी कोए हो गई सेर जुआन,
घालन[1] की रुत चाले नौकरी।

नायिका की इस दयनीय दशा को सुनकर नायक काल-यापन की युक्ति पेश करता है :—

चरखा लादूं हे गोरी रंग रंगीला, हांजी कोए पीढी लाल गुलाब।
साथनों में बैठी गोरी कातियो।

परन्तु नायिका को इससे संतोष कहाँ? वह कह गई है :—

चरखा तोड़ूं भंवर हो चौपटा, हांजी कोए पीढी के करूं अठारह टूक
सग तै थारी चालूंगी जी।
मांखी बण बदन के चीप[2] चलूं जे, हांजी सगथारी चालूं,
घर पर नहीं रहूंगी जी।

नायिका अपना सर्वस्व एवं अस्तित्व नायक के सुख सौविध्य के लिए अर्पण करने को उद्यत है :—

लोटा झारी[3] भंवर हो मैं बणूं जे, हांजी कोए बणज्यां रेशम डोर।
तिस लगे जब पिया हो पीलियो जे।
लाडू जेलबी भंवर हो मैं बणूं जे, हांजी कोए बणज्या कूट सुहाल।
भूख लगे जब पिया हो खा लियो जे।
बादल बीजली भवर हो मैं बणूं जे, हांजी कोए बणज्यां असल घटा।
धूप पड़ै जब पिया हो छां करूँ जे।

एक गीत मे नायिका से अनुचित प्रस्ताव किया गया है परन्तु उसने अपनी विलक्षण तर्कबुद्धि से प्रस्तावक को निरुतर कर दिया है :—

काला सांप का नाड़ा घड़वा दे,
अम्बर के सी चूंदड़ रंगवा दे
माणसमार कुढ़ता सिमवादे,
बांझ लुगाई का दूध मंगवादे,
कुआरी कन्या का छोरा मंगवादे,
जिद चालूंगी साथ हो मनवा।

अनुचित प्रस्ताव की रक्षा करते हुए प्रेमिका ने जिस बुद्धि कौशल से

---

१. बिदा कराने की, मंगाने की। २. लिपटना। ३. सुराही।

उसे हराया है, उसका पासंग भी हमारे शिष्ट साहित्य में तो कम से कम नहीं है। मनवा की पराजय का चित्रण नीचे की पक्तियों मे हुआ है :—

ये दो जोड़ा हाथ हे नौटंकी मत चालो म्हारे साथ हे नौटंकी।
इब क्यों जोडै हाथ हो मनवा, ले चाल्लो ना साथ हो मनवा॥

श्रावण के गीतों में छद्म के गीत भी आते हैं। लस्करिया पति के पास बुलावे का संदेश भेजा जाता है। परन्तु वह नाना प्रकार के बहाने बनाकर बात टाल देता है। अंत में सहधर्मिणी के मरण का वृत्तांत सुनकर उसे चिंता होती है। वह घर लौटता है तो रहस्य खुलता है :—

झुक जाय बादलो बरस क्यू ना जाय। टेक।
उतक्यू ना बरसी बादली जित म्हारा बीरा री देस।
उतमत बरसै ए बादली जित म्हारा पिया परदेश।
तम्बू तौ भीजै रलकता तम्बू की रेसम डोर। झुक जाय बादली...

विप्रयुक्ता ने निराली युक्तियां प्रस्तुत की हैं, परन्तु नायक पर उनका कोई प्रभाव नहीं होता।

चार टका दें गांठ का जे कोए लसकर जाय।
वै लस्करियां से न्यूं कहो थारी घर बाहण की ब्याह।
काला पीला जी कापड़ा कोए कन्या चोय परणाय[1]।
चार टका दे गांठ का जे कोए लसकर जाय। झुक जाय बादली ..
वै लस्करियां नै न्यूं कहो थारी माय मरयां घर आय।
माय नै दाबो बालूरेत में ऊपर सूल बबूल[2]। झुक जाय...
चार टका दें गांठ का जे कोए लसकर जाय।
वै लस्करियां नै न्यूं कहो थारै कुंवर हुयो घर आय। झुक जाय...
कोठी चावल घी घणो बैठी कंवर खिलाय।
चार टका दें गांठ का जे कोए लसकर जाय।
वै लस्करियां नै न्यूं कहो थारी जोय मरया घर आय। झुक...
जोय नै दाबो चम्पा बाग में ऊपर साल दुसाल। झुक ..

नायक को अब गृहस्थी की चिंता है :—

जोय मरी घर खोसरो म्हारा कुणबा बाराबाट।
कागद पटक्या जै चौंतरै वा उठ्यो धोती झाड। झुक जाय...
एल्यो राजा जी थारी चाकरी एल्यो थारा देस। झुक...

---

१. विवाह कर देना। २. तीखे तीखे कांटे।

क दुःख छोडी सै चाकरी, कैं दुःख छोडा सै देस ।
माथ मरां छोड़ी चाकरी जोय मर्यां छोड़ा देस । झुक जाय...

चिंताग्रस्त नायक घर लौटता है । पणिहारी गॉव की सीमा मे मिल जाती है । कुशल ज्ञात करता है :—

कुआ की पणिहारणी म्हारा घर की कुशल बताय ।
बालक झूलैं जी पालणे थारी जोय रसोइयां जी बीच ।
थारी मायड़ कातै जी कातणा, बहण कसीदा जी हाथ । झुक...

रहस्य खुल जाता है :—

बै छलियाई ने छल कर्या छल कर लिया सै बुलाय ।
छलकरां ना तो के करां थमछाया परदेस ।
झुक जाय बादली बरस क्यूं ना जाय ॥

यह गीत एक दुःख-सुखांत नाटक बन गया है । वियोग दुःख संयोग सुख मे बदल गया है और संयोग सुख मे आजीविका त्याग के दुःख अंश मिले हैं ।

'पणिहारी' के गीतों में रोमांस के चित्र आये हैं । हरियाने में संकेत स्थान कूपवापी जलस्थल ही हैं । इन्हीं स्थानों पर नायिका को नायक मिला है, परन्तु दुर्भाग्य से जब वह पहचानने मे विलम्ब कर गई है तो उसे पछतावा होता है :—

जैमैं ऐसी जाणती ए सासड़ री,
पकड़ूं थीं घोड़े की लगाम ।

नायिका ने नायक को खोजा है पर असफल रही है :—

पायां में छाले पड़ गये ए सासड री नैणा में रम आई नींद ।
पायां में मेधा[1] लायले ए बहु हीरेलाल नैणा में सुरमा री सार ।

पत्नी का श्रृंगार पति के आश्रय से है । अतः वह निराश होकर उत्तर देती है :—

किस पर मेंधा लायलू ए सासड़ री किस पर सुरमा री सार ।
दिल पर मेंधा लायले ए बहु हीरे लाल मन पर सुरमा री सार ।

सास ने बधू को सात्वना दी है कि चित्त स्थिर कर लेने से सब ठीक हो जाता है । पर उस बाला को इससे सतोष कहॉ ? वह तो प्रिय के वियोग में पागल हो गई है । उसे तो खाट ही आश्रय प्रदान करती है :—

घाल खटोला है पड़ी ए सासड़ री किती ए न पाये थारे लाल ।

१. मेंहदी ।

यहाँ 'ढैपड़ी' में कितनी विवशता है ? कैसी करुणा ?

एक अन्य गीत में चम्पा बाग मे पजाली पडी है नायिका माता के निषेध करने पर भी सखियों के साथ झूला झूलने जाती है। एक परदेसी से चार आखे हो जाती हैं। विवाह का प्रसग होता है और सरल अबोध ग्रामबाला ठगी जाती है। विवाह मंडप मे रहस्योद्घाटन से वज्रपात होता है। नायक निष्ठुर उत्तर देता है :—

छोहरी ! ना मेरा मर गया मय्यर बाप,
म्हारे मन आई म्हारी घर की नार,
थम से काहिये दोचंद[1] आगळी[2] जी।

पुत्री फिर अपनी माता की शरण जाती है :—

अम्मा री ! मरूं कै जीवूं मेरी मा !
राजा कै कहिए राणी दूसरी।

माता शुभकानाएँ करती है :—

बेटी री तेरी मर ए बला[3], राजा की मरिया राणी दूसरी।

एक अन्य गीत मे मनिहार से विलक्षण चूड़ियों की मांग की गई है जो पतिदेव के अंग प्रत्यग एवं वस्त्राभरण से न मिलती हों। हरी श्वेत आदि साधारण रग वाली चूड़ियों के अतिरिक्त सरबती रंग की चूड़ी नायिका पहरेगी। इन गीतो को 'मनरा' अथवा 'मनिहार' नाम से पुकारा जाता है। इनमें पति सम्बन्ध की अनूठी व्याख्या रहती है :—

हरी ए झंजीरी मनरा ना पहरूं, मनरा हरा ए म्हारा राजा जी का बाग
सुलतानी जी का बाग।
मनरा तो मेरी जान चुडला तो हात्थी दांत का।
काळी ए झंजीरी मनरा ना पहरूं, मनरा काला ए म्हारा राजा जी का सिर,
सुलतानी जी का सिर।
मनरा तो मेरी जान चुडला तो हात्थी दांत का।
धौली ए झंजीरी मनरा ना पहरूं, धौला रे मनरा ! म्हारा राजा जी का दांत,
सुलतानी जी का दांत।
मनरा तो मेरी जान चुडला तो हात्थी दांत का।
पीली झंजीरी ए मनरा ना पहरूं, पीला रे मनरा म्हारा राजा जी का कपड़ा,
सुलतानी जी का कापड़ा।

---

१ दुगनी। २. श्रेष्ठ। ३. आपत्ति, आफ़त।

मनरा तो मेरी जान चुड़ला तो हात्थी दांत का।
सरबै[1] फ़जीरी ए मनरा मैं पहरूं, यो मेरा राजा जी का सर्व सुहाग।

इस गीत मे नायक को नायिक के चरित्र पर सदेह हो गया है। वह तीर से उसका बध करके घर लौटता है, परन्तु उसकी गृहस्थी चौपट हो गई। उसके ऊपर आपत्तियो का जो पहाड़ टूटा है उसका अनुमान कर लेना समीचीन होगा :—

मारकूट घर नै बाहूवडो, अजी एजी बैठो है बहुत उदास।

× × ×

घर घर दीवला चसरह्या; अजी एजी रंडवा कै घोर अंधेर।
घर घर रसोई जी तपरई, अजी एजी रंडवा कौ ढकणी मे चून।
घर घर पिलग बिछरहूया, रंडवा कै घोर अंधेर।
घर घर बालक खेल रहे, अजी एजी रंडवा की कूड़ी में खाट।

एक गीत मे हरियाली तीज के अवसर पर लम्बे-लम्बे झोट्टा लेती हुई "मृगानैणी" का प्राणांत हो गया है। परवा पछवा वायु के सुखद झोके नायिका को दीर्घकाल तक आनन्दित न कर सके हैं। पति की कातरता का एक चित्र इन पंक्तियों में हुआ है :—

एक बर मुख सै बोल मृगानैणी नार !
भावज रा मन का चीत्ता[2] हो गया।

पति को पछतावा है :—

"थम नै तो रोवेगा कौन मृगानैणी नार ! पीहर मरी ना सासरे"

किसी प्रिय की मृत्यु पर रोना स्वाभाविका है। इससे शोकाकुल हृदय हल्का हो जाता है पर यहाँ कैसी करुणा है "पीहर मरी ना सासरे"। किन्तु नेपथ्य से उत्तर मिलता है :—

हमनै तो रोवै म्हारी माय जिनकी लाडज बेटी मर गई।

इसी प्रकार वह अपने भाई के रोने की बात कहती है जिसकी बाट सुनी हो गई। अपने श्वसुरालय में भी उसे रोनेवाले हैं।

हमनै तौ रोवै म्हारी सास, जिनके मंदर सूने हो गये।
हमनै तौ रोवै म्हारे राजा जी आप, जिनकी सेजां सूनी हो गई।

इससे आगे गीत नहीं बढ़ा है। शायद उसका कठ मसोस दिया गया है। करुणा की धारा इस मरु प्रदेश में शुष्क हो गई है।

---

१. सरबती। २. वांछित।

लोक-गीतों में कुलीनाओं का नीच लोगों के साथ प्रेम का वर्णन भी मिलता है। एक गीत में नायिका का मन 'मनरा' पर आसक्त है। नीचे दिये हुए गीत में प्रेम का पात्र एक 'नट' है। हरियानी नायिका नटयुवक पर मोहित हो गई है। वह उसके साथ चली जाती है। जब उसे कठोर वास्तविकता का पता चलता है तो वह विलाप करती है, पछताती है। उसे पूर्वसुख स्मरण आ-आकर पीडित करते हैं पर "अब क्या होना होत है जब चिड़िया चुग गई खेत।" उसने स्वयं ही अपना मार्ग निर्धारित किया है। गीत जब अन्त मे पहुँचता है तो एक लज्जा एवं विषाद की रेखा छोड़ जाता है :—

नट को खेलै बालुडे रते हाथ कडूला काना गोखरू जी राज।
देखो बाई जी नटका को रूप थारा बीरा से दो तिल आगलो जी राज,
जाओ भाभी नटका की साथ म्हारा बीरानै परणादयां दूसरी जी राज,
परणाओ बाई जी दो ए चार हमसरीखी कल मे ना मिलैं जी राज,
म्हारा बीरा चतुर सुजान तमसरीखी घडले काठ की जी राज,
घड़ लोबाई जी दो ए चार मुखड़े ना बोलै काया काठ जी राज।

दूसरा चित्र का दूसरा पक्ष :—

जब नटका नै लीनी ऊंट चढ़ाय, जाय उतारी बिखन[1] उजाड़ में जी,
जब नटका नै लीनी सर की तान, मन्नै आया सहर आपणा जी याद।
जब नटका लाया बासा टूक, मन्नै आया भोजन आपणा जी याद।
जब नटका लाया टूटी खाट, मन्नै आया पिलंग निवार का जी याद।
जब नटका लाया फाटी गूदड़ी, मन्नै आया सौड़ गींडवा जी याद।
जब नटका लीनी बांस चढ़ा, मन्नै आया राजा आपणा जी याद।

'मनरा' नामक गीत में नायिका की नीच पुरुषगामिता की प्रवृत्ति नायक को असह्य हो उठी है। वहां नायिका को 'असिघाट' उतार दिया गया है, परन्तु यहा ऐसा कोई दुर्धर्ष प्रहार नहीं है। आत्मग्लानि और पछतावा ही ही सुधार के आदर्श रहे हैं।

सावन मास मे झूला झूलती कन्याओं के सम्मुख चन्द्रावल का वीर-चरित्र प्रधान चित्र सहसा कौंध जाता है। चन्द्रावल उन वीरांगणाओ की प्रतीक बन कर आई है, जिन्होंने विधर्मी शत्रुओं के पजे में फँसकर भी अपने सत को आंच नहीं आने दी। घटना इतनी सी है कि श्रावण के दिनों में चन्द्रावल अपनी नणद के साथ पानी भरने जाती है। रास्ते में मुगल सिपाहियो का पड़ाव है। एक सिपाही चन्द्रावल के अनुपम रूप सौन्दर्य पर मुग्ध

१. भीषण।

हो जाता है और उस अनिंद्य सौन्दर्य को वश में कर लेता है। नायिका अपना संदेश पक्षी द्वारा भेजती है। श्वसुर, ज्येष्ठ तथा पतिदेव आते हैं, प्रयत्न करते हैं पर मुगल पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं होता। तब चन्द्रावल अपनी सहायता स्वयं करती है।

यह गीत सभी जनपदों में अपनी-अपनी भाषा में मिलता है और गाया जाता है। बुन्देलखंडी भाषा मे 'मानोगूजरी' इसी शृंखला की एक कड़ी है। बिहारी में 'भगवती का गीत' भारतीय नारी की सद्धर्मगाथा को इसी रंग में प्रस्तुत करता है। पंजाबी मे 'सुन्दर पनिहारिन' इसी भाव पर केन्द्रित है। राजस्थान की नारियाँ तो जौहर करने में आदर्श हैं ही। ऐतिहासिक इतिवृत्त को लेकर चलने वाले ये गीत कुछ लम्बे हैं। इनके द्वारा भारतीय सांस्कृतिक पक्ष की पर्याप्त पूर्ति हो जाती है।

हरियाना मे प्रचलित 'चन्द्रावल' गीत दो रूपों में हमें मिला है। एक गीत मे चन्द्रावल अपने पिता के यहाँ है और दूसरे में अपने सासरे है। एक गीत मे पिता और भ्राता उसकी मुक्ति की चेष्टा करते हैं और दूसरे मे ससुर तथा जेठ। पति दोनों गीतों में दुःखी नहीं दिखाया गया है। उपाय भी तम्बू जलाकर मुक्ति प्राप्त करना ही रहा है। एक गीत मे पति चन्द्रावल के सत् को देखकर प्रभावित हुआ है और उसकी आँखे गीली हो गई हैं। दोनों गीतों को देना हम यहाँ उचित समझते हैं :—

घड़ा ए घडा पै टोकणी चंदो पाणी नै जाय,
आगे फौज मुगल पठान की चंदो पकड़्य लई।
आगली तै गैल चन्द्रावली बाई राजकंवार।
उड़ती जाती चिड़कली[1] एक संडेस्सो[2] ले जाय।
बाप मेरा नै न्यों कहो, थारी धी पकड़ लई।
उड़ती जाती चिड़कली एक संडेस्सो ले जाय।
बीर मेरा नै न्यों कहो, थारी बाहणप कड़ लई।
बाबल सुण कै रो पड्यो भाई जाये खाई सै पछाड़।
कंता[3] सुणकै हंस पड्यो ब्याहवें दो ए चार।
बाबल उठ्यो झोअलो[4] ल्यायो करवा[5] लखचार।
घुड़ला लेल्यो ड्यौढ सै करवा लेल्यो लखचार।
बेट्टी छोड़ो चन्द्रावली बाई राजकंवार।
नाल्यां घुड़वा ह्योढ सै नाल्यां करवा लखचार

१. चिड़िया। २. संदेश। ३. पति। ४. क्रोधी, प्रतापी। ५. ऊंट।

बेटी ना छोड्डूँ चन्द्रावली बाई राजकंवार।
घर जा बाबल आपणे राखूं पगड़ी की लाज।
घरजा बीरा आपणे राखूं टोपूपी की लाज।
सांझ पड़ी दिन आथम्यौ ईब के हो मेरी मा।
उठ मुंगल का छोहरा पाणी भरल्या।
मरै ए तिसाई चन्द्रावली बाई राजकंवार।
उरै ए परा को पाणी ना पीऊं जल जमना कोल्या।
मरै ए तिसाई चन्द्रावली बाई राजकंवार।
मुंगली कै पीठ फिराई ओ, तम्बुआ में ला दई आग।
तम्बू जल गया ड्याडसै डोर जली लखचार।
बीच जली चन्द्रावली बाई राजकंवार।
मेरा बीरा ढोलिया रै गहरा ढोल बजा।
सुणैं मेरा पीहर सासरो लाडलडी नदसाल।
सत की रही चन्द्रावली दो कुल तारी[1] जा।
तारा पीहर सासरा तार दई नदसाल।

यह गीत एक ओर स्त्री-चरित्र की उदारता एवं स्त्री हृदय की पति के प्रति निर्मल भावनाओं का परिचय देता है तो दूसरी ओर पति की निर्मम निष्ठुर प्रतिक्रिया के दर्शन भी "कता सुण कै हंस पड़्यो ब्याहवें दो ए चार" जैसी उक्तियों में हो जाते हैं। परन्तु पातिव्रत धर्म एवं सती धर्म का प्रभाव पति पर पड़ा अवश्य है। दूसरे गीत के अन्तिम बोल हैं :—

सुसरा जी मुंड्डी[2] धुणै, जेठ जी नै खाई सै पछाड़,
आप हजारी ढोला[3] रो पड़ा इसी दुनियां में ना।

चन्द्रावल के लोकोत्तर आत्मबलिदान की यह गाथा युग-युग तक भारतीय सन्नारी के गौरव की प्रतीक बनी रहेगी और कामलोलुप पतियों के समक्ष एक आदर्श स्थापित करती रहेगी। दूसरा पाठान्तर इस प्रकार से मिला है :—

नणद भौजाई दोन्नों जणी दोन्नौं पाणी नै जांय,
फौज पडी थी नवाब की जामें मुगल पठान।
सुण आगली सुण पाछली ए सुण ले मेरा जबाब,
या तो गोरी म्हारै मनबसी हसनै छोडेंगे नाव।
सुण रै मुंगल का छोहरा सुण ले मेरी रे बात।
बाईं जी कै बदले में रहूँ बाई जी नै जाण ना द्यां।

---

१. उबारकर। २. सिर। ३. पति।

उड़ती जाती कोयली एक संड्डेस्सो ले जाय।
मेरा सुसर नै न्यों कहो बहुबड़ पकडी जाय।
उड़ती जाती कोयली एक संडेस्सो ले जाय,
मेरा जेठ नै न्यों कहो बौहौड़िया पकडी जाय।
उडती जाती कोयली एक संडेस्सो लै जाय,
मेरा बालम नै न्यों कहो गोरी पकड़ी जाय।
सुसरो जी सुण कै रोपड्यो जेठ जी खाई सै पछाड,
आप हजारी ढोलो हंस पड़्यो ब्याहूँ दो ए चार।
सुसरा जी हस्ती चढ्या जेठ जी घोड़ै असवार,
आप हजारी ढोला अरथ में अरथ हांक्के बी जाय।
सुसरा जी उतर्‌या बड़तलै, जेठ जी बडलां की छांय,
आप हजारी ढोला बाग में, चाब्बे नागर पान।
जाओ सुसर घर आपणै राक्खूं पगड़ी की लाज,
खाणा ना खाऊं इस तुरक का बाई राजकंवार।
जाओ जेठ घर आपणै राक्खूं पंचां की लाज,
पाणी ना पीऊं इस तुरक का बाई राजकंवार।
जाओ बालम घर आपणै राक्खूं सेजां की लाज,
सेज ना पोढ़ूं[1] इस मुंगल की बाई राजकंवार।
जारै मुगला का छोहरा जलभर झारी ल्या,
बहुत तिसाई[2] चन्द्रावली बाई राजकंवार।
ऊरा पराकौ पाणी मैं ना पिऊं जल जमना को रे ल्या,
मरे ए तिसाई चन्द्रावली बाई राजकंवार।
मुंगलै नै पीठ फिराई ओ, तम्बू कै लादई आग,
खड़ी जलै चन्द्रावली बाई राजकंवार।
तम्बू बलगया डोडसै डोर जली लखचार,
बीच जलै चन्द्रावली बाई राजकंवार।
हाय हाय मूंगला करै तोबा करै सै पठान,
पकड़ी थी बिलसी[3] नहीं बाई राजकंवार।
मेरा रै भाई ढोलिया गहरो ढोल बजाय,
पीहर सुणियें सासरै लाडलडी नदसाल।
सुसरा जो मुंड्ड़ी धुणै, जेठ जी नै खाई सैं पहाड़,
आप हजारी ढोला रो पड़ा इसी दुनिया में ना।

१. सोना। २. प्यासी। ३. उपभोग करना।

यह एक ऐतिहासिक गीत है। चन्द्रावल का निर्दोष नारी-चरित्र ओसकण सदृश पावन एवं उज्ज्वल बनकर जनसमाज के लिए अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर रहा है। लोक-जीवन की यह अमर कहानी भारत के नैतिक आदर्श पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। चन्द्रावल की तुलना में काव्य जगत् का केवल निर्दोष से निर्दोष पात्र ही आ सकता है। चित्तौड़ की पद्मनी तथा सखियों का जौहर अवश्य लोमहर्षक घटना है किन्तु जो अपूर्वता एवं लोकोत्तरता चन्द्रावल के आत्मबलिदान में आई है, जिस उच्च भावना तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचय यहाँ मिलता है, वह बहुसाधन सम्पन्न चित्तौड़ के बलिदान में कहाँ है ?

साध्वी चन्द्रावल का पावन चरित्र भारतीय नारी के सतीत्व का प्रतीक बन गया है। वह पापात्मा यवनों के वासना-व्यूह को ध्वस्त कर ध्रुवतारिका के सदृश नारी जगत् को चारित्रिक दृढ़ता एवं आचार की पावनता का संदेश दे रहा है। आज भी भारतीय नारी चन्द्रावल को अपना आदर्श मानती हैं। झूले के गीतों मे संभवतः प्रतिवर्ष इसीलिए महिलाएँ इस पावन गाथात्मक इतिहास को गाती हैं। इन गीतों में ऐसे अनेकानेक उदाहरण मिलेंगे।

श्रावण के गीतों में 'बारह-मासा' का विशेष वर्णन आता है। ये गीत बहुधा वियोगावस्था का वर्णन करते हैं। जिनके लिए क्षण कल्पसम व्यतीत होते हैं, उन वियोगियों के प्रति वर्ष के बारहमास क्या बनकर आते हैं, यह दिखाना बारहमासे का काम होता है। ऋतु-विशेष में विरहिणी की प्रतिक्रिया की प्रतीति इन्हीं गीतों में होती है।

'बारहमासा' गीतों में वर्ष भर के बारह महीनों में होनेवाले दुःखों का वर्णन होता है। अतः इन गीतों का नामकरण 'बारहमासा' है। इसमें विरह-जन्य वेदना का कथन रहता है। सावन के मनभावन काल में विप्रयुक्ताओं का विरह जब उत्कर्ष को प्राप्त हो जाता है, तब उसका प्रवाह बारहमासा के रूप में फूट पड़ता है।

करुणरस-प्रधान बारहमासे पावसकाल में विशेषकर श्रावण मास में गाये जाते हैं। वियोगाकुल रमणियाँ मेघावलियों के स्वर में स्वर मिलाकर इन्हें गाती हैं और झूलती हैं। बारहमासा की स्वाभाविकता, सरसता एवं सरसता दर्शनीय होती है। लोकसाहित्य के उद्भट विद्वान् डा० उपाध्याय ने इन गीतों की प्रवृत्ति को देखकर इन्हें 'विरहमासा' कहा है जो सुतरां सत्य है।

बारहमासा की शैली कितनी प्राचीन है, यह जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं। बारहमासा उतना ही पुराना है जितने वर्ष के बारह महीने

अथवा षड्ऋतुओं का संचार एवं जितनी बिरहिणी की वियोगविदग्ध हृदय की 'आहें'। हिन्दी के महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी लोक प्रचलित इस गीत की सरसता एव प्रभावशालिता के वशीभूत होकर ही "नागमती विरह वर्णन" के लिए बारहमासा को चुना था। संस्कृत के महाकाव्यो में तो षड्ऋतु वर्णन एक अनिवार्य लक्षण बनकर आया है। इससे इतना तो पता चलता है कि यह प्रवृत्ति साहित्य में चाहे अति प्राचीन काल से हो पर हिन्दी में लगभग पौने चार सौ वर्ष से इसका वर्णन प्राप्त होता है। ऋतुओं की महत्ता महात्मा तुलसीदास ने भी स्वीकार की है। उनका वर्षा वर्णन हिन्दी साहित्य की अनूठी वस्तु है।

हरियाना मे जो बारहमासा प्रचलित हैं, उनमे से एक में विप्रयुक्ता राधा अपनी असहाय परिस्थिति में नानाविध अभाव अनुभव करती है। उसे शुक-शावक से शिकायत है कि उसने मिथ्या आशा बधाई है। अंत में, नायिका निराश हो करउसे मार डालने की धमकी देती है, परन्तु शुक दैवज्ञ है और वह राधा को सांत्वना देता है :—

साढ जे मास सुहावणा सुआ रे! जै घर होता हर को लाल, मैं हाली खंदावती।
सामण जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर को लाल, मैं हिंदो[1] घलावती।
भादृड़ा जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं गूगा[2] मनावती।
असौज जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं पितर समोखती।
कातक जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं दिवाली मनावती।
मंगसर जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं सौड़ भरावती।
पौह जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं संकरांत मनावती।
माह जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं बसंत मणावती।
फागण जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं होली खेलती।
चैत जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं गणगौर पूजती।
वैषाख जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं पंखा मंगावती।
जेठ जे मास सुहावणा सुआरे! जै घर होता हर का लाल, मैं जेठड़ा मनावती।
बारहए महीना होलिया सुआरे! तोडूं मरोडूं तेरा पींजड़ा।
जल में दूंगी बहाय तेरी सेवा न करूं सुआरे।
म्हारी तो सेवा वै करैं राधा ए जो हर आवैंगा आज।
जोडूं जंगोडूं तेरा पींजड़ा सुआरे! और चुगाऊं पीली दाल, तेरी सेवा मैं करूं।

बारहमासा प्रायः आषाढ़ मास के वर्णन से आरम्भ होता है और ज्येष्ठ

---

१. हिंडोला। २. गुलगूगा।

मास के वर्णन से समाप्त होता है। बारहमासा की एक विशेषता यह भी है कि इनमें वर्ष भर के महीनों में होनेवाले सुख-दुख का वर्णन एक साथ आ जाता है, विरह-व्यथा की अनुभूति एक स्थान पर हो जाती है। इसी शैली पर 'छमासा' और 'चौमासा' भी होते हैं। 'बारहमासा' में विरहानल की ज्वाला ही नहीं होती, उसमें कृषक के दैनिक जीवन की व्याख्या भी होती है। राजस्थानी 'बारहमासा' मे कृषक के सादे जीवन का इतिहास आ गया है। उसका काम ही उसका सर्वस्व है। काम की सफलता उसे ईश्वर-प्राप्ति का सा आनन्द देती है। पूरा गीत नीचे उद्धृत किया गया है :—

साढ महीने बिरखा लागी, बाजरियां री वाह।
माऊ जी म्हारे भातो लावै, वाहरे सांई वाह॥
सावण महीने बाजर लागी, नीनाणां री नाह।
काचरियां री बेलां टालां, वाह रे सांई वाह॥
भादू महीने भूगा होसी, तीवणियां री ताह।
बाजरियां री रोटी खावां, वाह रे सांई वाह॥
आसोजां मैं आसा लागी, हक्कालां री हाह।
राती बासे रोही रहस्यां, वाह रे सांई वाह॥
काती महीने करड़ा सिट्टा, भावै इत्ता खाह।
काती महीने सिट्टा कीना, वाह रे सांई वाह॥
मिगसर महीने मोका महत्ता, लेखो लेसी साह।
लेय' र देय' दूर रा होस्यां, वाह रे सांई वाह॥
पोह महीने पालो पड़सी, खालडी रो खाह।
खालड़ी रो खोह कीनो, वाह रे सांई वाह॥
माह महीने पालो पड़सी, पाणी पत्थर खाह।
पाणीरो तो पत्थर कीनो, वाह रे सांई वाह॥
फागण महीने फाग खेलै, गोपियां रो नाह।
महूड़े रो मद पीयो, वाह रे सांई वाह॥
चैत महीने चंपा मोरी, चंचल मोरचा साह।
बिन बूठां ही हरिया होसी, वाह रे सांई वाह॥
वैसाखां मे धूप पड़सी, ता बड़िये री ताह।
पड़ छायां में पड़िया रहस्यां, वाह रे सांई वाह॥
जेठ महीने धूप पड़सी, ता बड़िये री ताह।
खेजड़ चढ़ र खोखा साख्यां, वाह रे सांई वाह॥[1]

१. 'राजस्थानी लोकगीत में बारहसासा'—पृष्ठ ६१-६२, प्रो० सूर्यकरण पारीक, एम. ए.।

कृषक के जीवन-दर्शन की झलक अपूर्व भव्यता से इस छोटे से गीत में कह दी गई है। किसान को अपने स्वामी के प्रति कृतज्ञ दिखलाया गया है।

आषाढ़ मास में वर्षा प्रारम्भ होती है, किसान खेत में काम करता है और उसकी मा उसे रोटी पहुँचाती है। श्रावण मे बाजरा उगता है, खेत नलाया जाता है, और मतीरे की बेलें बचा दी जाती हैं। भाद्रपद में भुनगे बहुत होते हैं, शाक तरकारी अधिक होती है और नये बाजरे की रोटियाँ बनाते हैं। आश्विन (क्वार) में फसल की आशा हो जाती है और क्षेत्र-रक्षक चिल्ला-चिल्लाकर चिड़िया उड़ाते हैं। कार्तिक मास में 'सिट्टे' खूब होते हैं, चाहे जितने खाओ। वाह रे ईश्वर, तुझे धन्य है। मगसिर मे साहूकार लेखा-जोखा करता है। किसान ले-दे कर हिसाब साफ करता है। पौष में भयकर शीत पड़ता है जो चमडी तक को छील देता है। माघ मे शीत के कारण पानी जम जाता है। फाल्गुन में महुवे का रस पीकर किसान मस्त रहता है। चैत में चंपा फूलती है और मोर चचल हो जाते हैं। वैशाख और जेठ मे भयंकर धूप पड़ती है, किसान अपनी झोंपड़ी में अथवा वृक्ष के तले आराम करता है। हे ईश्वर! तुझे धन्य है जो प्रत्येक ऋतु और मास में किसान को नये-नये अनुभव और फल देता है।

बारहमासा की शैली सभी जनपदों में एवं सभी लोक भाषाओं में प्रचलित है। इसके तुलनात्मक अध्ययन के लिए बडे विस्तार की आवश्यकता है। अतः हम पड़ौस के राजस्थानी बारहमासे को दिखाकर ही अपने इस विवेचन को समाप्त करते हैं।

ख. भाद्रपद

भाद्रपद मे जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाता है। इस अवसर पर व्रत रखा जाता है। कृष्ण को बच्चा बनाकर पालने में झुलाते हैं, भजन गाते हैं। एक गीत में पुत्र कृष्ण के विनिमय का पौराणिक वर्णन आया है :—

जलभरण देवकी जाय दशोदा रस्ते में मिली हरे।
के दुखड़ा बे बे सास नणद का के बाले भरतार बे बे, के बाले भरतार,
दशोदा रस्ते मे मिली हरे।
ना दुखड़ा बेबे सास नणद का ना बाले भरतार बेबे ना बाले भरतार,
दशोदा रस्ते में मिली हरे।
एक दुखड़ा बेबे कोख जली का जिण मेरा मारा सै मान जिन मारा सैमान,
दशोदा रस्ते में मिली हरे।

जे बेबे तेरै छोरा होजा गोकल दिये पुचाय बेबे गोकल दीये पुचाय,
दशोदा रस्ते में मिली हरे।
जे बेबे मेरे छोरी होगी पुत्रका बदला चुकाय बेबे पुत्र का बदला चुकाय,
दशोदा रस्ते में मिली हरे।

कृष्ण जन्माष्टमी से अगले दिन नवमी को 'गूगानवमी' का बड़ा भारी उत्सव हरियाने में मनाया जाता है। गूगा जिसे 'बागड़वाला' कहते हैं, जाहरपीर के नाम से भी प्रसिद्ध है। गुरुगुग्गा के विषय में लघु तथा प्रबन्ध दोनों प्रकार के गीत इधर प्रचलित हैं। जाहरपीर के रतजगे में प्रायः प्रबन्ध गीत गाया जाता है और अन्य अवसरों पर या गूगा नौमी पर घरों में, साधारण रूप से, मुक्तक अथवा लघु गीत गा लिये जाते हैं! प्रबन्ध-कथा गीतों में गूगा के शौर्य का लोमहर्षक वर्णन आया है जो यथास्थान प्रबन्ध गीत वर्णन में दिया गया है। यहाँ हम उसके जीवन का संक्षिप्त वर्णन तथा महिला-जगत् में प्रचलित लघु-कथा गीत देते है।

गूगा का इतिवृत्त अंधकार में पड़ा हुआ है। गूगा हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों द्वारा समान रूप से पूजा जाता है। हिन्दू गूगाबीर, गूगावीर अथवा गुरुगुग्गा कहकर इसकी पूजा करते हैं। मुसलमान इसे गूगापीर (संतगूगा अथवा जाहिरपीर) जिसकी कला प्रत्यक्ष है, कहकर इसे पूजते हैं।

वास्तव में, गूगा राजपूत वंश विभूषण है, परन्तु यह एक आश्चर्य है कि किस प्रकार चौहानवंशीय गूगा की वीरकथा पर मुसलमानी रंग का पैबंद लग गया है। इस दिशा में एक घटना मुख्यरूप से कही जाती है। यह प्रसिद्ध है कि बीकानेर राज्य के अन्तर्गत ददरेरा स्थान पर गूगा ने भू-समाधि ली थी। कथा है कि उसने अपने मौसरे भाई अरजन और सुरजन द्वारा उसके बध के षड्यन्त्र को असफल कर दिया था और दंडस्वरूप उन दोनों को मार डाला था। इस अपकृत्य पर माता बाछल ने गूगा की भर्त्सना की और आदेश दिया कि वह मुख न दिखावे। इस घटना से क्षुब्ध हो गूगा ने भू-माता से अपने मे लीन कर लेने के लिए प्रार्थना की। पृथ्वी से प्रत्युत्तर मिला कि हिन्दू होने के कारण उसे भूगर्भवास नहीं मिलेगा, यदि ऐसी इच्छा है तो पहिले इस्लाम में दीक्षित होना चाहिए। वह कलमा सीखता है और मुसलमान बन जाता है। धरती मा उसे विलीन कर लेती है। विश्वास है तभी से इसके हिन्दू एवं इस्लामी दो स्वरूप हो गये हैं।

मा बाछल तथा उसकी धर्मपत्नी सरिअल (सरियल) को घोर पश्चात्ताप होता है परन्तु गूगा सरियल से नित्य प्रति रात्रि मे मिलता है। एक बार

तीजो के दिन विवश होकर सरिअल इस रहस्य को बाछल पर प्रकट करती है। परिणाम स्वरूप सास बधू दोनों पुत्र एवं पति को सदा के लिए हाथ से खो बैठती हैं।

ऐतिहासिक वृत्त के आश्रय पर गूगा अपने भाई अरजन सरजन को पैतृक सम्पति मे से भाग मांगने के विरोध में मार डालता है, पर एक गीत मे इस बध का कारण यह बतलाया गया है कि गूगा की अनुपस्थिति में अरजन सरजन ने सरियल (गूगा की पत्नी) के साथ छेड़खानी की है और इस शिकायत पर गूगा ने उनको मार डाला है।

प्रमाणाभाव मे यह निर्णय देना कठिन है कि घटना का कौन-सा स्वरूप सत्य है; पर महिलाओं के गीत प्रायः उन्हीं देवताओं के ऊपर हैं जिन्होंने स्त्री-मर्यादा की रक्षा की है अथवा नारी-रत्नो को कष्ट के अवसर पर सहायता पहुँचाई है। पुराण काल मे, कृष्ण ने द्रौपदी की लज्जा रखकर अपनी महिमा दिखाई तथा राम ने सन्नारी सीता की गरिमा अक्षुण्ण रखी। महाबली हनुमान ने नारी-मर्यादा को ठीक आंका एवं शिव ने पार्वती की प्रतिज्ञा को पूरा किया। अतः मर्यादा पालक सभी देवता नारी-श्रद्धा के पात्र रहे हैं। सरियल भी अरजन सरजन—राहु केतु दो दुष्टग्रहों द्वारा ग्रसित थी और वीर गूगा ने इसी नारी-मर्यादा संरक्षण के लिए अपनी तलवार उठाई। इतिहास साक्षी है कि गूगा ने मध्य-युग मे आततायी यवनो से लोहा लिया और बागढ़ देश को उनके भीषण आक्रमणो से बचाया। 'दि लीजेंड्स् ऑव दि पंजाब' में सर आर० सी० टेम्पल ने लिखा है कि "गूगा एक हिन्दू है और यह चौहान राजपूतों का नेता है जिसने १००० ईस्वी में महमूद गजनी को रोका था।[1]" इसका घर बीकानेर राज्य था। सिरसा से प्राप्त एक वर्णन में आया है कि गूगा की ख्याति मुगल सम्राट् औरंगजेब के समय १६५८-१७०७ में व्याप्त थी।[2] एक अन्य मत के अनुसार गूगा हरियाना के चौहान राजपूत थे। सन् १३५३ में दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह द्वितीय के सेनापति अबूबकर से युद्ध करके वीर-गति को प्राप्त हुये। इस प्रकार हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि गूगा एक राजपूत है और बागढ़ का वीर पुरुष है।

हरियाना से प्राप्त एक गीत में आया है कि गूगा अपनी धर्मपत्नी की मर्यादा-रक्षा के लिये अपने मौसेरे भाइयों का बध करता है :—

---

१. 'दि लीजेंडस् ऑव दि पंजाब' प्रथम खंड, पृष्ठ १२१ प्रभृति।

२. 'ग्लौसरी ऑव दि पंजाब एन्ड एन० डब्लू०, एफ० पी० ट्राइब्स' प्रथम भाग, पृष्ठ १७८।

गूगो रै सुत्तो जाल तलै तमोट्टी ताण,
वारी मेरा गोगा भल रह्यो,
वारी मेरा सायर भल रह्यो,
सरयल निकली पाणी नूं, लेगी दोघड़ वाली मांट ।
अरजन सुत्तो जाल तले,
सरजन सरवरिये की पाल, वारी मेरा गूगा भल रहियो ।
अरजन पकड़्यो गूंगटो[1],
सरजन मेरी छल्ले वाली नाथ ।
थम लागो मेरे देवर जेठ, राखो रे बहू की ल्हाज ।
सरियल गई गूगा के पास,
थम सुत्या गोगा नींदड़ल्यां ।
लूट्टी ले री छल्लेवाली नार ।

वीर गूगा इस अमर्यादित दुष्कृत्य पर क्षुब्ध हो उठता है और उन दोनों भाइयों का बध कर देता हैं :—

अरजन नै मार्‍या जाल तलै,
सरजन नै सखरिये की पाल ।

माता बाछल को जब इस घटना का पता चलता है तो वह विह्वल हो जाती है :—

जुल्म कर्‍या रे मेरा लाडेला,
मार्‍यो रे मौस्सी का पूत ।
सुंहा पड़्या बिलोवणा[2], छाछ बारी फिर फिर जा ।

परन्तु सरियल को इस शौर्यपूर्ण घटना पर गर्व है, उसके अपमान का प्रतिकार हो गया है :—

सुहां पड़्या-बिलोवणा, छाछवारी भर भर जा ।
वारी मेरा सायर भल रहियो ।

माता की भर्त्सना पर गूगा आत्म-बलिदान देता है और भूगर्भ में समाधि लेता है । माता को पुत्र के इस गंभीर निश्चय पर आत्मग्लानि होती है, पश्चात्ताप होता है और वह पुत्र से कम से कम एक बार वापिस लौटने की इच्छा व्यक्त करती है । वह प्रति वर्ष भाद्रपद कृष्ण नवमी को आता है । इस वृत्त को लेकर एक गीत हरियाने की जनता का कंठाभरण बना हुआ है :—

१. घूंघट । २. मथानी ।

लीला सा घोड़ा गोरा गाबरू धरती में गया समाय,
जा राणां एक बर घर आ।
धरती माता लेखा मांगे के हिन्दु के मुस्लमान,
जा राणां एक बर घर आ।
आज लग तो मेरा हिन्दु जन्म था आज हुआ मुस्लमान,
जा राणां एक बर घर आ।
परसां[1] मे तेरा बाबल[2] जिरवै[3] कित गया बैठनहार,
जा राणां एक बर घर आ।
तौं मत जिरवै बाबल मेरा मैं आऊंगा बैठणहार,
जा राणां एक बर घर आ।
रसोई में तेरी माता जिरवै कित गया जीमनहार,
जा राणां एक बर घर आ।
तूं मत जिरवै मायड़ मेरी मैं आऊंगा जीमनहार,
जा राणां एक बार घर आ।
सासरिये तेरी बाहण जिरवै देख जिठानी का बीर,
जा राणां एक बर घर आ।
तूं मत जिरवै बाहण मेरी आऊंगा तेरा लेनीहार,
जा राणां एक बर घर आ।
पीहरिये तेरी गोरी जिरवै देख बाहण का न्याव,
जा राणां एक बर घर आ।
तूं मत जिरवै गोरी मेरी मैं आऊंगा तेरा लैंनीहार,
जा राणां एक बर घर आ।
साढ न आऊं सामण न आऊं आऊं भादूड़े मास।
सातम ना आऊं आठ्यम ना आऊं, आऊंगा नौमी की रात॥

गूगा हरियाना अथवा बागड़ का सर्वप्रिय नेता रहा है। उसकी यह प्रसिद्धि एक स्थान पर इस प्रकार व्यक्त की गई है:—

"गूगा मरग्या सतम[4] गुजरग्या बागड़ पड़ग्या सोग।"

एक तीसरे गीत में नाटकीय दुःखांत परिस्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है। गूगा अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नित्यशः लौटता है। सरियल को उसकी उपस्थिति का विशेष सुख है, परन्तु दुर्दैव विपाक से श्रावण की हरियाली

१. चौपाल, बैठक। २. पिता। ३. जीर्ण हो रहा है, दुर्बल है, दुःखी है। ४. जुल्म, आपत्ति।

तीज उसके लिए वज्र तीज बनकर आई है। उस दिन विवश होकर वह रहस्योद्घाटन करती है और सदैव के लिए विरह वियुक्ता रह जाती है :—

आम की डाली पड़ी ए पंजाली झूलन आवैं रनवास मियाँ।
सासू तो झूलै री वाकी बहूए लखावै लोग करैं चरचाव मियाँ।
उठ उठ मूंगा[1] बांदी महलां में जइये सिरयल हाल[2] बुलाय मियाँ।
बागां तै उठकै बांदी महलां में आई, उठो उठो रानी बागां मे चालियो,
बाछल रहीए बुलाय मियाँ।
कहो तो बांदी मेरी सब रंग पहरूं पचरंग पहरूं कहो तो चलूं मैले भेस मियाँ।
हमके जाणै रानी पंचरंग पहरो सब रंगपहरो हमके जाणे मैले भेस मियाँ।
बाल बाल ते मूंगा मोती पिरोवै माथे में बिंदा नैनों में स्याही मुखडे
में बिड़ला लाय मियाँ।
हरी हरी चुड़ियां अनवट बिछुआ भर लिया सोलह सिंगार मियाँ।
महलां से चली रानी बागां में आई पछवातै परवा सासू पवन चलै ही,
मुखतै तो उडो है रुमाल मियाँ।
वा रनवासे में चरचा चली है यो कैसो रांडा का भेस मियाँ।
बागां में जाओ बांदी संट्टी ल्याओ मार उधेड़ या की खाल मियाँ।
चढती पजाली सासू कुछ मत कहिए महलां में लीजे समझाय मियाँ।
वहाँ की तो चली रानी महलां में आई, खुंट्टी धरो तो रानी चाबक,
उतारो मार उधेड़ी तन की खाल मियाँ।
तेरे तो लेखै सासू मरबी गये हैं, चले बी गये हैं मेरे तो आवैं नितरोज मियाँ।
अबकै तो आवैं बहू हमें री बताओ कोई तनक सुरत दिखाय मियाँ।
आधी सी रात अर झुकी है अंधेरी कोई जाहर आये हैं मठार मियाँ।
और दिना तो गोरी दिवला बले हे आज कैसे घोर अधेर मियाँ।
और दिना तो रानी हंसी बी खुसी ही न्हाई धोई आज कैसो मैलो भेस मियाँ।
अम्मा तुम्हारी रे सास हमारी मार उधेड़ी तनकी खाल मियाँ।
दिन निकला जब चिडिया चौकी कोई जाहर हुए घोड़ै अस्वार मियाँ।
सोवै कै जागे री मेरी बैरन सासू महलां के चोर भागे जाय मियाँ।
खडा तो रहिए रै मेरे दूधा तै पाले गोद खिलाये कोई तनक सुरत दिखाय मियाँ।
पीछे तो फिरकै देख मेरी माता महलां में लग रही आग मियाँ।
महला की आग बेठा जलसू बुझैगी मायड़ की लोभन आग मियाँ।
सासू देखन लागी कोई घोडे सेत्ती[3] गये हैं समाय मियाँ।
हम सूबी खोया सासू ! अपसूबी खोया चले गये हैं हाय मियाँ।

---

१. दासी का नाम। २. तुरन्त। ३. सहित।

कथा बड़ी ही दुःखांत एवं मर्मांतक है। पुत्र बधू की विवशतापूर्ण कातरता "हम सूबी खोया सासू! अपसूबी खोया" के रूप में शोकसागर बहा रही है।

ग. क्वार

क्वार-मास में साजी मांगी जाती है। यह दुर्गा का रूप है। बालिकाओं की यह आराध्या है। सांजी विषयक गीत देवी की साकारोपासना भावना के प्रतीक हैं। इन गीतों में सख्यभाव के ऐसे अनूठे तत्त्व मिलते हैं जो अष्टछाप के कवियो की स्मृति करा देते हैं। निरीह-बालउपासकों के उपयुक्त ही साजी माई का उत्तर है :—

म्हारी सांझी ए! के ओढैगी के पहरैगी क्यांए की मांग भरावैगी।
मिसरू पहरूंगी स्यालु ओढूंगी मोतीयां की मांग भराऊंगी।
म्हारी सांझी ए के जीमैगी के झूठैगी क्याए की चलुए[1] भरावैगी।
लाडु जीमूंगी पेडा झूठूंगी इम्रत की चलूंए भराऊंगी।

बालिकाएं सांझी को मातृरूप में पूजती हैं। प्रातः संध्या में आरती करती हैं और नैवेद्य आदि से उसकी पूजा भी करती हैं। यह एक आश्चर्य की बात है कि सांझी सभी जातियों—हिन्दू अहिन्दू और मुसलमानों में समानरूप से मनाई जाती है। वही आरती और मिष्ठान्न से पूजन सब जातियों में चलता है। लोक-जीवन मे मानों एकरूपता आ गई है।

सांजी देवी को घर की भित्ति पर बनाया जाता है। मिट्टी के सब अंग-प्रत्यंग बना लिये जाते हैं और उन्हें गोबर के आश्रय से भित्ति पर चिपका दिया जाता है। यह मूर्ति माता दुर्गा से मिलती है, इसे *'संध्या माता'* भी कहा जाता है। बालिकाएं 'सांझी माई' का आरता करतीं हुई अपने गृहस्थ-कुटुम्ब को नहीं भूलतीं। कन्याओं को गोरे भाई-भावी का बड़ा शौक है :—

आरता हे आरता सांझी माई आरता,
आरते की फूल फवेलन बेल,
इतने से भाइयां में कुणसा गोरा।
चंदा गोरा सूरज गोरा गोरा के नयण कजल भर गेरे।

नवरात्रि तक यह आयोजन चलता रहता है। विजयदशमी वाले दिन संध्या में सम्मानपूर्वक सांझी माई को जल में प्रवाहित कर दिया जाता है।

घ. कार्तिक

कार्तिक मास लोक-गीतों एवं लौकिक आचार विधानों की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण मास है। इस मास में प्रातः स्नान का विशेष माहात्म्य है।

1. आचमनी।

महिलाएं सर-सरिताओं में स्नान कर प्रभाती और हरजस गाती हैं, तुलसी की पूजा करती हैं।

कार्तिक के गीत बड़े ही मधुर तथा भावपूर्ण होते हैं। राधा-कृष्ण एवं शिव-पार्वती की प्रणय कहानी इन गीतों में प्रतीकरूप में छाई रहती है। गंगा-स्नान का विशेष पर्व इसी मास मे आता है। गंगा-स्नान के लिए स्त्री-पुरुषों में विशेष उत्साह एवं आस्था के दर्शन होते हैं। लोग गंगा पुलिन पर कई दिन तक निवास करते हैं और पुण्यार्जन करते हैं।

हरियाना से प्राप्त कार्तिक गीतों में एक गीत ऐसा है कि हरियानी कृषक-बाला कार्तिक स्नान करना चाहती है। उसका हृदय कार्तिक स्नान की महत्ता से अभिभूत है। माता-पिता तथा भाई-भावज विविध बहाने बनाकर इस धार्मिक प्रवृत्ति से उसे रोकते हैं। उनकी दृष्टि में संभवतः भावस्वरूप धर्म की कोई महत्ता नहीं है, महत्ता है तो स्थूल दैनिक कार्य की :—

परस बठता अपना बाबल बूभा, कहो तो कात्तक न्हाल्यूं हो राम।
कात्तक न्हाणा बेटी बड़ाये दुहेल्ला[1], लाइयो बागबगीचे हो राम।
दूध वमोडती[2] अपनी मायड़ बुज्भी, कहो तो कात्तक न्हाल्यूं हो राम।
कात्तक न्हाणा बेट्टी बड़ाए दुहेल्ला, सिंच्चो धरम की क्यारी हो राम।
धार_कढंता अपना बीरण बुज्भा, कहो तो कात्तक न्हाल्यूं हो राम।
कात्तक न्हाणा बेब्बे बड़ाए दुहेल्ला, लेल्ले न गोद भतीजा हो राम।
पीसणा पीसती अपनी भावज ओ बुज्भी, कहो तो कात्तक न्हाल्यूं हो राम।
कात्तक न्हाणा नणदल बडाए दुहेल्ला, काढो हो ना कसीदा हो राम।

इस गीत में साधारण दैनिक कर्तव्यों ने धार्मिक-भावना पर तुषारापात किया है। भला, वणिग् वृत्तिवाले जग से क्या आशा की जा सकती है? स्वार्थमय संसार में 'काम प्यारा है, चाम प्यारा नहीं है।' कन्या प्रत्येक दिशा से कार्य ही कार्य की दुहाई सुन रही है, उसे किधर से भी आशा-रश्मि नहीं मिलती। कैसी कातरता है? कार्याधिक्य ने मनुष्य के विवेक को भी आक्रात कर लिया है।

कार्तिक-स्नान-माहात्म्य में तुलसी की पूजा का विशेष स्थान है। तुलसी ने एक दीर्घ एवं अनन्य भक्ति के उपरांत विष्णु जैसा वर प्राप्त किया था। आज भी कन्याएं तुलसी की उपासना कर उसके आदर्श को अर्घ्य देती हैं :—

सात सुहेली न्हाण चाली तुलसां कूक बुलाई हो राम।
लोटा भी ले लिया झारी भी ले ली तुलसा न्हाण चाली हो राम।

---
१. कठिन। २. बिलोती।

सात सुहेली न्यूं उठ बोली तुलसा औड[1] कंवारी हो राम।
लोटा भी पटक्या झारी बी पटकी रोवंदड़ी[2] घर आई हो राम।
के बेटी तुलसां भूतां डराई के भाईयां नै दुदकारी[3] हो राम।
ना हो मेरा दादा भूतां नै डराई, ना भाइयां नै दुदकारी हो राम।
सात सुहेली न्यूं उठ बोलीं तुलसा औड कंवारी हो राम।
कै बेट्टी चांद बर ढूंडो के बेट्टी सूरज बर ढूंडो हो राम।
सूरज हो बाबल तपै घनैरी चदा की रैन अंधेरी हो राम।
हमने बाबल ऐसां बर ढूंडो सीस उपावै धधा ल्यावै हो राम।
कवर कन्हैया हो राम हो ए घरबारी हो राम।

पुण्य प्राप्ति के साथ यदि सद्गृहस्थी भी मिल जाये तो क्या हानि?

कार्तिक के एक दूसरे गीत मे कृष्ण जी राधा से प्रस्ताव कर रहे हैं कि पुण्यप्रद कार्तिक मास है गंगा-स्नान की तैयारी करनी चाहिए। पर घर में वृद्धा सास है उसे कैसे एकाकी छोड़ा जाय? कृष्ण को तत्काल उक्ति सूझ आती है:—

"रे राधा प्यारी! बुढिया नै चरखे बठाय, वैसे छोड़ों एकली हो राम।"

क्या चरखा गंगा सदृश पवित्र नहीं है? कृष्ण ने संभवतः "मन चगा तो कठौती में गंगा" बहा दी है। कैसा लोक सुलभ उपाय ढूंढ़ लिया गया है?

कार्तिक में गंगा-स्नान का एक विशेष महत्त्व है। हरियानी जाट नायिका पति से आग्रह करके गंगा-स्नान के लिए चली जाती है। घर पर उसकी हात्तड़ भैस है। उस हात्थड़ (एक हत्थी) भैंस ने पतिदेव की बड़ी दुर्दशा की है। जाट की इसी दशा को एक हास्यजनक चित्र का रूप मिला है। यह कैरीकेचर (Caricature) लोकमेधा की एक अनूठी सूझ का परिचय है। जहाँ विशेष के साथ सामान्य का समावेश भी हो गया है:—

मन्नै तो पिया गंगा न्हुवादे जारी सै संसार, हां ए जारी सै संसार।
तनै तो गोरी क्युंकर न्हुवादयूं हात्तड़ पाड़ी भैंस, हां ए हात्तड़ परड़ी भैंस।
एक जतन पिया मैं बतलादयूं।
खूंटी पै मेरा दामण[4] लटकै चुंदड़ी छाप्पेदार, हां ए चुंदड़ी छाप्पेदार।
डब्बे में मेरी नाथ धरी सै पहर काढियो धार, हां ए पहर काढियो धार।
बाहर तैं इक मोडिया आया, बेब्बे भिच्छा डाल, हां ए बेब्बे भिच्छा डाल।
बेब्बे तौ तेरी न्हाण गई सैं, जीज्जा काढै धार, हां ए जीज्जा काढे धार।
खुंटा पाड़गी जेवड़ा[5] तुड़ागी भाजगी सै भैंस, हां ए भाजगी सै भैंस।
डंडा लैकै पाछै होलिया, लैणा गया था भैंस, हां ए लैणा गया था भैंस।
गांत्ती खुलगी पल्ला उडग्या, मूंछ फड़ाके लैं हां ए मूंछ फड़ाके लैं।

१. इतनी। २. रोती हुई। ३. फटकारी। ४. लँहगा, घागरा। ५. रस्सी।

गलियां में योः चरचा हो रही, देखी मुछड़ नार, हां ए देखी मुंछड़ नार।
कोट्ठै चढ़कै रुक्के मारे कोए मत भेज्जो न्हाण, हा ए कोए मत भेज्जो न्हाण।

ग्रामीण कृषक के मतिमांद्य का एक सजीव व्यंग्य चित्र इन पंक्तियो मे हुआ है। "गलियॉ म्हैं योः चरचा हो रही, देखी मुंछड़ नार, हां एक देखी मुछड़ नार" कैसी स्वाभाविक उक्ति है। प्रत्येक पंक्ति मे प्रयुक्त आवृत्ति वर्णन की सचाई का प्रमाण है।

कार्तिक मास के गीतों मे प्रभाती, हरजस अथवा भजन का भी विशिष्ट स्थान है। कई प्रकार के सुन्दर-सुन्दर भजन कामिनी कलकंठ के आभरण बनते हैं और वातावरण को धर्ममय बनाते रहते हैं।

इसी मास मे समृद्धि का प्रतीक दिवाली (दीपमालिका) उत्सव मनाया जाता है। यह वर्ष भर मनाये जानेवाले अन्य उत्सव व पर्वों से अधिक सुभग एवं सुन्दर है। लौकिक कामनाओं की पूर्ति का एक मात्र आधार अर्थ है और अर्थपूजन का विशेष लक्ष्य इस उत्सव के अन्तस् मे है।

करवा चौथ तथा अहोई आठें व्रत हैं। इन अवसरों पर कई प्रकार के लोकाचार होते हैं और दोनों व्रतों की समाप्ति कहानी सुनने के उपरांत होती है।

देव उठान (देवोत्थान) का पर्व भी इसी मास की शुक्ला एकादशी को मनाया जाता है। इस अवसर पर मंत्रपाठ की तरह एक गीत गाया जाता है जिसमें एक साधारण स्थिति का साधारण सा वर्णन आया है :—

हे दे ! सुत्तीड़ा साढ मांस, हे दे उट्ठीड़ा का त्यगमांस,
उठूं सूं रे उठावां सां, छींक्के हाथ घलावां सां,
छींकै धरी चार कचौरी, आप खां कै ब्राह्मण दीजै,
आप खा लाहा[1] हो, ब्राह्मण दीजै कहा हो,
ब्राह्मण नै दीजै बुड्ढी सी गा, आगै पिच्छोकड़ मूत्ते वाह।

इस गीत का पाठांतर भी हमें मिला है। विशेष अंतर तो नहीं हैं, आदि अत के अशों मे अवश्य व्यत्यय है। आरम्भ और अंत के बोल इस प्रकार हैं :—

उठो देवो जाग्गो देवो, उठांसां उठावां सां।

× × ×

गये थे हम साढ के मांह, आये सां हम कात्तक माह ॥

भाषा दोनों गीतों की अन्तर लिए हुए है। दूसरे गीत की भाषा में सादगी है।

---

१. लाभ।

देवोत्थान एकादशी की शुभ तिथि पर गांव के पाली (ग्वाले) एकत्रित होकर घर-घर मांगते हैं। विशेषकर उन लोगों के पास जाते हैं जिनके यहा पुत्रोत्पत्ति होती है अथवा विवाहोत्सव होता है। वे एक लम्बा सा गीत गाते हैं। गीत की शैली एवं लय कुछ-कुछ केसूरा के गीतों से मिलती है। एक गीत नीचे दिया जाता है :—

गोई गोई गोई रे,
भैंस काटडा गोई रे,
राजा जाए मेढी[1] मे सोया, राणी आय जगाया रे।
उठो राजा थारी फौज पलटन आई रे।
आई सै तो आवणद्यो, म्हैं गुरु का भाई जी।
कोई कूद्या कोट[2] कांगड़ा कोई कूद्या खाई रे।
कूद पड्या गुज्जर का बेटा, नौ सौ गऊ छुडाई रे।
नौ सौ गऊआं मे, एक दुधा धाया[3] बैडा,
पानी का तिसाया रे।
उरली गंगा खारा पाणी, पर ली जाए ढुकाया[4] रे।
अठै ढूंढ्या, उठै ढूंढ्या, जायवणी मे पाया रे।
पीता पीता हट्या नहीं तो, मार बरछी हटाया रे।
नौ मण की मेरी बरछी टूटी, दस मण लोह जडाया रे।
अडक टूटी धड़क टूटी, तारा अम्बर छाया रे।
लाओ मेरी मोई रे, मोई मोई मोई रे,
भैंस काटड़ा गोई रे।

इस गीत का भावपक्ष समुन्नत कोटि का नहीं है, परन्तु पाठक ऐसे गीतों के भावपक्ष पर विचार करने से पूर्व यदि प्रवक्ता की परिस्थिति पर ध्यान दे लें तो निराश न होना पड़े। ग्वाल-बालों की कल्पना कपोती से ऊँची उड़ान की आशा व्यर्थ है। वहाँ तो निरर्थक शब्दजाल ही हाथ लगेगा।

अगहन पूस में कोई पर्व उत्सव नहीं मनाया जाता है। संभवतः शीत के प्रकोप से उत्सव भी मंद पड़ जाते हैं। यात्रा आदि भी नहीं हो पातीं।

माघ के आरम्भ में संक्रांति का महोत्सव विशेष रूप से मनाया जाता है। हरियानी जनता उसे बड़े उत्साह के साथ मनाती है और उनकी दृष्टि मे इस पर्व की महत्ता सर्वोपरि है। यह हरियाने का परम पावन एवं

१. महल। २. किले की दीवार वगैरा। ३. दूध पीकर मोटा बना हुआ बधिया बैल। ४. पहुँचाया।

कल्याणप्रद पर्व माना जाता है। ग्रामीण जनता मे इसकी महत्ता विशेष दर्शनीय है। ब्रह्ममुहूर्त में स्नान किया जाता है, पशुओ को चारा खिलाया जाता है और भूखों को भोजन। नंगों को कम्बल आदि वस्त्र बाटे जावे हैं।

माघ शुक्ल पचमी को बसंत की स्थापना की जाती है और इसके पश्चात् लोक मे गीतों की पुनः बाढ़ आ जाती है। लोक-गीतों का यह ज्वार अहरह बढ़ता हुआ फाल्गुन पूर्णिमा तक जा पहुँचता है।

ङ. फाल्गुन

हरियाना के अन्यान्य त्योहारो मे होली का अपना पृथक् अस्तित्व है। यह गाना, बजाना और हँसो का उत्सव होता है। बसंत स्थापना तथा फाल्गुन के प्रारभ से ही होली के संगीत की मंद गंभीर वेगवती धारा अविरल रूप से बहने लगती है।

बसंत जब यौवन पर होता है, प्रकृति नवोढ़ा के सदृश स्वर्णाभ दुकूल से सुसज्जित हो जाती है। किसान के खेत सरसो के उत्फुल्ल बासती पुष्पो से भरे होते हैं तथा गेहूँ और जौ की फसलें हरी साड़ी पहने होती हैं। ऐसी मादक बेला मे फाग की बहार आती है।

फाल्गुन की पूर्णिमा को हास-परिहास और उल्लास उत्साह से पूर्ण होलिकोत्सव मनाया जाता है। हरियाने मे इसकी छवि अनूठी होती है। फाग एवं होली गाई और बजाई जाती है। जनता परस्पर होली खेलकर अभिनव प्रेम प्रकट करती है। यह पर्व आचार के दृष्टिकोण से बड़ा अनुपम है। होली का यह उत्सव भ्रातृभाव, मित्रभाव एवं प्रीतिभाव का सृजनकर मानसिक मलीनता को नष्ट कर देता है। नर नारी, आबालवृद्ध सभी रग विरंगे बनकर और नाच-नाच कर इस महोत्सव को मनाते हैं।

फाल्गुन में होली के अवसर पर जो गान होता है वह फाग अथवा होली के नाम से पुकारा जाता है। इन होलियों अथवा फागों में शिष्टहास्य, मनोरजन और नवोत्साह की सजीवता विद्यमान रहती है।

हरियाना मे होली के अवसर पर 'धमाल' राग भी गाया जाता है जिसे हरियानी वीर उन्मत्त होकर तारस्वरेण ढप्प पर गाता है। इन धमालों मे इतिहास, पुराण, श्रृगार एव घरेलू वातावरण के रंग भरे होते हैं। एक पौराणिक चित्र नीचे दिया जाता है :—

लिछमन कै रै बाण लगा रै सक्ती लिछमन कै।
ऐसा रै होय कोई बीरा नै जिवाले,
आधा राज सवाई धरती। लिछमन कै. . .।

के तो जिवाले सीता रै सतवंती,
के तो जिवाले हनुमान जती। लिछमन कै....
क्यां तै जिवाले सीता रै सतवंती,
क्यां तै जिवाले हनुमान जती। लिछमन कै....
सत नै जिवाले सीता रै सतवंती,
बूटी तै जिवाले हनुमान जती। लिछमन कै....

घरेलू एवं ग्रामीण वातावरण भी इन धमालों का विषय बना है। ग्रामीणाएँ अपने ओढने अथवा चुदडी को नाना प्रकार के कसीदों से सुशोभित करती हैं। इन कसीदो में मयूर आदि पक्षियों की सुन्दर-सुन्दर आकृतियां बनाई जाती हैं और शीशे के लघु-लघु खंड भी लगा दिये जाते हैं। इस बात का वर्णन एक धमाल में आया है :—

रै चुंदड़ी तेरा जुलम कसीदा।
कुण सै महीने बोल्लै मोर पपैया ?
कबसी चमकै सीसा ? रै चुदड़ी तेरा जुल्म कसीदा।
सामण महीने बोलै मोर पपैया
फागण चमकै सीसा ? रै चुंदड़ी तेरा जुल्म क़सीदा।
कौण सी नणद नै काढ्या सै क़सीदा ?
कौणसी नै गोद्या सीसा ? रै चुंदड़ी तेरा जुल्म क़सीदा।
छोटड़ी नणद नै काढ्या सै क़सीदा,
बडली नै गोद्या सीसा। रै चुंदड़ी तेरा जुल्म क़सीदा।

आज की प्रयोगवादी कविता के लिए अच्छा उदाहरण है। साधारण से साधारण वस्तु को काव्य का विषय बनाना लोक मे न जाने कब से चला आ रहा है ? आज हम जिसे नूतन वाद एवं नई सूझ कहकर पुकारते हैं, लोक में वह चिरकाल से प्रचलित है।

एक दूसरी धमाल में कृषकबाला के खेत रखाने-सम्बन्धी कार्य का वर्णन आया है। खेत के मचान पर किसान की छोरी गोफिया लिये गोलिया नामक पक्षी-विशेष को उड़ा रही है। गोला (गोफिया) चलाने से उसे कष्ट हो रहा है :—

गोलिया तेरी गर्दन काली।
कौण से देस तैं चला रै गोलिया,
बागड़ देस तैं चला रै गोलिया।
ले गोलिया तेरे मारूं से गोल,
दूखै रै नाथ अरबाली। रै गोलिया तेरी गर्दन काली।

हरियाना के एक गीत में होली के 'आगमन' की चर्चा आई है। होली पर्वत से उतरी है और वट वृक्ष के पीछे आकर बैठी है :—

डावै[1] डूगर[2] स्यूं होली उतरी,
आय उतरी बडलैगें[3] हेठ।

कुरु प्रदेश में होली के आगमन की चर्चा निम्नलिखित प्रकार से की गई है :—

होली आई है गजर मत खा कै।
वह तो जाएगी फस्ल कटवा कै॥

एक ऐतिहासिक घटना है कि हरियाना पर मुगलों के प्रशासन के बाद मरहटों का राज्य रहा और उन्हीं से अंग्रेजों को यहां का आधिपत्य मिला। उन्हीं दिनों के ऐतिहासिक वातावरण की झलक एक होली में मिलती है। होली मनोरजन का उत्सव है। वह मनोरंजन कभी-कभी चारित्रिक दुर्बलताओं तक पहुँच जाता है। इसीका सकेत एक स्थान पर मिलता है :—

होली बी खेलै ढपबी बजा कै गलियां में उडए गुलाल।
कहियो मुरैटण से होली खेलण आवै नवाब।
हंसलो घड़ावै फिरगी को लड़कों कठलो घड़ावै नवाब।
कहियो मुरैटण तै होली खेलण आवै नवाब।
ऐसी होली खेलो मिरगानैणी म्हारा साफा की रखियो लहाज।
कहियो मुरैटण तै होली खेलण आवै नवाब।
लंहगो सिंवावै फिरंगी को लड़कों, स्यालू सिंवावै नवाब।
कहियो मुरैटण तै होली खेलण आवै नवाब।
बाजू घड़ावै फिरंगी को लडको, लूंषा जड़ावै नवाब।
ऐसी होली खेलो मिरगानैणी म्हारा साफा की रखियो लहाज।

प्रलोभन से बचने के लिए आदेश एवं प्रार्थना इस गीत के प्राण हैं।

हरियाने के फाल्गुन के लोकगीत संयोग-वियोग के ताने बाने से बुने हैं। फाल्गुन का उन्मत्त मास बिरहोत्कंठिता नायिकाओं तथा सुहागिनों की दृष्टि मे अपनी पृथक्-पृथक् आभा लेकर उतरा है। सौभाग्यवती स्त्रियों के प्रति फाल्गुन एक आनन्दोपभोग का संदेश लेकर आता है। वास्तव में एक सुहावना समय होता है, न अधिक शीत, न अधिक गर्मी। प्रकृति में उल्लास, सर्वत्र आनन्द। ऐसे शोभनीयकाल मे ही सौभाग्य की सफलता है। एक चित्र देखिए :—

---

१. बायां हाथ, २. पहाड़। ३. वटवृक्ष के पीछे।

फागन के दिन चार री सजनी, फागन के दिन चार। टेक।
मध जोबन आया फागन में,
फागन भी आया जोबन मे।
झाल[1] उठैं सैं मेरे मन में,
जिनका बार न पार री सजनी, फागन के दिन चार।
प्यारा का चंदन महकन लाग्या,
गात का जोबन लचकन लाग्या,
मस्ताना मन बहकन लाग्या,
प्यार करण नै त्यार री सजनी, फागन के दिन चार।
गाओ गीत मस्ती में भर कै,
जी जाओ सारी मर मर कै,
नाचन लागो छमछम करकै,
उठन दो झंकार री सजनी, फागन के दिन चार।
चंदा पोंहचा आन सिखर में,
हिरणी जा पोंहची अम्बर में,
सूनी सेज पड़ी सै घर में,
साजन करैं तकरार री सजनी, फागन के दिन चार।

वृद्ध-वृद्धाओं में भी मस्ती का मंत्र फूंक देने वाला फाल्गुन मास कैसा रंगरंगीला है, यह एक हरियाना के एक गीत में पढ़िये। पहिले बोल कितने सच्चे निरीक्षण से भरे हैं :—

काची अम्बली गदराई सामण में,
बुढी री लुगाई मस्ताई फागण में।

इस तथ्य-निरूपण के पश्चात् गीत विरहपीड़िता नवोढा की ओर झुकता है :—

कहियो री उस ससुर मेरे नै बिन घाली[2] लेजा फागण में।
कहियो री उस बहुए म्हारी नै चार वर्ष डट जाय पीहर में।
कहियो री जेठ मेरे नै बिन घाली लेजा फागण में।
कहियो री उस बहु म्हारी नै चार वर्ष डट जा पीहर में।
कहियो री उस देवर मेरे नै बिन घाली लेजा फागण में।
कहियो री उस भावज म्हारी नै चार वर्ष डट जाय पीहर में।

फाल्गुन की मदिराभ शोभा जब वृद्धाओं में मस्ती का संचार कर देती

---

१. ज्वाला। २. भेजी हुई।

है तो विरहोत्कंठिता उन्मत्तयौवना नव परिणीताओं की क्या दशा होगी यह सहज अनुमानगम्य है। उपरोक्त गीत मे ऐसी ही एक विरहविदग्धा हरियानी नायिका मर्यादा उल्लंघन का प्रस्ताव करती है कि कम से कम फाल्गुन में तो उसे बिना भेजे ही ले जायें, परन्तु श्वसुर, जेठ आदि से एक दीर्घकाल—चार वर्ष तक प्रतीक्षा करने का सुझाव मिलता है। प्यारा देवर भी उपदेश देने लगता है। एक ही आशा थी वह भी विलीन हो गई।

यह गीत रेगिस्तानी नदी की भाँति बीच में ही शुष्क हो गया है, आगे नहीं बढ़ा है। निराशा की अखंड सिकता ने उसे बीच मे ही लुप्त कर दिया है। कैसी करुणा है, कैसी असहाय अवस्था है? हृदय की बात को स्पष्ट कह देने मे लोकजन कितने कुशल होते हैं, यह ऐसे उदाहरणो से समझा जा सकता है।

एक गीत मे चेतन मेधा (Conscious Mind) की झलक मिलती है। विरहोत्कंठिता प्रोषितपतिका नायिका को पति के परदेश रहते हुए बजमारे फाल्गुन के आने की धृष्टता विक्षुब्ध कर रही है। इतना ही नहीं चन्द्र-कौमुदी के प्रति भी उसे शिकवा है :—

जब साजन ही परदेस गये, मस्ताना फागण क्यू आया।
जब सारा फागण बीत गया, तैं घर में साजन क्यूं आया।
छुम छुम नाचैं सब नरनारी, मैं बैठी दुखां की मारी।
मेरे मन मे जब अंधेर मचा, तै चांद का चांदण क्यूं आया।
इब पीया आया, जीखिल्याना, जब जी आया पी मिल्याना।
साजन बिन जोबन क्यूं आया, जोबन बिन साजन क्यूं आया।
मन की तै अर्थी बंधी पड़ी, आंख्यां मे लागी हाय झडी।
जब फूल मेरे मन का सूक्या, लजमारा फागन क्यूं आया।

गीत की अन्तिम पक्तियों में नायिका की कातरावस्था की अवतारणा हुई है : "मन की लै अर्थी बंधी पड़ी, आख्या मे लागी हाय झड़ी।" पति के बिना आंखें प्रतीक्षा करती-करती रो रही हैं, मन मर गया है। घोर निराशा है।

एक दूसरे गीत मे उन्मादी बसंत ने डेरा दिया है, पर ऐसे मादक काल में निर्मोही पति ने परदेश-यात्रा की ठानी है। नायिका को इस बात पर क्षोभ है। नायक नाना युक्तियाँ देता है। पर पति बिना फाल्गुन की कल्पना भी व्यर्थ है।

नायक अपनी अनुपस्थिति मे नायिका को सांत्वना दे रहा है कि वह

चर्खा कातकर अपना समय बिता ले। किसी प्रकार की कोई चिंता नहीं है। घर में समस्त सामग्री है किन्तु नायिका को संतोष कहाँ? पीहर भी उसे रोचक नहीं लगता, वहाँ भावज के व्यंग्य बाण हैं। अंत में, नायिका अपनी अवस्था की कैफियत दे रही है :—

भैल जुड़ा दूयूं हे गोरी म्हारी बाजणी बैट्ठी पीहर जाय।
मो बिड़ला मेरै मन बसा।
खडीए[1] पियारी हो पिया बाप कै थारै बिन आदर न होय।
मो बिड़ला मेरै मन बसा।
ग्वड़ी जै सूखूं कडबजूं चरिए न डांगर ढोर,
मो बिड़ला मेरै मन बसा।
कड़ब निमाणी[3] हो पिया ढै पड़ै हम पड्यो ए न जाय,
मो बिड़ला मेरै मन बसा॥

नायिका विषमावस्था मे है। पितृगृह का असम्मानपूर्ण वातावरण उसके मर्म को बेध रहा है। चरी के सदृश सूख जाऊँगी जिसे पशु भी न खायेंगे। फिर भला आपके योग्य कैसे रहूँगी। ज्वार का पौदा झुककर गिर जाता है, मिट्टी मे मिल जाता है, पर मुझसे मरा भी नहीं जाता।

चैत्र कृष्णा प्रतिपद् को होली जलाई जाती है। उसी दिन धूल खेली जाती है। हरियाना मे 'होलिका' द्वारा भक्त प्रह्लाद के जलाये जाने के प्रयत्न को लेकर एक हरजस (भजन) गाया जाता है। इस हरजस मे बडी विलक्षण कल्पना की गई है कि होलिका का शीलवस्त्र तीव्र पवन के झोकों से उडकर बालभक्त प्रह्लाद पर छा गया है और भक्त की प्राण-रक्षा हो गई है :—

गोदी के अन्दर भगत रामराम रह्या टेर। टेक।
जब सैं चरचा सुणी थी हर की, रामनाम की लगी लगन।
समझाया था एक नै मानी दरसन की या लगी लगन।
हरिणाकस नै नांय सुहाया क्रोध की अग्नि लगी जलन।
निर्भय हो कै भजा भगत नै भय की भूतणी लगी भगन।
होलकां ले गोदी में बैठी फूंक जलादूयूं ढेर।
गोदी के अन्दर भगत रामराम रह्या टेर॥
होलकां का एक सील वस्तर था लोम रिसी से लिया था।
जिसमें अगनी परबैस हुवै न यो ही कथा में गाया था।
पहिले भी या सती हुई थी यो: ए ओढ सुख छाया था।

---

१. रहने से। २. जुआर का पौदा। ३. नीची होकर।

डूब कै बैर कर्‌या हर सेत्ती नहीं हुया मन चाहा था ।
सील वस्तर के अन्दर बड़ कै लागी थी वे करण अंधेर ।
गोदी के अन्दर भगत रामराम रह्‌या टेर ॥
चौगरदे कै चिता चिणा कै जिसके बीच में दई अगन ।
जद वा अगन जारी हुई थी चंदन लकडी लगी जलन ।
चौगरदे कै असर फिरैं थे जिनके हाथ में खड्‌ग नगन ।
जगहां नहीं थी कहीं निकलण नै असर रहे थे घेर ।
गोदी के अन्दर भगत राम राम रह्‌या टेर ।
मुलतान सहर के सब सजनां नै अगनी में माला गेर दई ।
दीनानाथ बचा लड़के नै या संतों ने टेर दई ।
तेरा नाम छिपजा दुनिया में हमने भतेरी फेर लई ।
जै लड़का जल जाय अगन में अन असरां की जीत हुई ।
जै भगत जल जा अगनी में के करल्योगा फेर ।
गोदी के अन्दर भगत राम राम रह्‌या टेर ।
ऐसी पवन चली जोर की चिता तो पाड बगाय दई ।
सील वस्तर को उथल-पुथल कै लडके पै उढाय दई ।
हुलकां तो वा जलने लागगी अपणा नाथ बचाय लिया ।
दगा किसी का सगा नहीं सै समझेगा को सिहणी का सेर ।
गोदी के अन्दर भगत राम राम रह्‌या टेर ॥

होली एक निश्चित मुहूर्त पर जलाई जाती है। उसकी प्रदक्षिणा की जाती है। जौ कि बल्लरियाँ भूनी जाती हैं और जौ तोड़कर अग्नि में डाले जाते हैं। इससे दो अर्थ लिये जाते हैं—प्रथम, अग्नि को भोग दिया जाता है, द्वितीय—प्रह्लाद भक्त की सुरक्षा के लिए जौ बोये जाते हैं। जौ बोना लोकवार्ता की अपनी वस्तु है और विपत्ति के विरुद्ध रामबाण है। कई लोक-कहानियों में आता है कि माता ने जौ बोकर पुत्रों की आपत्तियों में रक्षा की।

इसी समय जब होली जला दी जाती है तो एक लोकाचार मनाया जाता है। एक युवक जलता उपला लेकर अथवा उस स्तंभ को लेकर जो बसंत के दिन होली दहन के स्थान पर गाड़ दिया जाता है, समीपस्थ जलाशय में बुझाने के लिए ले जाता है। विश्वास है कि भक्त प्रह्लाद की तप्त शान्ति के लिए यह उपाय किया जाता है।

होली के अवसर पर गुलाल और अबीर की निराली छटा रहती है। मानव मात्र भी मानो प्रकृति की होड़ से रंग-बिरंगा होने का गौरव प्राप्त करता है। पुरातन काल में भी होली का पर्व बड़े आनन्द और मादकता का

काल रहा है। यह एक पौराणिक होली के आदर्श पर देखा जा सकता है। पीयूषवर्षी पद्माकर ने गोप-गोपेश की होली का इस प्रकार वर्णन छोड़ा है :—

फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी॥
छीन पितम्बर कम्मर तें, सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी॥

होली में मस्ती, उन्मत्त यौवन की प्रेममयी अभिव्यंजना तथा उद्दीप्त भावनाओं का सुकुमार सौन्दर्य पाया जाता है।

ग. कृषि-गीत

हरियाना एक खेतीहर प्रदेश है। यहाँ का किसान कृषि-विज्ञान मे बड़ा निपुण है। इतनी गहराई से पृथ्वी चीर, चरस से पानी निकाल और निष्क्रय प्रकृति से जूझ गेहूँ, जौ और चना उत्पन्न करना इन हरियानी किसानो का ही काम है। इसी कृषियोग के विषय में एक लोकोक्ति मे कहा है 'कोसली का हीर, जाने खेती की सीर।' इस मरुप्रायः प्रदेश में मीलों दूर तक नालियाँ बना-बनाकर सिंचाई करना कुछ कम कठिन कार्य नहीं है, परन्तु ये किसान रात-दिन एक करके जनता जनार्दन की बुभुक्षा की शान्ति के लिए उपाय करते रहते हैं।

हरियाना के एक भूभाग मे नहर का विकास वर्तमान समय की देन है। इससे किसान की परिस्थितियाँ परिवर्तित अवश्य हुई हैं, पर हरियानी किसान ने नहर के पानी की पूजा नहीं की है। इन लोगो के अनुभव इसे वरदान स्वरूप न मानकर एक विपत्ति ही समझते रहे हैं। एक उक्ति मे कहा गया है "जहाँ जावै पानी नहर, वहाँ जावै बीमारी बहर।" नाना प्रकार के रोग एवं आपसी उपद्रव नहर के पानी की भेंट में मिले हैं।

हरियाने का किसान-गीत इन्ही परिस्थितियों के चारो ओर घूमता मिलता है। इन गीतों मे धरती माता की देन का वर्णन आया है। बुआई, वर्षा, अनाज, बैल, गाय एवं किसान की अवस्था आदि के गीत इस कोटि मे आते हैं।

अन्य प्रदेशों की भाँति हरियाना प्रदेश में भी बुआई का अवसर एक आशा एवं उत्साह का काल है। इस पावन काल मे किसान कई प्रकार के शकुन मनाता हैं, कई देवताओं की मनौतियाँ करता है। उसी समय का

एक मन्त्र रूप मे प्रयुक्त होनेवाला गीत हमे मिला है। इसका रूप पूर्णतया स्थानीय होने पर भी सर्वदेशीय बन गया है :—

धरती माता नै हर्‌यो, कर्‌यो,
गऊ के जाये नै हर्‌यो कर्‌यो,
जीवजंत के भाग नै हर्‌यो कर्‌यो,
ढाणा खेडे नै हर्‌यो कर्‌यो,
गंगा माई नै हर्‌यो कर्‌यो,
जमना रानी नै हर्‌यो कर्‌यो,
धना भगत को हरतै हेत,
बिना बीज उपजायो खेत,
बीज बच्यो सो संतां नै खायो,
घर भर आंगन भर्‌यो।

किसान को एक ओर अपने अथक परिश्रम की धुन है, तो दूसरी ओर उसकी आस्था भी दर्शनीय है। वह भाग्य और उद्यम में लिपटा हुआ अपनी फस्ल के लिए धरती माता (वसुन्धरा) का अनुग्रह चाहता है। ग्राम देवता अथवा ग्रामखेड़ा, गंगा माता और जमना राणी की कृपा तक उसकी पहुँच है। धन्ना भक्त के विख्यात आख्यान ने तो उसके विश्वास की ओर भी दृढ़ता प्रदान की है।

हरियानी किसान की आवश्यकताएँ बड़ी स्वस्थ एव स्थूल हैं। वे तो मौलिक आवश्यकताएँ हैं। शेख़ चिल्लीपन उसे नहीं सुहाता। एक स्थान पर वह स्वयं बोल उठा है :—

दस चंगे बैल देख, वा दस मन बेरी,
हक़ हिसाबी न्या, वा साक सीर जोरी,
भूरी भैंस का दूधा, वा राबड़ घोलणा,
इतना दे करतार, तो बोहिर ना बोलणा।

घर मे दस चगे बैल हो, फस्ल के बाद मे लगान, मालगुजारी माँगी जाये, भूरी भैस दूध देती हो और उसमें राबडी घोलकर पीवें। यदि भगवान् इतना दे दे तो फिर कुछ न चाहिए। किसान के जीवन मे संतोष के लिए बड़ा स्थान है। उसकी आवश्यकताएँ मोटी-मोटी हैं।

एक अन्य गीत में वह भूस्वर्ग की कल्पना लेकर आया है। उसका पार्थिव—स्वर्ग क्षीर भोजन, गोधन, उदार पत्नी एवं अश्वारोहण की कुण्डल में सिकुड़कर बैठा है :—

उजला भोजन, गाए धन, घर कलवंती नार।
चौथे पीठ तुरंग की, बहिश्त निशानी चार ॥

हरियानी किसान घर बैठे ही स्वर्गीय आनन्द ले रहा है।

दूसरी ओर, राजस्थानी किसान हमारे किसान से एक पग आगे बढ़ गया है। उसके आनन्दोल्लासमय सुखी जीवन में एक मस्ती पूर्ण आत्म-विश्वास है और इस परिस्थिति मे वह लीलापुरुषोत्तम आनन्दकंद भगवान् पर भी व्यंग्य कस गया है :—

बनवारी[1] हो लाल ! कोन्यां थारे सारै।
गिरधारी हो लाल ! कोन्यां थारे सारै। टेक।
ऐ महल मालिया थारे। थारी बरोबरी म्हे करांस, कोई टूटी टपरी म्हारे।
गिरधारी हो लाल कोन्यां थारे सारे।
ऐ कामधेनवां थारे। थारी बरोबरी म्हे करांस, कोई भैंस पाडडी म्हारे ॥
बनवारी हो लाल कोन्यां थारे सारे।
ऐ हाथी घोड़ा थारे। थारी बरोबरी म्हे करांस, कोई ऊंट टोडड़ा म्हारे।
गिरधारी हो लाल कोन्यां थारे सार।
ऐ भाला बरछी थारे। थारी बरोबरी म्हे करांस, कोई जेली गंडासी म्हारे।
बनवारी हो लाल कोन्यां थारे सार ॥
ऐ रतनागर सागर थारे। थारी बरोबरी म्हे करांस, कोई ढाब भर्या है म्हारे ॥
गिरधारी हो लाल कोन्यां थारे सार ॥
ऐ तोसक तकिया थारे। थारी बरोबरी म्हे करांस, कोई फाटी गुदड़ी म्हारे।
बनवारी हो लाल कोन्यां थारे सारे ॥
आ राधा राणी थारे। थारी बरोबरी म्हे करांस, कोई एक जाटणी म्हारे।
गिरधारी हो लाल कोन्यां थारे सारे।

कैसा निश्छल गर्व है। किसान अपनी साधारण परिस्थिति में कितना संतुष्ट है। उसे टूटी झोंपड़ी मे वही आनन्द है जो राजप्रासादों में। उनकी भैंस कामधेनु से किस बात मे कम है। उसकी सुपुष्ट कलेवरा जाटनी महारानी राधा के समकक्ष ही तो है। इसलिए वह ताल ठोंक कर भगवान की समता कर रहा है। संतोषः परमं सुखम्।

हे बनवारी, हे गिरधारी, तुम चाहे कितने ही बड़े हो, मैं अब तुम्हारे वश मे नहीं हूं। तुम्हारे महल हैं, पर मेरी झोंपड़ी भी उससे कम नहीं। तुम्हारे कामधेनु है तो मेरे पास गाय-भैंस आदि हैं। तुम्हारे हाथी

---

१. प्रो० पारीक—'राजस्थानी लोक-गीत, पृष्ठ ८५-८६

घोडे हैं, मेरे ऊँट बैल हैं। तुम्हारे पास भाले-बरछी आदि शस्त्र हैं, तो मेरे पास जेली और गडासा है। तुम्हारे पास सागर है तो मेरे पास डाब अर्थात् पानी की तलैया है। तुम्हारे पास सुख-सुविधा के सामान तोशक-तकिया है तो मैं अपनी फटी गुदड़ी मे ही मस्त हूँ। तुम्हारे राधा जैसी रानी है तो मेरे घर भी एक जाटनी है।

हरियाना में एक गीत 'हालिड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें कुलबधू की अपने स्वामी के साथ बातचीत है। गीत में हरियानी किसान की समृद्धि का एक पूरा चित्र उभर आया है। किसान के चार हल हैं और आठ बैल हैं। बाजरे की रोटी और साथ मे बथुए का साग कैसा प्रकृति सुलभ भोजन है। फस्ल के पकने पर दम्पत्ति प्रसन्न है कि उनके खेत मे बहुत अनाज हुआ है। नायिका की दृष्टि इस समृद्धि के साथ अपने आभूषणो की ओर गई है :—

बाजरे की रोटी पोई रे हलिड़ा[1], बथुए का रांधा रे साग।
आठ बलधां का रे हलिडा नीरणा[2], चार हलिड़ां की छाक।
बरसन लागी रे हलिड़ा बादली।
सास नणद का रे हलिड़ा ओलणा[3], इबकूण उठावै छाक।
कसकै तै रैं बांधो गोरीधण लाउणा[4], झट दे उठाल्यो छाक।
ड्यौले तै ड्योला रे हलिड़ा मैं फिरी, कितै न पाया थारा खेत।
ऊंच्चे चढ़कै गोरीधण देखली, म्हारे धोले बलधा कै टाल।
पाछा तै फिर के रे हलिड़ा देखले, कोई बोझ मरै छकियार।
किसाक जाम्या रे हलिड़ा बाजरा, किसीक जाम्मी सै जुआर।
लम्बे तै सिरटै[5] गोरीधण बाजरा, मुड़वां सिरटै जुआर।
कै मण बीघे निपजै रे हलिड़ा बाजरा, कै मण बीघे जुआर।
नौ मण बीघे निमजा गोरीधण बाजरा, दसमण बीघे जुआर।
अपणे घड़ाले रे हलिडा गोखरू[6], मेरी भंवर की नाथ॥

इस गीत में नायिका की अलंकरणप्रियता दर्शनीय है। अन्य जिम्मे-दारियाँ (उत्तरदायित्व) तो दूर रहीं, दम्पति की दृष्टि उत्तम फस्ल के साथ अपने आभूषणो की ओर अधिक है। उनके 'बजट' में आभूषणो की मद सदैव रहती है। वस्तुतः इस गीत में किसान जीवन की संक्षिप्त कहानी समाई हुई है।

---

१. हाली, हल चलानेवाला। २. चारा। ३. हंसना, उलहाना। ४. कमरबंद, नाड़ा। ५. बाल; भुट्टा,। ६. कानों में धारण करने का आभूषण।

कृषि गीतों में वर्षा की चर्चा होनी तो जरूरी है। फिर हरियाना तो वर्षा के लिए तरसता है। वर्षा की जो प्रतिष्ठा हरियाना निवासियों की दृष्टि मे है वह भला बंगालियो एव बिहारियों की दृष्टि मे कहाँ ? हरियानी कृषक-पत्नी जिसका पति आधी रात से ही कुआ चलाने के लिए उठ जाता है बादल से प्रार्थना करती हुई कहती है :—

> ऊपरां बादलिडा ऊपरां क्यूं जा,
> बरसै तै क्यू ना हे म्हारे देस।

वर्षा के आह्वान में कैसी निराशा है? यदि वश चले तो नायिका उसे क्षणभर मे बरसा ले। साथ ही बादल के वर्षण सामर्थ्य की बात कहकर उसकी प्रशंसा भी की गई :—

> छन में पालिड़ा धूलमधूल,
> छन मे तै भरदे जोहड डाबडा[1]।

अन्त मे, यह वर्षा प्रार्थना उपालम्भपूर्ण रोमांस मे परिवर्तित हो गई :—

> सूता रे पालिड़ा रूखां की छां,
> खेत उजाड़ा रे मेरे बाप का।
> डूयो रे पालिडा तेरेडी रांड,
> खेत उजाड़ा रे मेरे बाप का!
> मत दे हे सुन्दर बरधा की गाल[2],
> तेरे सरीकी म्हारै बी गोरडी।
> आइये हे सुन्दर म्हारे डे देस,
> लहए[3] रगा हे ऊपर चूंदड़ी।

लोक बाला की साध रगीन लंहगा और चूँदड़ी तक ही है।

किसान को अपने जीवन में कई प्रकार के अन्न खाने को मिलते हैं, पर बाजरे की पौष्टिकता लोक-प्रसिद्ध है। बाजरा स्वयं एक शक्तिशाली अन्न है। यह बल देता है। एक गीत मे वह अपने गुणों की स्वयं व्याख्या कर गया है :—

> बाजरा कहे मैं बड़ा अलबेल्ला,
> दो मुस्सल तैं लड़ू अकेल्ला,
> जै तिरी नाजो खीचड़ी खाय,
> फूलकाल कोठी हो जाय।

---

१. छोटा जोहड़। २. गाली। ३. लंहगा।

एक अन्य गीत मे बाजरे को नटखट चित्रित किया गया है। वह जितना छोटा है उतना ही खोटा है। उसकी शैतानी दर्शनीय है :—

आध पाव बाजरा कूट्टण बैठी,
उछल उछल घर भरियो, शैतान बाजरा।
आध पाव बाजरा पकावण बैट्ठी,
खदक खदक हंडिया भरियो, शैतान बाजरा।

जिन्होंने बाजरे को कूट-छान कर खिचडी पकाई है वे इस गीत के सच्चे निरीक्षण पर अवश्य ही लोक सुलभ काव्य-प्रतिभा की सराहना करेंगे।

राजस्थानी एक गीत मे तो ग्रामीणा ने खिचड़ी की आद्योपान्त कथा सुना डाली है :—

म्हारो[1] मीठो लागै खीचड़ो।
म्हारो चोखो लागै खीचडो॥
छुलक्यो छांड़यो बाजरो।
म्हे दली ए मूगां की दाल॥ मीठो खीचड़ो॥
× × ×
खदबद सीझै बाजरो।
कोई लथपथ सीझै दाल॥ मीठो खीचड़ो॥
दूध खीचड़ो खावा बैठ्या।
कोई तरसै म्हारी जाड़॥ मीठो खीचडो॥

सद्यःफलप्राप्ति श्रम की सार्थकता का प्रतीक है, अतः कुल-बधू के मुख में पानी आना स्वाभाविक ही है।

हरियाने को जब से नहर का पानी वरदान स्वरूप मिला है, यहाँ पर ईख की खेती होने लगी है। यह खेती नकद फस्ल (कैश क्राप) कही जाती है परन्तु हरियानी किसान वधू ने, जो अपने धणी (स्वामी) का घर के अजिर से बाहर खेत क्यार में भी साथ देती है, ईख को अर्घ्य नहीं दिया है। वह ईख के हाथों बहुत सताई गई है। एक गीत मे वह अपने कष्टों का ब्योरा इस प्रकार दे रही है :—

बौहत सताई ईखडे रै, तन्नै बौहत सताई रे।
बालक छोड्डे रोवते रै, तन्नै बौहत सताई रे।

---

१. प्रो० पारीक—'राजस्थानी लोक-गीत' पृष्ठ ८६।

डालड़ी में छोड़्या पीसना,
अर छाड़्डी सै लागढ[1] गाय,
नगोंड़े[2] ईंखडे ! तन्नै बौहत सताई रै ।
कातनी मे छोड़्या कातना,
अर छोड़्डे सैं मा अर बाप,
नगोड़े ईंखड़े ! तन्नै बौहत सताई रै ।
बौहत सताई ईंखडे रे, तन्नै बौहत सताई रे ।
बालक छोड्डे रोवते रै, तन्नैं बौहत सताई रे ।

ईख की खेती परिश्रम-साध्य है । इस गीत मे श्रमश्लथ किसान वधू का दुलार भरा उलाहना है । यहां गरीबी की दैन्य-चीत्कार नहीं है ।

एक दूसरे गीत मे ईख की निराई करती हुई कन्या के रोष की रेखायें उभरी हैं :—

ईख नलाई के फल पाई,
ईख नलाई मन्नै कंठी घडाई,
ले गया चोर बहु के सिर त्याई ।
सुसरा तै लड़ूंगी पीठ फेर कै लड़ूंगी,
आजा हे सासड़ तन्नै डंडा तै घड़ूंगी ।
जेठ तै लडूंगी गाती खोल कै लड़ूंगी,
आजा हे जिठानी तेरा धान सां छडूंगी ।
देवर तै लडूंगी घूंघट खोल कै लडूंगी,
आजा हे द्यौरानी तन्नै खुंटियां धरूंगी ।
पड़ौसी तै लडूंगी दिल खोल के लडूगी,
आजा हे पड़ौसन तन्नै पाड़ कै धरूंगी ।
बालम तै लडूंगी महलां बैठी हे लडूंगी,
आजा हे सोकन तेरा डंका बित्ती घडूंगी ।

मिथ्या दोषारोपण ने ग्रामीण कुलवधू के अन्तस् को विक्षुब्ध कर दिया है । वह भयावह सिंहनी-सी बनी सब संबधियों को नापती है । पड़ोसन और सौकन की तो वह बड़ी दुर्दशा कर डालने का बीड़ा उठाए है । निस्सन्देह यह एक मार्मिक और मनोवैज्ञानिक चित्रण है ।

ईख पेरते समय कोल्हुओं में मल्होरें भी गाई जाती हैं । रात्रि के सांद्र एकांत क्षणों में किसान की प्रतिभा को पर लग जाते हैं :—

1. दुधार, अधिक दूध देनेवाली । २. उन्मत्त, मस्त ।

चंदा तेरे चांदणै, सुत्ती पिलंग बिछा।
जागूं जिद् एकली, मरूं कटारा खा॥ मेरे बावले मल्होर॥
घास जलै ज्यूं खेस जलैं, कुंडै जलै कसार।
घूंघट में गोरी जलै, हीणं पुरुष की नार॥ मेरी बावली मल्होर॥

एक मल्होर में जो कुरु प्रदेश मे प्रचलित है, प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है :—

अम्बर ऊपर हल चलै, बलद् गऊ के पेट।
हाली तो जनमो नहीं, रुटियारी खड़ी खेत॥ मेरी बावली मल्होर॥

इस शैली को सध्याभाषा नाम भी दिया गया है। उलटवांसी ढग पर बनी ये मल्होरें बड़ी रहस्यमयी बात कह जाती हैं। एक दूसरी मल्होर मे कोल्हू की क्रियाओं का कैसा सांगोपांग वर्णन आया है :—

काला हिरन कोल्हू चलै, गोह गंडीलो देय।
कछवा बैठा गुड़ करै, मेडक झोक्के देय रे॥ मेरी बावली मल्होर॥

इन मल्होरों को गा-गाकर किसान अपने शीत को भुलाता और मनोरंजन करता है। इन बावले[1] वचनों मे कभी-कभी ज्ञान-विज्ञान के तत्व भी भरे रहते हैं। कोल्हू की इन मल्होरों मे शृंगार की भी कुछ-कुछ पुट पाई जाती है जो बिहारी की शृगारिकता की समकक्षता को पहुँच जाती है :—

नायक नायिका के बाहु मूल दर्शन की इच्छा लेकर कह रहा है।

जल ओढ़्ढे काम्मन खड़ी लाम्बे खेस न्हाय।
रस्ता मन्नै बतायदे, ऊंच्ची करके मांय॥ मेरे बावले मल्होर॥

एक स्थान पर कृषक-कामिनी ने अपने पति को मक्का की खेती के विरुद्ध सुझाव दिया है। गीत मे मक्का की कष्टकर पिसाई का प्रसंग देकर, अत मे, यह आशा व्यक्त की गई है कि सास के पीछे इस दुष्टा से अवश्य मुक्ति मिल जायेगी।

पांच पचास की नाथ घड़ाई, पडगी लामनी[2] पहरन न पाई।
सांज ताहीं करी लामनी, सांज पड़ें घरां डिगराई[3], आगे सासड़ लडती पाई।
देखा क्यूं ना काम, बखत क्यू ना आई।
सास मिरी नै मुकी री सुकाई।

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण में 'ऐतश प्रलाप' का वर्णन आता है। ऐतश मुनि बका करते थे। उसी प्रलाप-शैली पर ये मल्होरें बनी हैं। २. फसल की कटाई। ३. वापिस आई।

ढाई सेर की कूंडी, बखत ऊठ कै, आधी पीस कै कंथा धोरै आई।
के सोवैहो कै जागै नणदी के भाई ?
मुकी मत बोइए हो कलावती के भाई।
डिगगी धरण[1] ठिकाने नहीं आई।
सास मर जागी, नणद घर जागी,
तेरे मेरे राज में मुक्की छुट जागी।

किसान का सबसे बड़ा साथी बैल है। बैल ही किसान की शक्ति है। वह उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता है पर यह विधि-वामता है कि बुढापे मे बैल पर से किसान की कृपादृष्टि उठ गई है। वह विलाप करके कहता है :—

अरे न्यूं रोवै बुड्ढा बैल, मन्नै मत बेच्चै रे पापी।
तेरे कुआ कोल्हू में चाल्या, नाज कमा कै तेरे घरां घाल्या।
इब्ब तन्नै करली सै बज्जर की छाती।
तिरा बंज्जड़ खेत मन्नै तोड्या, गाड्डी तै मुह ना मोड्या,
इब्ब मेरी बेच्चै सै मीटी।

बैल के रोदन मे करुणा की पुकार है और किसान की निर्दयता की मार्मिक अभिव्यंजना है। उसके भाग्य की बिडम्बना यह है कि उसे बुढ़ापे में भी शांति नहीं मिलती।

गाय भी इसी प्रकार अपनी दुर्दशा पर अजस्र अश्रु वर्षा बहाती है। ससार की कृतघ्नता एवं जघन्य मनोवृत्ति का चित्रण नीचे के गीत मे हुआ है :—

न्यूं कह रही धौली गाय, मेरी कोई सुणता नाई,
मेरे कितगे सिरी भगवान्, मैं दुःख पाय रही।
मेरा दूध पिवै संसार, घी तै खावैं खीचड़ी।
मेरे पूत कमावे नाज, मैंघे भा की रुई।
जब भी मेरे गल् पै छुरी।

एक लोकगीत में ऊंट की कहानी प्रश्नोत्तर रूप में कही गई है :—

ताकतवर बलवान बना, क्यूं भुंडी सकल बनाई रे ?
के बुझेगा मन मेरे की घणी मुसीबत आई रे।
दई खुदा ने टांग बड़ी जो दो दो गज तक जाती रे।
ऊपर बोज्झा लदे घणा जब तीन-तीन बल खाती रे।
पेट उमरमा छाती चढमा इडर[2] से सज जाती रे।
लगें रगड़के[3] इडर के ना मिलता कोई हिमाती रे।

---

१. नाभि। २. ऊंट की वह टुड जो अगली टांगों के बीच उभरी होती है।
३. रगड़।

धन धन तेरे नाती तेरी माता बावल भाई रे।
के बुझैगा मन मेरे की घणी मुसीबत आई रे।

आगे चलकर गीत ऊंट की नाक में प्रयुक्त गिरवान (नकेल) और शीतकाल की अनुकूलता के विषय में कहता चलता है, पर ऊंट ने अपनी दुःखपूर्ण गाथा सुनाने मे कसर नहीं की है।

चर्खा कृषक-जीवन की एक विभूति है। चर्खे ने किसान के ऋषि-तुल्य शरीर को आच्छादित किया है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को भी चर्खे की महिमा ने आकर्षित किया था। यह वस्तुतः हमारे राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अंग हो गया है।

लोक मे चर्खा कातती कन्या कौआ को अपना सदेशवाहक बनाकर भेजती है। प्राक्काल मे संदेशवहन का कार्य कपोतो द्वारा होता रहा है। मेघ और पवन भी दूत बने हैं, परन्तु मुंडेर पर बैठकर 'काऊंकांऊ' करके किसी स्वजन-परिजन के आने की पूर्वसूचना देता हुआ कौआ क्या संदेशवाहक नहीं है? कैसी सरल स्वभावोक्ति है :—

उड जा रे कागा, ले जा रे तागा, जांदा तो जइये मेरा बाप कै।
मैं तो राहे न जाणू बेब्बे गाम न जाणू, कौणसी तो मैड़ी[1] तेरा बाप की।
नाव बताद्यूं गाम बताद्यूं मैड़ी तो बताद्यूं मेरा बाप की।
एक ऊंची सी मैड़ी लाल किवाड़ी वो घर कहिए मेरे बाप का।
एक मेरै बाप कै चार धीअड़ थीं चारों तो ब्याही चारां कूंट मे।
एक बागड में दूजी खादर में तीजी हरियाणा चौथी देस में।
मेरे सिर पर खारी कागा! हाथ बुआरी बुरट[2] बुवारूं मैं खड़ी खडी।
मैं सटसट मारूं डसडस रोवूं रोवूं नाई का तेरे जीव नै।
भोत दुःखी सूं बागड़ देस मे॥

बागड़ देश में कन्या को बहुत कष्ट मिलता है, यह संकेत ही गीत का प्राण है। नाई की महत्ता लोक-जीवन मे कितनी व्यापक थी कि वह सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता था। आज अवश्य उसका वह महत्व नहीं रह गया है।

चर्खा कातती कन्या ने कौआ को तागा दिया है। वही उसकी सदेश-पत्रिका है। इससे भी बढ़कर वह तागा तो संदेश तार बन गया है। बागड़ देश के कष्टकर जीवन ने कन्या के मन पर विक्षोभ की रेखाएँ उभार दी हैं।

किसान का जीवन पुष्पशैय्या नहीं होता। उसमें कष्टों का पुट बराबर लगा रहता है। इन्हीं परिश्रम एवं थकावट के क्षणों मे वह लोक-गीत का

१. चौबारा। २. कांटेदार घास।

आश्रय लेकर अपने कष्टों को हल्का करता है। कोल्हू चलाते उसने मल्होर गान किया है, तो गाड़ी चलाते भी उसके स्वर निशीथ के शांत क्षणों के सहचर रहे हैं। कुआ चलाते वह बारा लेकर श्रम-विनोदन करता चलता है। इन बारो मे कही-कहीं जीवन-दर्शन के तत्व भी उभर आये हैं। कहीं-कहीं धार्मिक एव सास्कृतिक झलक भी मिलती है। भारत के प्राणो मे धार्मिक अतिशयता हाली, कीलिया और चरसिया के अन्तस् को स्पर्श कर गई है :—

भर गया मेरा राम मनाइयो।
आगया भाई कीली खोल दो॥

हरियाना मे विगत युग में कई भीषण दुर्भिक्ष पड़े हैं। उन अकालों की कथामात्र रोमांचित कर देती हैं। परन्तु धन्य हैं धरती माता के ये लाल जो जीवन-मरण की उन घड़ियों को भी गा-गाकर बिता गये हैं। किसान-जीवन की मधुरता का श्रेय निश्चय ही लोकगीत को है। कठोर श्रम के बीच ये गीत नये जीवन का संचार करते हैं।

घ. राजनीतिक प्रभाव के गीत

राजनीति ने भी लोकगीतों मे रंग भरा है। राजनीति आज के सामाजिक वातावरण मे गहराई तक पहुँची हुई है। राजनीति की चर्चा आज के कवि का धर्म बन गया है। एक गीत मे पूज्य बापू के निधन को राष्ट्रीय क्षति के रूप मे अकित किया है :—

भारत के चन्दरमा छिपग्ये, रहे बिलख तारे,
एक अज्ञान मराठा था जिन गांधी जी मारे।
करण प्रार्थना गया हुआ था जुलम हुए दिन धोली,
बाएं दहने दो कन्या थी भरे पिता की कोली,
बेदर्दी ने दया करी ना तीन मार दी गोली,
बहुत से माणस् कट्ठे होगे बणा बणा के टोली।

भारत-भाग्याकाश के चन्द्रमा छिप गये हैं और उनकी याद में तारे विलाप कर रहे हैं, वास्तव मे एक सार्थक उक्ति है।

आगे एक गीत मे कहा गया है कि बापू ने देश के लिए क्या नहीं किया। जब तक जीवित रहे उन्होंने अपने रक्त से राष्ट्र की नींव को सीचा और शक्तिशाली बनाया। वे अपने धर्म पर बलिदान हुए। बापू की मृत्यु पर विदेश वालों ने भी शोक प्रकट किया :—

भारत को आजाद बणा के सुर्ग के बीच डिग दिया,
एक अज्ञानी भाई इम नै बिना पिता के करग्या।
सुखे बाग को उसने आण कै सींचना सरू किया था,
बाग के पौदे लहर उठे सब जडों में नीर दिया था।
हरदम लगा बाग सेवा में जब तक भक्त जिया था,
सरसब्ज बनाना हिन्द बाग को दिल मे ठान लिया था।
उस माली को मारन आले, पापी तू निश्तरग्या,
भारत को आजाद बणा के सुर्ग के बीच डिग दिया ॥

× × ×

नत्थू नाश करखिये तू नै हिन्द के सूर्ज छिपाए,
भारत के जितने नेता थे एक दम घबड़ाए।
अमरीका, इंगलैंड, रूस से गम के पत्र आए,
जर्मन और जापान, चीन सब देश पछताए।
यू. एन. ओ. का भी झंडा झुकग्या, जिस दिन बापू जी मरग्ये,
भारत को आजाद बणा के सुर्ग के बीच डिग दिया ॥

प्रथम महायुद्ध की एक घटना हरियानी गीतो मे पिरोई हुई है। छह नम्बर का रिसाला महायुद्ध के प्रलयंकर वज्राघात से क्षत-विक्षत हो गया और समस्त जाट सिपाही वीर-गति को प्राप्त हुए। वीरता के इस इतिहास को लोक-वाणी ने यह रूप दिया है :—

जरमन ने गोला मार्‌या, जा फूट्या अम्बर मे।
गारदवें सिपाही भाज्जे, रोटी छोड़ गए लंगर मे।
रै उन वीरां[1] का के जीवे, जिनके बालम छः नम्बर में।

लोकगीतो में ऐसे असंख्य उदाहरण मिलेंगे जिनके द्वारा लुप्त इतिहास के अधकारमय पन्नों पर आश्चर्यजनक प्रकाश पड़ेगा। अभी इनके संकलन एवं मनन की आवश्यकता बनी है।

ङ. अन्य-गीत

अब तक हमने उन गीतों को लिया है जिनके स्वर पुत्र जन्म व विवाहादि किसी मांगलिक अवसर पर अथवा ऋतु-पर्व आदि सौन्दर्यमय पावन एवं मादक वातावरण में थिरकते हैं। देवी देवताओ की धोक (पूजा) के पवित्र उद्देश्य से गाये जानेवाले गीत भी गत-पृष्ठों में स्थान पा चुके हैं। इसके

---

1. महिलाओं।

अतिरिक्त एक विशाल गीत सम्पत्ति का निरीक्षण प्रकीर्ण नामक उच्छ्वास में पृथक किया गया है। अतः इस सर्वांगीण एवं विशद विवेचन के उपरांत, वैसे तो कुछ अवशिष्ट नहीं रहता, परन्तु जीवन जिस प्रकार वैविध्यपूर्ण है तथा जीवन के व्यापार जिस प्रकार गणनातीत है, उसी प्रकार जीवन की काव्यमयी व्याख्याएँ भी अनेक एव असंख्य है जिनका किसी एक स्थान पर अध्ययन उपस्थित करना मात्र कठिन ही नहीं है अपितु असम्भव भी है। इसलिए हम यहाँ गीत-साहित्य के उन रूपो का अवलोकन करेंगे जो उपरोक्त प्रकारों से पृथक् पड़ गये हैं।

'हुचकी' जीवन की अति साधारण-सी घटना है। हिक्का, हुचकी अथवा हिचकी के कई कारण होते हैं। विश्वास के आधार पर यह अपने पखों पर किसी स्वजन के स्मरण को लेकर उड़ती है। कभी-कभी अजीर्ण भी हिचकी का कारण होता है परन्तु लोक-कवि की दृष्टि इससे आगे की खोज कर गई है :—

यो हुचकी क्यूं आवै सै राम यो हुचकी।
कै यो कब्जी की हुचकी सै जो सारी हाण[1] आवै सै।
कबज़ कड़ै पर उसनै जै रोट्टी भी नहीं खावै सै।
यो हुचकी क्यू आवै सै राम यो हुचकी।
बिछड़े साथी की होना कदै यादकरण की हुचकी।
याद करै सै तू तै, पर तू किसनै याद आवै सै।
यो हुचकी क्यूं आवै सै राम यो हुचकी॥
अच्छा तै फिर के मेरा[2] होगी मरने की यो हुचकी।

परन्तु कितनी घोर निराशा और बेबसी है उस परित्यक्ता, विस्मृता वियुक्ता नायिका को :—

"मौत भी पर मेरे धोरै आ आ कै चली जावै सै।"

इस ऐहिक कष्ट लीला को अपने में समेट लेनेवाली मृत्यु भी उसके प्रति सदय नहीं है। "आ-आकर चले जाने" से यह स्पष्ट है कि उसे मृत्यु-तुल्य कष्ट हो रहे हैं। गीत आगे बढ़ता है :—

करता होगा राम याद, मन्नै वा ना न्यूं भी कोन्या।
जिसनै याद करै सै राम, भला दुःख कद पावै सै।
यो हुचकी क्यूं आवै सै, राम यो हुचकी।

कैसी दुराशा है कि न लोक अपना, न परलोक।

---

1. समय। 2. ब्यौरा।

लोक-जीवन क्रियाशीलता का ही दूसरा नाम है। श्रम लोक-जीवन का सहज सखा है। परिश्रम एवं क्रियाशीलता के क्षणों मे बहुत से लोक-गीतों का जन्म हुआ है। इस अवसर के गीतों से श्रम-परिहार का कार्य होता रहता है। हलवाहा, गाड़ीवान, चरसिया, डुलियारा और खेत नलाने व काटनेवाला गुनगुनाकर अपने गीतों की रागात्मकता से श्रम की थकावट को दूर भगाता रहता है, परन्तु इन गीतों मे जो स्थान नृत्यगीतो का अथवा क्रियागीतों का है, वह वास्तव मे बड़ा ऊंचा है। कैसी सुन्दर युक्ति है कि श्रम परिहार और साथ ही मनोरंजन भी।

नृत्य की सृष्टि भावावेश के कारण होती है। कभी-कभी मनुष्य अपने भावों को अपने तक ही सीमित नहीं रख पाता। उस समय उसके कंठ से जो सगीत फूट निकलता है तथा उसके हावभाव जिस ढंग से प्रदर्शित होते हैं, वही नृत्य का स्वरूप प्राप्त कर लेता है। नृत्यगीत पुत्र-जन्म, विवाह आदि उत्सवों के उत्साह को द्विगुणित करते हैं और होली के उन्मत्त काल मे भी गाये जाते हैं। इन नृत्य-गीतों मे कही बड़ा गहरा व्यग्य होता है, कहीं श्रृंगार के फव्वारे फूटते हैं तथा कहीं 'बारेबाह' की हास्यास्पद परिस्थिति का चित्रण रहता है।

फाल्गुन के जिस मनोहारी वातावरण मे पुरुष नाचता, गाता और आनद मनाता है, महिलाएँ भी नृत्य के साथ गीत गाती हैं। इस अवसर पर साहित्य, संगीत और कला तीनों का सपुट जिस प्रमोदमय अभिनय की अवतारणा करता है, वह वर्णनातीत है। एक नृत्य-गीत मे गृहस्थ के बटवारे का चित्रण हुआ है। बहुधा अल्पादल्प अकिंचन वस्तु भी विवाद का कारण बन गई है :—

ऊंचा रेड़ा काकर हेड़ा बिच बिच बोदी केसर,
ब्याहे ब्याहे राज करेंगे रांडां का पणमेसर,
छोटे छोरे कै ना जांगी बालम याणे कै ना जांगी, देश बिराणे कै ना जांगी।
कासण[1] बांटे, बासण[2] बांटे, साझे रहा बरौला[3],
यो भी क्यूं ना बांटा, रांड के घर में देवर मौला[4]।
छोटे छोरे कै न जांगी..................
कासण बांटे, बासण बांटे, साझै रह गई थाली,
यो भी क्यूं ना बांटी रांड के घर में ननदल चाली।
छोटे छोरे कै न जांगी..................

१. पात्र धातु आदि के। २. पात्र, वर्त्तन मिट्टी आदि के। ३. हंडला। ४. उन्मत्त।

सौड बांटी, सौड़िया बांटी, साझै रह गई रजाई,
यो भी क्यूं ना बांटी रांड के रातों मरी जड़ाई।
छोटे छोरे कै न जांगी.......... ....
घर बांटा घर वासा बांटा साझै रह गई मोरी,
यो भी क्यू ना बांटी 'रांड के रातों हो गई चोरी।
छोटे छोरे कै ना जांगी, बालम थाणे कै नाजांगी,
देश बिराणे कै ना जागी॥

खादर से प्राप्त एक नृत्य-गीत मे एक युवती अपने 'काले सइयां' को बेच डालना चाहती है। वह उसे डुबा भी देती है। उसकी एक मात्र इच्छा 'काले खसम' के उत्तरदायित्व से मुक्त होने की है :—

हम काले से ब्याहे री नणदिया,
मेरे पिछोक्कड बाजार लगत है,
काले को बेचन जाऊं री नणदिया,
हम काले से ब्याहे री नणदिया।
ककड़ी भी बिक गई, खीरे भी बिक गए,
काले को कोई भी ना लेवै नणदिया,
हम काले से........
मेरे पिछोक्कड गंगा बहत है,
मैं काले को डोबन जाऊं री नणदिया,
हम काले से.. .....
डोब डाब मैं घर नै आयी,
पाछे पाछे काला मटकता आयारी नणदिया,
हम काले से...........
कोठे अन्दर सात कोठरी,
काले को मूंदण जाऊंरी नणदिया,
हम काले से...........
बरसों पाछे मिला बालमा,
काले से गोरा हो गया री नणदिया।

गीत के अन्त तक आते-आते पाठकों को विदित हो गया होगा कि नायिका की मनोवृत्ति परिवर्तित है। विरहानल मे तपकर स्नेह-सिंचित होकर गीत की नायिका को युवावस्था आने पर काला पति भी "स्यामु गौर (हरित) द्युति (होय)" दिखलाई-देता है। सचाई है कि अभाव में ही किसी वस्तु का ठीक-ठीक मूल्य आंका जाता है।

नृत्य-गीतों में एक विशाल संख्या उन गीतों की है जिसमें घोर श्रृंगार के फव्वारे छूटते हैं, जिनका क्षितिज अश्लीलता के तीव्र व गहरे रगो से आरक्त है। हास्य-रस के अधिकांश गीतों पर नृत्य हो सकता है।

पनघट के गीतों का लोक-गीतो मे विशेष स्थान है। इनमें यौवन, श्रृंगार और उपहास की झलक मिलती है। इन गीतो कों 'पणिहारी' के नाम से भी पुकारा जाता है। हरियाना में पनघट (पानी के घाट) की प्रातः-संध्या में विशेष शोभा होती है। ग्राम नगर की सभी कुल-बधुएँ वहा भव्य वेष मे एकत्रित होती हैं। एक गीत मे नवोढा कुलबधू ने अपनी समवयस्का नणद से वड़ा मीठा उपहास किया है :—

उठ उठ री नणदल पाणी नै चाल, सरवर देखैं थारे बाप को।
चाले चाले री नणदल कोस पचास, कित सरवर थारे बाप की?
वै दीखैं री भावज ऊंच्चे नीच्चे रूख, उत सरवर मेरे बाप की।
तम तैरी नणदल भरो है झकोल, हम दांतन टुक जाल की।
योः केरी भावज कुवै के बीच, जो नाड़ उकासै सर ढकै,
योः सै री नणदल थारा भरतार, यो बर ढूंढ्यो तेरे बाप नै।

× × ×

तम तै री नणदल म्हारे भाइयां जोग, योः दैमारा[1] री कांचवा जी।

यह उपहास ननद को असह्य हो जाता है। अभियोग सास तक पहुँचता है, बात बढ़ जाती है। इस प्रकार घर गृहस्थ के झगड़े भी इन गीतों मे देखने को मिलते हैं।

एक अन्य गीत में, नायिका को पनघट पर विदित हुआ है कि नायक दूसरा विवाह कर रहा है। पति-परायणा पत्नी को यह समाचार वज्रपात-सदृश लगा है और उसने पति से जवाब तलब किया है। यह प्रश्नोत्तरी इस गीत के प्राण हैं। अत मे सपत्नी के कारण उत्पन्न विषण्णता का वर्णन है। गीत के मुख्य-मुख्य अंश नीचे दिये गये हैं :—

सरवर पाणी मैं गई सुण आई नई नई बात।
बिरजो एक जोबन झिरुवै[2] एकला।
एक लुगाई न्यूं कहे तेरे हाक्किम का दूसरा ब्याह।
बिरजो एक जोबन झिरुवै एकला।
किस गुण ब्याही दूसरी मेरे औगुण दो न बताय।
बिरजो एक जोबन झिरुवै एकला।

---

१. दैवमारा, दुर्भग। २. नष्ट होना।

औगण थोडे गुण घणे छोटी वनडी का चाव ।
बिरजो एक जोबन फिरवै एकला ।

गीत में आगे पूछा गया है कि आभूषण किसके ले जाओगे, आरता कौन करेगी तथा बरात मे कौन लोग जायेंगे । पति निर्दयतापूर्वक उत्तर देता चला जा रहा है कि तुम्हारे गहने ले जायेंगे, बहन आरता करेगी और भाई बराती बनेंगे । इस असहाय अवस्था में नायिका जलभुन कर कहती है :—

ऊंचे चढकर देखलूं किसी सजी सै बरात ।
बिरजो एक जोबन फिरवै एकला ।
लंगडे, लूले, डेढ सौ काण्यां[1] का आडे न छोड ।
बिरजो एक जोबन फिरवै एकला ।

सच है, अपराधी के साथी अपराधी, चोरों के साथी गिरहकट, परन्तु सपत्नी के नाम श्रवण मात्र से नायिका को ज्वर हो गया है :—

"सौकण आई मैं सुणी हलहल चढ गया ताप ।
बिरजो एक जोबन फिरवै एकला ।"

आ. प्रबन्ध-गीत

हरियाने के लोक-जीवन में प्रचलित लोक कहानियाँ बहुधा विशाल हैं और उनमे कौतूहल तथा मनोरजकता भी बहुत अधिक है, परन्तु जो वैशिष्ट्य लोक गाथाओं (प्रबन्धगीतों) में आ गया है, वह लोक-कथाओं में नहीं है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि जो श्रुति-मधुरता पद्य के हिस्से में आई है, वह गद्य गर्जन मे संभव नहीं है । हरियाना मे जहाँ लोक कहानी चारण और भाटों की पद्यात्मक गाथा साथ-साथ चल रही हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् उनमें से पद्य गाथायें प्राचीनतर होंगी ।

लोक-गाथा के विषय में एक महत्वपूर्ण तथ्य जो इसे लोक-कथाओं से अधिक मूल्यवान् अथवा प्रशस्ततर बनाता है, यह है कि इसमें लोकप्रिय भावनाओं का वास्तविक प्रतिबिम्ब होता है । इसके साथ ही लोक-कथाएँ लोक-गाथाओं में आये हुए दृश्य समूहों का वर्णन है, जहाँ से एक सुन्दर एवं आकर्षक घटना कहानी के रूप मे चुन ली जाती है । अतः इन गाथाओं का संग्रह भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

चारण प्रसूत गाथाएँ प्रायः साधारण लोक कथा के रूप में भी मिलती

१. काने ।

है। हरियाने में प्रचलित 'किस्सा राजा रिसालू' अथवा 'राजा रिसालू का राग' इस दिशा में एक अच्छा उदाहरण है। राजा रिसालू का किस्सा पौराणिक नायक 'रसाल' के विषय की अस्थिर कहानियों का समूह है जो बहुत-सी छद पक्तियों से भरी गद्य में कहा गया है। साहसिक कहानियों मे अनेक पद्य अनावश्यक होते हैं, परन्तु इन गाथाओ (रागों)[1] मे सर्वोत्तम भाग पद्यबन्ध ही है जिनकी भाषा टूटी-फूटी बोली की होती है। वार्ता-भाग गद्य में कह दिया जाता है।

क. हरियानी लोक-गाथाओं का वर्गीकरण

हरियाना मे ये राग अथवा किस्से तीन कोटियों में मिलते हैं। प्रथम प्रकार के राग वे हैं जो भाट, चारण या डूमो या डोमो द्वारा गाये जाते हैं और जिनमे स्थानीय राजाओं अथवा रईसो का वर्णन होता है। इनमे जातीय तत्व के साथ सामरिक शूरत्व के बखान भी रहते हैं। इन किस्सो में स्थानीय राजाओ की वंशावलियाँ तथा कौटुम्बिक इतिहास होता है। किस्सा राव किशन गोपाल, निहालदे, ढोला और आल्हा आदि इस दिशा में प्रशस्त उदाहरण दिये जा सकते हैं। दूसरे प्रकार के राग वे हैं जिनमे अर्द्ध धार्मिक तत्व के अश अनुस्यूत हैं और उनके संरक्षक अथवा जामिन (डिपोजिटॅरी) पुजारी या जोगी हैं। ये लोग इन रागो अथवा किस्सो को स्वांग के रूप मे गाते हैं। इन स्वांगों में गीत और वार्ता दोनों अंश होते हैं। कभी-कभी इन्हें गायक गाता है और कभी-कभी गद्य में दर्शाता है। इस ओर 'पूरन भक्त' और 'ध्रुव भक्त' आदि स्वांगो के नाम दिये जा सकते हैं। इन्हीं से मिलते-जुलते तीसरे प्रकार के वे राग हैं जिन्हे भक्त अथवा पडे गाते हैं। यथा 'गूगा पीर' अथवा 'जाहरपीर' और 'ज्वाला जी का जुज्झ' आदि। ये लोग किसी सिद्ध महात्मा, साधु अथवा सन्यासी या देवी के चरित्र की उच्च ध्वनि तथा महत्ता के आधार पर गाते हैं। ये भक्त या पडे उन महात्माओ के सम्प्रदाय अथवा पाषंड (Cult) के होते हैं और पर्वों पर इन रागों को गाते हैं।

उक्त कोटियों से मिलती-जुलती दो श्रेणियाँ और हैं। इन्हें मिरासी या डूम अपनी मिरासन या डूमनी के साथ गाते फिरते हैं। ये लोग आनन्दोत्सव पुत्र-जन्म, विवाहादि के शुभ अवसरों पर गाते हुए विशेषरूप से देखे जाते हैं। इन अवसरों पर ये लोग जातीय नेता के किस्से से लेकर निकृष्ट कोटि -

१. हरियाना में बड़े-बड़े गीतों को 'राग' या 'किस्सा' नाम दिया जाता है। हमने भी इस निबन्ध में इन शब्दों का प्रयोग किया है।

के गीतों तक गा जाते हैं। अन्य प्रकार के गायक वे 'बेरूपिया' अथवा 'बहुरूपिया' हैं जो नीची जातियों के उत्सवों पर 'मंडली' बनाकर गाते हैं। इनके गानों में अभद्र एवं बेहूदे अनुकरण के अंश सम्मिलित होते हैं।

लोक-गाथा शास्त्री डा० चाइल्ड ने लोक-गाथाओं के दो विभाग किये हैं। एक, चारण गाथाएँ (मिनस्ट्रेल बैलेड्स) और दूसरे, परम्परा गाथाएँ (ट्रैडिशनल बैलेड्स)। चारण गाथाओ से उनका तात्पर्य उन गाथाओं से है जिन्हें घूमते-फिरते भाट या चारण स्वयं बनाकर गाते हैं। परम्परागत गाथाएँ वे किस्से हैं जो जनता में चिरकाल से प्रचलित हैं। इन्हीं किस्सों को पजाबी की लोक गाथाओं के अनन्य अन्वेषक कैप्टिन सर टेम्पल ने लीजेंडस नाम दिया है। डा० सत्येन्द्र ने इन गाथाओं के लिए अवदान शब्द का प्रयोग किया है।

टेम्पल महोदय ने इन गाथाओं को छः चक्रों (Cycles) में विभाजित किया है।[1] उनके विभाजन की मीमांसा इस प्रकार है—प्रथम चक्र 'रसालू चक्र' के नाम से अभिहित किया है। इसमें आनेवाली गाथाओं में शौर्य के चमत्कारपूर्ण साहसिक कार्य मिलते हैं। द्वितीय चक्र 'पांडव चक्र' है, जिसमें महाभारत के प्रकार की गाथाएँ आई हैं। इन गाथाओं में किसी न किसी रूप में पौराणिक वृत्त का सम्बन्ध मिल जाता है, अथवा यों कहा जा सकता है कि किसी पौराणिक गाथा को लोक-गायक ने अपनी कला का आधार बना लिया है। तृतीय चक्र में 'शौर्य और सिद्धि' का सम्मेल है जिसमें योद्धा-सन्तो की कथाएँ मिलती हैं, इसे 'गूगा चक्र' भी कहा जा सकता है। चतुर्थ प्रकार की गाथाएँ सिद्ध सम्बन्धी हैं, यथा पूरन भक्त अथवा धन्नाभक्त आदि। पाँचवा चक्र 'सखी सरवर' के प्रकार की गाथाओं का है और अंतिम चक्र अर्थात् छठा चक्र 'स्थानीय प्रवीरों' से सम्बन्धित किस्सों का है, यथा 'किस्सा राव किशन गोपाल' तथा 'हरफूल जाट जुलाणी का' आदि। इस विषय में इतना कहना ही अलं नहीं है, अपितु विषय और विधान के आधार पर इनके और भी कई भेद किये जा सकते हैं।

कथा-वस्तु के आधार पर भी गाथाओं में भेद पाया जाता है। यह भेद कई प्रकार का हो सकता है, परन्तु प्रेम, उत्साह एवं अद्भुत तत्वों की प्रधानता से इन्हें निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

---

१. सर आर. सी. टेम्पल "दि लीजेंड्स आव दि पँजाब" प्रथम भाग, पृष्ठ १२ भूमिका।

१. प्रेमगाथाएँ
२. वीर गाथाएँ
२. अद्भुत गाथाएँ

हरियानी लोकगाथाओं मे प्रथम दो प्रकार के किस्से ही अधिक मिलते हैं। वस्तुतः प्रेम तो लोकगीत तथा लोकगाथाओ की अनुप्राणिका शक्ति है। अतः प्रेम तत्व प्रधान गाथाओं की बहुलता स्वाभाविक है। इस लोक प्रचलित किस्सों का प्रेम एक असाधारण परिस्थिति एवं असाधारण वातावरण में जन्म लेता है। फलतः इसमे संघर्ष की पर्याप्त मात्रा मिलती है। हरियाने की एक गाथा 'पूरनमल' मे प्रेम एकांगी है। उसका परिणाम भी बड़ा विषम है। मौसी के भग्न हृदय की असाधारण क्रूरता अबोध पूरन के जीवन को लक्ष्य बनाकर प्रगट हुई है। 'कंवर निहालदे' गाथा मे 'नर सुलतान' का देश निकाले का वर्णन एक विषम परिस्थिति की घटना है। सुलतान के वियोग में 'निहालदे' की जिस कारुणिक दशा का चित्रण लोक कलाकार ने किया है वह उत्तम कोटि के काव्यनाटको मे भी कठिनाई के साथ मिलेगा। निहालदे के चौरासी परवाने (मदन-पत्र) प्रेम के चौरासी महाकाव्य हैं। उन प्रेम-पत्रो मे स्त्री-हृदय अपनी समस्त कोमलता, मसृणता एवं दीनता को लेकर आया है। इसी प्रकार अन्य गाथाओं के पर्यालोचन से जाना जा सकता है कि लोकगाथाओं में प्रेमाख्यानों की प्रधानता है।

हरियाने के दूसरे प्रकार के किस्से 'वीर गाथाएँ' हैं। इन गाथाओं मे किसी वीर नायक के उत्साहपूर्ण एवं शौर्य सम्पन्न कार्यों का उल्लेख रहता है। कभी वह वीर पुरुष अपनी संस्कृति के त्राणार्थ प्राणों की बाजी लगाता है, कभी अपने शत्रुओं से बदला लेता हुआ पाठक और श्रोताओं के समक्ष आता है। कभी किसी अबला के सतीत्वरक्षार्थ अपनी तलवार से प्रशस्ति लेख लिखता है। इन गाथाओं मे ऐसे अवसर भी कम नहीं हैं जहाँ अलौकिक वीरता का वर्णन ही गायक को अपेक्षित रहा है।

हरियाने का जातीय वीराख्यान "हरफूल जाट जुलाणीवाला" एक विशेष स्थान का अधिकारी है। इस वीर युवक ने गोमाता की रक्षा करते विधर्मियो की क्या-क्या खबर ली, यह उन श्रोताओं पर भलीभाँति व्यक्त है जिन्होंने 'हरफूल' गाते हुए जोगियो को सुना है। 'जयमलफत्ते' दो भाइयो का शौर्य हरियाने के किस युवक का मस्तक गर्वोन्नत नहीं कर देता? वास्तव में, हरियानी जनता का उत्साह अपनी सीमा तोड देता है जब वे इन वीर बांकुडो की दर्पोचित उक्तियों को सुनते हैं। 'आल्हा' भी हरियाने की प्रमुख गाथा है। आल्हा की प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक दृश्य वीरता की अनुपमनिधि है।

आल्हा और ऊदल दो—भाइयो ने किस प्रकार चौहान पिथौरा से अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए लोहा लिया, यह उत्तर भारत के आबालवृद्ध सब जानते हैं। वीर पुंगव सतयोद्धा 'गूगावीर' के पराक्रमपूर्ण उदात्त चरित्र का जो मान हरियाने की जनता के हृदय में है वह कथन की वस्तु नहीं है। आततायी यवनों से भारतीय सस्कृति के सम्मान रक्षणार्थ जो जीवन बलि गूगा ने दी वह इतिहास की अद्भुत घटना है। इन शौर्यपूर्ण गाथाओं का इस वीर प्रसवा भूमि में इतना ही प्रचार है जितना तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का।

हरियाने में तीसरे प्रकार के जो किस्से मिलते हैं, उनमे अद्भुत तत्वों का सम्मिश्रण है। उनमें साहसिक कार्यों का उल्लेख होता है और अलौकिक तत्व प्रयोग में लाये जाते हैं। 'शीलादे' गाथा में शीला के महल के दीप, द्वार आदि बोल कर राजा को चकित कर देते हैं। इन मानवेतर तत्वों के द्वारा श्रोताओं का आश्चर्य अपनी सीमा तोड़ देता है और उनके हृदय में अवर्णनीय गुदगुदी पैदा होने लगती है। हरियाने मे गूगा की अलौकिक आश्चर्यजनक शक्ति का राग अलापा जाता है। गूगा कहानी मे गूगा जब गर्भ मे है, तभी से वह अपना चमत्कार दिखाता है। रथ के बैलों को जब सांप डस लेता है तो माता को स्वप्न मे दर्शन दे विपत्ति से मुक्ति का उपाय सुझाता है। वस्तुतः अद्भुत कार्यो से तथा नारी-समाज के गौरववर्धन से गूगा महिला-जगत् में विशेष सम्मान पा गया है। भाद्रपद कृष्ण ९ को बागड़ी वीर की पूजा के मेले भरते हैं और रात्रि जागरण होता है। 'जगदे का षवारा' मे भी परमार गोत्रोत्पन्न वीर जगदेव के द्वारा अपना शिरच्छेदन एक रोमांचकारी दृश्य है जिसमे अलौकिक तत्व सन्निहित हैं।

यहां यह विचार कर लेना भी समीचीन होगा कि लोकगीत और लोक-गाथाओं में प्रमुख भेद क्या है? यह भेद दो रूपों में स्पष्ट देख पड़ता है। एक—स्वरूपगत भेद (आकारगत अथवा वाह्य), दूसरा—विषयगतभेद (आभ्यन्तरिक भेद)। स्वरूपगत भेद के विषय में इतना जानना आवश्यक है कि गीत का आकार-प्रकार छोटा होता है। उसमें एक भाव स्वल्प समय या स्थान लेकर समाप्त हो जाता है। गाथा इसके विपरीत आकार मे विशाल होती है। रागणी एक लोक-गीत है जो कुछ पंक्तियों में समाप्त हो जाता है, किन्तु 'निहालदे' एक लोक-गाथा है जो कई सप्ताह तक क्या कई महीनों तक गाई जाती है। लिखने में उसका आकार सहस्र पृष्ठों तक पहुँच सकता है। 'आल्हा' जो पावस में उत्तर भारतीय जनता का कठहार होता है, पूरे चतुर्मास गाया जाता है। कुछ गाथाएँ अपेक्षाकृत छोटी भी हैं, यथा 'किस्सा रावकिशन गोपाल', परन्तु फिर भी वे किसी लोक-गीत से आकार-प्रकार में कई गुनी हैं।

लोक-गीत और लोक-गाथा का दूसरा भेद प्रधान भेद है। लोक-गीत का विषय है घर-गृहस्थी का प्रागण, इष्टदेव की मनौती तथा पारिवारिक व्यवहार के रंग-विरंगे चित्र उपस्थित करना आदि। लोक-गीतो में भिन्न-भिन्न संस्कारो—पुत्र-जन्म, विवाह आदि, खेत क्यार, ऋतु-पर्वों पर गाये जाने वाले गीत सम्मिलित हैं जिनमें घर गृहस्थी, प्रेम परित्याग, तथ्या, विधवा आदि के सुख-दुखों का चित्रण ही प्रधान है। कहने का आशय यह है कि घर के लघु घेरे मे जीवन की जिन अनुभूतियो का साक्षात्कार मानव-हृदय को होता है, उन्हीं की झाकी इन लोक-गातों का मुख्य विषय है। शब्दान्तर मे हम कह सकते हैं कि नारी-गीतो का क्षेत्र घर का वातावरण है। वृद्धों पुरुषों के गीत शातरसमय हैं और युवक समाज के गीत शृगारिक हैं।

परन्तु लोक-गाथा की भावभूमि लोक-गीत से भिन्न है। लोक-गाथा एक लोक-महाकाव्य होता है। महाकाव्यो मे मिलनेवाली चार विशेषताओं—सक्रियता (ऐक्शन), चरित्र (कैरेक्टर), पृष्ठभूमि (सेटिंग) और कथा (थीम) में से लोक-गाथा में प्रथम पर विशेष बल रहता है। अतः गाथा मे गीतो की भाँति प्रेम के लिए विशेष स्थान रहते हुए भी, सघर्ष के लिए प्रधानता रहती है। गाथाओ मे वर्णित प्रेम मे महान् संघर्ष दिखाया जाता है जिसका लघुगीतों में प्रायः अभाव रहता है। लोक गाथाओ में वीरता, साहस एव रहस्य रोमांच का पुट अत्यधिक पाया जाता है। यहां विवाह जैसा पुण्य कार्य भी बिना खाडे की सहायता के सम्पन्न नहीं होता। आल्हा को जिन्होंने पढा या सुना है वे इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं। 'पूरन भक्त' की गाथाओं मे जोगियों की महत्ता दिखाने में गायक को बहुत समय व्यय करना पडता है। 'राजा रसालू' अथवा 'किस्सा शीलादे' रहस्य रोमाच का भडार है। नायक कई गाथाओं में लोक-मंगल के साधक रूप मे भी चित्रित किये गये हैं। 'निहालदे' राग में लोक सुलभ नायक सुलतान के द्वारा त्रिलोकतापी दानव का संहार एक लोक-हितकारी कृत्य है। वास्तव में, लोक-प्रचलित इन गाथाओं को पढते-सुनते मध्ययुगीन राजस्थान के जौहर जैसे कारुणिक दृश्य आँखों के सामने तैरने लग जाते हैं।

लोक-गाथाएँ प्राचीन प्रवीरों की और प्रसिद्ध सिद्धो की ही नहीं, नये व्यक्तियों की भी हो सकती हैं और उनमे भी कल्पना का पूरा उपयोग हुआ मिल सकता।

(ख) हरियानी लोक-गाथाओं में पात्र

हरियानी लोक-गाथाओ अथवा किस्सो के सार एव रहस्य को हृदयगम करने के लिए सर्वप्रथम उनके पात्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन आवश्यकीय

है। गाथाओं मे मिलनेवाले पात्रों में नायक, उसके सहयोगी, दैत्य, राक्षस, डाइन, जादूगरनी आदि सभी प्रकार के पात्र जो भारतीय लोक कथाओं मे आते है, उपलब्ध होते हैं। रसालू गाथा मे राजा रसालू अपने तीन साथियों के साथ यात्रा आरम्भ करता है। सुनार और बढ़ई—दो मानवी तथा तोता (शुक) एक अमानवी है। तोता ही अत तक भक्त एव विश्वासपात्र रहा है और जायसी के हीरामन तोते की भाति 'गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा' ये सभी पशु-पक्षी पात्र बोल सकते हैं। 'राजा रसालू' गाथा में तोता मानुषी-वाक् उच्चारण करता है। 'शीलादे' अवदान मे दीपक तक बोलता है और तथ्योद्घाटन करता है। इन गाथाओं मे नायक और उसके सहयोगी प्रायः एक ही स्थान और एक समय उत्पन्न हुए हैं। रिसालू और घोड़ा एक ही स्थान पर एक ही समय उत्पन्न हुए थे। यह घोड़ा राजा को द्यूत-क्रीड़ा मे सहायता प्रदान करता है। जब कभी राजा कठिनाई मे हो जाता है तो घोड़ा उसे मार्ग-प्रदर्शन करता है। इन पात्रों में कोई एक पात्र अद्भुत कौतूहलपूर्ण कृत्यों को करनेवाला होता है। 'निहालदे' अवदान मे कथा आई है कि नरवरगढ़ में एक दाना (राक्षस) रहता था। वह प्रतिदिन एक प्राणी का आहार करता था। एक दिन किसी विधवा के एकाकी पुत्र की बारी आई। नायक सुलतान ने उस अवसर पर निज को समर्पण किया। दाने के साथ द्वन्द्व किया और दाने को मार डाला।

कई स्थानों पर नायक के साथ उसकी मौसी का प्रेम प्रदर्शित किया गया है। राजा कई-कई शादियां किया करते थे। युवती अपने वृद्ध पतियों में कोई रुचि न पाकर कुटुम्ब के युवकों पर दृष्टि डालती थीं। बेचारे युवक समस्या में पड़ जाते थे। ये व्यभिचारिणी विमाताएं असफल प्रयत्न होकर कभी-कभी नायक अथवा नायिका को मरवा डालती थी। 'पूरन भक्त' नामक गाथा में विमाता के दुष्कृत्य जन-विदित हैं।

भारतीय लोक वार्ता में सर्प को विद्यमानता भी समानरूप से रहती है। 'गुरु गूगा' नामक गाथा में सर्प का वर्णन आया है। गूगा को छुटपन मे पालने में साप के साथ खेलता हुआ दिखाया गया है। सापों पर उनका असाधारण प्रभाव था। इस समय भी ये सापों के देवता कहकर पूजे जाते हैं। विश्वास है कि वीर गूगा के पूजक को सर्पदंशन का भय नहीं होता है। इन गाथाओं मे जिन सांपों का वर्णन है, उनमें मारण, उच्चाटन एव सजीवन प्रदान करने की शक्ति होती है। गूगा के किस्से में एक अवान्तर कथा आती है कि धूपनगर के राज संजा (संजय) ने वचनभंग करके अपनी पुत्री सिरियल गूगा को देने से इंकार कर दिया। वह बन में जाता है और बांसुरी

बजाकर पशु-पक्षियों को विमोहित कर लेता है। वासुकिनाग ने मुग्ध होकर तक्षक (तातिगनाग) को गूगा की सेवा में नियुक्त किया। तातिग ब्राह्मण वेष बनाकर कारु देश में जाता है। सिरियल को देख लेता है और छिपकर साप बनकर उसे डस लेता है। सिरियल का शव महल मे जाता है। उधर तातिग सपेरा बन कर वहां पहुँच जाता है। उसने राजा से यह लिखवा कर ले लिया कि यदि सिरियल स्वस्थ हो गई तो वह उसका सम्बन्ध (शादी) गूगा से कर देगा। तब उसने नीम की डाली लेकर मन्त्र पढ़ते हुए सिरियल का विष उतार दिया। राजा ने सिरियल का विवाह गूगा के साथ कर दिया।

साधु सत भी भारतीय लोकवार्ता मे विशेष शक्ति के अधिकारी होते हैं। ये साधु-सन्यासी उन सभी जादू एव आश्चर्यों (मिराकिल्स) को कर सकते हैं जिन्हें मानव सोच सकता है अथवा ध्यान मे ला सकता है। यथा किसी प्रियजन को जीवित कर देना और उसके प्रातराश के लिए मिठाई आदि ला देना अधों को आंखे दे देना, सूखे बागो को हरा कर देना, कोढ़ी को स्वास्थ लाभ करा देना तथा नपुंसक को पुसत्वशक्ति सम्पन्न बना देना आदि। 'सखी सरवर' में इस प्रकार के वर्णन आए हैं। गूगा, माता बाछल के गर्भ से, अपनी करामात दिखाता है और रथ के बैलों को जीवित कर देता है। प्रसिद्धि है कि 'नाम देव' ने मृत बालक को पुनर्जीवित कर दिया था। धन्ना भक्त ने मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा की थी। इतना ही नहीं, साहित्यिक महाकाव्यों में भी ऐसे चामत्कारिक दृश्य आते हैं। महात्मा तुलसीदास का यह साग्रह प्रण "तुलसी मस्तक तब नबै धनुस बान लेहु हाथ" कुछ इसी प्रकार के आद्भुत्य का समर्थन है।

अन्य प्रकार के क्षुद्र पात्रों का वर्णन भी इन गाथाओं में आता है। डाइनो (विचेज़) का प्रयोग सदैव नायिका को पकड़ने मे किया गया है। इनकी शक्ति अपार होती है। ये भूमंडल में गुप्त वस्तुएं खोज सकती हैं, आकाश को फाड़कर उसमे थेगली लगा सकती हैं तथा जल मे आग लगा सकती हैं। पत्थर को मोम बना देने की अद्भुत शक्ति उनमें होती है। ये विभिन्न प्रकार के रूप बना लेती हैं। कभी जर्जरा वृद्धा है तो कभी अनुपम सुन्दरी युवती के वेप मे हैं। कार्यसिद्धि के लिए कोई भी उपाय काम मे लाती हैं और सदैव सफल प्रयत्न होती हैं।

ग. हरियानी लोक-गाथाओं में प्राप्त अभिप्राय

लोक-कहानियों की भाँति लोक-गाथाओं मे भी कई प्रकार के अभिप्राय मिलते हैं। इनमे जीवनदान की शैलियाँ निराली होती हैं। भस्म अथवा अस्थियों का इकट्ठा कर आकृति (एफिजी) बनाई जाती है और फिर उसमे

प्राण-प्रतिष्ठा कर दी जाती है। पात्र को जीवन दिलाने के लिए चिड़िया स्वय नष्ट हो जाती है। वह पात्र के हाथ के लिए अपना पर देती है, पॉव के लिए पैर आदि। तलवार भी जीवन का प्रतीक बनकर आई है। जीवन जब रोगग्रस्त होता है तो उसमें जंग लग जाता है। उसका टूटना जीवन समाप्ति का द्योतक होता है, किन्तु जब यह एक साथ जोड दी जाती है तो जीवन पुनरावृत्त हो जाता है।

कई स्थानों पर स्वप्न भी सिद्धिप्रद होकर आता है। गूगा अपनी माता को स्वप्न मे बतलाता है कि मृत-बैलो को वह नीम की टहनी से झाडे। इस उपाय से बैल जी उठे हैं। ये स्वप्न-भयावह एवं आशागर्भिता—दोनों प्रकार के होते हैं। इसी 'गूगापीर' नामक किस्से मे गूगा अपने पिता जेवर को भयानक स्वप्न दिखाता है। परिणामस्वरूप राजा जेवर ने गूगा की सगर्भा माता को अपने यहॉ वापिस बुला लिया है।

'किस्सा राजा रसालू' मे राजा सिरकप ने एक ऐसा आम्रवृक्ष दिया है जो १२ वर्ष से फूला था। इसके साथ एक बच्चा भी दिया गया है। यह कहा गया था कि जिस दिन यह वृक्ष फूलेगा तभी यह बच्चा राजा की पत्नी बन जायेगा।

इन गाथाओं मे भगवान् की अप्रत्याशित दया के द्वारा चाहे वह साक्षात् भगवान् के रूप मे हो अथवा किसी दूसरे रूप में पात्र की सहायता कराई जाती है। प्रायः दयाकर पात्र बोलनेवाले पशु होते हैं जो भविष्य का मार्ग दिखाते हैं, व आपत्तिकाल में बचाव करते हैं तथा विषम परिस्थितियों का ज्ञान कराते हैं। 'राजा रसालू' के किस्से में तोता यह कार्य करता है। कोई भी पशु अथवा पक्षी यह कार्य कर सकता है। अतः अन्य अनेक स्थानों पर चीता, मोर, गीदड़, ऊँट यथा ढोला में गिरते हुए द्वार से नायक की रक्षा करता है तथा सर्प आदि ने यह कार्य किया है। इनके अतिरिक्त निर्जीव पदार्थ, यथा वृक्ष-आम और पीपल भी यह कार्य कर सकता है। कभी-कभी यह ईश्वर की दया जहाज के रूप में आती है जो नायक को यथासमय अदृष्ट दिशा की ओर ले जाती है। कहीं-कहीं पर बाल (हेयर) भी चमत्कारी रूप में आता है। यह वृक्ष काट सकता है, जलाये जाने पर आपत्ति से मुक्ति दिलाता है। यह बीहड़ जंगलों को तथा शत्रुओं को जला देता है।

हरियानी लोकगाथाओं में कई स्थानों पर रूप-परिवर्तन का उपाय भी काम में लाया गया है। रूप-परिवर्तन के कई प्रकार हैं—अवतार ले लेना, जीवित का अजीवित में और निष्प्राण का सप्राण में परिवर्तन आदि। 'गुरु

गूगा' के अवदान में अवतार की चर्चा आई है। वह अपनी पत्नी सिरियल से मिलने के लिए रात्रि मे रूप बदल कर आता है, अवतरित होता है।

इसके साथ ही हरियानी लोकगाथाओं में एक वस्तु देखने को और मिलती है—गायक की पहचान और परीक्षा। नायक की पहचान का कार्य-मुद्रा, कोई शारीरिक चिह्न, आभूषण, रूमाल आदि से लिया जाता है। कभी-कभी पूर्वजन्म की कथा भी इस दिशा में सहायक होती है। यथा, नल के किस्से में नल-जन्म की कथा के रहस्योद्घाटन से नल की पहचान हुई है। नायिका का परीक्षण अथवा 'दिव्य-प्रयोग' भी बराबर मिलता है। 'शीलादे' नामक किस्से मे शीला को अपना सतीत्व प्रमाणित करना पड़ा है। मंत्री महता ने शीला को खौलते तेल मे स्नान कराकर उसकी अग्नि-परीक्षा ली है।

तेल कड़हाइ डाल दो बिग करो तैयार।
उसमें सीला नहाले जब आवे एतबार।
आवे एतबार ज़रा मेरे मन को,
पहुँची नहीं आंच ज़रा उसके तन को।
जो करना वेह काम मती देर लगाओ,
अब झूठी क्यूं बातों को पैर चलाओ।

इसी प्रकार दूसरी परीक्षा एक कच्चे धागे में कच्चा घड़ा बाँधकर कुए से पानी निकलवा कर की गई है। नायक परीक्षण में नायक से अभूत बात की आकांक्षा की जाती है। रेत से आटा दूर कराना, आततायी राक्षस को मार देना यथा 'निहालदे' में सुलतान ने दाने को मारा है, बदमाश व बिगड़े घोड़े को अनुशासित (पालतू) कर देना, आदि परीक्षा के जटिल प्रश्न होते हैं।

द्यूत-क्रीड़ा भी एक घटना है। राजा रसालू राजा सिरकप के साथ चौपड़ खेलता है और खेल में राजा सिरकप का सिर जीत लेता है। प्रति-हिंसा की भावना भी इन गाथाओं में यत्र-तत्र मिलती है। 'किस्सा राजा रसालू' मे राजा को अपनी पत्नी में अविश्वास हो गया है। उसे दंड मिला है कि वह अपने प्रेमी के हृदय के मांस को खावै। इसी प्रकार 'शीलादे' में महता[1] अपनी पत्नी शीला को बेंत मारता है और कमीनों की भाँति वेष धारण कराकर घर की छत पर कव्वे उड़वाता है।

घ. हरियानी लोक-गाथाओं का स्वरूप (विशेषताएँ)

यहाँ हरियाना के लोक-प्रबन्धों का स्वरूप-विधान जान लेना भी समीचीन होगा, जिससे साहित्यिक प्रबन्धों एवं महाकाव्यों से इनका भेद स्पष्ट हो जाय।

१. महता, राजा रिसालू का मंत्री है जो (राजा) बड़ा छलिया है।

लोक प्रबन्धों की जो निजी विशेषताएँ मिलती हैं उनके आधार पर हमारे निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं :—

(क) लोक प्रबन्ध मौखिक रूप में प्रचलित हैं, लिखित रूप मे नहीं।
(ख) इनका कोई प्रामाणिक मूलपाठ नहीं है।
(ग) प्रबन्धकार अनाम एवं अज्ञात होता है।
(घ) लोक प्रबन्धो का संगीत के साथ अटूट सम्बन्ध होता है।
(ङ) ये स्थानीयता से युक्त होते हैं।
(च) ये नीति, आचार और उपदेश से रहित हैं।
(छ) इनमे उच्च टेकनीक का अभाव रहता है।
(ज) इनमे टेक पदों की पुनरावृत्ति होती है।
(झ) अधर आरम्भ होता है। (Abrupt beginning)
(ञ) सवेग प्रवाह होता है।

(क) मुख प्रचलित, लिखित नहीं

लोक मे प्रचलित इन किस्सो का रूप आरम्भ से ही मौखिक रहा है और ये शिष्य-प्रशिष्य परम्परा से एक से दूसरे तक पहुँचे है। एक गवैया किसी किस्से को रागता है। उससे कोई दूसरा गवैया गाना सीख लेता है और फिर उससे तीसरा सीखता है। इस प्रकार यह अटूट परम्परा चलती रहती है और इस प्रकार लोक-प्रबन्धो का विकास होता रहता है। 'राजा रसालू', 'निहालदे', 'पूरनभक्त', और 'गोपीचंद भरथरी' आदि हरियानी लोक-प्रबन्ध लिपिबद्ध नहीं हैं। आजकल कुछ साधारण सी पुस्तकें इन किस्सों की अवश्य छपी मिलती हैं। लेखबद्धता के अभाव मे यद्यपि लोक-प्रबन्ध पारखियो के अनुसंधानकार्य मे कठिनाई होती है, किन्तु दूसरी ओर यह तत्व इन किस्सों को विकासशील रखने मे सहायक है। लिपिबद्ध होने पर लोक-साहित्य की अपनी विशिष्टता नष्ट हो जाती है। लिखित रूप प्राप्त हो जाने पर इन प्रबन्धों की दशा एक अवरुद्ध जलधार के सदृश हो जाती है। सिजविक ने एक बड़ी मार्के की बात कही है कि "हम किसी बैलेड को लिखकर उसका प्राणान्त कर डालते हैं।[1]" वस्तुतः कोई भी लोक-प्रबन्ध तभी तक वृद्धि करता है जब तक वह अक्षरों के शिकजे मे नही कस दिया जाता।

ख. प्रामाणिक मूलपाठ का अभाव

उपरोक्त बात को समझ लेने के पश्चात् यह सहज ही विदित हो जाता है कि लोक प्रबन्धों के मूलपाठ मिलने कठिन होते हैं। प्रायः मिलते ही नहीं,

१. फ्रैंक सिजविक—'ओल्ड बैलेड्स' भूमिका।

हैं। जो वस्तु मुख परम्परा से चलती रही है और जिसमें नये-नये गायकों का योगदान मिलता रहा है उसका मौलिक एवं प्रामाणिक पाठ नहीं मिलता। जनता जब इन किस्सों को अपना लेती है और गाने लगती है तो वह उसकी सम्पत्ति हो जाती है और उसमे परिवर्त्तन एव परिवर्धन होने लगता है। भिन्न-भिन्न गवैये इन्हें अपने अनुकूल बनाकर गाते हैं और इस प्रकार उसका मूलरूप लुप्त हो जाता है। इस विषय में प्रो० केर का मत यथार्थ है—"वस्तुतः लोकगाथा एक काव्यात्मक कथा है जिसमे कोई भी विषय गाया जा सकता है, परन्तु गायक उस विषय को पूर्ववत् कदापि नहीं रहने देता।"[१] फ्रैंक सिजविक ने भी 'ओल्ड बैलेड' की भूमिका में यही मत प्रकट किया है कि गाथा मे परिवर्तन और परिवर्धन के लिए विशेष स्थान है। अतः गाथा का प्रमाणिक मूलपाठ मिलना कठिन ही नहीं अपितु असंभव भी है। उदाहरण के लिए उत्तर भारत की लोकप्रिय गाथा 'आल्हा' ली जा सकती है। प्रायः सभी प्रदेशों एव जनपदों मे जनता आल्हा और उदल के पराक्रमपूर्ण वीर-आख्यानों को बड़े चाव से सुनती है और इस गाथा का कोई एक पाठ नहीं, अनेक पाठ है। इस गाथा ने अपने जन्म-स्थान बुन्देलखंड से चारों ओर फैलकर व्यापकता तो पाई परन्तु मौलिकता को तिलाजलि देनी पड़ी। हम यहां प्रो० कैटरिज का मत उद्धृत करके इस बात को समाप्त करेंगे। उन्होंने कहा है कि "किसी वास्तविक लोक प्रिय गाथा का कोई निश्चित एवं अन्तिम रूप नहीं हो सकता।कोई प्रामाणिक पाठ नहीं हो सकता। उसके विभिन्न पाठ हो सकते हैं परन्तु केवल एक ही पाठ नहीं हो सकता।"[२]

प्रबन्धकार (गाथाकार) का अनाम एवं अज्ञात होना

लोक-रागों के विषय में यह पुरातन बात है कि रचयिता का नाम गुम रहता है। किस राग को किस रागी ने कब रचा, यह बतलाना कठिन है। यही कारण है कि आज हजारों रागों के होने पर भी हम उनमें से एक के भी रचयिता के विषय मे निश्चय रूप से कुछ नहीं बतला सकते। इन गीतों के रचयिता अनाम एवं अज्ञात हैं। साहित्यिक महाकाव्यों की भांति इन लोक-रागो का भी कोई कर्त्ता अवश्य होगा जिससे अपनी सुहृन्मण्डली मे बैठकर आनन्दातिरेक मे इनकी रचना की होगी; परन्तु इन रागों को किस व्यक्ति ने

---

१. आर्थर क्विलर काउच "दि आक्सफोर्ड बुक आफ बैलेड्स", भूमिका भाग। प्रो० केर सेज़ "दि ट्रूथ इज़ दैट दि बैलेड इज़ इन आइडिया, ए पोइटिकल फॉर्म, ह्विच कैन टेकअप ऐनी मैटर, एन्ड इज़ नॉट लीव दैट मैटर एज़ इट वाज़ बिफोर।" २. "इंगलिश एन्ड स्कौटिश पापुलर बैलेड्स" भूमिका, पृष्ठ १८।

रचा यह बतलाने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। कुछ ही ऐसे प्रबन्ध-गीत हैं जिनके रचयिता का नाम परम्परा से चला आता है—जैसे जगनिक का आल्हा आदि।

हरियानी होली या धमाल आदि के रचयिता घीसाराम भटीपुरवासी का नाम प्रसिद्ध है और वास्तव मे कुछ होलियों की रचना उन्होने की भी है। परन्तु अन्य हजारों धमाल और होली के गानो की रचना किसने की, यह बतलाना कठिन है। सच तो यह है कि इन रागियों ने अपने व्यक्तिगत नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिए अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया है। इस अनामता का अर्थ यह कदापि नही है कि वे लोग अपनी कृतियों के कारण लज्जा का अनुभव करते थे। इसका कारण एक यह हो सकता है कि वे अपने नाम व यश के प्रति इतने सजग नहीं थे, जितने आज के लेखक हैं। अंग्रेजी के लोकगाथा मीमांसक राबर्ट ग्रेब्स का मत भी बिल्कुल ऐसा ही है। उन्होने लिखा है कि "आजकल के वर्तमान युग मे किसी लेखक का अज्ञात-नामा होना यह सिद्ध करता है कि वह अपनी कृति से लज्जित होने के कारण ऐसा करता है, परन्तु प्राचीन समाज में इसका कारण अपने नाम के विषय मे लेखक की लापरवाही ही समझनी चाहिए[1]।"

घ. संगीत का अटूट संबंध

यो तो समस्त लोकसाहित्य ही संगीत की नींव बनाकर खड़ा हुआ है परन्तु लोक-राग और संगीत का साहचर्य अभिन्न है। सच तो यह है कि संगीत के बिना किसी राग के सुनने मे आनन्द ही नहीं आता। अंग्रेजी शब्द बैलेड के लिए हमने जो 'राग' शब्द का प्रयोग किया है वह इस स्थान पर सार्थक हो गया है। बैलेड शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के बेलारे (Ballare > बलारे) शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है। इस नाच के साथ सगीत की भावना बराबर लगी चलती रही है। प्राचीन काल में यूरोपीय देशों में चारणों के द्वारा ढोल अथवा सितार बजाकर बैलेड गाने का वर्णन मिलता है। हमारे यहाँ भी रागी लोग (बैलेडिस्ट्स) सारगी आदि बजाकर इन रागों का आलाप करते हैं। वर्षाकाल मे अल्हैत सदैव ढोलक बजाकर ही आल्हा गाता है। गाने की गति ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है, ढोलक बजाने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है। राग के बोलों के चरम शिखर पर पहुँचते ही ढोलक भी इसी प्रकार तीव्रता पर पहुँच जाती है।

हरियाना में जोगी लोग गोपीचन्द भरथरी, पूरन भगत, जसवंत तथा

१. रॉबर्ट ग्रेब्स—"दि इंगलिश बैलेड" भूमिका, पृष्ठ १२।

राव किशनगोपाल आदि के राग सारंगी बजाकर गाते हैं। जोगियो का अपना कंठ और वातावरण के अनुकूल सारंगी की मधुरिमा एक निराला आनन्द उत्पन्न करती है। सारंगी उनका अनन्य साधन है। सारंगी के साथ ही उनकी भारती मुखरित होती है और उसके बिना वह पगु हो जाती है। सच तो यह कि कुछ गीत वाद्य-यन्त्र की सहायता के बिना गाये जाने से अच्छे नहीं लगते। होली का गाना हरियाने में बड़ा प्रसिद्ध है। इसे गायक मंडली ढोल, ढप्प, नगाड़ा, झांज और घड़ियाल आदि बजाकर और नाच-नाच कर गाती है। इस अवसर पर मुख और वाद्य-यन्त्रो की स्वर-लहरियाँ एक विशेष प्रकार का समाँ बाँध देती हैं और श्रोताओ को विमोहित कर कर लेती हैं। कभी-कभी वाद्य-यन्त्र के अभाव मे ग्रामीण लोग मूसल आदि मे घुंघरू बांध कर उसे खटका कर संगीत ध्वनि उत्पन्न करते हैं। चिमटा या चुटकी से भी काम लिया जाता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि लोक-गीत एवं लोक रागों का संगीत से अभेद सम्बन्ध है।

ङ. स्थानीयता से युक्त

यद्यपि लोक-रागो के गायको ने किसी राजा, रानी तथा अमीर-उमराओं के आश्रय मे रहकर इन रागों की रचना की है और उसमे ऐसे ही वातावरण के लिए उपयुक्त अवसर भी होता है तथापि रचयिताओं की अपनी निजी अभिरुचि और स्थानीय मान्यताओं के बल पर उनमे स्थानीयता आ ही जाती है। जो राग अथवा किस्सा जिस देश-विशेष में गाया जाता है अथवा प्रचलित है वहाँ का प्रादेशिक प्रभाव (रंग) उस राग में आना अवश्यंभावी है। जो राग बागड़ में प्रचलित है वहाँ की बातों का रंग उन किस्सों मे अवश्य रहेगा। 'निहालदे' में नरबरगढ़ के दाने के वर्णन मे पूड़े और रोट आदि का वर्णन यहाँ के प्रादेशिक भोजन आदि से प्रभावित है। कहीं-कहीं स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख भी इन रागों में पाया जाता है।

च. नीति, आचार और उपदेश से रहित

लोक-रागों मे, मूल प्रवृत्ति रूप मे, नीति, शिक्षा, आचार अथवा उपदेश की कोई भावना नहीं होती। उनका मुख्य उद्देश्य कथानक की प्रवहणशीलता है और उनमें केवल सगीत एवं विषय-जनित रमणीयता पर ही विशेष बल रहता है। ये विषय प्रधान काव्य हैं। गायक अपने निजी व्यक्तित्त्व को राग मे मिलने वाले किन्हीं पात्रो के साथ सम्पृक्त कर लेता है। यदि वह गायक ऐसा नहीं करता तो समझना चाहिए कि उसका व्यक्तित्व पात्रों से भिन्न पड़ गया है और उसमे संस्कारिता आ गई है। हरियाना के लोक-रागों में—

गोपीचन्द भरथरी, गूगा, आल्हा और पूरनभगत आदि मे—त्याग, तपस्या, वीरता, मातृभक्ति, प्रेम और देश-भक्ति के प्रसंग यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं जो शिक्षा और नीति के ऊपर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं, किन्तु इन गीतों के रचयिताओं की प्रवृत्ति प्रधानतया उपदेश की ओर नहीं थी। ये तत्व तो प्रासगिकरूप से यथावसर आ गये हैं जो खटकने वाले नहीं हैं। वास्तव में, इन लोक-रागों में स्थायी एवं सुपरिचित रोचकता मिलती है और इनमें जीवन के विशुद्ध चित्र होते हैं।

छ. उच्च टेकनीक का अभाव

लोक-राग और लोक-गीत दोनो मे साहित्यिक टेकनीक का अभाव पाया जाता है। यहाँ पर तो सदैव अभिव्यक्ति की सरलता, स्वाभाविकता और सादगी पर बल रहता है। वस्तुतः ये राग तो सर्वप्रथम विवरणमात्र है जिनमें एक कहानी होती है और जो यथासभव सूक्ष्मता एव मितव्यता के साथ कही गई होती है। इनमें रचयिता एक साथ विषय पर पहुँच जाता है। वह जैसे बिना प्रस्तावना के प्रारम्भ करता है उसी प्रकार बिना उपसहार अथवा भरतवाक्य के अंत कर देता है। लोक-रागो की अपनी विशेषता है कि इनमें कथा सदैव अतिम पक्ति को छूकर समाप्त होती है।

काव्य में लेखक का आग्रह छद, अलंकार, रीति और अनूठी कल्पना पर रहता है। वह अपनी कृति मे मनमानी काटछांट, तोड़-मरोड़ और उतार-चढ़ाव करता चलता है, परन्तु लोक-कवि इन कृत्रिम गुणों से दूर रहता है। उसकी रचना में तो नैसर्गिक गुणों की छटा दिखलाई पड़ती है। न कहीं हठपूर्वक अलंकारों की बाढ़ है और न कहीं क्लिष्ट कल्पना और ऊहापोह के लिए स्थान। यदि कोई उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार घुणाक्षरन्यायेन बरवश आ जाये तो कोई आपत्ति नहीं। वास्तव में ये लोक-राग एक प्राकृतिक नदी के सदृश हैं जो अजस्र प्रवाह से बिना प्रयास के निरन्तर बहती रहती हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी का मत इस ओर बड़ा सटीक है। उन्होंने लिखा है कि "ग्रामगीत और महाकवियों की कविता में अंतर है। ग्राम-गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम-गीत मे रस है, महाकाव्य में अलकार। रस स्वाभाविक है, अलंकार मनुष्य निर्मित।" अन्यत्र वे लिखते हैं—"ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं, इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छद नहीं, केवल लय है! लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।" यहां पर यह ध्यान रखना चाहिए कि जो बात लोक-गीतों के विषय में कहीं गई है वह लोक-रागी के पक्ष में भी यथार्थ घटित होती है।

उपरोक्त कथन से हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि लोक-गीत अथवा लोक-रागों में अलंकार आदि, आ ही नहीं सकते। कई स्थानों पर सुन्दर-सुन्दर अलंकार मिलते हैं, परन्तु वे बिना प्रयास आ गये हैं। निस्सन्देह लोक-रागों का निसर्ग सौन्दर्य श्लाघनीय है।

ज. टेक या अन्य पदों की आवृत्ति

लोक-रागों की एक विशेषता यह है कि इनमें टेक अथवा किसी लघु अंश की आवृत्ति होती रहती है। इस प्रक्रिया से कई लाभ होते हैं।—प्रथम-पहिले राग की 'एकस्वरता' (मोनीटोनी) दूर हो जाती है और श्रोतृ-मंडली द्वारा टेक पदों की आवृत्ति होने से राग में नवीन प्राणों का सचार हो जाता है। दूसरे गायक को कुछ अवकाश मिल जाता है। यदि कोई गायक किसी लोक-राग को एक ही बार में गाना चाहे तो, यह उसके लिए संभव नहीं है। अतः श्रोताओं द्वारा गीत मे हाथ बटाने से रागी को कुछ विश्राम मिल जाता है। तीसरे, आवृत्ति के कारण गीत विशेष प्रभावशाली हो जाते हैं और श्रोताओं पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है। राग को एक बार मे गा देने से उसका वह स्थायी प्रभाव नहीं होता जो उसके पौनःपुन्येन गाने से होता है। टेक पदों की आवृत्ति से गीत का रहस्य छन-छन कर श्रोताओ के हृदय मे बैठ जाता है।

अर्थ की दृष्टि से इन टेक पदों की दो श्रेणियां हो सकती हैं। एक—सार्थक, दूसरी—निरर्थक। सार्थक वे टेक पद हैं जिनका कोई निश्चित अर्थ होता है। यथा—'ज्वालाजुज्झ' में भक्त के ये शब्द सार्थक है—"हरिहर के गुण गाऊं मेरी ज्वाला सच्ची मा कूद गंगा मे न्हाऊं।" ज्वाला जी के दर्शन गंगा स्नान के सदृश पुण्यप्रद है। निरर्थक गीतांश वे हैं जिनका कुछ भी अर्थ नहीं, परन्तु उनकी उपयोगिता राग के प्रभावोत्पादन में है। यथा "हे जी, हरे राम आदि। ये पद प्रसंग में निरर्थक हैं, परन्तु गीत के लिए इनका मूल्य अत्यधिक है।"

झ. अधर आरंभ

लोक-रागों की एक विशेपता यह है कि इनका 'अधर आरम्भ' होता है। गायक कोई लम्बी-चौड़ी प्रस्तावना बिना खड़ी किये ही विषय पर बढ़ा चलता है।

ञ. सवेग प्रवाह

एक अन्य विशेषता यह है कि लोक-रागों का प्रवाह बड़ा जोरदार होता है और राग की गति बड़ी तीव्र होती है।

हरियाने के तीन प्रतिनिधि लोकरागों का विवेचनात्मक विस्तृत अध्ययन

१. "निहालदे"

हरियाना रागो की भूमि है। यहां पर बड़े उत्तम-उत्तम राग जिनमे समस्त रागीय तत्व सन्निहित हैं, जनता के कंठाभरण बने हुए है। 'निहालदे' या 'निहाल देवी' उनमे से एक बडा रोचक एवं महत्वपूर्ण राग है। इसे इस प्रदेश का महाकाव्य कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। परन्तु यह साहित्यिक महाकाव्यों की भांति लिखित नही है। यह तो अलिखितरूप मे है और लोक की जिह्वा पर बिराजता है। इसे रागी जोड़े के साथ सारंगी पर गाते हैं और पावस में विशेषकर श्रावण मे इसके गाने का उपयुक्त समय होता है। 'निहालदे' राग का कथासार इस प्रकार है :—

"कीचकगढ़ में महाराजा चकवाबेन के वश मे राजा मैनपाल हुआ। वह परिहार गोत्र का था। राजा मैनपाल के यहां दीर्घकालोपरांत एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'ढोलकुँवर' था। यही राजकुमार ढोला आगे चलकर अपने वैयक्तिक गुणों के आधार पर सुलतान और विशेषरूप से 'नर सुलतान' के नाम से विख्यात होता है। प्रारंभ में यह बड़ा उच्छृंखल एवं उद्दंडी था। इसी निरंकुश प्रवृत्ति के कारण उसे बारह वर्ष का दसोटा (देश निकाला) मिला और वह घर छोड़कर बन में चला गया।

जंगल में भटकते-भटकते सुलतान को बाबा गोरखनाथजी मिले। गोरखनाथ जी को प्रणाम किया और 'जोग' के लिए उनसे प्रार्थना की। बाबा जी ने अन्तर्दृष्टि से देखा कि यह राजकुमार है और इसे अभी जोग की आवश्यकता नहीं है। अतः उन्होंने बालक सुलतान के सामने एक शर्त रखी यदि इन्द्रगढ़ में सात घरों से भिक्षा ला देगा तो उसे जोग मिल जायेगा। वह भिक्षार्थ इन्द्रगढ़ गया। उसी समय वहां का राजा केशवकामध्वज (केसोकमधज जैसा चारण उच्चारण करते हैं) हाथी पर चढ़कर नगर का भ्रमण कर रहा था। भीड़-भब्बड़ बडा था। हाथी के आघात से बालक सुलतान का भिक्षापात्र टूट गया। वह रोने लगा। स्वयं राजा ने उसे संभाला और राजकुमार जानकर उसे धर्मपुत्र बना लिया। राजा केसोकमधज का एक औरज पुत्र भी था। उसका नाम फूलकंवर था। दोनों साथ रहते, परन्तु फूलकंवर को सुलतान के प्रति सहज ईर्ष्या हो गई।

इन्द्रगढ़ में रहते हुए सुलतान को छः वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन

शिकार खेलते-खेलते वे दोनो भाई केलागढ़ में पहुँचे। वहाँ पर सुलतान का बड़ा आदर हुआ। दूसरे दिन घूमते-घूमते वहां के राजा मघ के जनाने बाग की ओर जा निकले। बाग में राजकुमारी 'निहालदे' सखियों के साथ झूला झूल रही थी। मल्हार राग से वशीकृत होकर सुलतान ने अपना घोड़ा बाग में कुदा दिया। यहीं सुलतान का पद्मनी निहालदे के साथ प्रथम मिलन हुआ। तत्पश्चात् पुत्री के प्रस्ताव पर राजा मघ ने स्वयवर रचा और राजकुमारी का विवाह सुलतान के साथ कर दिया।

इस घटना से फूलकंवर की ईर्ष्या का बांध टूट गया। उसने सुलतान को इन्द्रगढ़ छोड जाने के लिए कहा और उसने (सुलतान ने) फूलकंवर के आग्रह पर नगर को छः वर्ष के लिए त्याग दिया। 'निहालदे' को वहीं छोड़ा और यह वचन दिया कि वह छठे वर्ष की तीज को बारह बजे तक अवश्य आयेगा। फिर वह दक्षिण की ओर नरवरगढ़ चला गया।

नरवरगढ़ का राजा ढोल था जो राजा नल का लड़का था। उसकी पटरानी जैसलमेर के राजा बुध की लड़की मारवण थी जिसे 'मारू' भी कहते हैं।[1] आधा राज ढोल के नाम था और आधा मारवाण (मारु) के। सुलतान ने मारवाण के अधीन चौकीदार की नौकरी कर ली। वह सम्मन बुर्ज पर डेरा लगाकर रहने लगा।

उस नगर मे एक लोकतापी दाना (दानव) रहता था। वह प्रतिदिन एक मनुष्य की भेंट लेता था। एक दिन सुलतान पहरा दे रहा था। उसी दिन सेठ रतन शाह के इकलौते पुत्र की दाने की भेंट के लिए बारी आ गई। सेठ शोक-विह्वल था। सुलतान ने अपने को बलि के लिए अर्पण कर दिया और वह श्रेष्ठीपुत्र के स्थान पर दाने के यहां चला गया। दाने के साथ लोमहर्षक युद्ध हुआ और सुलतान ने दाने को मार दिया। इस अलौकिक पराक्रमपूर्ण एवं लोकहितकारी कृत्य से प्रसन्न हो मारवाण ने उसे प्रचुर पारितोषिक दिया और अपना धर्मभ्राता बना लिया। अब सुलतान को 'नर सुलतान' अथवा 'वीर सुलतान' कहा जाने लगा।

दूसरी बार नरवरगढ़ के प्रजा-पीड़क कुख्यात चोर 'जानी' को पहरा देते हुए सुलतान ने पकड़ लिया। राजा ढोल ने उसे प्राण-दंड दिया, परन्तु सुलतान ने जानी चोर को अपनी जिम्मेदारी पर बचा लिया। इस प्रकार उपकृत होकर चोर ने सुलतान से पगड़ी बदली और वे दोनों मित्र बन गये।

---

१. राजस्थानी लोक महाकाव्य 'ढोला मारू' के नायक-नायिका भी ये ही महान् आत्माएँ ढोला और मारू हैं।

एक पर्व पर सूरत बावड़ी के स्नान के लिए मारवण गई और वहाँ उसने सुलतान की जय बोली[1]। बनजारे जो बावड़ी का कर लेते थे, उन्हें खटक हुई। बनजारा सरदार भीमसिंह ने मारू से कर मांगा और उसका डोला घेर लिया। सुलतान और बनजारे का डटकर युद्ध हुआ। बनजारा हार गया और उसने भी विजेता के साथ पगड़ी बदली।

इस नरवरगढ़ में मारू के यहां रहते-रहते सुलतान को छः वर्ष व्यतीत हो गये। 'निहालदे' के साथ किया हुआ करार पूरा हो गया। निहालदे के दूत सुलतान को खोजते हुए नरवरगढ़ पहुँचे। एक दिन वर्षा के समय वे दूत मारू के महल के नीचे खड़े थे और निहालदे के लोक-प्रसिद्ध परवानों (प्रेम-पत्रों) को पढ़ रहे थे। वस्तु-स्थिति जानकर मारू के स्त्री-सुलभ कोमल हृदय में चिर वियुक्ता निहालदे के प्रति दयाभाव जाग्रत हुआ और उसने तत्काल सुलतान को बुलाकर इन्द्रगढ़ जाने को कहा? साथ ही तीजों के करार की स्मृति करा दी। सुलतान अपनी प्रेयसी के तपदीप के प्रकाश मे मंजिल दर मंजिल तै करता हुआ इन्द्रगढ़ पहुँचा। निहालदे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चितारूढ़ हो गयी थी। सुलतान ने यथा समय पहुँचकर पद्मिनी निहालदे को चिता से बचा लिया और फिर वे दोनों सुखपूर्वक राज करते रहे।

उधर नरवरगढ़ से सुलतान के चले जाने पर महाराजा ढोल को मारवण के चरित्र पर संदेह उत्पन्न हुआ। उसने मारवण से आग्रह किया कि वह सुलतान को भात भरने के लिए बुलावे[2]। नारी की मर्यादा दाव पर थी। मारवण का निमन्त्रण मिलते ही सुलतान अपनी धर्म बहन के यहां भात भरने गया। यह भात जैसा वर्णन किया गया है, पौराणिक भात (नरसी भक्त के भात) से भी बढ़-चढ़ कर था। इस प्रकार सुलतान ने नारी-मर्यादा की रक्षा की।

इस लोकराग में लोक महाकाव्योपयोगी सभी तत्वों का बड़ी कुशलता के साथ निर्वाह हुआ है। 'कार्यशीलता' तो इस राग का प्राण बनी हुई है। समस्त कहानी आद्योपान्त संघर्षपूर्ण कार्यों का ही परिणाम है।

---

१. इस स्थान पर सुलतान में देवत्व की भावना का आरोप लोकवार्ताकार ने कर लिया है। २. इस स्थल पर नारी-परीक्षा की बात आई है, परन्तु शर्त का रूप संयत, मर्यादित और कोमल रहा है। इससे सुलतान और मारू के चरित्रों को उज्ज्वलता ही प्राप्त हुई है।

चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण से यह काव्य साहित्यिक महाकाव्यों की कोटि का है। सुलतान, निहालदे, मारवण, फूलकंवर, जानी चोर और बनजारा भीमसिंह आदि सभी चरित्रों का क्रमिक विकास हुआ है। नायक सुलतान का चरित्र प्रारम्भ की 'जलकलशतोडन' क्रिया से लेकर दानवबध आदि अद्भुत कार्यों की प्रणाली से ही विकसित हुआ है। सुलतान का चरित्र स्वर्ण सदृश है जो विपदानल मे तपकर समुज्ज्वल हुआ है। उसके चरित्र मे दया, दाक्षिण्य, क्षमा आदि मानवीय गुणों की व्याख्या बड़ी ईमानदारी के साथ लोक-कलाकार ने की है। प्रकृति ने सुलतान को गगा से पावनता, सूर्य से भास्वरता, हिमाद्रि शैलशृंग से उत्तुगता, धरा से सहनशीलता, कर्ण से दान-शीलता और कृष्ण से सुहृदयता उधार लेकर मानो निर्मित किया है।

'निहालदे' का चरित्र भी पर्याप्त मात्रा मे विकसित हुआ है। नारी-चरित्र के उत्तम गुणों का विकास वियोगावस्था में होता है। निहालदे के पावन प्रेम अनन्य लग्न, तपस्या और सतीत्व साधन का सुअवसर विप्रयुक्त स्थिति मे मिला है। उसके चौरासी प्रेमालेखो मे नारी-जीवन के सर्वपक्षों का सांगोपाग वर्णन हुआ है। पक्ति-पंक्ति मे नारी-हृदय की कोमलता एव कातरता झाँकती प्रतीत होती है। अत मे अपनी परीक्षा के समय गुप्त जी की यशोधरा की भाँति "आर्यपुत्र दे चुके प्रतीक्षा अब तो मेरी बारी है।" कहती हुई चितासीन हो जाती है। यह तो लोककलाकार की सुखांत प्रवृत्ति का परिणाम है कि सुलतान ने यथासमय उसे जीवित बचा लिया। फिर उसने महाकाव्य का नाम निहालदे रखकर नायिका के चरित्र की महानता का परिचय दिया है।[1] अन्य पात्रों के चरित्र भी इसी प्रकार बराबर विकसित हुए हैं।

कहानी में स्थान की एकता का निर्वाह नहीं हो पाया है। ऐसी शौर्य एवं प्रेमपूर्ण साहसिक कहानियों में स्थान की एकता का निर्वाह आवश्यक भी नहीं है और संभव भी नहीं है। साहस प्रदर्शन के लिए नायक को स्थानान्तर में जाना पड़ता है। परन्तु जहाँ का जो वर्णन आया है वह अपूर्व रोचकता लिए हुए है।

कथा का उत्स लोक-राग के लिए पूर्णतया उपयुक्त है। लोक-रागों की

---

१. हमें अपने तीन पाठों (वरजन्स) में से एक पाठ मे यह विश्वास प्रचलित मिला है कि एक बार राजा मघ की पत्नी को (निहालदे की माँ को) पार्वती जी ने आशीर्वाद दिया कि तेरी पुत्री बड़ी पतिव्रता होगी और यशवती होगी। पार्वती जी के वचनों के कारण 'निहालदे' ही कथा का नाम पड़ा है।

कथा (थीम) सदैव लोक-प्रचलित एवं लोकप्रिय होनी चाहिए। 'निहालदे' राग हरियाना प्रदेश का एक सर्वप्रिय किस्सा है जिसे यहाँ का रागी बड़ी शान के साथ गाता है और यहाँ की ग्रामीण जनता बड़े चाव व रुचि के साथ सुनती है। यह राग यों तो उत्तर-प्रदेश और राजस्थान में भी दूर-दूर तक प्रचलित है, परन्तु जो महत्व 'निहालदे राग' को हरियाना मे मिला है वह बड़ा विशिष्ट है। राजस्थान के प्रसिद्ध राग 'ढोलामारू' को हरियानी लोक-कलाकार ने बड़ी खूबी के साथ 'निहालदे' में अन्तर्हित कर अपने जातीय राग निहालदे की उच्चता प्रमाणित कर दी है। राजस्थानी राग ढोलामारू हरियानी राग निहालदे का एक प्रासंगिक कथा मात्र होकर आया है। परन्तु ऐसा करने से कथा-निर्वाह में एक बड़ी भारी त्रुटि आ गई प्रतीत होती है। लोकरागी नरवरगढ़ में सुलतान को ले जाकर एकदम नरवरगढ़ का ही हो गया है। उससे ऐसा अनुभव होता है, मानो पहिली कथा से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। फिर कहीं छः वर्ष के एक दीर्घकाल के उपरांत उस कथा को संपृक्त करता है। इस बीच, जहाँ सुलतान के चरित्र का उत्तरोत्तर विकास हुआ है, वहां निहालदे उर्मिला की भाँति प्रासाद के शुक-सारिकाओं से ही बोली-चाली है।

लोकरागी ने 'ढोलकँवर' का युगल[1] (जोड़ा) दिखाकर कुछ संदिग्धता अवश्य उत्पन्न की है, परन्तु समनामता से मारवण की परीक्षा का अच्छा अवसर मिला है। यह जानकर कि इस दानारि प्रतापी चौकीदार का नाम भी 'ढोलकँवर' है, मारवण उसका नाम बदलवाकर 'सुलतान' रखती है और उसे अपना भाई बना लेती है।

इस लोक महाकाव्य में लोकवार्ता के अन्य तत्व—संत-साधुओं की महिमा, पगड़ी बदल मार, नायक की परीक्षा, दानाबध, सतीत्व परीक्षण अथवा दिव्य प्रयोग, तीर्थ इत्यादि पर युद्ध आदि सभी मिलते हैं और यहाँ इन सबका बड़ा सुन्दर योग हुआ है।

यह लोक-राग इतना विशद है कि एक अच्छा नायक पूरे श्रावण मास गाकर ही इसे समाप्त कर सकता है। इसे पूरा लिपिबद्ध किया जाये तो 'ढोलामारू' की भाँति एक बृहद् ग्रन्थ का निर्माण हो जाये। परन्तु यह एक पृथक् खोज का विषय है। हम तो यहाँ 'राग निहालदे' के कुछ सरस अंश ही दे रहे हैं।

---

१. सुलतान का जन्म का नाम भी 'ढोलकँवर' है और नरवरगढ़ के महाराजा का नाम भी 'ढोलकँवर' है।

सुलतान केलागढ़ में राजा मघ के महिला-उद्यान में पहुँच जाता है ! मालन उसके इस व्यवहार पर रोष प्रकट करती है। सुलतान अपने क्षत्रियत्व की दुहाई देता है :—

बाग जनाना बेट्टी झूले राजा मघमान[1] की कंवर निहाल।
बेरा पट जा राजा मघमान नै तनै देगा सूली पर टांग।
हट कै बोला पोत्ता बैन का सुण री मालन मेरा एक जुआब।
मैं छतरी जन्म का चालू छतरापन की चाल।
छत्री के छतरापन चार।
तेगा बांधूं रण चढ़ूं ना जां पीठ दिखा।
सूभर[2] घोड़ी ना चढ़ूं परधन समझूं धूल समान।
पर तिरिया नै माता कहूं, बिना राजपूत की तै ब्याह कराऊं तीन तलाक॥

पर-पुरुष को देखकर 'निहालदे' भी बाग से भागती है। परन्तु हरी दूब में उसके बिछुए खो गये और गारा में पायजेब रह गई। वह ढूंढने लगती है। इस बीच, सुलतान उसके समीप पहुँच जाता है :—

आडी घोड़ा राजा नै दे दिया, सिर पर रख दी पचरंग ढाल।
घूंगट खोला लाल कमान से, हंस हंस बूझी कंवर नै बात।
कंवर ! बावल[3] हिनेंदो[4], के निर्धन तेरा बाप।
के तने ब्याह कर उठ गया चाकरी।
के व्यापा नहीं सब तन काम।

'निहालदे' का गाना

बेटी बोली मघरजपूत की सुन घोड़े के तू असवार।
नाबर बाबल मैं हिनेंदी, ना निर्धन मेरा बाप।
नामन्नै ब्याह के उठ गया चाकरी,
मेरे व्याप रहा सै सब तन काम।
थे[5] भौंरा मैं तिरी केतकी, तूं पुरख मैं तिरी नार।
एक बार आगा छोड़ दे, मैं मिल आऊं अपने मां बाप।
पोता बोला चकवे बैन[6] का सुन रंगभीनी राजकुंआर।
मैं रहूं पराया ओलंगी[7], आटा कहिए सेर उखाद।

---

१ केलागढ़ का राजा मघ है और मान उसका छोटा भाई है। २. गाभिन। ३ पिता। ४. तुच्छ। ५. थें, तू, तुम, आप। ६. राजा मैनपाल का पिता और सुलतान का पितामह। ७. नौकर।

मतना डूबे देखकै लभेस[1] नै, म्हारा तेरा ना निभाहो[2] ।
और कुंवर से बचना भर लियो, तेरा बाबल देगा ब्याह ।

× × ×

मर यो तेरा घोड़ा, जलयो तेरे कापडे, अमर रहो तेरे सब हथियार ।
मैं भूखी तेरे रूप की लाहे की गरजू हरगिज़ नाह ।

व्याह का गीत

दिया ढुंडेरा[3] केलागढ मे, नगर के ब्राह्मण लिए बुलाय ।
बेद पढें चौरी रचे मंत्र कहें सुधार ।
रतन जड़ा के खम धरे बेदी दई रचाय ।
मंत्र ते वसन्द्र[4] जगावते अपना कर्म रहे दरसाय ।
पहले फेरा दिया निहाल ने सोने के चकले कर दिये दान ।
दूजा फेरा दिया निहाल ने कुंजर करे राजा ने दान ।
तीजा फेरा दिया निहाल ने आधा दे दिया केलागढ का राज ।
आगे तै पाछे करे जूं धरा पीठ पर राजा ने हाथ ।
साथों फेरे दिये सुलतान ने राजा ने जोड़े दोन्नों हाथ ।
कूडा गेरन दासी दई, तेरे मन्द्रों[5] की पनहार ।
दावन[6] लाओ राजा आपने, जती सती का हुवा मिलाप ।

सुलतान की शिकार खेलते समय फूलकंवर के साथ कलह हो जाती है और फिर वह इन्द्रगढ़ को छोड़ देता है :—

पोता बोला चकवे बैन का, सुन रंगभीनी राजकुंवार ।
हेडा[7] खेलन मैं गया, तेरे फूलकंवर देवर के साथ ।
झिडी में बिगड़ी फूलकंवार से, मैंने अनजल की दे दी तीन तलाक ।
जल का लोटा धर दियो, म्हारी तेरी नेक भुकार ।

× × ×

बेटी बोली मघ रजपूत की, सुण साजन मेरा जवाब ।
जैथे चाले चाकरी, धण[8] ले चल अपने साथ ।
धूप पड़े जित होजा बादली, करतीं चाखूं तैने छांय ।
जित तेरा डेरा होगा चोका करूं शिताब ।

---

१. लिबास, भेष । २. निर्वाह । ३. मुनादी कराना । ४. अग्नि (विभावसु, वैश्वानर) । ५. मन्दिर, घर । ६. दामन, पल्ला । ७. शिकार । ८. स्त्री ।

करू रसोई सोध के, अंचले से ढोलूंगी ब्याल।
जै साजन तू सो जा, डेरे की रहजां चौकीदार।

× × ×

पोता बोला चकवे बैन का, सुन रंगभीनी राजकुवार।
गेलां राखें कांजर पेरने[1], गेला राखें चारण भाट।
मैं बच्चा रजपूत का, म्हारे रैकारे की गाल।
इब मेरा गैला छोड़ दे, प्यास्से की चाली जा सै जान।
कद् निकलूं इन्दरगढ़ के राज ते, जब करूंगा अन्न जलपान।

× × ×

बेटी बोली मघ रजपूत की, सुनले साजन मेरा जुआब।
जैथे चाले चाकरी, म्हारे कैलागढ में तू ले चाल।
मेरे भाई बजावें तेरो नौकरी, मेरी भावज रहें तेरी ताबेदार।
राज दिया मेरे पिता नै, उन गांवों पर करियो राज।
मेरी माता आदर तेरा करै, तेरे सिर पर फेरे हाथ।

× × ×

पोता बोला चकवा बैन का, सुन रगभीनी राजकुंवार।
सुसराडां के बसने नामर्दों का काम।
घोडे का दुवागा छोड़ दे, प्यासे की चली जा सै जान।
जित मेरा दाना पानी ले चले, रब ठाडे के अखत्यार।

× × ×

बेटी बोली मघ रजपूत की सुन साजन मेरा जवाब।
खेती करें घर रहें, सब से भले किसान।
चंगाले ले बाल्दा, खेती कर अर खांय।
चरखा ले दे रांगला, पीढी लाल गुलाल।
तकवा लेदे बीजल सारका, रेसम माल बटाय।
सूत हजारी कात दूँ, टाकूं टाक बिकाय।
कात बना दूँ थाने डोरिया, घोड़े का चाले दाना घास।

× × ×

पोता बोला चकवा बैन का सुन रंग भीनी राजकुंवार।
त्रिया काठा[2] खांयगे तीन जन, नाई, माली और कलाल।
काठा खाऊंगा तेग का जो म्हारा रूजगार।
घोड़े का दुवागा छोड़ दे, मेरी पिछली ले ले नेक जुहार।

× × ×

---

१. डोम आदि नीची जाति। २. कमाई।

बेटी बोली मध रजपूत की सुन मेरा राजा मेरा जवाब।
घोड़ों दूभर भादुवां, भैंसी दूभर जेठ।
रांडों दूभर रंडेपडा, विधवा दूभर पेट।
रांड लुगाई ऊजड खेडे, तख तख जांभों कोय।
जै चाले थे चाकरी, धण का कर दे दूजा भेस।

निहालदे ने तपस्विनी का वेष धारण कर लिया और सुलतान चला गया। वह नरवरगढ़ में सम्मनबुर्ज पर रहने लगा।

दाने के साथ युद्ध

दाना देखे ध्यान धर, बल भेंट नहीं पाई।
जब दाने ने मारी धर के ललकार।
बावन गज का ऊचा बना, छत्तीस गज का दिया विस्तार।
भेंट दैन तै रह गया ढोला हो गया निपट गंवार।
मैं बड जाऊंगा नरवरगढ़ में खा जाऊंगा कई हजार।
पोता बोला चकवे बैन का, सुन भई दाने मेरा जुआब।
क्यूं जाता है नरवरगढ मे, किसने दई तेरी अक्कल मार।
मैं आ रहा तेरी भेंट मे, कर ले जो कुछ तेरे अखत्यार
मलखाडे मे छत्री कूदता दाने नै मारी किलकार।
युद्ध होने लगा नरवरगढ में, आधी से ढल गई रात।
सूरज का बल सुलतान में, दाना दिया राजा ने ढाय।

एक दिन सूरत बावड़ी के स्नान पर बनजारा भूमसिंह मरवण के डोले को घेर लेता है और उससे अनुचित प्रस्ताव करता है :—

जब बोला बंजारा भीमसिंह सुन रंगभीनी राजकुंवार।
कै लिकड़ी धरती नै फोड़कै, कै किन घड़ दी सुघड़ सुनार।
झोंका लागेगा तेरे परवा पिछवा पवन का मुड़-तुड़ जा गोरा सा गात।
आजा चढ़ादूं घोड़े की पीठ पै, टांडे[1] बैठी हुकम बजाय।
सत्तर बंजारी टांडे में और सैं, सबकी कर दूंगा सरदार।
मूढे का दूंगा बैठणा, खाणे को दूंगा नागरपान।
अरसठ तीरथ हिन्दु के न्हाण के, सारे करा दूंगा स्नान।

× × ×

१. टांडा—छावनी, कैरेवां।

डोले में बोली बुध की मारवण, सुन बनजारे मेरा जवाब।
खूंटे गाडत तेरा दिन गया, बैल बांधते बीत रात।
पेट भरे तू बध्या बैल सा, के जाणे राणियां की सार।
मैं राणी हूं ढोल की, बहुत बुरा मेरा भाई सुलतान।
जै ब्यौरा हो जायेगा सुलतान नै, तन्नै नहीं देगा नरवर से जान।
दाने सरीके छोकरे तेरा क्या उनमान ॥

× × ×

जब बोला बंजारा भोंवसिंह, सुन रंगभीन्नी राजकुंवार।
मैंने काशी लूटी, काश्मीर; लूट लई गढ गुजरात।
भावलपुर के लूटे फूलड़े, टिमलीगढ़ के मारे सरदार।
इन्द्रगढ़ तोडा, कैलागढ के लूटे मध अरमान।
तुंगलगढ़ आया तोड़ के दोपहर लूटे बुध के बावन बजार।
ठोकर में तोड़ूं इस नरवरगढ़ ने, इस ढोला का क्या उनमान।
गिनगिन ढा दूँ किले के कांगरे, पकड़ मंगा लूं नर सुलतान।
हलुवा[1] बंजारे नै मत ना समझिये, कर ले लूं जब दूँ सून्हान।

× × ×

डोले में बाली बुध की मारवण, सुन बंजारे मेरा जुआब।
लंका का रामण मत बने, मेरे भाई नै राम अर लछमन जान।
मुथरावाला कंस मत बने, मेरे भाई नै गोकुलवाला किरसन जान।
कुंती के पडवा जैसा मत बने, मेरे भाई नै हिमालय जान।
पांचों पंडवे हिमालय गलगे, यूं गालेगा तुझे सुलतान।
गली गली में रुल जागा तेरा डांगरा घर-घर बिकजा कालर नून।
सत्तर बंजारी हांडे[2] तेरी मांगती मेरे नरवरगढ़ के समंध[3] बजार।
जिया चाहे तो डोले का धोरा[4] छोड़ दे मत भिरडां[5] के छाते डाले हाथ।

बंजारे और सुलतान का युद्ध हुआ। बंजारा हार गया और उसने सुलतान से पगड़ी बदली।

दूसरी ओर तपस्विनी निहालदे ने प्रेम की पीर और वेदना से भरे परवाने जो भीतर से सुलगते, हृदय से उछलते ज्वालामुखी की ज्वालजिह्वा समुदाय जैसे हैं अपने दूतों के द्वारा नरवरगढ़ में भेजे। परवानों की संख्या चौरासी है परन्तु हम यहाँ के केवल दो परवाने नमूने के तौर पर दे रहे हैं :—

---

१. दुर्बल, हल्का, हीन। २. घूमना। ३. बीच में। ४. समीपता। ५. ततैया।

१. बांचे परवाना बुधकी मारवण, लिख कै भेजै पतिभरता नार।
नगर सुरंगा[1] हवेलीयें, हेली[2] सुरंगी साहूकार,
धन सुरंगा धरम तै, न्यत[3] उठ आवै मांगणहार,
कुआ सुरंगा मीठे नीर का जिसपै आवैं नाजक पणिहार,
खेत सुरंगा चंगे धोरियां ऊंचे डौले डूंगे[4] क्यार,
बगड़[5] सुरंगा छोटे बालकें बहु सुरंगी बड़ परिवार,
बेटी सुरंगी अपणे बाप कै दिन तीज्यां के बड़ त्यौहार।
मैं नहीं सुरंगी कंवर निहालदे घर को नहीं मेरा भरतार।
तेरै पै हो तो भेजिए मुझ दुखिया का भरतार।
नहीं जल कै मरूंगी तरणी[6] तीज नै तेरे नरवरगढ पै चढ जा भार।

× × ×

२. बांचे परवाना बुध की मारवण, लिखकै भेजै कंवर निहाल
चिड़िया नै छाये आलणे बुगला नै छाये हरियल डाल।
हंसा नै समन्दर छालिए कुंजा नै छाये परबल ताल।
चंदा छाया काली बादली जोबण नै छाली कंवर निहाल।
और घणेरी मारू के लिखूं आज भरै समन्दर ज्यूं उठैं झाल।
जल कै मरूंगी तरणी तीज नै तेरै पै हो तो बालम नै घाल[7]।

मारवण वस्तुस्थिति जानकर सुलतान को इन्द्रगढ़ भेज देती है। उधर सुलतान के चले आने पर लोग चर्चा करते हैं और मारवण के चरित्र को लांछित करते हैं। मारवण भ्रातृ-संबध की दृढ़ता प्रमाणित करने के लिए इन्द्रगढ़ भात का निमंत्रण भेजती है :—

बुध की बोली मारवण सुणिये छतरी म्हारी बात।
जिस दिन गया था नरवरगढ़ छोड़ कै दिन तै होगी रात।
बाल्यम तै दावा बंध्या बुध बाबल[8] तै गया मिलाप।
तान्नै देसै नरवर की मेदनी[9] मेरे पै धरै सै मनसा पाप।
नरवरगढ़ में करिये ऊजली रख कै जइये बाहण की आब।
धन का घाटा सै नहीं आधा तपै सै मेरा राज।
और घणेरी के कहूं बोल्ली मारै मेरा सिरका ताज।
जल्दी आजा पट्टे धरम के ज्यब आवैगी बाल्यम के साथ।
देर घड़ी की मत करै आवण आली होरी सै बरात॥

× × ×

१. हवेलीए 'हवेली का बहुवचन। २. हवेली। ३. नित्यप्रति। ४. नीचे, झील। ५. आंगन ६. पवित्र, तारनेवाली। ७. भेजना, पहुंचाना। ८. पिता। ९. प्रजा।

पोता बोला चकवै बैन का कीचकगढ़ का था परिहार[1] ।
पहलां मिखले[2] भाई बेगचंद तेरे पीहर तै आ रहा परवार ।
दूजे मिखलें कमधज के फूल नै जानी[3] मिखले पगड़ी का यार ।
बणजारा मिखले भोमसिंह रबना मिखले साहूकार ।
गोधू मिखले बावला जोगी की माया अपरम्पार ।
बावन गढां के मिलन गढपति मनै मिखन की कर दे टाल ।
आखिर नै कहिए हूं तेरा औलंगी[4] नरवर के जाणै नर अर नार ॥

× × ×

पट्टे चढा था पोता बैन का बावन गढां के राजे लार[5] ।
राजी होगी बुध की मारवण मिणती का लें लिया थाल ।
झुकझुक मिणती कर रही पाणी पीवै थी बार उवार ।
चौवा चिस्म की उढादी चूंदड़ी नौलख पहरा दिया हार ।
बावन डिब्बे दे दिया न्यारी न्यारी किस्म के सिंगार ।
हीरे मोती दीने बहुत से बावन भरे सौन्या के थाल ।
बावन घोड़े दिये पाणीपते[6] और किस्म के अन्नत अपार ।
बावन करहे[7] दिये पुंगुल देस के ओच्छी गोडी लम्बी नाड़ ।
बावन हाथी दिये बगडोर के हौदे भरे थे पन्ने जुहार ।
बावन गाडडे कपडां के दे दिये कासन बर्तन बेशुमार ।
बावन लाल नौ नौ किरोड़ के छतरी की होंदी[8] जय जयकार ।

२. गूगा

संतवीर गूगा के चारित्रिक आख्यानों के बिना हरियाने के लोग-राग अवश्य ही अधूरे रह जायेंगे । गूगा की पूजा हरियाने की सभी जातियों में मिलती है । गूगा की समस्त कथा एक संदिग्ध आवरण में छिपी है । इसमें ऐतिहासिक तथा धार्मिक तत्वों का अनोखा सम्मिश्रण मिलता है । गूगा विषयक कथाओं का जो रूप उपलब्ध है वह एक सम्प्रदाय (Cult) के रूप में है । विशुद्ध धार्मिक भावना उसमें नहीं है । गूगा के उपासक उपास्य की न तो आध्यात्मिक अभिप्राय से पूजा करते हैं न वे मुक्ति तथा निर्वाण की याचना करते हैं और न वे भगवद्-दर्शन की अभिलाषा से उसके

१. सुलतान का गोत्र परिहार है । २. यह मिलने के लिए प्रयुक्त हुआ है । ३. जानी काम का चोर । ४. नौकर । ५. साथ । ६. दरयाई, पानी पर तैरने वाले । ७. ऊंट । ८. होती है ।

दरबार मे जाते हैं। उसकी समस्त मान्यता 'परचै' याचना तक है। भक्तों को विश्वास है कि गूगा के प्रसाद से संतान एवं धन-धान्य में वृद्धि होती है।

हरियाने की जनता गूगा को कई नामों से पुकारती है। कोई 'गुरु गूगा' कहते हैं तो कोई 'गूगा पीर' और 'जाहर पीर' के नाम से अपने इष्टदेव को स्मरण करते हैं। इसका एक नाम 'बागड़वाला' भी हरियाने मे प्रसिद्ध है जो इसकी जन्मभूमि[1] के आधार पर इसे मिला है। इन नामों मे से दो नाम 'जाहर पीर' और 'गुरु गूगा' विशेष व्याख्या चाहते हैं। लोकवार्ता विशारदों में इन नामो को लेकर बडा वितण्डा चला हुआ है। कई प्रकार की वैविध्यपूर्ण अटकलें विद्वानों ने लगाई हैं, परन्तु अभी भी यह खोज का विषय बना हुआ है।

सर्वप्रथम 'गूगा' शब्द को लेते हैं। कई विचार इस ओर व्यक्त किये गये हैं। एक मत, जो अधिक प्रचलित है, गूगा के जन्म-संबंधी कथा को आधार मानकर चला है। गोरखनाथ जी ने रानी बाछल को गूगल दी थी और आशीर्वाद दिया था कि तेरे घर एक ऐसा अवतारी पुत्र होगा जो घर-घर पूजा जायेगा। इसी 'गूगल' से उत्पन्न होने के कारण पुत्र का नाम गूगा पड़ा और गूगल < गूगआ < गूगा की प्रक्रिया में होता हुआ इस रूप मे आया है। ऐसे विश्वासो एवं मान्यताओं के आधार पर आज भी नाम रखे जाते हैं। परन्तु निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि गूगा नाम का क्या आधार होगा। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का सुझाव है कि मध्यकाल में जो गायों की रक्षा के लिये प्राण तक देते थे वे गोगा कहलाते थे और इस प्रकार वे गोग्रह (गोरक्षक) शब्द से (गौग्रह < गोग्गह < गोगअ < गोग्गा < गोगा) इसका संबंध स्थापित करते हैं।[2] इस स्थापना में गूगा के चारित्रिक गुणों की मान्यता दी गई है। गूगा ने फीरोजशाह (द्वितीय) के हाथ से असंख्य गौओं की रक्षा की थी यह इतिहास-प्रसिद्ध है। परन्तु इस प्रकार का नाम गूगा का प्रारंभिक नाम नहीं हो सकता। वह तो पश्चात् को मिला प्रतीत होता है। हरियाने में किसी हठी एवं उदण्डी बालक को माताएँ 'अरे गूग्गा रहणदे' कहकर निषेध करती हैं। गूगा के चरित्र मे भी अर्जुन की भांति 'न दैत्य न पलायनं' दो विशेषताएं थीं। परन्तु यह भी रूपकात्मक चारित्रिक व्याख्या ही

---

१. गूगा का जन्म ददरेरा नामक गांव में हुआ था जो इस समय बीकानेर जिले के परगाना राजगढ़ में है। बीकानेर राज्य को बागड़ कहा जाता है। बागड़ शब्द गुजराती भाषा के 'बगड़ा' से मिलता हुआ है और जिसका अर्थ जंगल होता है। २. भारतीय साहित्य' अंक एप्रिल १९५६ पृष्ठ ३२।

है जो उसे सहसा नहीं मिली होगी। अतः 'गूगा' शब्द का इतिहास अभी अनुसंधेय ही बना है।

गूगा ने अपने जीवन में अनेक दिव्यतापूर्ण कार्य किये थे। इन्हीं अलौकिक कृत्यों के कारण उसकी 'धोक' (पूजा) चली और 'जात लगने लगी। 'पीर' की उपाधि भी गूगा को ऐसे ही कारणों से मिली है। एक नौश्लोकी गुटका में जिसमें गूगा की कथा संक्षेप में वर्णित है, अंतिम चरण इस प्रकार आता है 'जाहर-पीर मरद अवतारी जगजीत पीरी पाई।' वास्तव मे दुष्ट संहारने से गूगा को पीरी प्राप्त हुई है। हमारे 'साके' में भी 'पीर' शब्द अवतार अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। गूगा को जब 'शाही हमले' की सूचना मिलती है तो वह त्रिलोकी नाथ के यहां अरज करता है और पूर्वयुगों की भांति 'वीरत्व' मांगता है।

> पहले पैरे बण्या पीर मैं परतपाल नां पाया।
> दूजे पैरे बण्या पीर मैं परसराम कुहवाया।
> तीजे पैरे बण्या पीर मैं जलमेघा कै भंवर जहार जलम ले आया।
> चारूं जुग में सम्बत करदे सरण तुम्हारी आया।

गूगा को हिन्दु और मुस्लमान सभी मानते हैं और पूजते हैं। मुस्लमान उसे 'गूगापीर' कहते हैं और हिन्दू 'गूगावीर' गायों की रक्षा करने के कारण एवं मुस्लमानों को हराने के कारण गूगा 'वीर पूजा' के अधिकारी हो गये हैं। 'पीर और वीर' शब्द का संबंध भी है। पीर शब्द वीर शब्द का चूलिका पैशाची रूप माना जाता है। अतः युद्ध विजेता गूगा वीर ही 'जंगजीत कर पीर' बन गया है।

'जाहर पीर' गूगा का एक विशिष्ट नाम है। इसे 'जाहिर पीर' भी कहा जाता है, जिसका अभिप्राय यह होता है वह पीर जो अपनी कला व करामात प्रकट (जाहिर) दिखा दे और जो अपने भक्तों को तत्काल परिचय दे। जाहरपीर के जागरण में भक्त पर जब देवता का आवेश हो जाता है तो वह भक्तों को परिचय देता है। अतः इसे जाहर (जाहिर) पीर कहते हैं। कई विद्वान इसे जहरपीर कहते हैं अर्थात् जहर (विष) का देवता। यह कथा है कि गूगा का सर्पों पर विशेष अधिकार है और उसके भक्त सर्पदंश से कभी पीड़ित नहीं होते। एक मत में जाहर का सम्बन्ध जुझार (लड़ाकू, यौद्धा) से जोड़कर योद्धावीर अर्थ किया गया है। अतः भक्ति क्षेत्र के मूलमंत्र "जाकी रही भावना जैसी, प्रभुमूरत तिन देखी तैसी" के आधार पर गूगा के भक्त अपने इष्टदेव में विविध गुणों का दर्शन कर उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।

गूगा की पूजा पंजाब, हरियाना, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में दूर-दूर तक प्रचलित है। हरियाना में उसके विषय में जो कथाएँ मिलती हैं उनका निष्कर्ष इस प्रकार है :—

१. गूगा चौहान राजपूत थे।

२. उनके पिता का नाम जेवरसिंह[1] था।

३. इनकी माता का नाम बाछलदे[2] था।

४. गढददरेरा (ददेरा) उनका जन्म-स्थान था जो बीकानेर राजान्तर्गत है और सिरसा से ५० मील दूर है।

५. मेड़ी गाँव में जो गूगा मैड़ी के नाम से विख्यात है उन्होंने भूमि समाधि ली थी। मैड़ी पर जालवृक्ष की महत्ता होती है। कथन प्रचलित है "गूगा सूत्याजाल तलै।"

६. इनके दो मौसेरे भाई थे जिनके नाम हैं अर्जन-सर्जन। उनकी माता का नाम काछल[3] था।

७. सम्पत्ति के लिए झगडा हुआ। ये दोनों भाई दिल्ली बादशाह से जाकर मिले और उसे बागड़ पर चढ़ा लाये। युद्ध हुआ।

८. युद्ध में मौसेरे भाई काम आये।

९. मौसेरे भाइयों की मृत्यु से माता बाछल रुष्ट हो गईं और उसने गूगा को धिक्कारा।

१०. माता के धिक्कारने से गूगा ने भू-समाधि ली।

११. लीला घोड़ा जो गूगा के साथ जन्मा था एक ही दिन समाधि ली।

---

१. टाड ने इनके पिता का नाम बछराज दिया है। महाकवि सूर्यमल ने इनके पिता का नाम राजा भीम दिया है परन्तु हरियाने की समस्त कहानियों में गूगा के पिता का नाम जेवरसिंह चौहान ही आया है।

२. महाकवि सूर्यमल ने गूगा की माता का नाम 'मति' दिया है। 'भारतीय साहित्य' पृष्ठ ६२.

३. बाछल गोरख जी की सेवा किया करती थी। फल के समय काछल जाकर फल ले आई। जब गोरखनाथ को इस प्रवंचना का ज्ञान हुआ तो उन्होंने श्राप दिया कि पुत्र होते ही काछल मर जायेगी और उसके पुत्र केवल १२ वर्ष तक ही जीवित रहेंगे।

१२. गूगा अर्धरात्रि के समय घोड़े पर चढ़ कर[1] अपनी पत्नी सिरियल से मिलने आता है।

१३. गूगा में सर्पदंशन को अच्छा करने की अद्भुत शक्ति है।

१४. हिन्दू-मुसलमान दोनों पूजते हैं।

१५. भाद्र पद कृष्ण ६ वीं इसकी पूजा का विशेष दिन है'

१६. गूगा के पांच साथी—लीला घोड़ा, नरसिंह पांडे, भज्जू चमार, रतन सिंह भंगी और वह स्वयं पंचपीर कहलाते हैं। किंवदन्ती है कि गूगल से ही इन पाँचों का जन्म हुआ था।

उपरोक्त पंक्तियों में गूगा की कथा की जो रूपरेखा दी गई है उसके आधार पर गूगा के जीवन में दो घटनाएँ पाठक का विशेष-ध्यान आकर्षित करती हैं। एक—गूगा के विवाह की तथा दूसरी, अरजन-सरजन और दिल्लीशाह के साथ युद्ध की। इन घटनाओं को आधार मानकर गूगा विषयक-प्रचलित रागों के साहित्यिक एवं आनुष्ठानिक दोनों रूप मिलते हैं। टेम्पल महोदय ने इस राग का साहित्यिक रूप अपने संग्रह "दि लीजेन्ड्स आव दि पंजाब" के प्रथम भाग मे पृष्ठ १२१ पर दिया है। इसका रूप स्वांग का है। पात्र प्रायः बिना किसी पूर्व परिचय के लाये गये हैं। प्रारम्भ में सरस्वती-स्तवन है :—

सारद माता, तू बड़ी। धरते तेरा ध्यान।
किरपा अपनी कीजिए। करो छंद का ग्यान।
करो छंद का ज्ञान, मात मेरी! मन इच्छा वर पाऊँ।
तू है, माता, बुध की दाता, चरनों सीस निवाऊँ।
करो बुद्ध परगाश! आन के निस दिन तुझे मनाऊँ।
कर हिरदे में बास, सांग गूगे का छन्द बनाऊँ।

फिर राजा जेवर और रानी बाछल की पुत्र कामना और पुरोहित रंगाचार द्वारा राजा को धैर्य देना आदि बातें आई हैं। फिर गूगा के विवाह की घटना का बड़ा रोमांचकारी वर्णन हुआ है। कामरूप प्रदेश के राजा संजा (संजय, सभा) ने अपनी पुत्री सिरियल का विवाह गूगा के साथ करने से

---

१. एक गीत में यह आया है कि हरियाली तीज के दिन बाछल ने सिरियल से हठ की और शृंगार का कारण ज्ञात किया। गूगा के दर्शन किये परन्तु उस दिन से गूगा रात्रि में नहीं आता। गीत पृष्ठ २२०-२१ (प्रस्तुत निबन्ध)

इनकार कर दिया। गूगा को क्षोभ हुआ। उसने जंगल में जाकर बांसुरी बजाई। सब पशु-पक्षी विमोहित हो गये। बासुकि ने तातिग (तक्षक) को गूगा की सेवा में नियुक्त किया। तातिग ब्राह्मण वेष बनाकर कामरूप देश में गया और सिरियल की पहचान की। फिर सांप बनकर उसे डस लिया। सिरियल का शव जब महल में ले जाया गया तो तातिग सपेरा बनकर वहां जा पहुँचा। उसने राजा के सामने शर्त रखी यदि सिरियल जीवित हो गई तो वह उसकी शादी गूगा से कर देगा। तातिग ने नीम की टहनी लेकर मंत्र पढ़ते हुए राजकुमारी का विष उतार दिया। राजा संझा ने सिरियल का विवाह गूगा के साथ कर दिया।

गूगा की कथा का दूसरा रूप आनुष्ठानिक तत्वों से युक्त है। इसी घटना के पश्चात् उसे जगजीत कर पीरी मिली है। गूगा के मौसेरे भाई—अरजन-सरजन ने दिल्ली के बादशाह को बागड़ पर आक्रमण के लिए प्रोत्साहित किया। घमासान युद्ध हुआ। गूगा ने विजय प्राप्त की और अरजन-सरजन दोनों भाईयों के सिर काट लिये। इस घटना से व्यथित होकर माता बाछल ने गूगा को धिक्कारा और कदापि मुँह न दिखाने की आज्ञा दी। गूगा उल्टे पैरों लौट गया और पृथ्वी माता से भू-गर्भ समाधि की प्रार्थना की। धरा से एक अमानुषी वाणी उद्गारित हुई कि हे वीर! भू-गर्भ समाधि तो केवल मुसलमान को ही मिल सकती है, हिन्दु को नहीं। यदि तू ऐसा चाहता है तो पहिले मुसलमान बने तदुपरांत गूगा ने अजमेर जाकर 'रतनहाजी से कलमा सीखा और स्लाम में दीक्षा ली। फिर मैड़ी[1] (गूगा मैड़ी) में आकर भू लीन हो गया। यही मैड़ी गूगा का तीर्थ स्थान है। हरियाने में गूगा मैड़ी लालवृक्ष के नीचे बनाई जाती है।

कई विद्वानों का मत है कि जिस स्थान पर गूगा ने भू-समाधि ली थी वहां पर पीछे मढ़ी (समाधि) बनी और फिर उस समाधि के आस-पास बसे हुए गांव को ही 'गूगा मैड़ी' कहने लगे। उनका तर्क यह है कि गूगा की पूजा के लिए मंदिर नहीं बनाये जाते, केवल मढ़ियां है जिनमें कोई प्रतिमा आदि नहीं होती। मन्दौर (जोधपुर) में एक मन्दिर में अवश्य उनकी पाषाण-मूर्ति मिली है जिसमे गूगा अपने लीले[2] के ऊपर सवार है और हाथ में माला लिए है।

---

१. मैड़ी अथवा जिसे गूगा—मैड़ी नाम से पुकारते हैं बीकानेर जिले का परगना नौहर का एक गाँव है जो नौहर से पूर्व में आठ-नौ कोस के अन्तर पर है। २. 'लीले घोड़े के असवार गूगा' की चित्रलिपि टाड राजस्थान के पृष्ठ ४४८ पर दी हुई है।

इस दूसरी घटना से संबंधित एक साका हमें खोज में मिला है जिसमें गूगा के पराक्रमपूर्ण चरित्र का चित्रण हुआ है। इस साका को हम सम्पूर्ण दे रहे हैं। साके में गूगा के पांचों वीरों—लीला, भज्जू, नरसिंह, बाला, फूलसिंह—की शूरता का भी रोमांचकारी वर्णन हुआ है। गूगा की पूजा के साथ इनकी भी धोक लगती है और तभी जाहर की यात्रा सफल समझी जाती है।

गूगा की पूजा और कथा से संबधित एक तथ्य पर और ध्यान जाता है कि इस पूजा मे सामाजिक व्यवस्था के प्रति एक क्रांति की भावना है। इस पचपीरी जमात में उच्च-नीच सभी वर्णों के पुरुष हैं। ब्राह्मण भी है भंगी भी, राजपूत भी हैं और चमार भी। सबकी धोक लगाई जाती है। सबकी प्रसन्नता के लिए यथा विधि नाना प्रकार की सामग्री दी जाती है किसी को बकरा भेंट किया जाता है तो किसी को कढ़ाई आदि।

गूगा का साका, जैसा हरियाने में गाया जाता है, नीचे दिया गया है :—

बोलै सरियल के कहै सुण सासु मेरी बात,
सुख सोई रंग महल में मन्नै आयें आल जंजाल,
बिन्दी टूटी भौं[1] पड़ी मेरी बलखागी थी नाथ,
सौपने में हलचल होई तेरा डिग्या कंवर का राज।

× × ×

बोलै बाछल के कहै सुणै सरियल मेरी बात,
क्या सुपनें की बात से सोपना आल जंजाल,
सौपने में राजा बणै जागत भये कंगाल,
सौपने में लाजा बणै कलमज[2] ले ले हाथ,
म्हारे सिर पै गोरखनाथ से हम उरै[3] करेंगे राज।
पौ पाटी पगड़ा[4] भया मुल्लां नै दीनी बांग,
मरद संवारैं पागड़ी तिरिया संवारैं मांग,
बोलै सरियल के कहै सुण सासू मेरी बात,
धूं धू धूंसा बाजता गढ दादर के मांह,
ऊंचे चढ़ कै तूं देखले हो रही रूमे श्याम।

× × ×

बोलै बाछल के कहै सुण सरियल मेरी बात,
बेला भरले दूध का बीच मिला ले खांड,

1. भूमि। 2. कलम। 3. इधर। 4. सवेरा।

महलां तै सरियल चालदी चल्याबै भौंरा[1] मांह,
गूंठा मोड़ जगांवदी ले सासड़ की ओट,
तम तो उठो पीर निदावणां तनै के सोवण की नींद,
तेरै सरियाणै जम नूं खड़े जाणों तोरण उभ्या[2] बींद।

× × ×

बोलै सरियल के कहै सुण सासू मेरी बात,
क्यूं जलमें एकता क्यूं जण खोया नूर,
जलमें क्यूंणा दो जणे एक दाता एक सूर,
सूरा हो रण में लड़ै दाता करदा दान,
तेरा जामदड़ा क्यूं ना मर्‌या हम क्या नै लिहाज[3] मरां।

× × ×

बोलै बाछल के कहै सुण सरियल मेरी बात,
मरियो कलम दलिड़ी मरियो दातासूर,
मेरा जाया क्यूं मरै जिस पै ये दल आगे रै लूम[4]
और ये दल आये लूम जती संभा की जाई।

× × ×

बोलै सरियल के कहै सुण सासू मेरी बात,
भगमे कर ल्यो कापड़े करो जोगी का भेष,
दलां बीच कै लीकड़ो थम नै सब करैं आदेस,
सुनोरी मेरी सासड़ प्यारी जी।
बोलै सरियल के कहै सुण सास मेरी बात,
पांचू ल्यादे कापड़े ल्या पांचू हथियार,
लील्ला ल्यादे पीड़के[5] मेरे दादसरे की सांग[6],
पति कै बदलै मैं लडूं मन्नै कौण कहेगा नार,
सुणो री मेरी सासड प्यारी जी।

× × ×

बेटी राज्जे संक्ष की मेरा सूत्या सेर जगा,
जती सिंक्ता की जाई जी।

× × ×

जस्त[1] जोड़ गूगा कहै सुणा तरलोखी के नाथ,
पहली अरजी मेरी सुणो मेरा पहलै करो निसाफ,
पहलै करो निसाफ तेरी गद्दी को सीस नुवाया,
अरजन सुरजन नै किया बाद जा दिल्ली मे बादसाह भकाया,
बाईस लाख मर्द घोड़ा चल ददरेरे मे आया,
पहिले पैरै बण्या पीर मैं परत-पानाँ पाया,
दूजे पैरै बण्या पीर मैं परस राम कुहाया,
तीजे पैरै बण्या पीर मैं जलमेघा कै भंवर पै जहार जलम ले जाया,
चारूं जुग में साबत करदे सरण तुम्हारी आया।

× × ×

सिरी ठाकर बैठा तकत पै गूगा लिया बुलाया,
सिर पै हाथ ठरा दिया दीना पीर बणाय,
सुधी और चार जुगां की ल्याया,
दिया तैंतीस करोड़ देवता,
माया का पार ना पाया,
अरजन सुरजन का लिखूं काल,
गूगा हाथ तेरे से आया।

× × ×

लगे कलेजे बोल जगै जिब साध सनेही,
गिरवर कंप्ये हाल महल तै चिटकी रेही,
टूटे पिलंग के साल पीर की फूली देही,
खबर हुई नौ नाथ[2] में अंस्सी जागे चार,
दल में कहत[3] पड़ गई चौक्की कट गई चार,
जती गोरख का चेला।

× × ×

कहां गई वा नार खड़ी देरी थी ताना,
ल्या पांचू हथियार सहीदी[4] बदलू बाना,
मेरी माता नै बेग बलादे मनै करै दूध बकसीस,

१. दस्त, हाथ। २. साथी। ३. कमी। ४. असली, वास्तविक शहीदी (बलिपथ का भेष)।

दुधसुत कै मेले हुए मनै पीली धारबत्तीस,
जती सिक्षा की जाई ।

× × ×

बोलै सरियल के कहै सुण सासू मेरी बात
मत मारी मोरी गई सूत्या दिया जगाय,
खूंटी तै खांडा पड़्या चल्लै पै चढी कमान,
जागतड़ा रोसन हुया उठा मनाकै तंत[1],
रण चंढत बैरी मुंडंत मेरे जागे पी बलवंत,
सुणो मेरी सासूसड़ प्यारी ।

× × ×

चंदन चौकी बिछा दई जलझारी धरी हजूर,
परी असर[2] तै ऊतरी सत्तर उतरी हूर,
परियां नै मटणा मल्या हूर चाढावै नूर,
सरियल करती आरता जिसके दल के लगे जहूर,
जती सिंक्षा की जाई जी ।

× × ×

बोलै बाछल के कहै सुण लीली के जाम,
तूं गूगा दो जणे तीजा ना माई जाया बीर,
जै आवै गूगे नै मरवाया कै मनै मतए दिखइये मुंह,
जै ल्यावै जितवाय कै तेरे दूधां में परवालूंगी पांय,
सुणो लीली के जाये ।

× × ×

बोलै घोड़ा के कहै सुण माता मेरी बात,
एक मेरी टांग टूट जा मैं फिरूं दलां कै मांह,
दूजी टांग मेरी टूटजा पून्ना[3] में पून सवा,
तीजी टांग मेरी टूटजा मैं खेल्लूं गिगन कै मांह,
चौथी टांग मेरी टूट जा फेरए कुछ न पार बसा,
सुणो मेरी माता प्यारी ।

× × ×

जहार चला रणखेत पौल कै ला कै जंदा[4],
गूगा मारै महल की धोंक नगर नै द्रे परकम्बा[5],

---

१. भगवान को मनाकर । २. आसमान । ३. पवन । ४. ताला । ५. परिक्रमा ।

गूगे कै बहुत ही चढग्या रूप गाम नै होग्या चभा[1],
रूप पै परी हुई कुर्बान रूप जरणे खिल रह्या चंदा,
सिर पै सुन्हैरी ताज हाथ सुलतानी झंडा,
तीन लोक के नाथ राख मेरी परतंग्या[2]।

× × ×

पोता उम्मरखान[3] का धरके देखै ध्यान,
गढ दादर के राजपूत जणो उमग्या आवै भान,
बोलै गूगा के कहै सुण रै बाखरखान[4],
बाहर चढ़ी थारी मैं मानली मेरे पै थोही बहोत इसान,
सुणो दादर के लोगो।

× × ×

बोलै फतहसिंह के कहै सुण गूगा मेरी बात,
गढ दादर की परस[5] मैं तरैतै बदली पाग,
चाबी खाई बाकली सैयां[6] नै गाये गीत,
तू मरज्या रणखेत में मैं जीऊंगा कै काल,
मैं चलूं थुमारै साथ जत्ती गोरख का चेला।
बोलै गूगा के कहै सुण दादा मेरी बात,
मेरै जलै अंगीठियां तेरै सिलगैं घा,
थम जाश्रो घर आपणे तनै किसा दूध का चा,
आऊंगा रणजीत के तनै दोहली[7] दूंगा आ,
सुणो मेरे घर के पंडत।

× × ×

बोलै भज्जू के कहै सुण गूगा मेरी बात,
चाबी खाई बाकली सैयां नै गाये गीत,
तूं मर जा रणखेत में मैं जीऊंगा कै काल,
मैं चलूं थुमारै साथ जती गोरख का चेला।

× × ×

बोलै गूगा के कहै सुण बाला मेरी बात,
कितनै[8] भेल्लीले लई किसनै न्योंदण[9] जा,
मेरा तो वाका[10] ह्युया तूं उल्लटा घर नै जा,

---

१. चंपा। २. प्रतिज्ञा। ३. गूगा का बाबा। ४. दूसरा गोत है, बाखरखान। ५. चौपाल। ६. सखियां। ७. दक्षिणा। ८. कहां, को। ९. निमन्त्रण। १०. घटना।

आऊंगा रणजीत के तेरै भात भरूंगा आ,
सुणो मेरे बाला भाणजा ।

× × ×

बोलै बाला के कहे सुण मामा मेरी बात,
गाम गढे की राड़ में बोहत मरद मरजां,
उन्नै बड़ाई के मिलै जो लिये काल नै खा,
मैं मरज्यां बादसाह की फौज में नाम उमर होजा,
जती गोरख के चेला ।

× × ×

बोलै बादसाह के कहै सुण जोड़ो[1] मेरी बात
ये पांच नफ़र[2] कौण सैं अनको रस्ता दियो बात,
कदे दल में गैके ना मरज्यां,
सुणो रे मेरे दल के जोड़ो ।

वार्ता·· ....

उनै दलां के बीच खड़्या कूकै हलकारा,
के सोवै तम्बुआं बीच बागड़ दल चढग्या सारा,
तेरा लेले दिल्ली तकत कह्यारै मान हमारा,
सुनो दिल्ली का सूबा ।

वार्ता.... ....

बल्लू लीनी चुरास्सी न्याम की मन रह्या गरभा[3],
लीनी एड लगांवदा चला जाहर पै जा,
गूगा पान सै दे दे रोकदी तेरी मिलणी दूं करवा,
जती गोरख का चेला ।

× × ×

मिल्णी दूयूं करवा तनै बदसाह दूयूं हरवा,
सुणो गोरख का चेला ।

× × ×

चेला गोरखनाथ का माथा लिया चढाय,
नौ कुकड़ी[4] का कोरड़ा गूगोलीनै हाथ उठाय,
सड़सड़ मारै कोरड़े बल्लू बाखट[5] ज्यूं बरड़ाय,

१. अरजन, सरजन । २. आदमी । ३. गर्व । ४. लड़ । ५. मृगशावक ।

आच्छे आच्छे राख ले खोट्टे ले बदलाय,
सुणो आस्ती का सूबा।

× × ×

बोल्लै बल्लू के कहै सुण गूगा मेरी बात,
तूं मेरा माइ अर बाप सै मैं तेरी काली गाय,
मदत करो नै गुलाम पै मैं तेरी लडूं फौज के मांह,
तनै बादसाह मरवादूयूं जती गोरख का चेला।

× × ×

मैं बालक निदान कहीं लड़ जाणू लाला,
कदेन देखी राड़ कदे न रण बाह्या भाल्ला,
मेरै हाथ कगण सिर सेहरा गल फूलन की माला,
इब का जंग जिता तुहिं मेरा माल्यख ताला।

× × ×

याद पुरष रिद सिद्ध के धणी सत गुरु गोरखनाथ,
उत्तराखड से ऊतरी जोगी की जमात।
छै दरशण बारह पंथ थे आगे जहार के पास,
चौसठ जोगनी बावन बीर सब खप्पर ले रह्ये हाथ,
लारा[1] दिया बहीर[2] गुरु गोरख तेरी माया।

× × ×

चढ़ियां सेस महेस पीर चढ़े खाज्जों वाले[3],
चढ़गे दाना सेर[4], मीरा साब[5] आस्सीवाले,
चढगी देवी माय खोवकडिया[6] नगरकोटवाले,
लारा किया बहीर जती गोरख का गेला।

× × ×

बोल्लै गूगा के कहै सुण बाला मेरी बात,
दल उमगे दरियायजूं अणी जोड़ असुवार[7],
चोट छतर पै कीजिए तेरा होगा पहलड़ा वार,
जती गोरख का चेला।

× × ×

१. कतार। २. बाहर। ३. अजमेर के ख्वाजा। ४. हिसारवाला 'दानासेर'। ५. हांसी का मीरा। ६. अरदली। ७. प्रवीण अश्वारोही।

आऊंगा रणजीत के तेरै भात भरूंगा आ,
सुणो मेरे बाला भाणजा।

× × ×

बोलै बाला के कहे सुण मामा मेरी बात,
गाम गढै की राड मे बोहत मरद मरजां,
उन्नै बड़ाई के मिलै जो लिये काल नै खा,
मैं मरज्यां बादसाह की फौज में नाम उमर होजा,
जती गोरख के चेला।

× × ×

बोलै बादसाह के कहै सुण जोडो[1] मेरी बात
ये पांच नफर[2] कौण सैं अनको रस्ता दियो बात,
कदे दल मे गैके ना मरज्यां,
सुणो रे मेरे दल के जोडो।

वार्ता..........................

उनै दलां कै बीच खड्या कूकै हलकारा,
के सोवै तम्बुआं बीच बागड़ दल चढग्या सारा,
तेरा लेले दिल्ली तकत कहारै मान हमारा,
सुनो दिल्ली का सूबा।

वार्ता..........................

बल्लू लीनी चुरास्सी ग्याम की मन रह्या गरभा[3],
लीनी एड लगांवदा चला जाहर पै जा,
गूगा पान सै दे दे रोकड़ी तेरी मिलणी दूं करवा,
जत्री गोरख का चेला।

× × ×

मिल्णी दूयूं करवा तनै बदसाह दूयूं हरवा,
सुणो गोरख का चेला।

× × ×

चेला गोरखनाथ का माथा लिया चढाय,
नौ कुकड़ी[4] का कोरड़ा गूगोलीनै हाथ उठाय,
सड़सड़ मारै कोरड़े बल्लू बाछट[5] ज्यूं बरड़ाय,

---

१. अरजन, सरजन। २. आदमी। ३. गर्व। ४. लड़। ५. मृगशावक।

आच्छे आच्छे राख ले खोट्टे ले बदलाय,
सुणो आस्ती का सूबा ।

× × ×

बोल्लै बल्लू कै कहै सुण गूगा मेरी बात,
तूं मेरा माइ अर बाप सै मैं तेरी काली गाय,
मदत करो नै गुलाम पै मैं तेरी लड़ूं फौज के मांह,
तनै बादसाह मरवाद्यूं जती गोरख का चेला ।

× × ×

मैं बालक निदान कहीं लड़ जाणूं लाला,
कदेन देखी राड़ कदे न रण बाह्या भाल्ला,
मेरै हाथ कंगण सिर सेहरा गल फूलन की माला,
इब का जंग जिता तुहिं मेरा माल्यख ताला ।

× × ×

याद पुरष रिद सिद्ध के धणी सत गुरु गोरखनाथ,
उत्तराखड से ऊतरी जोगी की जमात ।
छै दरशण बारह पंथ थे आगे जहार के पास,
चौसठ जोगनी बावन बीर सब खप्पर ले रह्ये हाथ,
लारा[1] दिया बहीर[2] गुरु गोरख तेरी माया ।

× × ×

चढ़ियां सेस महेस पीर चढे खाज्जों वाले[3],
चढ़गे दाना सेर[4], मीरा साब[5] आस्सीवाले,
चढगी देवी माय लोवकडिया[6] नगरकोटवाले,
लारा किया बहीर जती गोरख का गेला ।

× × ×

बोल्लै गूगा के कहै सुण बाला मेरी बात,
दल उमगे दरियायजूं अणी जोड़ असुवार[7],
चोट छतर पै कीजिए तेरा होगा पहलड़ा वार,
जती गोरख का चेला ।

× × ×

---

१. कतार । २. बाहर । ३. अजमेर के ख्वाजा । ४. हिसारवाला 'दानासेर' । ५. हांसी का मीरा । ६. अरदली । ७. प्रवीण अश्वारोही ।

बालै करियां बल्ल[1] मरद नै तेग उठाई,
चाबक जडे तुरंग उडै जणु झाज हवाई,
कूद पड़्या दल बीच जलां जु पाट्टी काई,
जा मार्‌या सुलतान तेग मस्तक में बाही।

× × ×

इकला दल बाला लड़ै दिहरी धरैन कोय,
कोय बदला ले सुलतान का मेरे दलां मे होय।

× × ×

अरजन उठ्या हबके झुक् के करी सलाम,
नौ कांठी दल मारवाड़ मे बाल्ला सै सरनाम,
इसके सिर का एक सै भ्याणी मे चेत्तूभान,
भ्याणी मे चेत्तूभान सुणो दिल्ली का सूबा।

× × ×

चेत्तू भील[2] भियाणी का धणी जाट्टू चेत्तू भान,
एकला दल बाला लड़ै मेरा मार लियूण सुलतान,
सिर बाल्ले का ल्याय दे तेरा भुल्लूं नहीं इसान।
सुणो भ्याणी[3] का सूबा।

× × ×

चढियां चेत्तूभान म्यान तै सुन्मुख ध्याया,
मोहै[4] दिन्नी ढाल तबल घोड़ा चिटकाया,[5]
रतिनै[6] मानी कोण[7] हंक्या बाल्ले पै आया,
आबै कैसी बीजली बहगी एकूं सात,
महियूयर[8] झडझड़ भौ पड़े मुठिए रहगे हाथ,
दोनुआं की टूट गई तरवार ध्यान पनमेसर सेत्ती।

× × ×

वार्ता...............................

बाला आवंत देख जबी गूगा सुणसाये,
परोपत साह के दल मे बाला पाग बदलके आये,
वो सैयद[9] का बादसाह में अगडीर[10] चौहाण,

× × ×

---

१. त्यौरी चढ़ाना। २. 'भील'—'पान्ना' का रहनेवाला। ३. भिवानी शहर। ४. बगल मे। ५. भगाया। ६. तनिक भी। ७. हिचकी। ८. तलवार। ९. इन्द्रप्रस्थ, दिल्ली। १०. श्रेष्ठ।

थम जाओ घर आपणे म्हारे बोहत चलेंगे घमसाणा,
सुणो मेरी बाला भाणजा ।

× × ×

बोलै गूगा, के कहै सुण बाला मेरी बात,
बाला बिसमिला[1] कै तेग ठा कर साईं सै ध्यान,
अब सै बखत हमाम[2] का सुन्मख दे द्यो जान,
सुणो मेरा बाला भाणजा ।

× × ×

बाला करियें बल पीरा का लिया सहारा,
बुगद[3] उठाली हाथ किया लोतन[4] पै आरा,
हौद्यां[5] की हद काट के जा मारे अदली[6] पठान,
उस बादसाह को फौज में बाल्ले घाल दिए घमसान,
जती गोरख का चेला ।

× × ×

वार्ता.................. ....

भय लागे सहदजबार[7] चढ़े अमेद इमान्ना,
तुरकी कुटो कुमेद[8] सीस धर लिया निसान्ना,
खंजर मार्या खैंच कर्याजिन सिर का दान्ना,
थों खंजर बाला मवै[9] बाला करस्या काल,
ध्यान परमेसर सेती लाया ।

× × ×

बोला बाला पांजा पीरी, लागजा दुनियां धोक्कण जात मेरी तो डोरी तेरी ।

× × ×

गूगा मारे हाँक सुणो दादर के पाली,
चार खपा दिये पीर ओट इब लड़ूं थुमारी,
धनक धनक धानु[10] भजै लीले की पकड़ो बाग,
मगरी[11] थापी लगा दई पाली दीन्है भगत बनाय,
जती गोरख का चेला ।

---

१. आरम्भ, फिर से । २. लड़ने का । ३. तलवार । ४. लाश । ५. हाथी । ६. अदली नाम का । ७. सहद और जवार दिल्ली के दो मुसलमान । ८. लक्ष्य । ६. सहा । १०. झंडा । ११. कमर पर शाबाशी की थाप ।

वार्ता.................................

चार ओड़ चौकी चढी अरजन चढ़े ललकार,
भतीजा चढ्या इतबार खाँ ले नंगी तलवार,
थम तो चेत्तो जाहर औलिया तेरे पुंहचे दावेदार,
जती गोरख का चेला ।

× × ×

थम मेरे मौसेर मेरे पै क्यू कोप आये,
ले बद स्याई दल जाणु मिलणो को आये,
मारूंगा छोडूं नहीं मेरै ओड़ पास लख भार,
हुकम नहीं गरु पीर का थम पहलां करल्यो बार ।

× × ×

ले नौटंकी[1] हाथ गोड़[2] अरजन ललकारे,
मस्तक सांधे तीर तंग ताजी[3] कैमारे,
नहीं लहू की बूंद दूध के छुटे फुवारे,
दूजी सही सलेम तैं[4] कर्‌या सुरजन नै वार,
पाँचं तीरं सौ गन भखे दीने गिगन चढा,
गोरख नै काटे करदतै गूगा लिया बचाय,
ध्यान परमेसर सेत्ती ।

× × ×

बली भरे अहंकार म्यान तैं सीत्या खांडा,
जोड़ें दिये गिरड़ाय नाकूं[5] ढलग्या टांडा,[6]
जोड़े चीर चकन के सज रहे थारे दांदी[7] चमके मेख,
मेरा तो चारा नहीं तै ऊप्पर ले के लेख,
सत सरवर में जल नहीं गये छोड अस्तान,[8]
जिस जल के प्यासे फिरो वे पुंहचे मुल्तान ।
ध्यान पनमेसर सेत्ती ।

वार्ता.................................

लीला उबीणा[9] देख जबी बदसारोस्याएं,
हस्ती दीने हूल सबी उमराव दुकाए,
गूगा अपणै दल में एकला जन करी निसानादेए ।

---

१. हथियार विशेष । २. अरजन-सरजन का गोत है । ३. गूगे का घोड़ा । ४. सलाम करके । ५. दिमाग ठंडा हो गया । ६. गुमान ७. दाँतों में । ८. स्थान । ९. खाली ।

बादसा बागड़ बालू रेत कहां की माया पावै,
उल्टी करले बाग रह्यां नै क्यूं कटवा वै,
मारूंगा छोडूं नहीं मेरे ओड़े पास लखभार,
हुकम नहीं मनै गरु पीर का थम पहले करल्यो वार,
सुणो दिल्ली का सूवा ।

× × ×

मुस्लमान अल्ला कहे हिन्दु कहें भगवान,
तैं दिल्ली रोसन करी मेरा दीना तकत बिठाय,
लज्जा रखियो तकत की थो गूगा रहूया गरबाय ।

× × ×

ले नौटंकी हाथ फेर बद्साह ललकारे,
पटका पेची काट कंवर की उडी कटारी,
जौ भर रहगी खाल दाव राखै गिरधारी,
गोरख नै काटे करत्तै यो गूगा लिया बचाय,
बुक्का तोड़ दीं पठाण की सब बिचल गये हुमवार,
देख बद्स्याह की सुरतनै लरज गये चौहान,
स्यर में मारी तीन कवान,
ध्यान पनमेसर सेत्ती ।

वार्ता..................................

बुगली ढाव में खांडा पखालै खांडे नै क्याण करै सै,
आंवत जांवत माता बूझै बटेहू रण की बात सुणा देओ ।
उड़ती देखी मनै चील कांमली,
पड़दी री देखी मनै गुलाल जी,
रण कारी झूज्या जल का प्यारा,
टुक भर नीर पिला द्योजी,
पाणी रे मांगे तनै दूध पिला द्यूं,
पंखां तैं ढोलूं ब्याल जी,
गूगा हार्या तेरे जोड़े जीत्त,
हार घरां नै आया जी,
सतकार सतजुग का पहरा,
झूठी रे बात मत बोलोजी,

दोन्नु री माता मनै तेरे जोड़े मारे,
सीस धरे हान्नै[1] मांहि जी,
बुरी करी रे गूगा तू ओडै जइयो,
गोदी तो घाले तनै घाए जी,
बारा साल का माता लिखै दूसोट्टा,
लिख दरवाजे पै लाया जी।

× × ×

बीरा जिसकी जुग में रोसनी सब जपो उसी का नाम,
करल्यो सुबह श्याम की बंदगी सब सपूरण होजां काम,
मात पिता गरु आपणा भजो धणी का नाम,
पीरां का साक्का गाइये भरी सभा के मांह,
ध्यान पनमेसर सेत्ती।

३. किस्सा राव किशन गोपाल

यह राग एक ऐतिहासिक लोक-राग है। ऐतिहासिक कहने से यह अभिप्राय है कि इस लोक-राग मे इतिहास की एक वास्तविक घटना का वर्णन हुआ है। यह घटना इतिहास के उस युग की बात है जो अभी चल रहा है, जिसकी स्मृतियां अभी तक जनता के हृत्पटल पर अंकित हैं और जिसके प्रमाण के लिए इतिहास की पुस्तकों के साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है।

राव किशन गोपाल भारतमाता के मस्तक पर लगे परतंत्रता के कलंक को मिटाने वाला सर्वाग्रणी अहीर वीर था जिसके नेतृत्व में मेरठ में १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम की रणभेरी बजी थी। अपने दल के ८५ वीरों के प्रति किये अपमान एवं दन्ड विधान से उनकी चिरसुप्त विद्रोह भावना को विस्फोट का अवसर मिला और वे प्रतिहिंसा के लिये समद्युत हो गये। उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि के द्वारा मेरठ की जनता एवं भारतीय सेना को संघटित किया और १० मई १८५७ को ७२ अंगरेज अफसरों का बध कर डाला। एक उच्च सैनिक पदाधिकारी अंगरेज बाटकिन घटनास्थल पर ही मार दिया गया और टिमले साहब जो एक नेत्रहीन था और साधारणतया काणा साहब के नाम से प्रसिद्ध था छुपकर बच निकला। इस प्रकार मेरठ में स्वतंत्रता-दीप जलाकर विद्रोह की वह ज्योति दिल्ली पहुँची और फिर इसके स्फुलिंग समस्त भारत में विकीर्ण हो गये।

---

१. काठी के आगे।

दिल्ली में स्वातन्त्र्य ज्योतिस्तम्भ स्थापित करके राव किशनगोपाल अपनी जन्म-भूमि रिवाड़ी की ओर बढ़ा और मेवात के मोर्चे पर करनल फोर्ड को हराया। रेवाड़ी पहुँचकर अपने भाई राव राजा तुलाराम से मिला और भविष्य के लिए युद्ध की योजनाएं बनाईं। तत्पश्चात् उनका संघर्ष जनरल टिमले के साथ नारनौल के निकट नसीबपुर में हुआ। घोर युद्ध हुआ जिसमें राव किशन गोपाल ने अपनी तलवार के प्रहार से हाथी काट दिया और जनरल टिमले को भी मार दिया।

इस लघुकाय लोक-राग में भारतीय प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की आदि घटनाओं का सजीव चित्रण हुआ है जिसे यहां की जनता झूमझूमकर गाती है। लेखक को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि उसने इस लोक-राग को उस वृद्ध जोगी से लिखा है जिसके पितामह नसीबपुर के युद्ध में स्वयं सम्मिलित हुए थे।

यह राग भी अन्य सभी लोक-रागों की भांति स्तुति पाठ से प्रारंभ होता है :—

सुर बिन मिलै न सुरसुती, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
जल बिन हंसा उड़ चलै, अन बिन तजै प्रान॥
सुर तो देगी सुरसती, गुर तो देंगे ज्ञान।
जल तो देगा इन्द जी, अन देगा भगवान्॥

मेरठ में २२ सौ रजवाड़े एकत्रित थे। वाटकिन साहब और टिमले साहब आदि बहत्तर बड़े-बड़े आफिसर बैठे थे। धर्म में अंगरेजों का हस्तक्षेप देखकर नवाब हांसी ने प्रतिरोध किया। फलस्वरूप उसे प्राणदण्ड मिला :—

सुमरूं साहब आपखा हरमाया तेरी।
मेरठ का दरबार में भरपूर कचैरी॥
बाइस रजवाडां का रजोदंड[1] जुड़बैठा केहरी॥
मुल्की जंगलाट[2] नै बिच टोपी गेरी॥
सुणियो हिन्दु मुस्लमान इक अर्जी मेरी।
मालक तै उतस्या एक दीन[3] क्यूं दोयबगेरी[4]॥
हिन्दू गंगा न्हावै करै दान है अकल अंधेरी।
मुस्लमान मक्का चलै मालक का बैरी॥
धर्म दो दीनां का करो एक मैं इकरंग फेरी।
हिन्दु तोड़ो गऊ का कारतूस है अरजी मेरी॥

१. राजदण्ड तात्पर्य राजा लोग। २. लार्ड का अपभ्रंश लाट। ३. धर्म। ४. द्विविधता।

मुस्ल तोड़ो सूर का कारतूस बिच टोपी गेरी ।
जहां हिन्दू बैट्टा मुस्लमान काया पड़गी बहरी ।
जुल्म कस्या अंगरेज नै क्या इक रंग फेरी ॥
मस्तक लें कलमा का मेट्टणिया नाहीं ।
हांसी के नवाब नै धर गल्ल सुणाई ॥
तू सुणिये हिन्द के बादसाह अंगरेज इलाही ।
आके हिन्दस्थान मे बदी बुरी उठाई ॥
तेरा सिर काट्टे दल जोड़ कै कोई भूप सिपाही ।
सुण कै जिब अंगरेज कै अगनी लग जाई ॥
यो गदबद[1] गदबदकरै कौन दो सूली[2] लाई ।
मियां पकल्लिया जल्लाद नै कोई बोल्ला नाहीं ॥

अब राव किशन गोपाल को रोष आया । उसने अंगरेज नीति की निन्दा की । वही दण्ड विधान हुआ । विद्रोह का ज्वालामुखी भभक उठा :—

बोला किसन गोपाल राव कर[3] दोनूं जोड़ ।
सुणिये हिन्द के बादशाह अंगरेज अमोड ॥
तू जाता रहा जमीन तै आया तेरा ओड़[4] ।
बिना गुनाह सरदार नै दी सूली तोड़ ॥
सुणकै जब अंगरेज कै झल उठी कठोर ।
यो गदबद गदबद करै कौण दो सूली तोड़ ॥
हुक्म दिया था हिन्द के बादसाह कर अपणा जोर ।

रोष प्रकम्पित होकर राव किशन गोपाल ने कहा :—

कहता किशन गोपालराव धर गल्ल सुणाई ।
सुणिये हिन्द के बादसाह अंगरेज इलाई ॥
तैं आकै हिन्दस्तान बदी बुरी उठाई ।
घंटा तोड़ी नखलऊ नवाबी ढाई ॥
भरत खंड में भरत पर मार कर दिया दिखाई ।
कल दिल्ली का पकड़्या बादसाह जह[5] का बेरा बेरा[6] नाई ॥
आज तेरा भन्डा फरकै दीन पै बड़ा सुथरा[7] स्याई[8] ।
चमड़ा भर जमीं लई थी कलकत्ता मांई[9] ॥

---

१. गदबद अर्थात् आज्ञोल्लंघन बकबक । २. फांसी । ३. हाथ । ४. अंत, समाप्ति । ५. जिसका । ६. ब्यौरा । ७. सुन्दर । ८. था । ९. मध्य ।

चमड़ा भर जमीं लै कै लिया किला रचाई ।
ना कोए मिलै तेरा दीन में राम दुहाई[1] ॥

सैयद कालेखां ने बींच बिचाव किया और विचार के लिए कुछ समय की माँग की :—

कालेखां सय्यद खड़ा रहा अकल लड़ाई ।
सुणिये हिन्द के बादशाह अंगरेज इलाई ॥
योः बेट्टा जीवाराम का है बोदा[2] नाहीं ।
यैं[3] का रेवाड़ी राज है बैठक ठुकराई ।
कहिए भतीजा तुलाराम रेवाड़ी मां ही ।
अलोर[4] दिल्ली नारनौल हीरवाल[5] बताई ॥
छत्त एक[6] बसै से मुलक एक कुछ बोदा नाहीं ।
हम नै आठ दिनां छुट्टी मिलै जावां घर ताईं ॥
हम दिनां आठ मे आमिलां मेरठ के मांही ।
थारी इक बिल्लायत बसवायदां दिल्ली के मांही ।
हम मुखतैं तोडा[7] कारतूस द्यां[8] दीन बधाई ॥

आठ दिन का अवकाश दे दिया गया । भारतीय सरदारो ने संघटन की योजना बनाई और दरबार किया :—

राव ने ठाय नमक[9] की कांकरी लोटा में डारी ।
जै मैं थमने पीठ द्यूं बीच किशन मुरारी ॥
समंदकां[10] उठ्टा पठान दिदारी ।
हाथ धरा कुरान पै बिच मक्का डारी ॥
राव जी जै मैं थम नै दगा द्यूं दोजग[11] निजधारी ॥
जंगबहादर झाजरी[12] बनगे करारी ।
एका हुया हिन्दू मुस्लमान का मेरठ दरबारी ॥

अब संगठित होकर विद्रोह आरम्भ किया और स्थानीय अंगरेज अधिकारियों को असिधार पर उतार दिया :—

---

१. सौगंध के लिये कहा जाता है । २. अशक्त, निर्बल । ३. इसका । ४. अलवर (अब राजस्थान मे) ५. अहीरवाल (अहीर भूमि) ६. इकछत्र, जनाकीर्ण । ७. तोडेंगे (भविष्यत्काल) ८. देंगे । ६. लोटा-नून भारतीय परम्परा में विश्वास का प्रतीक है । १०. इसका नाम समदखां था । ११. दोजख, नरक । १२. झज्जर का नवाब ।

हाथ जोड़ मटकन[1] कहैं जवाब करारा।
तू रेवाड़ी का राव जी धन म्हारा प्यारा ॥
राव जी इब कै हेलै[2] बक्स[3] दे जीव हमारा।
हम ना तुड़वावै कारतूस कहण हमारा।
चौथाई दिल्ली करो राज, वण भाई म्हारा ॥
उन बी किशन गोपाल नै सूंत्या दुधारा।
मारै मटकण लाट कै धड़ तै सिर न्यारा ॥
बाजण लागी मिसरी[4] तरवार कटारा।
उल्टा हट हट कटै साहब सांग्यौं[5] का मारा ॥
रंग बिरंग धरथरी[6] कस्कों[7] की बाड़ा।
जिनका धड़ परतै सिरनूं पडे झड़ पड़ै अनारा ॥
कोठी में मारा साहब लोग इखत्तर सारा।
एक काणा[8] गया भाग दे निजर इसारा ॥
गंगा की नाली बड़ गया देक फटकारा।
गंगा की धरै ध्यान रस जीव हमारा ॥

राव कृष्ण गोपाल मेरठ से दिल्ली आया और फिर झज्जर के नवाब से भेंट लेकर रेवाड़ी पहुँचा। वहां युद्ध की तैयारी की और नसीबपुर का इतिहास-प्रसिद्ध मोर्चा जीता। इस मोर्चे पर फिर भगोड़ा जनरल टिमले मिला और उसकी अच्छी खबर ली :—

कहता किसन गोपाल राव धर गल्ल सुनाई।
चाल्लो ढोसी[9] म्हारा नै सोमोती आई ॥
यो ढोसी कान्हाण सै कतल लड़ाई।
जहं नै प्यारा घर लगै घर अपणै जाई ॥
जह नै प्यारा किशनगोपाल राव लो तेग उठाई।
मरदां खातर जंग बण्या ना लड़ै लुगाई ॥
खप जाओगे रणखेत में है इचरज नाहीं।
करो चढ़ाई जंग जनमी[10] बारबार जन्मेगी नाहीं ॥

---

१. वाटकिन सीनियर अंगरेज आफिसर। २. इस बार। ३. क्षमा करदे। ४. राव कृष्ण गोपाल की तलवार का नाम। ५. शस्त्र विशेष। ६. धरती, भूमि ७. शव, लाशों की बाड़ (समूह) लग गई। ८. नेत्र विहीन टिमले साहब। ९. नारनौल के समीप एक पहाड़। १०. जन्म प्रदात्री माता।

करनैले[1] साहब · फरनैल[2] नै धर बिगल बजाई ।
बिगल दई थी कतल ल्हस्कर के मांही ॥
मेरी रामपरा[3] की बणी सांग छड बणी कलाई ।
साढ़े सात सेर की मिसरी[4] राव नै संगवाई[5] ॥
हौदा पै करनैल पै धर सुन्मुख[6] पाई ।
सीस टूट नीचे पड़्या धड़ हौदा मांही ।
हात्थी घोड़ा साहब लोग नै कजली बणवाला ।
हात्थी छूट्या था चिंघाड़ कै दल पाट्टे न्यारा ॥
उनबी किसन गोपाल नै दिये बाग इसारा ।
हात्थी के सौंई[7] घोड़ा दे दिया दे कै किलकारा ॥
इब कित जागा लानत का मारा ।
साढे सात सेर की मिसरी झोक्या दुधारा ॥
हात्थी के गेरै सूंड पै, सूड तड़ पै न्यारा ।
जैसे बोटा[8] स्याल[9] का कारीगर पाड़्या ॥
हात्थी खड्या चिंघाड़ै दल में ना चाल्ले चारा ।
दूजो गेरै साहब लोग पै धड़तै सिर न्यारा ॥

ऐसे घोर युद्ध में स्वतंत्रता के पुजारियों ने वह शौर्य दिखाया कि अंगरेज सेना का धैर्य ध्वस्त हो गया । स्वयं टिमले साहब भाग खड़े हुए और नसीबपुर का जोहड़ में दुर्योधन सदृश शरण ली, परन्तु राव कृष्ण गोपाल के प्रलयंकर प्रहार स वहां भी उस दुष्ट का बचाव न हो सका :—

टोपी साहब लोग की देगई दिखाई ।
रावनै गैलहीं घोड़ा दे दिया नसीपर ताईं[10] ॥
काणा[11] मड्या जंग तै चल्या भाग कुल लादी स्याईं ।
बिण मार्यां छोडूं नहीं मन्नै राम दुहाई ॥
साहब उल्टा फिरकै देखता हूंणी[12] चल आई ।
धरकै ठेका मारता जोहड़ के माहीं ॥

१, २. कर्नल और जनरल । ३. राव तुलाराम की राजधानी, यह स्थान रेवाड़ी से एक मील पश्चिम में है । आजकल राव वीरेन्द्रसिंह जी वहां के स्वामी हैं । ४. राव कृष्ण गोपाल की तलवार का नाम । ५. अहण की । ६. सीधी गई । ७. सम्मुख । ८. शाखा । ९. स्यालवृक्ष (सुन्दर उपमा दी गई) १०. और । ११. टिमले साहब । १२. भवितव्यता : मृत्यु ।

राव नै गैलहीं[1] घोड़ा दे दिया जोहड़ के माहीं।
साहब गोत्ता खाके देखता दिया सीस उड़ाई ।।

टिमले साहब को यम का अतिथि बनाकर राव वापिस रणक्षेत्र में पहुँचा और अपने साथियों को युद्ध-धर्म का उपदेश दिया :—

बोला किसन गोपाल राव भाई रामलाल[2]।
बोदा[3] नै मत मारिये है जीव जंजाल ।।
बोदा लड़ै चून कै कारनै करैं निमक हलाल ।
तकलो[4] टोपीवान नै जिन बैठे लाल ।।
मेरा जन मारा पातक कटै कटै जीव जंजाल ।
रोवैं विलायत्त मैंम लोग मांचै कौलाट ।।

अंत में राव ने अपने पक्ष के वीरों को प्रोत्साहित किया :—

तम सिर की सांग बणालो छाती की ढाल।
हिया करलो बज्जर का देह करो दिवाल[5]।
आज झगड़ा मंडग्या दीन पै चौदा[6] की साल ।।

× × ×

इस प्रकार के अनेक वीर-रागों को सारंगी की सरस तान के साथ हरियाने के जोगी गाते आये हैं। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि आधुनिकता के प्रभाव से यह अमूल्य निधि समाप्त होती जा रही है। जहां पहले सारगी की मधुर मादक तान थी वहां अब फिल्मी गीतों का आकर्षण है। ऐसे रागों का भविष्य अंधकारमय है। अतः समय रहते इस अनमोल निधि की रक्षा कर लेना आवश्यक है।

इ· हरियानी लोक-गीतों में साहित्यिक तत्व

लोक-गीत अनिश्चित तिथि की देन है। इनकी प्रवाहिता घर के भीतर और बाहर सदैव से रही है। प्रकृति-पुत्री शकुन्तला की सखियों ने इन्हें गाया, सीता की सहेलियों के पिक-कंठों से इनकी मधुरिमा प्रसरित हुई। चित्तौड़ की पद्मिनी के वीर चरित को इन्होंने संवारा और चन्द्रावल के सतीत्व की कथा इनका अंग बनी। इसी दीर्घ परंपरा से ये गीत आज की कुलबधू के कण्ठहार बने हैं। उसने भी सभी मागलिक अवसरों पर, झूले पर, हुलियारे के साथ,

---

१. साथ ही। २ राव का लघु भ्राता। ३. निर्बल। ४. देखलो, छांट लो। ५. दीवार, भीत। ६. संवत् १९१४ में युद्ध हुआ था।

पनघट पर, तीर्थयात्रा के समय, लावनी करते, खेत बढ़ाते, अनाज कूटते, दही मथते और चाकी पीसते, प्रभाती आदि अनेक रूप मे इन्हें गाया और गुनगुनाया है। पुरुष ने भी होली खेलते, चरसा लेते, पानी बलाते, कोल्हू चलाते, वर्षा की झड़ी का आनन्द लेते, मेले-ठेले में घूमते इन्हें गाया है। याचकों ने अपनी ढपणी की ताल पर इतिहास, वैराग्य और प्रेम के गाने गाये। दर्जी ने वस्त्र सीते, लुहार ने धोंकनी पर बैठे-बैठे और धोबी ने जलाशय के घाट पर 'छिओ छीं' की प्रतिध्वनि में अपना स्वर जोड़ा। बुनके ने अपने करघे के साथ अपनी ध्वनि मिलाई। तेली ने बिना आर चुभाये या बिना पुचकडी दिये अपने थके पशुओं को प्रोत्साहित किया। सड़क कूटने वालो ने गाते-गाते कुटाई की। मजूरों ने अपने भार को राग अलापकर हल्का किया। गाड़ीवान् ने गाड़ी के पहिये की 'चूं-चू' की ध्वनि में अपनी ध्वनि मिलाई। ग्वालियों ने गायें चराते समय कृष्ण की वशी का अभाव पूरा किया। रागियों ने अथवा गाथा-गायकों ने भी अपनी सारंगी पर देश व समाज के अलिखित इतिहास को गाया है। इस प्रकार लोक समाज के समस्त उद्यम व व्यवसाय सगीतालय बन गये। लोक जीवन फूल सा हल्का हो गया। कहने का तात्पर्य यह है कि उतने बड़े समाज के मनोरंजन का कार्य अतीतकाल से इन गीतों ने किया है।

आज इस थाती को जब साहित्यिक कसौटी पर परखा जाता है तो काव्य कलापारखियों के कान खड़े हो जाते हैं। वे लोक-साहित्य का नाममात्र सुनते ही नाक-भौं चढ़ाने लगते हैं। परंतु यदि एक उदार दृष्टिकोण से विषय की परख की जाये तो निरुश न होना पड़ेगा बल्कि उनकी यह धारणा कि गीतों में उच्च एवं गंभीर भावों का लाना केवल नागरिकों का तथा प्रतिभा संपन्न सुशिक्षित समुदाय का ही काम है, ग्रामीण लोग भला उन्हें क्या जानें निराकार जान पड़ेगी। सूक्ष्म अवलोकन यह बतलाता है कि इन सीधे-सादे लोक-गीतों में जिनमें संस्कारिक कविता की तरह शब्दाडम्बर और पद-पद पर अनुप्रास आदि अलंकारों की बहुलता नहीं है, कविता का अपूर्व सागर लहरा रहा है। इन लोक-गीतों के कवि न तारों भरे आकाश के कवि हैं; न उन्हें नक्षत्रों से मौन-निमंत्रण मिलता है और न सागर की लहरों से उन्हें कोई पुकार सुनाई पड़ती है। उनकी प्रतिभा तो अहरह के जीवन का गान करने में ही सफल हुई है।

लोक-गीतों के चूड़ांत विद्वान पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लोक-गीतों की मीमांसा का सार देते हुए एक स्थान पर बड़ी सटीक बात कही है 'इनमें रस है, अलकार नहीं, लय है छंद नहीं, माधुर्य है लालित्य नहीं।' वास्तव

में रस ही लोक-गीतो का प्राण है। ये गीत जिगर की उपज है जो हृदय की वाणी मे मुखरित हुए हैं। यदि इन्हें हृदय का शब्दमय चित्र कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। ये तो हृदय की शहनाइयां हैं जो भावना के द्वार पर बजता हैं। फिर भला इनमे नीरसता के लिए स्थान कहां? इन गीतों में साहित्य में उपलब्ध प्रायः सभी रस मिल जायेंगे। काव्य-क्षेत्र का ख्यातिप्राप्त रस करुण लोक-गीतों में अपनी समस्त प्राजलता के साथ विद्यमान है। रसराज शृंगार के दोनों पक्षों का—सयोग और वियोग का—बड़ा सरस वर्णन इनमे आया है। वीर और हास्य की चर्चा इनका बराबर विषय बनी है। वृद्ध-वृद्धाओं के और साधु-सता के लोक-गीत शांत रस की शीतल छाया में चल रहे हैं। अन्य रसों के उदाहरण भी खोजे जा सकते हैं।

जैसा हम ऊपर कह आये हैं लोक-गीतों में अलंकार प्रदर्शन के प्रति आग्रह नहीं है। परतु उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेषादि अनेक अलकार स्वतः आ गये हैं। इन गीतो मे उपमा अलकार बड़े अनूठेपन को लेकर आया है। इसकी विशेषता यह है कि इसके उपमान सर्वत्र लाक से बटोरे हुए हैं। कही भी कृत्रिमता नहीं आ पाई है। जहां तक सरसता एवं मधुरता का सबंध है वह तो इनमे इस प्रकार व्याप्त है जैसे तिलों में तेल अथवा दूध मे मक्खन। परतु सर्वोपरि विशेषता जो इन्हें इतर साहित्य के ऊपर उठा देती है वह है इनकी प्रभावोत्पादकता एव स्वाभाविकता। लोक-गीत आद्योपांत स्वाभाविकता से ओत-प्रोत होते हैं। इनमें केवल आश्चर्य तत्व को जाग्रत करने वाले ऊहात्मक कृत्रिम वर्णन नही मिलते। इनमें एक अनुभव भरा होता है जो पाठक एवं श्रोता पर अपना सहज प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहता। दिन प्रतिदिन घर की मुंडेर पर बैठकर कांव-कांव करने वाले कौआ से किसी दुःखिता बाला का सदेश भिजवाना बड़ा स्वाभाविक है:—

उड़ जारे कागा ले जा रे तागा जांदा तो जइये मेरा बाप कै।

× × ×

भुरट भुआरूं रे कागा डस डस रोऊं रोऊं रे नब्बा तेरा जीवनै॥

अर्थात्—ऐ भाई कौआ मेरे तागा (धागा और तार) को ले जाकर मेरे पिता को पहुँचा दीजिए कि मैं इस बागड़ देश में भुरट घास को बुहारती हूँ और रोती हूँ। कौआ की इसी संदेश-वाहकता के आश्रय पर लोक में एक विश्वास प्रचलित है कि कौआ के लगातार बोलने से किसी अतिथि के आगमन की आशा होती है। फिर अतिथि की सूचना लाने वाले को ही संदेशवाहक बनाना एक सस्ता एवं स्वाभाविक उपाय भी है।

हरियानी गीतों में वंध्या के मनोभावों का स्वाभाविक चित्रण भी हुआ है। कोख सूनी होने से अथवा एक पुत्ररत्न के अभाव में वध्या को क्या कुछ नहीं सहना पड़ता, उसे घोर मानसिक वेदना अनुभव होती है। संतान के बिना उसका समाज में आदर नहीं होता। सब उसे दुर्भग समझते हैं। इसी बात का वर्णन एक गीत में हुआ :—

रहो रहो बांझडली दूर रहियो,
तेरी ए तेरी लावण से म्हारे फलझड़ै।
रहो रहो तूंबड़ली गरब मत बोल,
हम हां ए हम भाई भतीजां आगली।
भाई ए भतीजा तेरी भाए सपूती,
तेरे ए तेरे हिवड़ै बांझल दौं बलै।

× × ×

चलो म्हारा राजीड़ा जी सहरां मैं चाली,
जे कोई जो जे कोई बालक पकड़ै आंगली जी।
बोली ए धण मूरख गंवार।
बिन जायां कैसे पकड़ै आंगली जी।
लीप्या पोत्या बांझडली कै सोभै,
ना कोई जी ना कोई बालक खेलैं आंगणै जी।

बांझ के हृदय की बात को वह स्वयं ही जानती है। 'बांझल हिवड़ै दौंबलैं' अर्थात् वंध्या के हृदय में दावानल धधकती है बड़ी ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

ईर्ष्या एक मनोविकार है; परतु 'सौतियाडाह' अत्यंत स्वाभाविक है। जिस प्राणनाथ के ऊपर स्त्री का सृष्टि-चक्र चलता है यदि उस पर किसी अन्य का अधिकार हो जाये तो मन मे कालुष्य का आना स्वाभाविक ही है। हरियानी कुलवधू तो प्राण देकर भी अपनी सौक नहीं सहेगी :—

अरजै व्याह्वैगा सौक दूसरी तै उसमे बड़ जांगी।
तन्नै तौ भरतार समझा सैरांडा कर जांगी॥

अर्थात् मैं मरकर और भूतली बनकर सौक में प्रवेश कर जाऊंगी और उसे मार डालूगी। बात बड़ी ही सजीव और स्वाभाविक है।

हरियानी लोक-गीतों में सत्यता एव स्वाभाविकता तो कूट-कूटकर भरी हुई है। बालक की निरीहता एव गो के भोलेपन से युक्त ये गीत निश्छल हृदय की निश्छल कहानिया हैं।

क. अलंकार विधान

संस्कारी काव्य में शब्दाडम्बर एव अलंकारों की बहुलता होती है, परतु ये हरियानी लोक-गीत इस दोष से सर्वदा अछूते हैं। यहाँ चमत्कारी कविता का मानदड —'भूषन बिनु न विराजई कविता बनिता, मित्त' है। वहाँ ये गीत हृदय से निकले सीधे-सादे कथन हैं जिनमे भाव या अर्थ की प्रधानता है। अलंकार भी हरियानी लोक-गीतो में आये हैं, परतु उनकी सख्या बहुत थोड़ी है और उनमे संयम के लिये विशेष स्थान है। इनकी एक विशेषता यह भी है कि ये अनायास स्वतः आ गये हैं प्रयत्नपूर्वक लाने की चेष्टा कहीं भी नही की गई है।

अलकारो में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि साहश्यमूलक अलंकार ही हरियानी लोकगीतों मे प्रायः अधिक देखने मे आते हैं। इनमें भी उपमा की प्रधानता है। इसमें प्रयुक्त होने वाले उपमान सर्वत्र ग्राम के आस पास से लिये गये हैं जिनमें ग्रामीण वातावरण छलछलाया होता है। कोई क्लिष्ट कल्पना नहीं की जाती और न काव्यपरंपरा प्रयुक्त उपमानों को यहाँ घसीटा जाता है। आज तक कवियों ने मुख का उपमान कमल, चन्द्रमा आदि को रखा है, होठ की सदृशता में बिंब' को लिया गया है। कामिनी के प्रतनु की उपमा कनकयष्टि से दी गई है; परंतु इस लोक मे सभी उपमान दिन प्रति दिन की देखी-भाली वस्तुएँ हैं जिनसे कथन में चित्रात्मकता आ जाती है और भाव को हृदयगम करने मे सरलता होती है। कुछ उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देंगे।

एक सखी अपनी दूसरी सखी के प्रियतम की छवि का वर्णन करती हुई कह रही है :—

> **ब्हाण तेरा बंदड़ा हे चंदा के हुणियार[1]**
> **सखी तेरा बंदड़ा हे चंदा के हुणियार।**
> **म्हौ[2] बटवासा आंख डली सी बत्तीसी खिलखिल जाय।**

इस गीत में मुख का उपमान बटुआ और आंख का उपमान "डली" रखा गया है, जो ग्राम सुलभ उपमान हैं। जिन लोगों ने कपड़े का बना डोरदार बटुआ देखा है वे अवश्य इस बात की प्रशंसा करेंगे कि मुख के लिए कमल इतना उपयुक्त उपमान नहीं है जितना कि 'बटुआ'। मुख की बटुआ के साथ जो सदृशयता है भला वह कमल पुष्प के साथ कहां? इसी प्रकार डली के सदृश उभरवा आंख प्रशंसनीय है।

---

१. सदृश। २. मुख।

एक दूसरे स्थान पर नायिका के सुन्दर पतले होठ की चर्चा इस प्रकार आई है :—"पीपल पत्ती जैसे होट तेरे ओनार, हरे राम!" निश्चय ही पीपल के सद्यजात कोमल पत्ते विद्रुम एव बिंब की अपेक्षा अधर के अधिक समीप हैं।

एक अन्य गीत में प्रिय के रूप को 'दीपशिखा' के समान बताया गया है :—

रूप इसा जिसे दीवे की लो सै, दीवे की लो सै।
ना मेरा और किसे में मोह सै, किसे में मोह सै॥

एक गीत मे सींकिया पहलवान पति का वर्णन आया है :—

"राजा पतले रे राजा पतले रे जैसे पतंग में डोर।"

पतंग की डोर के तुल्य बतलाकर नायिका ने पति के पतले और लम्बे रूप का जो चित्र खींचा है वह अनुपम है।

इसी प्रकार अन्य अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनमें मधुर सादृश्य की सहायता से सुन्दर दृश्य अंकित किये गये हैं और समूचा गीत ही एक सुन्दर चित्र के समान जान पड़ता है।

हरियानी लोक-गीतों मे जैसे बड़ी अनूठी उपमाओं का प्रयोग किया गया है वैसे ही मनोहर रूपकों का। ये दृश्य के रूप विधान में अपूर्व आकर्षण उत्पन्न कर देते हैं। कहीं-कहीं इन रूपकों के द्वारा बड़े गभीर पक्षों का दिग्दर्शन कराया गया है। एक मल्होर गीत में जीवन रूपी वृक्ष की बड़ी मधुर, मर्मस्पर्शी एवं दार्शनिक व्याख्या हुई है :—

पत्ता टूट्या डाल से वो तो ले गई पवन उडाय।
अब के बिछुड़े कद मिलैं वो तो दूर पड़ै सैं जाय।
मेरी बावली मल्होर॥

यहा पत्ते में प्राण का, डाल मे जगत का और पवन में मृत्यु का आरोप हुआ है।

प्रस्तुत मे अप्रस्तुत की संभावनामूलक उत्प्रेक्षा अलंकार भी इन गीतों में मिल जाता है। एक विवाह-गीत मे वर के उठने मे सूर्य के उदय का, वर की गति मे हाथी की झूमती चाल का और बन्ने की सुन्दर वाणी में शुक की बोली का आरोप किया गया है :—

उठा ए बनड़ा अंगमरोड़, जीओ कोए कुल में सूरज उगीया जे।
बनड़े की चलगत अध्यक सरूप, जीओ कोए हस्ती आवै झूमता जे।
बनड़े की बोली अध्यक सरूप, जीओ कोए बांगा बोल्या सूअटाजे।

हरियानी लोक-गीतों में अनेक आलम्बनों एवं प्रतीको का भी बड़ी भव्यता के साथ प्रयोग हुआ है। बहुत से फूल, फल व पक्षी आदि प्रतीक रूप में आये है। एक विवाह-गीत में अस्फुटयौवना नायिका के कच्चे कौमार्य के लिए कच्ची-कली प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुई है :—

हरियाला बन्ना काची कली मत तोडिए माली को देगी गालियां।
सहजादा बन्ना पाकणदे रसहोण दे नवाद्‌यूंगी डालियां॥

इस प्रकार अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं। एक गीत मे बिल्ली को धृष्ट रसिक का प्रतीक बनाया गया है। साहित्य में भ्रमर रसलम्पटता के लिए कुख्यात है। एक पूर्ण यौवना नायिका अपने यौवन भार को सभालने मे असमर्थ है। वह अपने अन्तस् की बात को प्रतीक प्रयोग द्वारा कह गई है :—

बाबल ! यों जोबन दिन चार का, बाजीगर का खेल।
बाबल ! छीके धरूं तो ढै पडै, तलै धरूं तो बिल्लैया खाय॥

(अर्थात्) पिता जी यह यौवन अस्थायी है, दो-चार दिन का है। यदि मैं इसे छींके पर धरती हूं तो गिरने का भय है और अगर तले भूमि पर धरूं तो ब्रिल्ली (धृष्ट रसिक) खा जायेंगे। कैसी निष्कपट विवेचना है? प्रतीक प्रयोग मे लोक-कवि बाजी ले गये हैं।

कहीं-कहीं श्लेष अलकार भी लोक-गीतो में आया है। पं० लखमीचद ने "सांगीत पद्मावत" मे रणधीर के पद्मावती के महल की ओर चलते समय एक रागनी मे बड़ा सुन्दर रूपक बंधा है जिसमे श्लेष की सहायता से आध्यात्मिक अथवा परोक्ष अर्थ की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है :—

चन्दरदत्त की आज्ञा लेकै फिर भगवान् मनाया।
चाल पडा रणधीर रात नै कर काबू में काया।
खड़े चुपचाप कोई सा ना इधर-उधर हिलै था।
पांच खड़े दरवाट पांच का दौराही दूर चलै था।
पद्मावत के महलों ऊपर अद्‌भुत नूर ढलै था।
नौ नाड़ी और दस दरवाजे ज्ञान का दीप जलै था।
झांकी मां कै पद्‌मावत के पड़े रूप को छाया॥

जायसी ने जैसे पद्‌मावती को परमेश्वर का रूप माना है वैसे ही लोक-गायक ने भी पद्‌मिनी को अलौकिकता के आवरण में छिपाया है। उसकी प्राप्ति ज्ञान दीप प्रज्वलित किये बिना असंभव है। पांच ज्ञानेन्द्रियों एवं पांच

कर्मेन्द्रियों पर काबू पाना आवश्यकीय है, तभी कहीं उस दिव्य आभा के दर्शन सम्भव हैं। यहा श्लिष्ट रूपक बडा सुन्दर बन पड़ा है।

लोक-गीतों में अलंकार अन्वेषकों को एक बात और स्मरण रखनी चाहिए कि जो अलकार इनमे मिलते हैं वे अपनी पूरी छटा के साथ नहीं आये हैं। वे तो आरभ करके ही समाप्त हो जाते हैं। कारण स्पष्ट है कि लोक-गीतकार को रस के चर्वण मे विघ्न सह्य नहीं है। वे रस के आगे किसी विधान की परवाह नहीं करते। अतः उनके अलंकार कुछ अपूर्ण से लगते हैं।

ख. रस परिपाक

लोक-गीतों में रस परिपाक भी शिष्टकाव्य की तरह हुआ है। ये गीत तो वस्तुतः रस के निर्झर ही हैं जिनका स्रोत भावपूर्ण हृदय है, जहां से ये अजस्र बहते रहते हैं।

हरियानी लोक-गीतो मे करुण रस सर्वाधिक आकर्षक है। करुण की सभी कोमल एव रुक्ष अवस्थाओं का वर्णन इनमे हुआ है, साथ ही शृंगार, हास्य, वीर और शांत रस का वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में आया है, परंतु जो मार्मिकता करुण वर्णन में आई है वह दूसरे रसों को प्राप्त नहीं। कारण कि ये गीत नारी के उस जीवन की स्मृतियां हैं जो दुख, विलाप और रोदन का दूसरा पर्याय है।

हरियानी लोक-गीतों में शृंगार का वर्णन भी खूब मिलता है। विवाह और पुत्रोत्पत्ति के समय गाये जाने वाले बंदड़ों में और बिहाइयों में क्रमशः शृंगार के नद फूट पड़ते हैं। ये दोनों समय, वास्तव में संयोग शृंगार के लिए बड़े उपयुक्त हैं। वियोग शृंगार श्रावण और फाल्गुन में गाये जाने वाले गीतों का प्रधान विषय है। नृत्य के गीतों में भी विरह गीतों की प्रधानता रहती है। इसका विस्तृत वर्णन आगे करुण विप्रलंभ के प्रसंग में करेंगे।

विवाह के गीतों के प्रवाह में शृंगार रस के सभी संचारी बहते रहते हैं। छन, सींटणे और गाली-गीतों में यह रस खूब खुलकर गाया जाता है। पुत्र-जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले होलड़ों में भी शृंगार-रस की पर्याप्त सामग्री होती है। गर्भिणी की व्यथा का कितना स्वाभाविक वर्णन एक गीत में हुआ है :—

कौढ़ी-कौढी बगड बहारूं दर्द उठा से कमर में, हो रजीड़ा,
इबना रहूँगी तेरे घर में।

द्यौर जिठानी मेरी बोल्ली-ठोल्ली मारैं जिब क्यों सोवैथी बगल मे, हो राजीडा
इबना रहूँगी तेरे घर में।
सास नणद मेरी धीर बंधावें होत्ती आवै से जगत में, हो राजीडा
इबना रहूंगी तेरे घर मे।
छोट्टा देवर खरा रसीला दाई नै बुलावै इक छन मे, हो राजीडा,
इबना रहूंगी तेरे घर में।
छोट्टा देवर नै बाहण बिहाद्यूं, दाई बुलाई इक छन मे, हो राजीडा,
इबना रहूंगी तेरे घर में।

प्रसव की पीड़ा से व्यथित गर्भिणी अपनी वेदना की बात अपने पति से कह रही है। देवरानी और जिठानी का हास-परिहास उसे असह्य हो उठा है। अतः वह घर छोड़ जाने की धमकी देती है; परंतु देवर और सास-नणद के मधुर व्यवहार से उसे कुछ सांत्वना मिली है। देवर को एक अच्छा पारितोषिक भी मिला है।

इस गीत में पति को ही पीड़ा का कारण समझकर स्त्री का यह निर्णय 'इब ना रहूँगी तेरे घर मे' बड़ा सामयिक है।

एक दूसरे गीत में पति की क्रूरता का मीठा परिहास देखने योग्य है :—

मेरे उठै थी पीड़ तन्नै आवैथी नीद, ठोस्सा खाले, हो राजीड़ा,
नाद्यूं नाद्यू पजीरियां।
मेरे उठै था गुस्सा तेरा बाज्जै था हुक्का, ठोस्सा खाले हो राजीड़ा,
नाद्यू नाद्यूं पंजीरियां।

पति ने प्रसूता के कष्ट में कोई हाथ नहीं बटाया और न कोई सहानुभूति ही प्रदर्शित की। अब साझे की पंजारियां खाने का प्रस्ताव स्त्री को स्वीकार्य नहीं है। उसका 'ठोस्सा खाले' उत्तर कितना स्पष्ट है ?

साहित्य में शृंगार को रसराज कहा गया है। सचमुच यह विशेषण बड़ा उपयुक्त है। हृदय की परितृप्ति जो इस रस में होती है अन्यत्र संभव नहीं। परंतु शृंगार वर्णन में कवियों की प्रतिभा-प्रभा कभी-कभी अवांछनीय दिशाओं मे चमकने लगती है। आशिक-माशूकों के फूहड़ वर्णन और विलास प्रियता की भौडी भावना कभी-कभी कविता कामिनी के कलित कलेवर को कलुषित कर डालती है। परन्तु पाठक देखेंगे कि लोक-गीतों में यह दुर्गुण कदापि नहीं आ पाया है। इनमें निर्झर के निर्मल जल की भाति ताजगी, पावनता और पवित्रता है।

हरियानो लोक-गीतों में रोदन व प्रेमचर्या ही नहीं है मार्मिक विनोद की पुट भी है। हरियानी लोक-गीतों में स्थान-स्थान पर हास्य रस के छींटे बराबर मिलते हैं। एक हास्य-गीत में कृषक महिला गंगा-स्नान को जाना चाहती है किन्तु उसकी भैंस 'हाथड' है अर्थात् उसी से धार कढ़वाती है। स्त्री के सामने यह समस्या बनी हुई है, अतः वह अपने पति से अपने वस्त्र पहन कर धार निकालने की युक्ति देकर गंगास्नान को चली जाती है। आगे का वर्णन गीत में पढ़िये :—

हो पिया मनै गंगा न्हुवा दे जारी सै सब संसार, हां ए जारी सै सब संसार
गोरी तनै क्यूकर न्हुवादयूं, मेरी हाथड पड री भैंस, हां ए हाथड़ पड़ री भैंस।
पिया तनै जुगत बतादयू मेरा करदे बेड़ा पार, हां ए कर दे बेड़ा पार।
खुंटी पै मेरा दामण लटके, चुंदड़ी छाप्पेदार, हो ए चुंदड़ी छाप्पेदार।
मेरी पीली वागरी पहर कै तूं बैठ काढिये धार, हां ए बैठ काढिये धार।
इतणे में एक मोडिया आया, मेरी बेबे भिच्छा घाल, हां ए बेबे भिच्छा घाल।
वा गंगा न्हाण गई सै, तेरा जीजा काढ रह्या धार, हां ए काढ रह्या धार।
खुंटा पाडगी जेवड़ा तुड़ागी, जिब चिमक भाजगी भैंस, हां ए चिमक भाजगी भैंस।
लाठी लै पाछै हो लिया करके नै गाबरू ठैंस, हां ए करके गाबरू ठैंस।
गाती खुलगी, पल्ला उघड़ग्या न्यूं मूंछ फड़ाकेलैं, हां ए मूंछ फड़ाके लैं।
गलियां मे या जिकरा हो रह्या देखी मुंछड़ नार, हां ए देखी मूंछड़ नार।
कोट्ठै चढकै रूक्के मारै कोए मत भेज्जो न्हाण, हां ए को ए मत भेज्जो न्हाण।

हास्यजनक एवं उपेक्षणीय सामाजिक बातें भी कार्टून की तरह इन गीतों द्वारा अंकित होती रहती हैं। हरियाने के इस उपरोक्त चकड़ी गीत में बेचारे कृषक का हास्य का आलम्बन बनाया गया है। वस्तुतः हास्य-गीत समाज के सुखद जीवन के द्योतक होते हैं। ये गीत मनुष्य को तभी भाते हैं जबकि उसके जीवन मे शांति और अन्तर में सुख की व्याप्ति हो। हरियाने का लोक-जीवन इस प्रकार की हास्य-तरंगों के लिए बड़ा उपयुक्त स्थल है। हरियानी लोक-गीतकार ने कहीं-कहीं विनोदवश सुन्दर अत्युक्तियों का प्रयोग भी किया है। एक गीत में भिन्न-भिन्न प्रकार के जानवरों का विलक्षण संयोग हुआ है:—

कीड़ी ब्याई झूंड में खीस दिया मन तीस।
हालीपाली सब छक लिया द्यो कीड़ी नै असीस।
झूंठ नहीं बोल्लूंगी झूंठ की सै म्हारै आण।
पानीपत की सड़क ऊपर मींडक बांट्टे बाण॥

कछुवा तो म्हारे भैंस चरावै पालौ बरण कै ।
मींडकी तो रोट्टी ले जा बहुबरण कै बरण कै ।
झूठ.... ....आरण ।
पानीपत ... .बाण ।

हरियाने के लोक-गीतो मे ही मधुर हास्य की पुट हो ऐसी बात नहीं है। यहाँ की बोलचाल की भाषा मे भी हास्य रस फूटा पड़ता है। अपने पुत्र-पुत्रियो की शुभाकांक्षा करती हुई माताओ के ये वचन कितने हास्य युक्त हैं—'मर ज्यावो रै थम सुक्योड़ै जोहड़ में डूब कै', 'खाज्या रै थम नै मरोड़्या सांप' अर्थात् तुम सूखे तालाब में डूबकर मर जाओ। तुम्हें मरा हुआ साप खा जाय। पूर्व अननुभूत बातो के मेल से कैसी हँसी की स्थिति का योग हुआ है। ऐसे ही उदाहरणो के बल पर हम कह सकते हैं कि हरियाने का लोक-साहित्य हास्य रस से ओत-प्रोत है। इस हास्य मे एक विशेषता और है कि यह ग्रामीण होते हुए भी 'ग्राम्य' नहीं है।

करुण रस वर्णन मे हरियानी लोक-गीतो की मनोरमता और मार्मिकता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। सच तो यह है कि जैसा मधुर रस का परिपाक इस रस के गीतो मे हुआ हैं वैसा अन्यत्र नहीं। रसज्ञो ने भी इस रस की प्रधानता को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। करुण रस के सिद्धहस्त कवि भवभूति ने तो एकमात्र करुण रस को ही रस माना है। करुण मे एक विशेषता यह है कि इससे हमारा संकुचित. दृष्टिकोण विशाल हो जाता है। हम संवेदनशील हो जाते हैं और देवत्व कोटि में पहुँच जाते हैं। करुण भाव के गीतों को हम तीन श्रेणियो में विभक्त कर सकते हैं—१. विदा के गीत २. विरह के गीत और ३. वैधव्य के गीत।

कन्या के विदा के गीतों में ही करुणा उमड़ती हो ऐसी बात नहीं है। कन्या का जन्म भी करुणामय है। वह हिन्दू समाज में एक धूमकेतु के सदृश मानी जाती है। उसके जन्म से किसी को हर्ष नहीं होता। माता को पुत्री-जन्म की रात वज्र के समान हो जाती है और चारों ओर शोक का घोर अंधकार छा जाता है।

जिस दिन लाडो तेरा जनम हुया था हुई ए बजर की रात।
चौसठ दिवला जोय धार्‌या था तोबी घोर अंधेरा॥

सचमुच कन्या-जन्म से माता-पिता दोनों घोर चिंता में पड़ जाते हैं।

विवाह के पीछे कन्या की विदा के गीत बड़े करुणा पूर्ण होते हैं। अब वह लाडो जिसे अपने हाथों पाला-पोसा है बिछुड़ने लगती है तो माता-पिता

की करुणा का बांध टूट जाता है और वे ठगे से रह जाते हैं। लाडो की यह उक्ति कितनी मार्मिक है :—

'तुझे बाबुल कौन कहे, बाबुल तेरी धीय बिना।
आंसू तो भर आये नैन, क लाडो बेटी जाय धरां॥

कैसा स्वाभाविक चित्रण है। पुत्री के बिना सब कुछ हो सकता है, किन्तु 'बाबुल' संबोधन के अभाव की पूर्ति कोई भी नहीं कर सकता। सोचते-सोचते पिता के बलात् रोके हुए आंसु आखो में छलछला आते हैं। इन पक्तियों मे पुत्री कुछ न कहकर भी सब कुछ कह गई है। सचमुच लौकिक माया बंधनों से विनिवृत्त तपस्वी कण्व जब शकुन्तला के श्वसुर गृहगमन पर धैर्य न धारण कर सके, तो साधारण गृहस्थो की बात ही क्या है? संग की सखियां भी डब-डबाये नेत्रो से गा उठती हैं :—

'साथण चाल पडी री मेरे डबडब भरयाये नैण।'

जब कन्या पिता के घर को छोड़कर अपने नये संसार में पदार्पण करती है तो वहा पर भी सुख नहीं मिलता। सास-ननद के कठोर नियत्रण में उसे रहना पड़ता है। उनके अत्याचार सहने पडते हैं। ऐसी स्थिति में नववधुएं करुण स्वर में गा उठती हैं :—

काहे को ब्याही विदेश सुन लक्खी बाबल मेरे।
सोना भी दिया बाबुल रूपा भी दिया,
एक नै दीन्हीं मेरे सिर की कंघी
सास ननद बोलें बोल रे। सुन लक्खी बाबल मेरे।

सचमुच लोक-गीतों मे सास-बहू की लडाई का इतिहास दुख के अक्षरों मे लिखा हुआ है। अर्थात् हे लक्षाधीश पिता जी आपने सोना-चांदी सब कुछ दिया, केवल एक सिर की कघी के बिना मुझे सास-ननद के व्यंग्य बाण सहने पडते हैं। वधू की दयनीयता कैसी शोककारी है।

विप्रलंभ शृंगार के वर्णन में करुण को पर्याप्त स्थान मिला है। विरह संबंधी गीत बड़े मर्मस्पर्शी होते हैं। अबला-जीवन अश्रुधारा में स्नान करता है। इन गीतों को सुनकर पत्थर का हृदय भी पिघल उठता है और वज्र हृदय भी टुकडे-टुकड़े हो जाता है। विरह-वर्णन मे संसार के सभी देशों के कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है और बहुत सी स्याही खर्च की है; परन्तु लोक-गीतो में जिस स्निग्धता के दर्शन होते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है। कारण की ये गीत स्वानुभूति की उपज है, जिस हृदय मे चोट लगी है ये गीत उसी दिल की आहें हैं। इनमें जहाँ, कल्पना और तखैयुल के परवाज नहीं है।

हिन्दी साहित्य में विहारी की बालिका के विरह गीतो ने, सूरदास की गोपियों के विरह गीतो ने और आधुनिक छायावादी कवियो के नैराश्यपूर्ण प्रेम के विरह गीतो ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। तनिक हरियानी विरह गीतों की कुछ बानगियां भी देखते चलिए।

पति परदेश जाने के लिए तैयार है। पत्नी भावी वियोग की सहज आशका से विह्वल हो उठी है। वह कहती है कि तुम्हारा घोड़ा किसने कस दिया है, किसने उस पर बैठने के लिए जीन रख दी है। वह प्रतिशोधानल से दग्ध होकर साथियों को कोसती है। सास और ननद के दुर्व्यवहार का उसे खटका है। इसलिए वह उन दोनों से मुक्ति चाहती है। पति नाना युक्तियाँ देकर उसे सांत्वना देता है परंतु नायिका खीजकर कह देती है कि मुझे मार डालिए। न मै जीवित रहूँगी और न वियोग-व्यथा सहूँगी। यह मर्मातंक गीत पढ़िए :—

पिया कन थारो घुडला कस दिया, कोए कन थारै धरदी जींद जी।
मत जइयो राजंद चाकरी।
म्हारा भाइयां नै घुडला कस दिया, म्हारा साथीड़ा नै धरदी जींदजी
मत जइयो राजंद चाकरी, मत जइयो परदेस
तेरा साथिडा पै पडियो बीजली, तेरा भाइयां की रहियो बांझ जी
बाप तेरा नै हों के कहूं ?
मत जइयो राजंद चाकरी मत जइयो परदेस।
पिया जै थम जाओ चाकरी अपनी भाण नै जइयो बिडार[1] जी,
मत जइयो राजंद चाकरी
गोरी भाण बिडारां हम नै ना सरै म्हारा उल्टा बटेऊ[2] जांय जी
मत जइयो राजंद चाकरी मत जइयो परदेस।
पिया जै थम जाओ चाकरी अपनी माता नै जइयो बिडार जी।
मत जइयो राजंद चाकरी।
गोरी माय बिडारां हमनै ना सरै म्हारा चरखा की सोभा जाय
मत जइयो राजंद चाकरी मत जइयो परदेस।
पिया जै थम जाओ चाकरी आपनी गोरी धण नै जइयो बिडार जी
मत जइयो राजंद चाकरी
गोरी थम नै बिडारां नासरै म्हारा कुणबो बाराबाट
मत जइयो राजंद चाकरी मत जइयो परदेस।

---

१. कतल करना, बध करना। २. महमान।

यह गीत विप्रलंभ शृंगार का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। इसमें साथीड़ा के प्रति असूया और उग्रता तथा अपने प्रति स्त्री के मोह, विषाद, शंका, आवेश, वितर्क और चिंता आदि संचारियों का बड़ा सटीक वर्णन हुआ है। ऐसी सरसता भला चमत्कारवादियों के आलंकारिक वर्णन में कहाँ संभव है?

एक दूसरे गीत की नायिका पूर्णयौवना हो गई है। उसका पति परदेस नौकरी के लिए जा रहा है। उसे वियोग असह्य हो उठा है। अतः वह साथ चलने के लिए आग्रह करती है। चर्खे की चर्चा अब उसे नहीं सुहाती। वह कहती है कि मै तुम्हारे शरीर से मक्खी के सदृश चिपकी चलूगी और कार्य मे बाधक नहीं बनूंगी। वह तो तपस्विनी सीता की भाँति मार्ग के कुशकटको को कुचलती चलेगी और प्रियतम के सुख सौविध्य के लिए प्रयत्न करेगी। गीत की सजीवता का रसास्वादन कीजिए :—

पांच बरस की भंवर हो ब्याही, हां जी मेरा हो गई सेर जवान
बिलसन[1] की रुत चाले नौकरी।
चरखा ल्याद्यूं हे गोरी रंग रंगीली, हां जी कोए पीढी लाल गुलाब
साथनों मे बैठी गोरी कातिये।
चरखा तोड़ूं भंवर हो चौपटा पीढ़ी के करूं अठारा टूथ,
हां जी संग थारी चालूंगी।
मांखी बण बदन के चीप चलूं जे हां जी संग थारी चालूं।
घर पर नहीं रहूंगी जी।
लोटा झारी[2] भंवर हो मैं बणूं जे ए जी कोए बणजां रेसम डोर।
तिस[3] लगे जब पिया हो पी लियो जे।
लाडू जलेबी भंवर हो मैं बणूं जे, हां जी कोए बणजां कूट सुहाल[4]।
भूख लगे जब पिया हो खालियो जे।
बादल बीजली भंवर हो मैं बणूं जे, हां जी कोए बणजां असल घटा,
धूप पडे जब पिया हो छां करूं जे।

इस गीत में स्त्री के प्रेमजन्य भावों का मार्मिक वर्णन हुआ है। स्त्री की अभिलाषा कसकपूर्ण है।

विप्रयुक्ता की दशा का एक और चित्र लीजिए। प्रियतम नौकरी पर जा रहा है। स्त्री कहती है कि तुम्हारे वियोग में मैं कैसे रहूंगी, इसका कुछ उपाय बतलाते जाओ। पति चर्खा कातने और घर बैठकर मौज करने की

१. उपभोग। २. सुराही, जलपात्र। ३. प्यास। ४. एक नमकीन भोज्य वस्तु जो मैदा की बनी होती है।

युक्ति देता है, परतु नायिका को वह मान्य नहीं है। अत मे, पति उसे पीहर पहुँचाने का प्रस्ताव करता है। इस प्रस्ताव ने नायिका को प्रेमकलिका को असमय ही मसोस दिया है और वह कह गई है कि पिता के यहा वात्सल्य भाव मिलने पर भी सम्मान कहां है ? गीत की सरसता देखिए :—

थम तो चाल्या हो पिया म्हारा चाकरी धण रा कौण हवाल,
यो बिड़ला मेरे मन बसा।
चरखा ल्यादयूं ए गोरी रांगला[1] पीढी लाल गुलाल,
यो .... बसा।
चरखा तोडूं हो पिया रांगला पीढी का सत्तर टूक,
यो .... बसा।
कोठी चावल म्हारै घी धणा बैठी हुकम चला,
यो .... बसा।
चावल दे दो हो पिया ब्राह्मण घीभर होम कराया,
यो .... बसा।
भैल जुड़ा दयूं है गोरी म्हारी बावणी बैठ्ठी पीहर जाय,
यो बिडला मेरे मन बसा।
बड़ी ए पियारी हो पिया बाप कै थम बिन आदर नै होय,
यो .... बसा।
खड़ी ज सूखूं कड़ब जूं चरिए न डांगर ढोर,
यो .... बसा।
कडब[2] निमाणी हो पिया ढे पडै[3] हम तै पडया ए ना जाय,
यो .... बसा।

कैसी कातरता है 'खड़ी ज सूखूं कड़ब जूं चरिए न डांगर ढोर' 'अर्थात् मैं पिता के यहां बिना आदर के चरी के सदृश खड़ी-खडी सूख जाऊंगी, फिर सूखी चरी को (जुआर को) पशु खालेंगे परतु मै इस उपयोग में भी न आ सकूंगी। सूखकर चरी नीचे गिर जाती है, परंतु मुझसे गिरा भी नही जाता। विरह के इस नारकीय कष्ट से छूटने के लिए नायिका प्राणात चाहती है, परन्तु यह भी उसके वश मे नहीं है। 'हमतै पड़या ना जाय' मे विवशता की बड़ी तीखी व्यंजना भरी पड़ी है।

विरह के ये गीत श्रावण मास में अधिक गाये जाते हैं। पावस की मादकता मे विरह उद्दीपन के लिए विशेष अवसर मिलता है। प्रकृति की

---

१. रंग-बिरंगा। २. जुआर। ३. नीचे गिर जाये।

लावण्यमयी शोभा, मेघों का नाद, पपैये की पी-पी, रह-रहकर प्रिय का स्मरण दिलाते हैं। हरियाना मे मिलने वाले इन विरह-गीतों मे वे गीत बड़े मार्मिक हैं जिनमे "संयोग-विरह" का वर्णन आया है। वे स्थल जहा 'वात्सल्याभास' की झलक आ गई है बड़े ही विनोदपूर्ण हैं और वहां व्यंग्यभाव का बडा सजीव चित्रण हुआ है।

कन्या को ससुराल मे सास-ननद का ही दुख नहीं है, उसे अपने याने बालमा का भी दूभर दुख है। पत्नी उमगों की सतरंगी चादर बुनती है और पति शिशुक्रीड़ा करता है। उसका (पत्नी का) जीवन भारस्वरूप हो जाता है। अपनी कुचली साधो, भग्न आशाओं और मुरझाई आकांक्षाओं को अन्तस्पट मे समेटे एक खादर की बालिका गा उठी है :—

ढूडा ढूंडा री बैंगनियां से छोटा,
पानी को जाऊ मेरे साथ साथ जावे,
रोवै रोवै री वह तो नेजू पकड के,
रोओ मत बाले सइयां झीको मत बाले सइयां,
दूंगी दूंगी जी तुम्हे कुल्हिया मंगाय कै ॥

× × ×

सोने को जाऊं मेरे साथ साथ जावै,
रोवै रोवै री अम्मा अम्मा करके ।
रोओ मत बाले सइयां झीको मत बाले सइयां,
दूंगी दूंगी जी तुम्हें गुड़िया मंगाय कै।

इस गीत में बाल-विवाह की दयनीय दशा को बडी भव्यता से व्यक्त किया गया है। याने पति और सयानी पत्नी के विचारों में आकाश-पाताल का अतर है। यह गीत नृत्य के साथ बड़ी सुन्दरता से गाया जाता है।

वैधव्य के गीतों में करुणा की गहरी छाप होती है। जीवन-साथी के रूठ जाने पर तो विधवा का संसार ही समाप्त हो जाता है। उसे अनंत वियोग की स्मृति कांटे सी चुभती है। विधवा-विलाप में विषाद की गहरी रेखाएं उभरी हैं :—

ए सास्सू जब धंसू महल में दरी बिछौना सूना।
कुछ एक दिनां की ना सै मुझे सारे जनम का रोना।
अरे याणी थी जब रही बाप कै मझे सोच समझ कुछ नाथा।
इब क्यूं कटै दिन रात मझे कोए एक दिनां की ना सै।

समूचा गीत शोक के ताने बाने से बुना हुआ है। वियोग के क्षण भी

जब कल्पसम हो जाते हैं तो जीवनपर्यंत का यह वियोग कितना मर्मांतक है, पढ़कर रोमांच हो आता है।

विधवा की कारुणिक कहानी ही नहीं विधुर की व्याकुलता भी लोक-गीतों में आई है। साहित्य में राम का सीता के प्रति और अज का इंदुमती के प्रति विलाप एक गभीर हृदय का रुदन है जो हृदयस्पर्शी होते हुए भी व्याकुलता से पूर्ण नहीं है। हमारे लोक-गीतों में करुणा अधिक छलकती है। खादर के एक गीत में रंडुवे का विलाप कितना मर्मस्पर्शी है। उदाहरण देखिए :—

ब्याही थी रे बिलसी नहीं याक्या हुई प्यारी ए।
तोड़ी थी रे सूघी नहीं, ली थी गले में डार, पारी ए॥
घर घर दीवा, घर घर बाती, रंडुवे के घर घोर अंधेरा ए।
घर घर भोजन, घर घर रोटी, मेरे घर ढकनी में चून, प्यारी ए॥
दामण चुंदड़ी खूंटी धरे सैं, एक बर पहन दिखाय प्यारी ए।
पानी की जलघड़ रीती धरी सै, इक बर सागर जाय, प्यारी ए॥
गहने का डिब्बा भरा धरा सै, इक बर पहन दिखाय, प्यारी ए॥
भैया तेरा लेण आया, इक बर पीहर जाय, प्यारी ए॥
सेजें मेरी सूनी पडी सै, एक बर सूरत दिखाय, प्यारी ए।
डाल खटोला बगड़ बिच सोया, एक बर सुपने में आय प्यारी ए॥

गीत का वर्णन और विलाप बड़ा स्वाभाविक है। "एक बार सूरत दिखाय प्यारी ए" में गंभीर दीनता भरी कसक है।

वास्तव में, ये करुण-गीत ही साहित्य की अमूल्य निधि हैं। भला जिस कविता में विश्ववेदना की टीस नहीं, करुणा के आंसू नहीं, वह कितनी ही चमत्कारपूर्ण हो, माधुर्यपूर्ण नहीं कही जा सकती। महाकवि शैली की मीमांसा भी यही है :—

"Our sweetest songs are those
that tell of saddest thoughts."

पाठक देखेंगे कि हरियाने के इन लोक-गीतों में अलकार नहीं, शब्द छटा नहीं, भूमिका और प्रस्तावना नहीं, है केवल सीधी-सादी ग्रामीण भाषा में एक दुखित हृदय की एकमात्र करुणा। यहां शब्दाडंबर की वेदी पर कविता की आत्मा का कभी बलिदान नहीं किया गया है। वस्तुतः बिना किसी कृत्रिम योजना के, बिना क्लिष्ट कल्पना के और बिना कलात्मक

विधान के हृदय रस से परिपूर्ण हो जाये, यही तो रस निर्वाह है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि हरियाने के ये लोक-गीत रस के कलश हैं।

साहसपूर्ण, ओजस्वी तथा उदात्त विचारों की प्रेरणा से मानव-हृदय में वीर रस की सृष्टि होती है। यह वह जादू है जो मुर्दों में जान डाल देता है और उन्हें सत्य पर मर मिटने के लिए तत्पर कर देता है। फिर हरियाना तो वीरता का ही दूसरा नाम है। हरियाने की वीर जनता ने कभी किसी का आतक नहीं माना। एक लोकोक्ति में इन लोगों के दर्प को इस रूप में कहा गया है :—

> अपणा बोया आपेए खावें नहीं दे किसी को दाणा।
> बागड़िया मत जाणियो यो सै देस हरियाणा॥

हरियाने की जनता अपने वीरोल्लास के प्रदर्शन मे कभी किसी से पीछे नहीं रही। स्वतंत्रता के प्रथम युद्ध में हरियाना ने सबसे पहिले अपनी आहुति गेरी थी। यहां के राव किशन गोपाल ने उस युद्ध का श्रीगणेश अपनी तलवार की नोक से किया था। उन्होंने नसीबपुर के युद्ध मे जननी जन्मभूमि की मर्यादा-रक्षा के लिए लड़ने वाले योद्धाओ को जिस उत्साह से ललकारा था वह ललकार आज भी कायरो मे प्राण फूक देती है। उदाहरण देख लीजिए :—

> कहता किसन गोपाल राव वर गल्ल सुनाई।
> चालो ढोसी न्हाण नै सोमोती[1] आई।
> यो ढोसी[2] का न्हाण है कतल लड़ाई।
> जहं नै प्यारा वर लगै घर अपणे जाई।
> जहं नै प्यारा किसन गोपाल राव लो तेग उठाई॥
> मरदां खातर जंग बणया नालडै लुगाई।
> खप जाओगे रण खेत में है इचरज नाहीं।
> करो चढाई जंग जनमी[3] बार बार जन्मेगी नाहीं॥

यहां के पानीपत और कुरुक्षेत्र के विस्तृत मैदान आज भी हरियानी युवकों की स्नायुओं में वीररस का संचार कर रहे हैं।

लोक-साहित्य मे एक विशेषता और भी दृष्टिगोचर होती है। हिन्दी सस्कृत आदि के कवियों ने स्त्री जाति को शृगार अथवा करुण रस के आश्रय

---

१. सोमवती अमावस्या। २. ढोसी नारनौल जिला महेन्द्रगढ में एक पहाड़ी है जिसके मैदान में राव किशन पाल व राव तुलाराम की अंग्रेजों के साथ लड़ाई हुई थी। ३. माता, जननी।

आलम्बन के रूप मे ही अधिक ग्रहण किया है और वीर रस के लिए अनुपयुक्त समझकर स्त्री-समाज की बड़ी अवज्ञा की है। उन्होने कभी यह न सोचा कि आचल में दूध और आख में पानी के अतिरिक्त उनमें वीरोल्लास का अविरल स्रोत भी प्रवाहित रहता है और त्याग एव बलिदान की इच्छा उनमे उतनी ही प्रबल है जितनी पुरुषो मे। यह देखकर हमे हर्ष होता है कि हरियाने के लोक-कलाकारों ने उन्हें भुलाया नही है। चन्द्रावल का जौहर राजस्थानी ऐतिहासिक जौहर से उत्कृष्ट है और उसे कोसों पीछे छोड़ गया है। इसमे करुणा-रस को पुट से सरसता और भी बढ़ गई है। इसी प्रकार 'गौरा' बहन का आत्म बलिदान सतीश्वरी सीता के बलिदान की कोटि को छू गया है। अनेक ऐसे उदाहरण हरियानी लोक-साहित्य में विद्यमान हैं जिनके देखने से पता चलता है कि त्याग-क्षेत्र में नारी-नर से बहुत आगे है।

लोक-साहित्य मे जीवन की सध्या मे गाये जाने वाले निर्गुन पद, हरजस अथवा भजन बहुत मिलते है जिनमे शात रस के स्निग्ध छींटे होते हैं। इस रस का वितरण अलख जगाकर भिक्षा मांगने वाले याचकों के द्वारा समाज में बराबर होता रहता है। हरियाने की एक विशेषता यह है कि यहां ग्राम-ग्राम मे किसी न किसी साधु-महात्मा की समाध है जिस पर प्रातः सायकाल वैराग्यपूर्ण भजन गाये जाते है। ये भजन, 'निर्गुन या सबद' सरल लोक-भाषा मे होते हैं जिसे प्रत्येक श्रोता समझता हुआ गा लेता है।

हरियाने मे बाबा गरीबदास के 'सबद' बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमे से दो उदाहरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं :—

१. **सुणियों संत सुजान दिया हम हेला रे[1]।**
और जनम व्होतेरे होंगे मनुष जनम दुहेला रे[2]।
तू जो कहे मैं लश्कर जोड़ूं चलना तुझे अकेला रे।
अरब खरब लौं माया जोड़ी, सग न चलसी धेला रे।
यों तो मेरी सत को नवरिया[3] सतगुर पार पहेला[4] रे।
दास गरीब कहै भाई साधो सबद गुरु चित्त चेला रे॥

इस छोटे से 'सबद' मे मनुष्य योनि की श्रेष्ठता, सत्य और गुरु की महिमा अपूर्व ढंग से प्रतिष्ठित की गई है।

२. **दामदा नहीं भरोसा रे अब तू कर चलने दा सूल[5]।**
मैंडी[6] मन्दर बाग बगीचे रहसी डाल न मूल।

---

१. पुकार। २. कठिन। ३. नौका। ४. पार करने वाले ५. उसूल, ध्यान। ६. घर, मढ़ी।

दाख[1] मुनक्का पीठ लधत हैं करहा[2] खात बबूल ।
गरीब दास सुण पार उतरय्ये सूरत[3] हिंडोला झूल ॥

इस पद में संसार की असारता को दिखाया गया है। मूर्ख मनुष्य माया में आनंद ले रहा है जो मिथ्या है। उसका ध्यान अध्यात्म की ओर इस प्रकार नहीं है जैसे द्राक्षा आदि से लदा हुआ ऊट उसे छोड़ कर कीकड खाता है। मनुष्य के अन्तस् में दिव्य आभा की ज्योति प्रज्वलित है उसे छोड़ वह माया में लिप्त है। इसी प्रकार मीरा, कबीर आदि के ज्ञानपूर्ण पदों को बराबर गाया जाता है।

उपरोक्त विवेचना से पाठक देखेंगे कि ये गीत रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, पलायनवाद, प्यालावाद, हालावाद और निराशावाद आदि आधुनिकवादों के विवाद-चक्र से दूर हैं। इनमें उन कृषक स्त्री-पुरुषों की, ग्वालो की तथा अन्य पेशेवालों की कोमल भावना छलकी पड़ी है जिन्होंने कभी "मसि कागद छुओ नहीं कलम गहि नहीं हाथ"। इनमें केवल रस है जिससे ये उत्तम काव्य की कोटि के अधिकारी हैं। इन्हे 'जंगली कविता' कहना जहालत है, अपराध है।

ग. लोक-गीतों में लय

अब हम उस प्रधान विशेषता को लेते हैं जो लोक-गीत कला का आधार है। वह विशेषता "लय" है। गीतों की प्रत्येक पंक्ति बड़ी सुन्दरता के साथ दुहराई जाती है जिससे गीत के माधुर्य में उत्कर्ष आ जाता है। यदि इस पुनरावृत्ति को हटा दिया जाये तो सारी लोक-कविता परिमाण मे आधी रह जाये और सौन्दर्य एवं माधुर्य में उतनी भी न रहे। किन्तु लोक-गीतों मे मिलने वाली पुनरावृत्ति कोरी और सीधी-सादी पुनरावृत्ति नहीं है। यह एक पंक्ति के प्रत्येक शब्द के लिए कभी समानार्थक और कभी विपरीतार्थक जोड़ा प्रस्तुत करती है। कभी पंक्ति के एक-दो शब्दों को और कभी पूरी पंक्ति को मनोहर जोड़ों में बदल देती है। इस आवृत्ति में एक लय है, एक समगति है।

यह आवृत्ति कर्त्ता, कर्म, क्रिया, क्रिया-विशेषण और विशेषण आदि सब में है और समानार्थक एवं विपरीतार्थक दोनों प्रकार की है। हरियानी लोक-गीतों में जी, हां जी, जीए, जै, हरे राम, आदि प्रायः प्रत्येक पक्ति के आदि, मध्य और अंत में पाये जाते हैं। ये पद तुक का काम करते हैं जिससे इनके पढ़ने और गाने में मधुरता आ जाती है। इसी गुण के कारण इन गीतों को

१. द्राक्षा। २. ऊंट ३. ध्यान।

सरलता से स्मरण रखा जा सकता है। एक विशेषता यह है कि ये तुक पद अथवा आवृत्ति के पद बिना प्रयास के स्वतः आ गये हैं।

सचमुच लय ही लोक-गीतो को मनोहारी बना देता है। जब नारी-कंठ सामूहिक रूप से किसी गीत को अलापता है तो उस समय लय के द्वारा उस गीत में रस का संचार हो जाता है। ऐसा करते समय स्त्रियां आवश्यकतानुसार कहीं ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व करती चलती हैं। किसी अक्षर की कमी कुछ अक्षरो को जोड़कर पूरा कर ली जाती है। इस प्रकार साधारण लोक गीत भी इस लय की शाण पर चढ़कर सरस हो जाते हैं।

भिन्न-भिन्न गीतो की लय भिन्न-भिन्न हुआ करती है। लोक-गीतों के अभ्यस्त श्रोता केवल लय सुनकर ही गीत की पहचान कर लेते हैं। कुछ गीत तार स्वर मे और कुछ मद स्वर मे गाये जाते हैं। हरियानी के राग अथवा गाथाएँ—गूगा, किशन गोपाल, निहाल देवी, पूरन, जयमल फत्ते आदि के लिए 'तार स्वर' आवश्यक है। नारी गीत—होलड़, बंदड़ा, बंदड़ी और झूले के गीत बिलम्बित स्वर मे गाये जाते हैं। हरियाने के "मनरा" गीत की लय बड़ी ही मोहक और सरस है। जब स्त्रियां झूला झूलती हुई इसे गाती हैं तो रस की वर्षा सी होने लगती है।

घ. लोक-गीतों में छंद

लोक-गीतों में छंद का बंधन बडा श्लथ है। एक प्रकार से यदि कहा जाये कि इनमें छंद होता ही नहीं तो कोई अत्युक्ति न होगी। वैसे तो छंद काव्य नायिका के परिधान हैं, परंतु लोक-गीतों में इसकी पूर्ति लय और संगीत से हो जाती है। इनका संगीत बड़ा सरस होता है।

ग्रामीण कवि पिंगल ज्ञान से शून्य होते हैं। उन्हें वर्णिक एवं मात्रिक छंदों का ध्यान नहीं रहता। वे तो "स्वान्तः सुखाय" अपने निष्कपट भावों को राग का रूप दे देते हैं चाहे वह सदोष ही क्यों न हो। परंतु जिन्होंने इन गीतो को सुना है उन्हें कभी भी इनमें गतिभंग या यतिभंग दोष नहीं मालूम पड़ा। फिर भी यदि इन्हें छंद भाषा मे कहना चाहें तो "ध्वन्यात्मक छंद" कह सकते हैं। इसीलिए प० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी सटीक मीमांसा देते हुए कहा है कि "इनमें (लोक-गीतों) छद नहीं, केवल लय है।" इस लयांश के ही कारण ये लोक-गीत बडे श्रुतिमधुर हैं।

चतुर्थ अध्याय

लोक-कथा

लोक-कथा

हमने पीछे कहा है कि कहानी समस्त वाङ्मय की आद्या है। मौखिक या लिखित साहित्य का कोई रूप ले लें तो उसके मूल में कोई न कोई सूक्ष्म एवं स्थूल कथा अवश्य मिलेगी। यह कहना अयुक्त न होगा कि मानव की विश्व के व्यापारों के प्रति जो प्रथमाभिव्यक्ति—वाचिक तथा कायिक—हुई होगी। वह एक कहानी रही होगी। 'मैं' और 'तुम' इन दो शब्दों में भी एक कहानी है। इसका रचित एव परंपरित रूप सब देश व जातियों में मिलता है। इस अध्याय में हम हरियाना प्रदेश में संतति परपरा से प्रचलित लोक-कहानी साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। यहां यह विचार लेना भी असमीचीन न होगा कि हरियाने में जो लोक-कहानियां आज मिलती हैं उनकी जड़े बड़ी गहरी हैं। उनका इतिहास पास-पड़ोस के प्रदेशों मे भी दीख पड़ेगा तथा विदेशों में भी हो सकता है, उनकी परंपरा मिले, पर कहानी की इन चारों ओर फैली हुई दूब की सी जड़ों को खोज निकालने में कौटिल्य के प्रण एवं प्रयत्नों की अपेक्षा है।

क. भारतीय परंपरा में लोक-कहानियां

कहानियों की उद्भावना की आदिभूमि भारत को माना गया है। यों तो कहानी का मौखिक रूप, सृष्टि के समारम्भ से ही प्रत्येक देश में पाया जाता है। ये परंपरित कहानियां सब देशों में घास की तरह अपने आप पैदा हुई हैं। सभी देशों की वृद्धाओं ने बालमनोविनोद के लिए कहानियां कही हैं। किन्तु साहित्यिक कहानियां लिखने का श्रेय भारत को है। यहां इस साहित्यिक-अभिव्यक्ति की परपरा एक सुदूर अतीत से विद्यमान मिलती है। ऋग्वेद में जो संसार का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ है, स्तुतियों के रूप में कहानी के मूलतत्व पाये जाते हैं। ऋग्वेद के मं. १ सूक्त २४।२५ मत्र ३० (दोनों मे मिलाकर)[1] में ऋषि शुनःशेप का वह प्रसिद्ध आख्यान है जिसमें

---

१. अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।

... ...

शुनःशेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥

... ...

अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वां अदब्धो वि मुमोक्तुपाशान् ॥

... ...

श्री पं० जयदेव शर्मा के ऋग्वेद संहिता (भाषा भाष्य) में १ म. खण्ड देखना होगा। यहाँ वाकोवाक्य मिलता है।

उन्होंने 'वरुण' की प्रार्थना की है, उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। अप्पला-आत्रेयी के आदर्श नारी चरित्र ऋग्वेद मे आये हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों में भी हमे अनेक कथाएं उपलब्ध होती हैं। शतपथ ब्राह्मण की पुरूरवा और उर्वशी की कथा का किसको ज्ञान नहीं है। (श. ब्रा. ११।५।१)। कवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशी' नाटक का आधार यही कथा तो है। तांड्य ब्राह्मण १४।६।११ में च्यवन, भार्गव और सुकन्या मानवी की कहानी पल्लवित हुई है तथा एतेरेय ब्राह्मण ७।३ मे शुनःशेप के आख्यान का वर्णन हुआ है।

ये कहानियां उपनिषद् काल से पूर्व की हैं। उपनिषत्काल मे आकर इन्हें कुछ नया रूप मिला है। गार्गी-याज्ञवल्क्य सवाद तथा सत्यकाम-जावाल आदि की कहानिया उपनिषद् युग की प्रसिद्ध कहानियां हैं। कठोपनिषद् मे एक बड़ी प्रसिद्ध कहानी नचिकेता की आती है जिसका हिन्दी रूपान्तर प० सदल मिश्र जी ने नासिकेतोपाख्यान नाम से किया है। इसमे नचिकेता अपनी विलक्षण प्रतिभा से यम से अमरता प्राप्ति का उपाय ज्ञात करता है। केनोपनिषद् मे अग्नि और यक्ष की कथा का रोचक वर्णन आया है। छान्दोग्य उपनिषद् ४।१।३ में जनश्रुति के पुत्र राजा जानश्रुति की कथा का चित्रण मिलता है।

यहा इतना और जान लेना अपेक्षित है कि वेद-ब्राह्मणों मे जिन कहानियों के बीज और बिन्दु मिले हैं वे सब यज्ञ-विधि, अनुष्ठान अथवा स्तुतियों (दानस्तुतियों आदि) से संबंधित हैं। उपनिषद्काल मे पहुँचते-पहुँचते कहानियों की वह आनुष्ठानिकता एवं अलौकिकता की मात्रा समाप्त हो गयी है। देवताओं के स्थान पर राजा या ऋषि आ विराजे हैं। यह सब कुछ होने पर भी उस युग के मनीषियों की दृष्टि मे कहानी निर्माण की प्रेरणा दुर्बल हो गयी थी जिसका पूर्ण विकास आगे चलकर पुराण, रामायण और महाभारत मे हुआ।

पुराणों में कहानी खुलकर आई है जिससे वेद के गूढ़ार्थ का प्रतिपादन होता है। यह कहना कि पुराणों मे वेदों की व्याख्या है निराधार नहीं है। पुराण वेदाध्ययन की कुजी है। वेदों की मूलभूत कहानिया पुराणों की कथाओं में पल्लवित पुष्पित हुई हैं। पुराण कथा कहानियों का अतुल भंडार है।

रामायण और महाभारत में भी बहुत से आख्यान जुड़े हैं। रामायण की अपेक्षा महाभारत में यह प्रवृत्ति अधिक है। एक प्रकार से देखा जाये तो महाभारत कहानियों का कोष है। अतः यह उक्ति यथार्थ में सत्य है कि 'यन्न भारते तन्न भारते' सभी कुछ महाभारत मे है। महाभारत का अपना

कथन है[1] कि इसमें एक चौथाई मूलवृत्त है और उसे पुष्ट करने के लिए तीन चौथाई आख्यान भरे पड़े हैं। कहा जाता है महाभारत में १ लाख श्लोक हैं। इनमें से २४००० श्लोकों में मूलवृत है शेष ७६००० उपाख्यान हैं।

यह उपरोक्त विवेचन वेद, वैदिक आधार एवं पुराणादि को लेकर मिलने वाली कहानियों के विषय में है। इसके अतिरिक्त संस्कृत में मिलने वाले आख्यान-साहित्य का भी विश्व-साहित्य में एक गौरवपूर्ण स्थान है। संस्कृत के ये आख्यान किसी प्रख्यात पौराणिक एव ऐतिहासिक पात्र अथवा कथा-वस्तु के उपयोग को लेकर नहीं खड़े हैं। इन आख्यानों की पृष्ठभूमि मे विशुद्ध कल्पना है। इनमे स्थान-स्थान पर कुतूहल, घटना-वैचित्र्य, हास्य, विनोद, गभीर, उपदेश और काव्य रस भी मिलता है। इस आख्यान साहित्य को विद्वानो ने दो वर्गों मे विभाजित किया है—१. नीति कथा, २. लोक कथा। पहिले हम नीति कथाओं को लेंगे।

नीति कथाओं का विषय सदाचार, राजनीति तथा व्यावहारिक ज्ञान है। इनमे जीव-जंतु, पशु-पक्षी मनुष्यो के समान ही सारे कार्य करते हैं। मनुष्यों की भाति वे संभाषण करते हैं, रूप बदलते हैं, पशु से मनुष्य बनते हैं और मनुष्य पशु का रूप धारण कर लेते हैं। यहां मनुष्यों और पशुओं का विवाह भी होता है अर्थात् मनुष्यो जैसे उनके व्यवहार हैं। नीति कथाओं की एक विशेषता यह होती है कि एक तो प्रधान कथा होती है और कई-कई गौण एव अप्रधान कथाए उसके भीतर चलती हैं। संस्कृत के दो ग्रथ पंचतंत्र और हितोपदेश नीति कथा के उत्तम रत्न हैं। इनके अतिरिक्त बहुत सी नीतिकथा की पुस्तकें उपलब्ध होती हैं। तृतीय शताब्दि ई० पू० के भरहुत स्तूप पर कई नीति कथाओं के नाम आये हैं।[2]

१. पंचतंत्र

पंचतंत्र भारतीय नीतिकथा साहित्य का रत्नाकर है। पंचतत्र की रचना का मूल उद्देश्य राजकुमारों को नीति शास्त्र की शिक्षा देना था। महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति के तीन पुत्र थे। वे बडे ही उद्दंडी और मूर्ख थे। सम्राट की प्रबल इच्छा थी कि किसी प्रकार ये मूर्ख राजकुमार अदीर्घकाल मे

१. महाभारत आदिपर्व १।१०२,

'चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः ||'

२. मैकडोनल 'इंडियाज पास्ट' पृष्ठ ११७।

नीतिशास्त्र निष्णात हो जायें। यही कार्य पंचतंत्र के रचयिता पडित विष्णु शर्मा ने कर दिखाया। कहा जाता है उसने छः मास में ही उन राजकुमारों को नीति निपुण कर दिया था।

विश्व साहित्य को भारतीय साहित्य की यह एक महती देन है। पंचतंत्र की कहानियां बहुत-बहुत दूर की सैर कर चुकी हैं। इनके भ्रमण की कहानी स्वयं बड़ी रोचक है। पचतत्र का सबसे पहिला अनुवाद पहलवी भाषा में बादशाह खुसरू अनुशेरवॉ के हुक्म से ई० ५५० के लगभग हुआ। इसके पचास वर्ष पीछे ही इसका अनुवाद सीरियन भाषा में हुआ। सीरियन से अरबी में इसका अनुवाद हुआ और अरबी मे पहुँचते-पहुँचते इन कथाओं की ख्याति यूरोप के अन्तस् को छू गयी। फिर क्या था यूरोप की सभी मुख्य-मुख्य भाषाओं में इसके अनुवाद हुए। जर्मन विद्वान डा० विन्टरनित्ज के मतानुसार जर्मन साहित्य पर पचतत्र का विशेष प्रभाव पडा है। ईसप की कहानियां (Aesop's Fables); जो ग्रीस का प्रसिद्ध कथा-संग्रह है, और अरब देश की मनोरंजक कहानियों—'अरेबियन नाइट्स' की आधारभूत ये ही कहानियां हैं।[1] संस्कृत की इन कहानियां का संसार मे इतना अधिक प्रचार हुआ है कि ये विश्व-साहित्य का एक अग बन गयी हैं।

खेद है कि पंचतंत्र अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। आजकल उसके आठ परिवर्तित संस्करण प्राप्त होते हैं। इन सबके आधार पर आधुनिक विद्वान एफ० एडगर्टन का पंचतंत्र सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। आज पंचतंत्र में इसके नाम के अनुरूप पाचतत्र या भाग हैं। जिनके नाम है—१. मित्रभेद, २. मित्रलाभ, ३. संधिविग्रह, ४. लब्ध प्रणाश और ५. अपरीक्षितकारकम्। कई विद्वानों का विचार है कि आरंभ में इसके बारह भाग रहे होंगे। पर इस विवेचन के लिए यहां अवसर नहीं है।

२. हितोपदेश

नीतिकथाओं में पंचतत्र के पीछे 'हितोपदेश' का नाम लिया जाता

---

१. History of Sanskrit literature by WEBER.

Page 211—(Beast-Fable).

But the most ancient book of fables extant is the पंचतत्र. The original text of this work has, it is true, undergone great alteration & expansion & can't now be restored with certainty, but its existance in the sixth century A. D. is an ascertained fact, as it was then, by command of the celebrated Sassanian King Nushirvan (Reg. 531-579) translated into Pahlavi.

है। हितोपदेश की रचना बहुत कुछ पंचतंत्र के आधार पर हुई है। लेखक नारायण पंडित ने पुस्तक की प्रस्तावना में यह बात स्वीकार की है। 'पंचतंत्र तथा न्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते।' पंचतंत्र का आधार इतना अधिक है कि ४३ कथाओं में से २५ तो पंचतंत्र से ली गयी हैं। हितोपदेश में चार परिच्छेद हैं—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि। प्रथम दो परिच्छेद भी पचतंत्र से लिए हैं। भाषा सरल और सुबोध होने के कारण कोमल-मति विद्यार्थियों में हितोपदेश पंचतंत्र की अपेक्षा अधिक प्रिय है।

नीति कथाओं के विवेचन के पश्चात् हम संस्कृत में उपलब्ध लोक-कथाओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं जिनके साथ हिन्दी लोक-कहानियो की ओर बढ़ सकेंगे। वैसे तो नीति कथाओं की बहुत सी विशेषताएँ लोक-कथाओं में भी दिखलाई पड़ती हैं; पर दोनों में प्रमुख अंतर यह है कि नीति कथाएं उपदेश प्रधान होती हैं और लोक-कथाएं मनोरञ्जन प्रधान। प्राधान्य से ही यह नामकरण हुआ है। वरन् दोनों एक वस्तु के ही दो पहलु हैं और उसमें गभीर भेद अधिक नहीं है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि लोक-कथाओं के पात्र प्रायः मनुष्य ही होते हैं। नीति कथाओं की भांति पशु-पक्षी और जीव-जंतु नहीं होते। नीति कथाओं की कहिए या शिक्षा अथवा उपदेश प्रधान कथाओं की सर्वप्रसिद्ध कृति पंचतंत्र है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। मनोरंजन प्रधान कहानियों का ख्याति प्राप्त ग्रन्थ 'वृहत्कथा' है।

३. वृहत्कथा

कथा-साहित्य की दृष्टि से शुद्ध लोक-कहानियों का विशाल सग्रह 'वड्डकहा' (वृहत्कथा) है। यह मनोरंजन प्रधान कहानियों का प्राचीनतम संग्रह है। इसके लेखक महाराजा 'हाल' के सभाकवि 'गुणाढ्य' माने जाते हैं। मूल वृहत्कथा पैशाची प्राकृत में लिखी गयी थी। डा० व्यूलर का मत है कि वृहत्कथा प्रथम या द्वितीय शतो ईस्वी की कृति है। इसमें एक लाख पद्य थे। पर खेद है कि पैशाची की यह अमर कृति मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। अब केवल इसके तीन सक्षिप्त संस्कृत रूपांतर मिलते हैं।

१. नैपाल के बुद्ध स्वामी कृत वृहत्कथा श्लोक संग्रह
२. क्षेमेन्द्र विरचित वृहत्कथा मंजरी तथा
३. सोमदेव रचित कथा-सरित्सागर।

वृहत्कथा के इन संस्करणों मे 'कथा सरित्सागर' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ वास्तव में भारतीय कथा रूपी सरिताओं के लिए समुद्र है। इसमें

अति प्राचीन प्रचलित लोक-कहानियों का संग्रह है। कथा-सरित्सागर का रचनाकाल ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्व मध्य भाग है। इसका कथानक बड़ा पुष्ट है जिससे कथाकार की कुशलता का पता चलता है। सोमदेव काश्मीर के राजा अनन्त तथा क्षेमेन्द्र के समकालीन थे। वड्डकहा तथा उसके संस्कृत रूपान्तरों के अतिरिक्त सस्कृत में और भी अनेक कथा संग्रह प्राप्त हैं जिनमें रहस्यरोमांच एवं साहसिक कार्यों की प्रधानता है।

४. वेतालपंचविशतिका

इस कथा संग्रह मे २५ कहानियां का संग्रह है। इन कथाओ का मूल वृहत्कथा मंजरी तथा कथा सरित्सागर में मिलता है। ये २५ कहानियाँ पहेलियो के रूप मे कही गयी हैं। एक भूत उज्जैन के राजा विक्रमादित्य से इन पहेली कहानियो (बुझौअलों) को कहता है। ये कहानियां बडी मनोरंजक एवं कौतूहलवर्धक हैं। इस संग्रह का श्रेयः शिवदास नामक लेखक को है। 'बेताल पचीसी' इसका हिन्दी रूपान्तर है।

सिंहासन द्वात्रिंशिका अथवा द्वात्रिंशत्पुत्तलिका अथवा विक्रमचरित भी एक मनोरंजक कहानी-संग्रह है। इसकी प्रत्येक कहानो में धारानगरी के राजा भोज का वर्णन आता है। राजा विक्रम के सिंहासन की ३२ पुतलियां राजा भोज से एक-एक कहानी कहकर उड़ जाती हैं। ये वेतालपचविंशतिका की भाँति उत्कृष्ट बुद्धि विलास से पूर्ण नही हैं। इसका हिन्दी में अनुवाद "सिंहासन बत्तीसी" के नाम से हुआ है।

"शुक सप्तति" एक अधिक रोचक एव लोकप्रिय संग्रह है। इसका कर्ता अज्ञात है। इसमें ७० कहानियां संग्रहीत हैं। मदन सेन नामक युवक का अपनी पत्नी पर अत्यधिक अनुराग है। वह कार्यवश परदेश जाता है। पत्नी विरहविदग्धा है। शुक उसे रोज रात में एक-एक मनोरंजक कहानी सुनाता है। ७० कहानियों से ७० दिन व्यतीत होते हैं और इसके पीछे नायक लौट आता है।

इनके अतिरिक्त भी कुछ संग्रह हैं जिनका स्वल्प सा परिचय इस प्रकार है। मैथिल-कोकिल विद्यापति कृत "पुरुष परीक्षा" ४४ नैतिक और राजनीतिक कहानियों का संग्रह है। "कथार्णव" में चोरों और मूर्खों की ३५ कथाएँ दी गयी हैं। "भोजप्रबंध" भी एक स्फुट संग्रह है। इसके रचयिता १६वीं शताब्दी के बल्लाल सेन हैं।

कुछ कहानियां संसार की परिक्रमा करके देश-विदेश की मुद्रा से विभूषित

होकर लौटी हैं। संस्कृतज्ञ पंडितों ने फिर इन्हें सस्कृत परिधान दे दिया है। "अरेबियन नाइट्स" का "आख्ययामिनी" के नाम से जगद्बंधुपंडित ने संस्कृत में अनुवाद किया है। ग्रीस की ईसप की कहानियों का अनुवाद ईसबनीतिकथा नाम से नारायण बालकृष्ण ने प्रस्तुत किया है।

५. जातक

बौद्ध साहित्य में कहानियां प्रचुर परिमाण में पाई जाती हैं। बौद्ध कहानियों का संग्रह जातक नाम से विख्यात है। जातक कहानियां भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की रोचक कथाएँ हैं[1]। राजा-महाराजाओं से लेकर निरीह पशु-पक्षियों तक इन कहानियों के पात्र हैं। इनमे विशेषता यह है कि इन कथाओं को भगवान् बुद्ध देव ने स्वयं अपने मुखारविंद से अनुयायियों को सुनाया है। जब कभी कोई जिज्ञासा उत्पन्न हुई तो उसका उपशमन इन्हीं कहानियों द्वारा किया गया है। इन कहानियो में बोधिसत्व की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर बुद्धत्व की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। इन सभी कहानियो के मूल मे उपदेश या नीति निहित होती है। दूसरी विशेषता यह है कि ये कहानिया सरल, स्वाभाविक एव मानवीय परिस्थितियों से युक्त हैं। इनमे पचतत्र जैसी उलझन एव जटिलता नहीं है। कहानी बड़ी सरल, सुबोध है और साथ ही प्रभावोत्पादक भी है। इन कहानियों की प्राचीनता के विषय मे विद्वानों का मत है कि ये रामायण से भी पहले की हैं। "दशरथ जातक" की कहानी से यह बात सहज ही समझ आ जाती है। इतना ही नहीं भगवान् बुद्धदेव के समय शताब्दियों से जनता में प्रचलित आख्यान, परियों की कहानियां अथवा रोचक चुटकले भी धार्मिक रूप मे ढलकर अवदान में रूपान्तरित हो गये हैं।[2] जातक सख्या मे ५५० हैं। इनके अनुशीलन से बुद्ध के समय अथवा उससे भी प्राचीनकाल के भारतीय इतिहास का रमणीय चित्र मिलता है। जातको की भाषा पाली है।

जातक साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में "अपदान" (अवदान) भी लिखे गये हैं। ये आप्त पुरुष स्त्रियों की कहानियां हैं। इनमें भी जातकों की भांति भूत और वर्तमान दोनों ही जन्म की कथाएँ रहती हैं। इन दोनों मे अतर यह है कि जातकों मे तो भगवान् बुद्ध के जीवन की कहानियां हैं, जब

---

१. जातक की परिभाषा प्रो० एन० वी० तुंगर ने यह दी है "जातक नाम बोधिसत्तकथा" जातक संग्रह पृष्ठ ६ (निवेदनम्) पूना ओरियंटल सीरीज नं० ९२।

२. विशेष विवेचन 'एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन एन्ड ऐथिक्स' में मिलेगा।

कि अपदानो मे भिक्षुओ के उदात्तकर्मों के विपाकफल का वर्णन होता है[1]। ये उत्तम पुरुष में आत्मकथा के रूप में होते हैं। ये अवदान सस्कृत मे भी बौद्ध पडितों ने लिखे हैं। इनमें 'अवदानशतक' सबसे प्राचीन बताया जाता है। आर्यशूर की "जातक माला" में जातको की कथाएं पद्यरूप मे निबद्ध हैं।

६. जैन कहानियां

कथा-साहित्य की दृष्टि से जैन साहित्य बौद्ध साहित्य की अपेक्षा अधिक सम्पन्न है। जैन कहानियो मे तीर्थंकरो, श्रमणो एव शलाका-पुरुषों की जीवन-कथाएँ हैं जिनसे धर्म के सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण होता चलता है। इनमें धार्मिक दृष्टि को पुष्ट करने के लिए जैन कहानीकार साधारण कहानी की समाप्ति पर 'केवली' (मुक्ति के अधिकारी साधु) के द्वारा दुख-सुख की व्याख्या पूर्व जन्म के कर्म के आधार पर कर देता है। बस यहीं पर ये जातको से भिन्न हैं। जैन-कथाओं मे भूत-वर्तमान दुख-सुख की व्याख्या या कारण निर्देश के रूप मे आता है। वह गौण है। मुख्य है वर्तमान। जबकि बौद्ध जताकों में वर्तमान अमुख्य है और भूत प्रमुख है। वहां बोधिसत्व की स्थिति विगत काल मे ही रहती है। इनमे अनेक रूपक कहानिया भी हैं। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। एक तालाब है, उसमें खिले हुए कमल भरे हैं। मध्य में एक बड़ा कमल है। चार ओर से चार मनुष्य आते हैं और वे उस बड़े कमल को हथियाना चाहते हैं। प्रयत्न करते हैं परन्तु सफल नहीं होते। एक भिक्षु तालाब के किनारे से तो कुछ शब्द बोलकर उस बड़े कमल को प्राप्त कर लेता है। यह 'सूयगदम्' की रूपक कहानी है। इस रूपक के द्वारा यह समझाया गया है कि जैन साधु राजा के समीप सरलता से पहुँच जाता है।

इस प्राचीन कथा साहित्य से जिसका ऊपर वर्णन हुआ है, तत्त्व ग्रहण कर आगे के लेखको ने सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश में अनेक कहानिया खड़ी की हैं। अपभ्रंश के 'पउम चरित्र' (पद्म चरित्र) एवं भविस्सत्यकहा (भविष्यत्कथा) नामक पुस्तके कहानी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनमें अनेक उपदेशप्रद कहानियां उपलब्ध होती हैं। अधिक क्या कहा जाये कथाओ के समूह के समूह जैन आचार्यों ने रच डाले हैं जिनके द्वारा जैन धर्म का प्रचार भी हुआ है और धार्मिक सिद्धान्तों को बल भी मिला है।

---

१. अपादान की व्याख्या करते हुए प्रो० तुंगर ने लिखा है—"अपदान इमस्मिं अनेकेसं भिक्खूनं कतकम्पस्य विपाकफल वण्णना दिस्सति" । जातक संग्रह (निवेदनम्) पृष्ठ ७ ।

ख. आधुनिक भारतीय भाषाओं में लोक-कहानियां

हिन्दी में ऐसी कहानियां जो विशुद्ध लोक-कहानी की कोटि में आती हैं, असख्य हैं। कुछ लोक कहानिया जो व्यापक लोक-कहानियां की पुत्रियां अथवा सखिया हैं हिन्दी में मिलती हैं। उनके कई संग्रह प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'सूआबहत्तरी' 'बैताल-पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'तोता-मैना का किस्सा आदि' ऐसी ही प्रसिद्ध कहानियां हैं जो छप चुकी हैं। इनमें से प्रथम तीन का मूल तो सस्कृत की कहानिया हैं। हिन्दी की एक बड़ी रोचक कहानी गंगाराम पटेल और बुलाकी नाई' की यात्रा-कथा है जिसमें सात कहानियाँ चिपकी हुई हैं। बुलाकी नाई दैनिक व्यवहार मे कोई विचित्र घटना अथवा समस्या देखता है और गगाराम पटेल से कहता है। वह उसका उत्तर देता है और समाधान करता है। पाठक जानते हैं यात्रा आरंभ करते समय यह शर्त तै हुई थी कि प्रत्येक समस्या या पहेली का समाधान गंगाराम पटेल को करना होगा। बुलाकी नाई की प्रत्येक शका का समाधान जो बड़ा ही मौलिक एवं रोचक है पटेल साहब की दिव्य प्रतिभा के द्वारा होता है।

आधुनिक काल के आरभ से हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान उच्चकोटि के साहित्य निर्माण की ओर गया। क्या पद्य, गद्य में भी शैली परिष्कार भारतेन्दु के साथ ही आरंभ हुआ। खडी बोली के साहित्यिक भाषा मनोनीत हो जाने पर तो यह प्रवृत्ति और भी बलवती होती। गद्य का निर्माण और विकास हुआ और उसमें गंभीर साहित्यिक विषय अच्छी प्रकार लिये जाने लगे। ऐसे समय संभव था कि हिन्दी लोकसाहित्य को एक प्रबल आघात पहुँचता। परन्तु लोकवार्ता को यह कैसे सह्य था। उसकी बलवती प्रेरणा अपने मार्ग पर बराबर चलती रही। 'लोक-साहित्यकार ने अपनी प्राचीन परपरा कभी नहीं छोड़ी। लोक-कहानियों का आज भी वैसा ही मान है जैसा पीछे था। उनका महत्व आज भी कुछ कम नहा है। लोक-गीतकारों का कार्य अभी बराबर चल रहा है। लोक-गीतों का अध्ययन बतलाता है कि लोकमेधा ने नूतन परिस्थितियों को अपनाने मे कभी अवहेलना नहीं की। नई राजनीति का विहान हुआ तो उसने गाधी-गौरव गाया। रेलगाड़ी के आविष्कार के पीछे लोहमार्गगामिनी भी लोक-गीतों में धक्-धक् करती चली है। लोक-नाट्य लेखकों की लेखनी भी कुंठित नहीं हुई है। आज भी 'प्रह्लाद भगत', 'गोपीचंद भरथरी', 'हरिचद', 'नलदमयन्ती' और 'मोहनादे' आदि के उपाख्यान लोक-गायक सांगी के द्वारा जीवित हैं। लोकवार्ता साहित्य नवीन अवस्थाओं में भी एक नूतन वेग के साथ बढ़ रहा है। ध्यान देने की बात है कि शिष्ट साहित्यकार ने जिन कथाओं, कहानियों एवं आख्यानों को अर्घ्य

दिया है, लोकसाहित्यकार ने कदाचित् उनकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा। साहित्य की ये दोनों विधाएँ समानान्तर रूप से निरंतर बढ़ी हैं। हिन्दी मे लोकवार्ता साहित्य की यही सक्षिप्त पूर्वपीठिका है।

यों तो प्रत्येक देश की लोक-कहानियां अपने देश की जनता की सभ्यता और दैनिक जीवन का मुह बोलता चित्र होती हैं, परन्तु हरियाना क्षेत्र में हरियाने की लोक-कथाओं को वहां की जनता में एक विशेष महत्व प्राप्त है।

हरियाना वह प्रदेश है जहाँ दूध-घी के नद बहते हैं। यहाँ के हरे-भरे खेतो मे ही हरियाने की लोक-कथाओ के पात्र उभरते हैं। इन्हीं खुले खेतों और खुली हवाओं की छाप हरियाने की लोक-कथाओं पर स्पष्टतया अंकित मिलती है। अभी तक इनके संग्रह का कार्य नहीं के बराबर ही हुआ है। श्री राजाराम शास्त्री जी ने इस ओर कदम उठाने का कुछ प्रयास किया है परन्तु उन्होने उनका मूल रूप ही उड़ा दिया है और प्रचलित खडी बोली में केवल नौ कथाएँ अपने 'हरियाने की लोक-कथाएँ' नाम के संग्रह मे पाठकों के सम्मुख रखी हैं[1]। परन्तु हम इसे हरियाना के जन-जीवन की झांकी नहीं कह सकते और न ही इससे हरियाना लोक-सस्कृति के दर्शन होते हैं। इनमें लोकवार्ता का सर्वथा अभाव है, अपितु यह कहना ठीक होगा कि इनका सकलन लोकसाहित्य की दृष्टि से किया हुआ नहीं प्रतीत होता। इस संग्रह की अतिम कहानी 'जादूगर और किसान' है जिसमे सुरुचि के लिए कोई स्थान नहीं हैं। हमारी समझ मे अभद्रता और अश्लीलता को लोकसाहित्य के नाम पर पाठकों के सामने रखना साहित्य की निकृष्टतम् सेवा है और न लोक का यह तात्पर्य कदापि रहा है कि जो हीन है, अभद्र है और अश्लील है वह सब लोक है। हमारी सम्मति मे यह संकलन हरियाने के लोकसाहित्य का प्रतिनिधित्व किसी प्रकार भी नहीं करता।

अहीर कालेज, रेवाड़ी की फिनिक्स पत्रिका के हिन्दी स्तम्भ मे १९५० से लेकर कई लोक-कथाएँ प्रकाश मे आई हैं। इन लोक-कहानियो की भाषा जनपदीय है। 'राजा भोज मूसलचन्द' नामक एक कहानी उल्लेखनीय है जिसमें रोचकता है और जिसमे लोक-कहानी के तत्वों की सुरक्षा हुई है[2]।

इन प्रयत्नों के अतिरिक्त हरियानी लोक-कहानी की ओर किसी का ध्यान नहीं गया प्रतीत होता। लेखक ने परिश्रम एवं अध्यवसाय से हरियानी की लगभग ९० कहानियाँ लेखनीबद्ध की हैं। ये तो कथा रत्नकार के कुछ घोंघे

१. अत्माराम एन्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली से प्रकाशित। २. सन् १९५५ के वायलूम ६ संख्या २ में पृष्ठ १० पर प्रकाशित।

ही कहे जा सकते हैं । अभी लोक-कथाओं का एक विपुल कोष गाँव की वृद्ध-वृद्धाओं के कंठ में विराजमान है जिन्हें कर्णलासीन करना एक पुण्य का कार्य है । लेखक ने अपनी कहानियों को प्रायः उसी बोली में लेने का प्रयत्न किया है जिसमे ये सुनाई गयी हैं । पूरी कोशिश की गयी है कि भाषा के उच्चारण एवं व्याकरण की पूरी-पूरी रक्षा हो सके और वही लहजा भाषा में आ जाये । भाषा ठेठ जनपदीय आ सके इसके लिए ध्यान रखा गया है कि कहानियाँ उन लोगों से ली जाये जो शिक्षा की परिधि से बाहर पड़े हैं जिन्हें काला अक्षर भैंस बराबर है । अतः हाली, पाली (ग्वाला) खेत रखानेवाले और घसियारे आदि इस सामग्री के स्रोत रहे हैं । कई कथकों की ऐसी प्रकृति होती है कि जब वे कहानो सुनाना आरभ कर देते हैं तो इसके कंठ के पट खुल जाते हैं । ये गांडोव के सदृश अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं ओर श्रोताओ को अपने साथ विस्मय तथा कौतूहल में डालते चलते हैं । दूसरा कोई स्वर यदि सुनाई पड़ता है तो 'हुकार देने वाला' का जो बड़ा जरूरी होता है । यह हुकारा ही कथक को मंजिलें तै करने के लिए प्रोत्साहित करता है । इन कहानियों का विस्तृत विवेचन इस अध्याय मे आगे दिया गया है । यहाँ यह असंगत न होगा कि हम साथ ही साथ अन्य भारतीय भाषाओं के लोक-कहानी साहित्य पर भी दृष्टिपात कर ले ।

कहा जाता है कि लोक-कहानियों का जितना सुन्दर एवं सम्पन्न संग्रह बंगला लोक-कथा-अन्वेषकों ने किया है उतना अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं हुआ । डा० दिनेशचंद्र सेन ने बंगला लोकसाहित्य का बड़ा उपकार किया है । उन्होंने अपनी खोज मे बहुत सी लोक-कथाएँ ली हैं और उनका बड़ा गंभीर अध्ययन किया है । श्री मन्मथनाथ गुप्त का भी एक संग्रह 'बंगला की लोक-कथाएँ' आत्माराम एन्ड सस के यहाँ से प्रकाशित हुआ है ।

राजस्थानी भाषा को भी बड़े अध्यवसायी साहित्य-सेवी मिले हैं जिन्होंने राजस्थानी लोक-गीत गाथाओं का ही बड़ा प्रामाणिक संकलन नहीं किया है, लोक-कहानियों के क्षेत्र मे भी वे पीछे नहीं हैं । प्रो० सूर्यकरण पारीक ने 'राजस्थानी वाता' नाम से राजस्थान में प्रचलित लोक-कहानियों का सुन्दर संग्रह किया है जो प्रकाशित हो चुका है इस संग्रह को अपनी विशेषता यह है कि लेखक ने सुनाने वाले से जैसा सुना है उसे उसी रूप मे दे देने की चेष्टा की है । अतः इस संग्रह में एक अनोखी मधुरता एव अकृत्रिमता आ गयी है ।

गुजराती लोकसाहित्य के अथक अन्वेषक श्री झवेर चंद मेघाणी ने गुजराती लोकसाहित्य को अमर बना दिया है । इनका प्रयत्न स्तुत्य है एवं अनुकरणीय है । 'सौराष्ट्रनी रसधार' तथा 'सोरठी बहार वटिया' में तो

इन्होने इन कहानियों का विपुल सग्रह दिया है। श्री प्रवासी लाल वर्मा की 'सौराष्ट्र की लोक-कथाएं' 'आत्माराम एन्ड सस दिल्ली' के यहां से अभी प्रकाशित हुई है।

व्रजभाषा क्षेत्र में तो 'व्रजसाहित्य मडल' की स्थापना से जीवन आ गया है। व्रज साहित्य मडल तथा डा० सत्येन्द्र जी के प्रयत्नो से व्रजलोक साहित्य का बड़ा उपकार हो रहा है। डा० सत्येन्द्र जी के प्रयत्न से 'व्रज की लोक-कहानिया' प्रकाश में आई। यह संग्रह बड़ा उपयोगी है। भाषाशास्त्र तथा लोकवार्ता दोनों दृष्टियों से इसका बड़ा महत्व है। इसमे सुयोग्य लेखक ने (सग्रहकर्ता ने) ग्रामीण व्रजभाषा का रूप दिया है। समस्त कहानिया ग्रामीण व्रजभाषा मे हैं। कथाओं के चयन में व्यापकता है। सभी प्रकार की कहानिया इसमे सग्रहीत हैं। एक खोजपूर्ण भूमिका ने पुस्तक का मूल्य और अधिक बढ़ा दिया है। कहानियों का विभाजन भी बड़ी मौलिकता के साथ किया गया है। 'व्रज की लोक-कथाए' नाम से आदर्श कुमारी यशपाल का एक सग्रह आत्माराम एन्ड संस के यहां से प्रकाशित हुआ है। इन कहानियो की भाषा खड़ी बोली है।

श्री कृष्णानन्द जी गुप्त के सत्प्रयत्नो से लोकवार्ता नामक पत्रिका में बहुत सी बुन्देलखन्डी लोक-कहानियां छपी थीं। शिव सहाय चतुर्वेदी की 'बुन्देलखन्ड की कहानियां' पुस्तक रूप मे छप चुकी हैं। ये कहानियां खड़ी बोली मे लिखी गयी हैं। इस पुस्तक की भूमिका बडी गभीर एव विवेचना-पूर्ण है।

लोक-साहित्य प्रेमी डा० वेरियर एलविन ने महाकोशल प्रदेश की कहानियो का एक संग्रह 'फोक टेल्स फ्राम महाकोशल' नाम से प्रकाशित कराया है। इस संग्रह की कहानियां अग्रेजी भाषा मे हैं। भोजपुरी के अनन्य उपासक डा० कृष्णदेव उपाध्याय जी ने कहानियो का एक विपुल संग्रह किया है, परन्तु वह अभी अप्रकाशित है।

आत्माराम एन्ड सस प्रकाशन दिल्ली से अनेक छोटे-छोटे लोक-कथाओं के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन सग्रहों मे 'पंजाब की लोक-कथाए' लेखक पंछी तथा बेदी 'मालवा की लोक-कथाए' श्री श्यामपरमार 'अवध की लोक-कथाएं' श्री शिवमूर्ति सिंह वत्स तथा 'छत्तीसगढ़ की लोक-कथाएं' श्री चंद्र कुमार उल्लेखनीय संग्रह है।

ग. हरियाने की लोक-कहानियां—विविध रूप

पीछे हमने कहा है कि हरियाने मे लोक-कहानियां प्रचुर परिमाण में

मिलती हैं। बूढली स्त्रियां और बुड्ढा किसान ही नहीं बालक भी इनके द्वारा अपना मन बहलाव करते हैं। कहानियों का विषय इतना व्यापक होता है कि जीवन की समस्त झांकी पाठक को इनमें मिल जाती है।

रात्रि में वृद्धाएं सुकोमलमति बालक का मनोरंजन इन्हीं छोटी कहानियों को कहकर किया करती हैं। ग्रामीण भाट या बूढ़ा किसान भी 'पूर' पर अग्नि सेंकते हुए श्रोताओं को नाना प्रकार के आख्यान सुनाया करता है। बालकों की मित्र-मडली मे भी कहानिया बड़ी प्रिय होती हैं। इसके अतिरिक्त कथाएं व्रतो एवं पर्वों पर सुनाई जाती हैं जिसमें व्रत विशेष का फल बताया जाता है अथवा किसी पर्व त्योहार का महात्म्य वर्णित होता है। स्त्रियों के कई व्रत तो ऐसे हैं जो कथा सुनने के पीछे ही समाप्त होते हैं। इस प्रकार इन कथा-कहानियों के विषय अनेक हुआ करते हैं और उनके भेद भी बहुत से हो सकते हैं।

प्रचार के दृष्टिकोण से जैसा कि पीछे इंगित किया गया है इसके भी दो भाग किये जा सकते हैं—एक स्त्री-समाज मे प्रचलित और दूसरे पुरुष समाज में प्रचलित। स्त्री-समाज में प्रचलित कहानियो के भी दो भेद हो जाते हैं—सुनने सबंधी लोक गद्यसाहित्य और सुनाने संबंधी लोक गद्य-साहित्य। प्रथम विभाग मे व्रतों की कहानियां आयेंगी और दूसरे में बच्चों की कहानियां। पुरुषो के गद्य-साहित्य में कई अभिप्राय दृष्टिगोचर होते हैं अर्थात् कई पहलुओं से इन्हें जांचा जा सकता है। यथा—मनोरंजन का अभिप्राय, दूसरे उपदेश या दृष्टांत का अभिप्राय, तीसरे, घटनाओं का वर्णन तथा चौथे, कथन में वाक चातुर्य। लोक-कहानी का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है:—

१. मनोरंजन प्रधान
२. उपदेश प्रधान
३. व्रत सम्बन्धी
४ महात्म्य सूचक
५. वर्णनात्मक तथा
६. चुटकले।

कहानी के उद्देश्य की दृष्टि से इसे हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—१. मनोरंजन के उद्देश्य, २. उपदेश या दृष्टांत का उद्देश्य, ३. धार्मिक तत्व की व्याख्या यथा व्रत और महात्म्य की कहानियां। इस विषय में श्री कृष्णानंद गुप्त का मत बड़ा समीचीन है। उसे देख लेना अप्रासांगिक न होगा। सभी प्रकार की कहानियों की उत्पत्ति के मूल मे

मनुष्य की धार्मिक प्रवृतियां ही अधिकतर कार्य करती रही हैं। पुराण पुरुष के जीवन मे मनोरजन के लिए बहुत कम स्थान था। इसके अधिकाश कार्य एक विशेष प्रकार के धार्मिक आवेग से प्रेरित होते थे। हाँ, आमोद-प्रमोद द्वारा मन को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक है[1]। इस-स्थापना से कहानी के दो रूप धार्मिक तथा मनोरजन स्पष्ट हो जाते हैं। श्री गुप्त जी का मत गभीर है और लोक-कहानी के वर्गीकरण की दिशा खोल देता है।

आदिकाल मे मनुष्य की प्रेरक दो भावनाएँ रही होगी धार्मिक भावना तथा भीति की भावना। आदि पुरुष के अधिकाश कार्य आस्था एव विश्वास से अभिमडित थे। उसने प्रकृति की क्रियाओ को एक धार्मिक भाव से देखा और उसके प्रति धार्मिक अभिव्यक्ति दी। दूसरे पक्ष में उस पुराने युग में जब मनुष्य जंगलों मे रहता था उसके पास रहने के लिए कोई स्थान न था। वह शीत के भय एवं हिंसक पशुओं के भय से अग्नि जलाकर रात-रात भर सिमटा हुआ उसके पास बैठता था। तभी वह रिक्त क्षणों मे अपने मन बहलाव के लिए कुछ वाणी का प्रयोग करता होगा। यह वाणी का प्रयोग ही कहानी का आदि रूप रहा होगा। इस वाणी प्रयोग मे उसने अनुभव भी व्यक्त किये होंगे जो भविष्य के लिए उपयोगी एव शिक्षप्रद बन गये होंगे। इस प्रकार कहानी का आदि रूप धार्मिक एवं मनोरंजनात्मक तत्वो के ताने-बाने से बुना गया। उसमे प्रच्छन्न रूप से अनुभव, शिक्षा, उपदेश एवं दृष्टांत भी लगा रहा। इस प्रकार लोक-कहानी के तीन ही भेद हो सकते हैं:—

१. धार्मिक तत्वो से युक्त कहानिया, जिनमे व्रत या महात्म्य कथाएँ आयेंगी,
२. मनोरजनात्मक तत्वों से युक्त तथा
३. उपदेशात्मक तत्व मूलक।

पर यह विभाग त्रुटिरहित होते हुए भी अति संक्षिप्त है जिसमें उतनी स्पष्टता नही है जितनी अपेक्षित है। अतः हम हरियाना प्रदेश से प्राप्त लोक-कहानियों के विस्तृत विश्लेषण के लिए उन्हें निम्नलिखित वर्गों में बांटकर अध्ययन करेंगे। यह वर्गीकरण इस प्रकार हैं—

१. मनोरंजनात्मक, २. उपदेशात्मक, ३. व्रतात्मक, ४. देवविषयक, ५. पौराणिक, ६. साहस एवं शौर्यपूर्ण, ७. ऐतिहासिक, ८. कौशलपूर्ण, ९. अलौकिकतापूर्ण, १०. सामाजिक, ११. बुझौवल, १२. चुटकले, १३. लघुछंद कहानी।

---

१. शिवसहाय चतुर्वेदी द्वारा संग्रहीत "बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियां" संग्रह की प्रस्तावना जिसे पं० कृष्णानंद जी गुप्त ने लिखा है।

१. मनोरंजनात्मक कहानियाँ

संसार भर की लोक-कहानियों में सामान्यरूप से एक तत्व बड़ा प्रधान होता है और वह तत्व है मनबहलाव का। बिना मनोरंजन अथवा मनबहलाव के कहानी आगे नहीं बढ़ती। उसमें आनंद की मात्रा अवश्य होनी चाहिए। यदि कोई कहानी रोचक नहीं, उसमें दिलचस्पी पैदा करने वाले तत्व नहीं, उससे श्रोता का विनोद नहीं होता तो चाहे वह जो कुछ हो पर निश्चय ही वह (लोक) कहानी नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि कहानी को मनोरंजनात्मक अवश्य होना चाहिए। पर ध्यान रखने की बात है कि यह मनोरजन बाल-शिशु को 'झुंझनावादन' की अव्यक्त मधुर ध्वनि से मिलने वाले रजन जैसा कदापि नहीं होता। कहानी के रंजन मे सार्थकता की मात्रा रहती है। यही इसे लोक के लिए उपयोगी बनाती है।

हरियाने से प्राप्त लोक-कहानियों मे व्रत सबंधी, महात्म्य प्रदर्शक तथा कुछ अंश तक देव-विषयक कहानियों को छोड़कर सर्वत्र, आनंद की प्रवृत्ति मिलती है। किसी कहानी को लिया जाय पाठक या श्रोता को अद्‌भुत आनन्द आयेगा। ऐसी कहानियों के विधान मे अस्वाभाविक वस्तु वर्णन अपेक्षित होता है। यही आनंद का उत्स होता है और मनोरजन का जनक होता है। हमारे सग्रह में दो पहलवानों का फैसला[1] वाली कहानी रोचक एवं मनोरंजक है। अद्‌भुत परिस्थितियों मे कहानी आगे बढ़ती है। पहलवान फैसला कराने के लिए खेत पर जाती हुई रुटियारी की सहायता मांगते हैं, वह अपने टोकरा में लड़ने के लिए स्थान देती है, आगे उसका लड़का जो चार ऊँट चराता होता है अपनी चादर में पहलवान और ऊँटों को बांधकर भाग जाता है। एक चील आती है और चादर की गांठ को पंजे में दबाकर उड़ जाती है और वे सब एक राजकुमारी की आँख में पड़ जाते हैं। वह उन्हें एक-एक करके बाहर निकालती है। मुकदमा राजा की कचहरी मे पेश होता है आदि-आदि। इस कहानी की वस्तु असंभवनीय तंतुओं से निर्मित हुई है और श्रोताओं का मनोरंजन करती है। इसी प्रकार की दूसरी कहानी हमारे संग्रह की 'लखटकिया' की कहानी है जिसमें एक मनोरंजक वातावरण मे कहानी बढ़ी है। 'व्यापारी साहूकार' की कहानी भी अद्‌भुत कार्यों से युक्त है[2]। 'बुलाकी नाई और गगाराम पटेल' निजी सग्रह की कहानी भी श्रोताओं को कुछ कम विनोद प्रदान नहीं करती है। राजाराम शास्त्री के सग्रह की 'चिपकमहादेव' इसी प्रकार की कहानी है।

---

१. यह कहानी हमारे संग्रह की ४८वीं कहानी है। २. ये कहानियाँ क्रमशः हमारे संग्रह में ३६ और २८वें स्थान पर हैं।

२. उपदेशात्मक कहानियाँ

दूसरे प्रकार की कहानियाँ उपदेश प्रधान हैं। ये कथाएँ उस युग का स्मरण कराती हैं, जब विद्या एव शिक्षा ग्रहण करना अति कठिन था और इन्हीं कथाओ पर जनसाधारण की शिक्षा निर्भर थी। हम पहले कह आये हैं कि सार्थक (शिक्षाप्रद) मनोरंजन ही कहानी की आत्मा है। इस प्रकार मन बहलाव एवं मनोरजन मे भी एक तत्व प्रच्छन्नरूप से विद्यमान रहता है और वह है शिक्षा या उपदेश। प्रत्येक कहानी में जैसे मनोरंजन तत्व रहता है और कहानी को आगे खिसकाता है उसी प्रकार उपदेश भी साथ लगा रहता है। वह उपदेश दृष्टांत रूप में श्रोता के सामने आता है। विनोदशील तत्वों से लिपटा हुआ यह उपदेश श्रोता पर बड़ा गहरा प्रभाव छोड़ता है। आचार्य मम्मट ने काव्य के प्रयोजन बतलाते हुए जो कहा है 'कान्ता सम्यततयोपदेश युजे'। यह लोक-कथा साहित्य पर पूर्णतया घटता है। यहाँ शिक्षा या उपदेश देने के लिए डाट-डपट की जरूरत नहीं है। सुनिए और सीखिए बस यही कहानी है।

जैसे कोई कहानी (व्रतात्मक कहानियों को छोड़कर) ऐसी नहीं होती जो मनोरंजन न करती हो उसी प्रकार कोई ऐसी भी लोक-कहानी नही होती जो उपदेश न देती हो। पशु-पक्षी, जीव-जंतुओ की सभी कहानियाँ इस विभाग मे आयेंगी। इन्हें अंग्रेजी में फेबिल' (नीतिकथा) कहते हैं। यूरोप में 'ईसप की फेबिल्स कथाएं' सुप्रसिद्ध हैं। हमारे यहाँ इन्हें पचतंत्रीय कहानियाँ कहते हैं। हमारे निजी हरियानी लोक-कहानी संग्रह में 'हस और कौआ' की कहानी बड़ी उपदेशप्रद है। किस प्रकार धूर्त लोग सज्जनों को अपने चंगुल में फँसा लेते हैं। यह शिक्षा इस कहानी से मिलती है। जाटणी की चतुराई (निजी सग्रह) की कहानी विपत्ति मे धैर्य धारण की शिक्षा देती है। अबलाओं के धैर्य एवं साहस का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। 'सिंह पछाड़ गीदड़' (निजी संग्रह) की कहानी भी शिक्षाप्रद है। 'डायन पत्नी' की कहानी में तो विश्वजनीन उपदेश 'जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय' का बड़ा रोचक आदर्श दिखाया गया है। इन कहानियों की विशेषता यह है कि इनके बोल इस प्रकार मन में उतरते हैं कि भुलाए नहीं भूलते।

३. व्रतात्मक कहानियाँ

तीसरे प्रकार की कहानियाँ वे हैं जिन्हें व्रत अथवा महात्म्य की कहानी कहा जायेगा। ये कहानियाँ महिलाओं से सम्बन्धित हैं और इनका प्रचार महिलाओं में ही है। इन कहानियों का उपयोग या तो व्रत की समाप्ति पर

होता है या इनमें किसी व्रत या पर्व का महात्म्य वर्णित होता है। हरियाने मे इनकी संख्या बहुत है। इनमे धार्मिक कथाएँ भी आ जाती हैं। यथा—सत्यनारायण की कथा तथा शिव-पार्वती विवाह कथा आदि। इस प्रदेश में मिलने वाली व्रतादि सम्बन्धी कहानियों के नाम ये हैं:—१. करवा चौथ व्रतकथा, २. आहोई आठेव्रतकथा, ३. तिलकुटी के व्रत की कथा, ४. नागपचमी की कहानी, ५. ओघ द्वादशी की कहानी, ६. भैया दोयज की कहानी, ७. ऋषि पांच्चे की कहानी, ८. भैया पांच्चे की कहानी, ९. रविवार व्रत की कहानी, १०. शनिवार व्रत की कहानी। इनके अतिरिक्त हमे कुछ महात्म्य सम्बन्धी कहानियाँ भी मिली हैं—शिव चतुर्दशी व्रत महात्म्य तथा गाज वांधने का महात्म्य आदि। व्रत-कहानियाँ अभी और भी शेष होंगी। इनमे, तिलकुटी के व्रत की कथा मे व्रत का फल पुत्र को मिलता है जो अपनी माता से झगड़ा करके परदेश चला जाता है और अपनी माता से दिये हुए तिलो की बाड़ लगाकर 'अवा' में से जीवित बच जाता है और राजा बनता है। लोककहानियों मे कई स्थानो पर 'जौ' इसी प्रकार पुत्र की रक्षा करते हैं जैसे इस कहानी में बुढ़िया के पुत्र की रक्षा तिलों से हुई है।

यहाँ हम एक कथा देते हैं जो 'गाज महात्म्य' से सम्बन्धित है, इससे इन कथाओं की प्रवृत्ति जानी जा सकेगी :—

एक राजा था। उसकी पत्नी के बच्चे जीते नहीं थे। भाद्रपद में रानी ने प्रथम गर्जना पर कहा—हे गाजमाता! मैं तेरा तागा बाँधती हूँ और सवा मन का रोट करूँगी यदि मेरे जीता-जागता बालक होगा। उसके दो पुत्र हुए। पर वह अपने वचन को भूल गयी। पुत्रवती होने का गर्व भी उसें हो गया था। एक दिन बहुत गर्जना हुई। अंधेरी छा गई। राजा के दोनों छोरे आंगन में खेल रहे थे। 'गाजमाता' उन्हें उठा ले गई। राजकुमारों को सर्वत्र ढूंढा गया लेकिन कहीं पता न चला। पंडित बुलाये गये। 'उन्होंने शोधकर बतलाया कि रानी ने गाजमाता के लिए सवामनी रोट नहीं दिया है। यदि राजा दोनो राजकुमारों के नाम पर गाजमाता को सवा-सवा मनी रोट दें तो दोष दूर हो जाये और पुत्रों की प्राप्ति हो। राजा ने ऐसा ही करने का संकल्प किया। फिर बादल घुमड़े और अंधेरी करके उन बच्चों को छोड़ गये। खूब खुशी हुई। राजा ने अढ़ाई मन के रोट बाँटे और ब्रह्म-भोज किया। राजा ने कहा, "पहले जैसी किसी को ना हो और पाछे जैसी सब का ही को हो।' उस दिन से गाजमाता की अधिक मान्यता होने लगी। विधि = भाद्र पद लगते ही प्रथम गर्जना पर स्त्रियाँ कच्चे सूत की कूकड़ी बादल को

दिखाकर उसके कच्चे तागों की डोर गले में पहन लेती हैं। अनन्त चतुर्दशी के दिन उसे खोला जाता है। जो स्त्रियाँ अनन्त की पूजा करती हैं वे अनन्त चतुर्दशी को पहिले बधे धागे को खोलती हैं और नया धागा पहनती हैं। कथा सुनी जाती हैं।

४. देव विषयक कहानियाँ

चौथे प्रकार में देव विषयक कहानियाँ आती हैं। इनमें देवताओं को पात्र बनाया जाता है। विशेषता यह है कि देवता भी मानवी रूप में आये हैं। उनके कार्य भी मानवी कार्य जैसे हैं। बस उन पर देवतापने की छाप होती है। 'हनुमान जन्म की कहानी', 'गौतमरिखी और इन्दर महाराज' और "लक्ष्मी बड़ी या भाग्य" आदि (निजी संग्रह) कहानियाँ इस वर्ग में आयेंगी।

पौराणिक कहानियों से इनमें अन्तर यह है कि पौराणिक कहानियों के चरित्रों के विषय मे यह विश्वास होता है कि वे कभी जीवित थे। वर्णित पात्रों के निश्चित नाम होते हैं और स्थानों के नाम भी दिये जाते हैं किन्तु इन देव विषयक कहानियों में चरित्र देवत्व से अभिमण्डित रहते हैं। 'भाग्य का खेल' नामक कहानी में बेमाता (विधाता) की सार्वभौमसत्ता का दिग्दर्शन कराया है। उसके आगे रावण जैसे बलशाली सम्राट् भी कुछ नहीं हैं। (यह कहानी राजाराम शास्त्री के संग्रह में दी हुई है।) इस कहानी का रहस्य इन पंक्तियों में है :—

> वेहमाता के अक्षर ना टलैं, टलैं रावण के खेल।
> रही कंवारी डूमनी, सिर में घालै तेल॥

५. पौराणिक कहानियाँ

पांचवीं कोटि में वे कहानियां आती हैं जिनमें पुराणों में वर्णित राजा, महाराजा अथवा किसी पौराणिक चरित्र को लेकर कहानी कही जाती है। ये कहानियां पौराणिक कथा कहलाती हैं। इन कहानियो के चरित्रों में कुछ अलौकिकता का पुट आ जाता है और कुछ अतिरंजना का अंश रहता है। वर्णित पात्रों के नाम दिये जाते हैं। "कृष्ण सुदामा" की कहानी इसी प्रकार की लोक प्रसिद्ध कहानी है। "राजा नल की कथा" (निजी सग्रह) एक पौराणिक वृत्त को लेकर चली है। इसी प्रकार की दूसरी कहानी हमारे संग्रह में 'राजा-रघु की कथा' के नाम से है। इसमें हंस के द्वारा अमरफल देना, राजा, रघु की तपस्या की कीर्ति तथा ब्राह्मण को क्षमा करने का वर्णन है।

"राजा भोज की कहानी—३ जन्मों की" भी एक पौराणिक कहानी है। (निजी संग्रह) लोक प्रसिद्ध "राजा अम्ब की कहानी" और "वीर विक्रमाजीत" की कहानियां अनन्त काल से लोक की वस्तु रही हैं। इनमें व्रत के लिए कष्ट सहन की प्रवृत्ति अधिक रहती है। राजा अम्ब की कहानी का सार इस दोहे मे समाया हुआ है :—

"कित अम्बा कित आमली, कित सरवर कित नीरा
ज्यों-ज्यों पड़ती आफदा, त्यों-त्यों सहै सरीरा।"

वीर विक्रमाजीत का परदुःखभंजनहार विशेषण उसके चरित्र की उदात्तता एवं प्रणपालकता का द्योतक है। इन चरित्रों में सामान्य जनता को आदर्श पुरुषों के दर्शन होते हैं।

६. साहस और विक्रम की कहानियाँ

छठा प्रकार साहस एवं शौर्य की कहानियों का है। इन कहानियो को "जान जोखों की कहानी" भी कहते हैं। अंग्रेजी में इन्हें "एडवेंचरस् टैल्स्" कहते हैं। इनमें बुद्धि चातुर्य के साथ जान को हथेली पर रखने का साहस प्रदर्शित किया जाता है। इनमें अद्‌भुत कर्तव्य की प्रधानता होती है। इन कहानियों के पात्र होते हैं—दूत, भूत, डायन और दाने (दानवः) आदि। इनका उद्देश्य श्रोताओं में साहस एवं शौर्य भावना भरना होता है। घोर आपत्काल मे भय तथा घबड़ाने से नहीं, रोदन एवं विलाप से नहीं अपितु अदम्य साहस से काम चलता है। यह इनका प्रतिपाद्य विषय होता है। ये कहानियां बच्चों के लिए नहीं होतीं। युवकों एवं जीवटों के स्नायुजाल में रक्त संचार करना इनका उद्देश्य होता है।

हरियाने में उपरोक्त कहानियों का बाहुल्य है। वास्तव में, हरियानी समाज को छिछले रोमांस पसन्द नहीं हैं। हरियाने की प्रत्येक गतिविधि में जीवन है। उनका प्रत्येक कार्य साहस और हिम्मत का प्रतीक है। ऐसे समाज में शौर्य-वीर्यपूर्ण कहानियों की प्रचुरता का होना वाछनीय है। "अनबोलते राणी" तथा "राणी महकावली (निजी संग्रह) कहानियों में नायक अपने अलौकिक साहस एवं उत्साह से अपनी मनोवांछित नायिका की प्राप्ति करता है। "रानी महकावली" कहानी का कथा पट तो अनेक साहस एवं शौर्यपूर्ण कृत्यों से निर्मित हुआ है। "मूर्खां की कहानी", "लखटकिया की कहानी", तथा "हां हां" की कहानी एक ही कहानी हैं जो इन नामों से हरियाने में प्रचलित है। नृशंस दानवों के यहां से "फूल" एव "लाल" (रत्नविशेष) लाना किन्हीं-किन्हीं "मां के लालों" का काम है। दाने के प्राइवेट कक्ष में मानव का

पहुँचना और दाने का मारना क्या कुछ कम साहस की बात है। ऐसी ही परिस्थितियो मे लखटकिया अपने नाम को सार्थक करता है और लोकोत्तर साहस का परिचय देता है। इतना ही नहीं, हरियाने के कहानीकार ने तो छोरियो तक को दानो के 'नाक और कान' काटते दिखाया है। "लाल सिंह और हीरभदे" की कहानी में (निजी संग्रह), जो हरियाना प्रदेश की प्रमुखतम कहानियो मे से एक है, यह अपूर्व शौर्य नायिका हीरभदे का है। "लाल सिंह" का चरित्र कुछ फीका रहा है। "एक दाने की कहानी" (निजी संग्रह) में तो राजा के चार पुत्र साहस के अवतार दिखाये हैं। साहस उस स्थान पर द्विगुणित हो जाता है जब कि एक राजकुमार अपने भाई की मृन्मय अवस्था को देखता है और एक अपूर्व साहस के साथ उस दाने को मारने के लिए उत्साहित होता है जिसने उसकी भौजाई को मक्खी बना लिया है। सुप्रसिद्ध कहानी "राजा नल की कथा" में (निजी संग्रह) नल "पासे" तथा "लाल" को एक लोकातीत साहस से प्राप्त करता है। इस प्रकार हरियाने का लोकमानस, शौर्य एवं साहस की कहानियों से व्याप्त है।

७. ऐतिहासिक कहानियाँ

सातवीं कोटि उन कहानियो की है जिनमें ऐतिहासिक पुरुषो का वर्णन आता है। ये ऐतिहासिक पात्रों के ऊपर बनी कहानियां हैं। अतः ऐतिहासिक कहानियां कहलाती हैं। इस प्रकार की एक कहानी "बीरभदे" हमारे संग्रह मे है। इस कहानी मे बादशाह अकबर के सेनापति शेर खां के द्वारा राजपूत रमणी वीरमती के सतीत्व की परीक्षा ली गई है। वीरमती बहादुर जसवत सिह की धर्मपत्नी हैं। छुट्टी के ऊपर तकरार होती है। वीरमती अपने सत से हिन्दू महिलाओ का मान रखती है।

८. कौशलपूर्ण कहानियाँ

आठवां प्रकार कौशल की कहानियों का है। इनमें मानवीय चतुराई का उल्लेख रहता है। 'बनिया और चोर की कहानी' में (निजी सग्रह) किस प्रकार एक बनिया अपने वाक्‌चातुर्य से घर में घुसे चोरों को पकड़वा देता है और अपने धन की रक्षा करता है। 'काजी-मुल्ला चोर' इस कहानी का मर्म है। 'बीरबल की हुस्यारी' के बहुत से योग (नुस्खे) इस प्रकार की कहानियों के अंग बनते हैं। 'मूर्खा की कहानी', जिसका ऊपर वर्णन हुआ है, बुद्धि-चातुर्य की कहानी कही जा सकती है।

९. अलौकिकतापूर्ण कहानियाँ

कहानियों की नवमी श्रेणी अलौकिकतापूर्ण तत्वों वाली है। इन

कहानियों में जादू-टोने आदि के चमत्कारी वर्णन होते हैं। यों तो मनोरंजन के लिए अलौकिक तत्वों की आवश्यकता सर्वत्र होती है लेकिन कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें अलौकिक तत्व बड़ी युक्ति से जोड़े गये हैं। 'लाल सिंह और हीरभदे' की कहानी ऐसी ही कहानी है। इसमे मरे साँप का 'लाल' में परिवर्तन एक अलौकिक तत्व है परन्तु आश्चर्य है कि लोकमेधा के लिए यह 'रोजमर्रा' की वस्तु बन गई है। आगे बढ़कर जब एक पनवारन पान खिलाकर लाल सिंह को मेंढा बना लेती है तो आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। हम लोग भी रोजाना पान खाते हैं परन्तु लाल सिंह का मेष बनना एक अद्भुत घटना है। हीरभदे की चतुराई से ग्रीवा में बंधे धागे के टूट जाने पर फिर मेष का लाल बनना, एक लोकोत्तर व्यापार है। 'मुर्खा की कहानी' आदि इसी प्रकार की कहानियाँ कही जायेंगी।

१०. सामाजिक कहानियाँ

हम दसवीं कोटि में सामाजिक कहानियों को रखेंगे। आजकल की सामाजिक कहानियों की तरह इनमें हाय-तोबा, रोदन-विलखन नहीं है। न यहाँ प्रेमिकाओं के लिए आत्मघात जैसी घृणित वस्तु है। न सास-ननद के ओले-टोले हैं, न अन्य सामाजिक मापदंडों का वर्णन। इन कहानियों में उन कथाओं को स्थान दिया गया है जिनमे मानव की आदिम सामाजिक प्रवृतियों की रक्षा हुई है और जिनमें अति प्राचीन समाज की झलक है। उनके द्वारा समाज की संस्कृति के मूल का अनुमान लगाया जा सकता है। 'बेमाता के लेख' एक ऐसी ही कहानी है (निजी सग्रह) जिसमें सपिंड विवाहप्रथा के अवशेष मिलते हैं। इस कहानी में नायक अपनी सहोदरा का पति बनता है किन्तु सुरुचि के विचार से नायक को कहानीकार ने आत्मग्लानि में डाल कर दंडित किया है।

११. बुझौवल कहानियाँ

हरियाने की लोक कहानियों मे ग्यारहवीं प्रकार की कहानियाँ बुझौअल[१] या बुझौवल कहलायेंगी। बुझौवल के दो रूप मिलते हैं—एक पहेली का, दूसरा कहानी का। बुझौवल पहेलियों को हमने प्रकीर्ण भाग में लिया है और वहाँ उनका विस्तृत विवेचन भी किया है। यहाँ हम बुझौवल कहानियों पर विचार करेंगे।

---

१. बुझौवल उन कहानियों को कहते हैं जिनमें बडे चातुर्य से बात पूछी जाती है। ये बड़ी रोचक, मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक कहानियाँ होती हैं।

हरियानी लोक-कथा संग्रह मे बुझौवल की जो कहानियाँ हमें मिली हैं, वे इस प्रकार हैं :—

१. कजूस साहूकार की कहानी में छः बातें दी गई हैं जिनकी परीक्षा बनिया के छोरे ने की है :—

क. जर का पिता
ख. प्यार की माता
ग. होत की बाहण
घ. श्रणहोत का भाई
ङ. बिगड़ी का यार
च. चचल नगरी सोवै सो खोवै, जागे सो पावै ।

साहूकार का पुत्र इन उपरोक्त छः बातों को सौ रुपये मे खरीद लेता है जिनमे लौकिक सफलता की कुजी है । पहिली दो बातों की तो उसे घर ही परीक्षा हो जाती है । साहूकार अपने पुत्र के दरिद्र-व्यवसाय (बैड बर्गेनिंग) को देखकर उसे घर से निकाल देता है । माता उसे जाते समय चूरमा में चार लाल रख देती है । इस प्रकार पिता के जर (धन) प्रियता और माता के पुत्र-प्रेम की परीक्षा हो गई है । वह लड़का आगे जाता है और ठगा जाता है । दरिद्र होकर जब वह शरण के लिए अपनी बहन के यहाँ पहुँचता है तो बहन उसे पहचानती ही नहीं है और प्याज से सूखी रोटियाँ देती है । चौथी और पाँचवीं बात छूट गई है । चंचल नगरी में बड़े धनिक की लड़की के मुँह से सांप निकलता है जिसे वह मार डालता है और उस लड़की से विवाह होता है । फिर दोनों सुखपूर्वक रहते हैं ।

इस प्रकार की एक और कहानी हमें मिली है । कहा जाता है कि एक व्यक्ति ने चार सौ रुपये में ऐसी चार बात खरीद ली जिनमें जीवन सफलता का नुसखा भरा था :—

१. एक पैसे का भी रोजगार कर लेना ।
२. ईमानदार नाम रखना ।
३. किसी का पर्दाफाश न करना ।
४. मित्र से गाढ़ी मित्रता करना ।

इन कहानियों में लोक व्यवहार संबंधी तत्व बड़ी प्रवीणता से छिपा रहता है ।

दूसरी प्रकार की बुझौवल कहानियाँ वे हैं जिनमें कोई शर्त लगाई जाती है । एक बार रोमश्यांस के बादशाह ने अकबर के पास शर्त रूप मे "जब,

अब, अब न जब" परवाना भेजा और चार दिन में स्पष्टीकरण मांगा। मंत्री को चिंता हुई। बीरबल जो उस समय एक साधारण सा लड़का था शर्त ओढ़ लेता है। चौथे दिन बीरबल अपने साथ दरबार में एक वेश्या, उसकी युवती पुत्री और एक ज़नखे को ले गया। भरे दरबार मे बीरबल ने कहा शहनशाह! वेश्या का सौन्दर्य 'जब' था; वेश्या-पुत्री की ओर संकेत करके कहा इसका सौन्दर्य 'अब' है और 'नपुंस के तृतीया' में न 'अब' और न 'जब'। दरबारी दंग रह गये। बीरबल को वजारत मिली।

तीसरे प्रकार की बुझौवल कहानियाँ वे कहानियाँ हैं जिसमें घटना को देखकर उसका समाधान दिया जाता है बुलाकी नाम का एक अड़ियल नाई है। उसने एक घटना देखी है "इसे कौण व्याहवे", फौरन अपने उस्ताद गंगाराम पटेल के पास आता है और समस्या का समाधान पूछता है। वह उत्तर देता है। एक राजा का लड़का है। उसे दसोटा (बनवास) मिला है। उसके तीन मित्र खात्ती, दर्जी और सुनार उसके साथ बन जाते हैं। एन निर्जन जंगल में पहुँचते हैं। पहरे की बात-चीत चली। खात्ती के लड़के की बारी सर्वप्रथम आई। उसने ठाली (रिक्त) समय मे पास के वृक्ष से एक लकड़ी काटी और उसको घड़कर औरत बनाई। दूसरे पहरे के लिए दर्जी उठा। उससे उसे कपड़े पहना दिये। तीसरी बारी पर सुनार के छोरे ने उसे आभूषण पहना दिये। राजा का लड़का जगा चौथे पहरे के लिए। उसने उस प्रतिमा को देखा और निर्जीव पाया। उसने भगवान का स्मरण किया। विष्णु भगवान प्रकट हुए और उसमें जान डाल दी। इतने में प्रातःकाल हुआ और वह विवाद चला कि 'इसे कौण व्याहवे'। पटेल ने कहा बुलाकी! यह समस्या का समाधान है।

इस विवाद का फैसला भी यह है कि खात्ती का लड़का और राजा का लड़का तो बाप सदृश है, निर्माण और जीवन-दान देने के कारण, दर्जी भाई है भरण-पोषण के कारण, बस सुनार इसका पति है जिसने इसे आभूषित किया है। क्योंकि सुसज्जित करने का कार्य पति का होता है।

चौथी प्रकार की बुझौवल कहानी संकेतात्मक होती है। राणी महकावली (निजी संग्रह) की कहानी में राजा का लड़का संकेत देखता है "मंहदी का पत्ता तोड़ा, पांव से लगाया, फिर चूड़ा के छुवाया, छाती के लगाया और फिर कान के लगाया।" जहांगीर चोर ने इसका समाधान दिया है— "पद्मावत उसका नाम है, चूड़ामल की लड़की है, तुमसे प्यार करती है और कर्णनाटक व्याही है।"

पांचवें प्रकार की बुझौवल कहानी एक निरीक्ष्यात्मक कहानी है। 'भर्तृहरि' और 'विक्रमाजीत' दो भ्राता हैं। एक पाठशाला में पढ़ते हैं। गुरुजी ने जल मगाया :—

"ताल का भी मत लाना
पाल का भी मत लाना
तीसरा जल लाना।"

विक्रम को कुछ न सुझा। गुरु के शाप का भागी बना। भर्तृहरि ने अपने विशाल अनुभव एवं व्यापक प्राकृतिक निरीक्षण के बल पर घड़ा भर जल ला दिया। जल कौन सा था—'ओस' जो न तालाब का है, न नहर आदि का।

१२. चुटकले

चुटकले वे छोटी-छोटी कहानियां हैं जो किसी लोकोक्ति के स्पष्टीकरण में काम आती हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि लोकोक्तियों के मूल स्रोत ये चुटकले ही रहे होंगे, अर्थात् इन चुटकलों का मार्मिक वाक्य या सारभूत तोड़ ही लोकोक्ति का रूप ले लेता है। एक कहावत है "द्विधा मे दोनों गये माया मिली न राम।" अब यह एक साधारण प्रयोग की वस्तु बन गई है। पर यह एक चुटकला है जो इस कहानी के स्पष्टीकरण में काम आ सकता है—"विष्णु लोक में लक्ष्मी, नारद, परशुराम और विष्णु भगवान् बैठे हैं, नारद परशुराम जी से पूछते हैं त्रिलोकी मे कौन बड़ा। परशुराम ने 'भगवान्' को कहा और नारद ने 'लक्ष्मी' को। परीक्षा हुई। भगवान् ने साधु का वेष लिया। एक बणिये के यहां पहुँचे। बड़ी आवभगत हुई। पीछे लक्ष्मी 'सांसणी' (कजरी) के रूप में बणिये के पास गईं और बर्तनो का प्रदर्शन किया। फिर वहां रहने के लिए कहा। साहूकार ने साधु को चलता किया। कजरी भी साथ जाने लगी। रहस्य बतलाया कि साधु तो साक्षात् भगवान् हैं और वह लक्ष्मी है। साहूकार दोनों को खो बैठा। तब यह कहा गया है :—

"द्विधा में दोनों गये, माया मिली न राम"

इसी प्रकार का एक बड़े मजे का चुटकला "अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी, टका सेर खाजा।" उक्ति के रूप मे प्रचलित है। मूर्ख राजा साधारण ग्रामीण पुरुषों की बात में आकर स्वयं फांसी खा लेता है। यही चौपट राजा है।

१३. लघुछंद कहानी

अभी तक हमने उन कहानियों का अध्ययन किया है जो सुबुद्ध समाज की वस्तु

हैं, परन्तु ऐसी कहानियां भी हमे मिली हैं जिनमें बच्चे-बालक अपने जैसे निरीह पशु-पक्षियों की कहानियां कहते हैं और जिनमें पुनरुक्ति के लिए विशेष स्थान होता है। इन्हें लघु छंद-कहानी कहते हैं। अंग्रेजी में इनका नाम 'ड्राल्स' (Drolls) दिया जाता है। हरियाने की कुछ लघु-छंद कहानिया यहां दी जाती हैं :—

चिड़िया और मूसी की कहानी

चिड़िया और मूसी दोनो सहेली थीं। एक दिन दोनों झाड़ी मे बेर खाने के लिए गई। चिड़िया बेर खाकर उड़ गई। मूसी फस गई। मूसी ने सहायता के लिए प्रार्थना की। चिड़िया ने सहायता दी और छुड़ा दिया। दूसरे दिन मूसी भैंस के गोबर मे दब गई। उसे चिड़िया ने निकाला। फिर एक दिन मूसी हौज मे गिर गई, वहा से भी उसे चिड़िया ने निकाला। एक और दिन मूसी ऊंट के पैर तले दब गई, फिर भी चिड़िया ने रक्षा की। इसके पीछे, किसी दिन मूसी बनिये की दूकान में गई और गुड़ की डली ले आई। चिड़िया ने गुड़ मांगा परन्तु मूसी ने मना कर दिया। चिड़िया ने एक-एक करके अपने एहसान बतलाये और स्मरण कराया कि एक दिन उसे चिड़िया ने कांटों से बचाया था।

मूसी ने झट कहा—'मैं तो कच्चे-कच्चे कान विधाऊ थी।'

चिड़िया ने स्मरण कराया कि मैंने गोबर से निकाला था।

मूसी ने उत्तर दिया—'मैं तो उबटण मलाऊंथी।'

चिड़िया ने कहा—हौज से निकाला था।

मूसी ने तुरन्त बात बनाई—'मलमल नहाऊंथी।'

चिड़िया ने एक बात और कही—ऊट के पैर नीचे से निकाला था।

मूसी ने चतुराई से कहा—'कमर दवाऊथी।'

यह बहाना बना मूसी भाग गई और चिड़िया भी उड़ गई।

पाठक देखेंगे कि इन कहानियो में एक स्वाभाविक सरलता है जो बच्चो को एक विशेष प्रकार का संतोप प्रदान करती हैं। इनमें कौतूहल इतना नहीं है जितना कथन का ढग प्रभावशाली है।

कहानी का वातावरण पूर्णतया घरेलू और बालसुलभ है।

× × ×

एक दूसरी कहानी 'अहंकारी गीदड़' की है। पाल पर गीदड़ ने एक मिट्टी का चौतरा बनाया है। कानों मे लगीतरे पहनकर उस पर राजा बनकर बैठा है। पानी पीने के लिए जो कोई आता है उससे अपनी प्रशंसा सुनकर पानी पीने का अनुमति देता है। लोमड़ी आती है और प्रशंसा करती है :—

चांदी का तेरा चौतरा
सौन्ने ढोला[1] हो ।
कानां में तेरे गोखरूं
जाणू राज्जा बैठ्या हो ॥

राजा ने आज्ञा दी । लोमडी ने पानी पिया । किन्तु चलते समय धृष्टता (गुस्ताखी) की और कहती गई :—

मांट्टी की तेरी चौतरी,
गोब्बर ढोली हो ।
काना मे तेरे खौसंडे[2]
जाणू ढेड़[3] बैठ्या हो ॥

लोमड़ी कितनी अवसरवादी होती है, यहां यह स्पष्ट दिखाया गया है ।

ये तो साधारण छन्द कहानियां हैं । इनके अतिरिक्त क्रमसंबद्ध कहानी भी होती हैं । इनकी परिभाषा श्री शरच्चन्द्र मित्र ने यह दी है[4]—"क्रमसबद्ध लघुछन्द वे कहानियां हैं जिनमें कथावस्तु लघु और संतुलित वाक्यों से आगे बढ़ता है, और जिसके प्रत्येक चरण पर तत्संबंधी पूर्व के सभी चरण दुहराये जाते हैं, यहां तक कि अंत तक पहुँचने पर समस्त चरणों की पुनरावृत्ति हो जाती है ।" इस प्रकार एक कहानी 'चिड़ो अर कागला (कौवा)' की हमारे संग्रह में है । इसमें कीड़ी (चींटा) चिड़िया की सहायता के लिए तैयार होती है तो अंत में, समस्त संसार उसकी सहायता करने के लिये तैयार हो जाता है । सचमुच तुच्छ वस्तुएं भी कितनी महान् होती हैं ।

घ. हरियानी लोक कहानियों का नामकरण

उपरोक्त पंक्तियो में हमने हरियाना प्रदेश से संग्रहीत कहानियों का वर्गीकरण किया और उनका कुछ अध्ययन भी किया है । इस अध्ययन में हमने बालक, युवक, वृद्ध और वृद्धाओं में प्रचलित सभी कहानियां ली हैं । इनकी मौलिकता पर भी कुछ प्रकाश डालना तथा इस बात को भी बताना कि ये कहानियां 'हरियानी लोक कहानियां' क्यों कहलाती हैं, असंगत न होगा ।

कहानियों के उत्पत्ति और विकास की कहानी बड़ी निराली है । ये पर्यटक की भाँति देश-देश में फिरती हैं । इनमें कई ऐसी भी हैं जो एक

१. मुलम्मा किया हुआ । २. फटे लगीतरे । ३. नीच कौआ । ४. श्री शरच्चन्द्र मित्र का यह उद्धरण डा० सत्येन्द्र के हिन्दी अनुवाद के आधार पर है ।

ही रूप में या थोड़े बहुत परिवर्त्तन के साथ समीपवर्ती या दूरवर्ती अन्य प्रदेशों में भी प्रचलित हैं। फिर क्यों इन कथाओं को हरियानी लोक-कथा, भोजपुरी लोक-कथा अथवा बुन्देलखंडी लोक-कथा आदि नामों से अभिहित किया जाता है ? कथा की कथन शैली और भाषा तो स्थान भेद से अलग होती ही है। बहुधा प्रसंगों मे भी भेद हो जाता है। कुछ कथाएँ तो स्थान विशेष की संस्कृति और परम्परा को समेटती हुई एकदम नई होती हैं। इसी कारण उनकी एक विशेष संज्ञा तथा व्यक्तित्व होता है। हमारे संग्रह में दी हुई हरियाना प्रान्त की लोक-कहानियों मे निम्नांकित विशेषताएँ हैं :—

१. ये उसी प्रदेश मे बैठकर वहाँ की जनता के मुख से सुनी गई हैं।
२. इनका आधार मौखिक परम्परा है अर्थात् ये अशिक्षितों, अर्द्ध-शिक्षितों, वृद्धाओं, डोम, मिरासी, भाट आदि से सुनी गई हैं।
३. इनमें हरियाना के मुहावरे तथा लोक-जीवन का चित्रण है।
४. इनमे हरियाना की संस्कृति की झलक है और ये वहाँ के मौखिक साहित्य की भली प्रकार प्रतिनिधित्व करती हैं।

इसीलिए यदि इन कहानियों को 'हरियानी लोक-कहानी' का नाम दिया जाये तो कोई दोष न होगा।

ङ. हरियानी लोक-कहानी का शिल्प विधान

हरियाना प्रदेश से प्राप्त लोक-कहानियों के वर्गीकरण एवं अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यहाँ की लोक-कहानियों की सृष्टि अपनी निराली वस्तु है। वह साहित्यिक कहानियो से भिन्न है। फिर भी हम कहानी के उन तत्वों के आधार पर जो सामान्यतया सर्वमान्य हैं उसके टैक्नीक अथवा शिल्प विधान को जाँच सकते हैं।

कहानी के विश्लेषण के लिए विद्वानों ने सात तत्व निर्धारित किये हैं :—

१. कथावस्तु, २. पात्र, ३. कथोपकथन, ४. चरित्र-चित्रण, ५. वातावरण, ६. शैली, ७. उद्देश्य तथा रस।

कथावस्तु

लोक कहानियों मे वस्तु मुख्य तथा गौण दोनो प्रकार की मिलती हैं। अमुख्य कथाएँ सदैव प्रधान कथा को आगे बढ़ती हैं। कथा के विशृंखल तत्वो को समेटना भी उनका कार्य होता है। 'साहूकार व्यापारी' (निजी संग्रह) कहानी में साहूकार बच्चा ठग के पजे मे फंसकर ठग की दो लड़कियों को दो पृथक-पृथक कहानिया सुनाता है। ये दो उपकथाएँ हैं जो उस एक कहानी

को ही पुष्ट करती हैं। इस प्रकार वह साहूकार बच्चा अपनी प्राण-रक्षा करता है। 'राणी महकावली' (निजी संग्रह) कहानी का कथापट भी कई मुख्यामुख्य कथाओं से निर्मित हुआ है। 'चकवा चकवी' के द्वारा भविष्य का उद्‌घाटन आदि कई छोटी-छोटी कथाएँ प्रांसागिक कथानक ही हैं।

ये मुख्य-अमुख्य सभी कथाएं ग्राम के खुले खेतों, खलिहानों, जंगलों, झाड़ियों, झोपड़ियों, पहाड़ो, सरों, समुद्रो तथा नदियों से होकर आती हैं। इनमें ग्राम-जीवन की पूरी झांकी है। यह लोक-जीवन, लोक-पराम्परा और लोक-संस्कृति के जानने का सबसे बड़ा साधन है। लोक-कहानियों की वस्तु मे घटनाओं के घात-प्रतिघात आज जैसे नहीं हैं। उनमें समस्याएँ हैं, सुलझाने के लिए जटिल प्रश्न भी हैं; परन्तु हैं सब कुछ स्पष्ट। 'गगाराम पटेले और बुलाकी नाई' की कहानी में कथावस्तु एक विचित्र पहेली को लेकर चलती है। उसका समाधान कितना ही काल्पनिक है परन्तु है सभव (convincing) एवं निर्णयात्मक।

लोक-कहानी की कथावस्तु इतनी व्यापक है कि उसमें लौकिक-अलौकिक, सात्विक-असात्विक सब कुछ आ जाता है। अस्वाभाविक वस्तुएँ यहां अग्राह्य नहीं है, त्याज्य नहीं हैं। इन कहानियों मे 'संभाव्य' नाम की कोई वस्तु नहीं है यहां सब 'सभव' ही संभव है।

पात्र

हरियाना लोक-कहानियों के पात्र पशु-पक्षी, जीव-जंतु से लेकर चक्रवर्ती सम्राट् तक हैं। कभी-कभी तो भगवान् विष्णु स्वयं भिखारी के वेष में 'दि्वधा में दोनों गये, माया मिली न राम,' आदि कहानियों के पात्र बने हैं। नारद, लक्ष्मी और महाराज परशुराम ने भी इन कहानियों में अभिनेतृत्व किया है। महादरिद्र ब्राह्मण से लेकर 'लाल उगलने वाले छोरे' तक इनके पात्र हैं। यहां न कोई पात्र नीच है, न कोई ऊच। सब उच्च ही उच्च हैं। कहानियां सुखात होने के कारण फल सदैव नायक को मिलता है। प्रतिनायक दडित होते हैं। 'राजा रघु की कथा' में लोभी ब्राह्मण को दंड मिला है कि वह इकहत्तर सौ वर्ष तक घोर तपस्या करे, तभी उसकी पाप से मुक्ति हो सकती है। 'मूर्खा अथवा 'लखटकिया' की कहानी मे दाना मारा गया है। "लाल सिंह और हीरमदे" की कहानी में दाने की दशा और भी दयनीय हो गई है। उसके नाक और कान भी काट दिये गये हैं।

कथोपकथन

कथोपकथन की दृष्टि से ये कहानियां अवश्य दरिद्र हैं। वैसे तो यह तत्व

नाटक की अपनी वस्तु है। कहानी में यह उस कौशल से नहीं आ सकता। कहीं-कहीं तो वृत्त बगैर कथोपकथन के आगे बढ़ा है। "डायन की कहानी" (निजी संग्रह) में एक चिट्ठी के स्थान पर दूसरी चिट्ठी रख दी गई है और बस भावी आपत्ति से कुमार की रक्षा हो गई है। व्रत की कहानियां मे तो कथोपकथन बड़ा ही शिथिल है। वहां तो कथा की प्राणशक्ति उस आस्था में निहित है जो कथा मे आद्योपांत परिव्याप्त है। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि लोक-कहानी का कथोपकथन आज की कहानी जैसा चुस्त नहीं होता।

चरित्र-चित्रण

इस दिशा में भी आधुनिक पाठक को निराश होना पड़ेगा। कारण स्पष्ट है कि ये कहानियां व्यक्तिगत चरित्र-निर्माण के लिए नहीं, अपितु समष्टिरूप में प्रभावोत्पादन के लिए कही जाती हैं। अतः चरित्र-चित्रण इनमे महत्वशाली नहीं हो पाता। उपदेश प्रधान कहानियो मे तो कीड़ी[1] से लेकर कुंजर तक कोई भी पशु-पक्षी तथा जीव-जंतु हमारा सदुपदेष्टा हो सकता है। सिंह भी दया के कितने ही पाठ पढ़ा सकता है और सियार (शृगाल) भी नृशंस बन सकता है। मनोरंजनात्मक कहानियों में अनहोनी बातें और अलौकिक चरित्र हमारा विशेष मनोरंजन करते हैं। इनका अस्तित्व ही निश्चित नहीं होता। पौराणिक कहानियों के चरित्र नपे तुले होते हैं और उनमे विकास के लिए कोई स्थान नहीं होता। व्रत की कई कहानियों के चरित्र तो भावात्मक ही हैं यथा "गाज की कहानी" में गाजमाता का भावात्मक रूप रखा गया है। यह कोई मानुषी नहीं है।

वातावरण

वातावरण के दृष्टिकोण से हरियाने की लोक-कहानियां आधुनिक कहानियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं। इनमें ग्रामीण वातावरण खुलकर आया है। कृत्रिमता की गंध इनमें नहीं मिलती। स्वस्थ एवं सुखकर वातावरण इनमें छलछलाया हुआ रहता है। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—"डायन की कहानी" का एक दृश्य "छोरा बड्डा हुआ अर कुए मां तै बाहर निकलण लाग्या। गांव नै जा अर मा अर ताइयां की खात्तर छा, राबड़ी, रोट्टी मांग-मांग ल्यावै।" "किरसन जी अर सुदामा" की कहानी में "रुकमणी किरसन जी कनै गई हट कै उल्टी। किरसन जी देख कै हसण लाग्या, रुकमणी जी

1. चींटी

खुवा आई रोट्टी । वाकै आंस्सूं पड़न लाग्या । मेरे तीन कामड़ी मारीं । मेरे चार-चार आंगल बलै उपड़रीसै ।" देखिए वही धाप के रावड़ी पीना, वही खेत बहाना तथा रुटियारी का रोटी ले जाना आदि ऐसे व्यापार हैं जो हरियाने के दैनिक जीवन से संबंधित हैं । एक और उदाहरण में पाठक देखेंगे कि लोक-कथा की नायिका का सौन्दर्य-वर्णन किस प्रकार ग्रामीण वातावरण से उभरा है :—

> **"कर सोलू सिंगर बतीसों, आभरन,**
> **आभा की सी बीजली, होली के सी झल[1]**
> **सेर को बच्चो, रेसम को लच्छो,**
> **धो[2] को कोयला, बाड़ में गिरै तौ भक्क से जल जाय ।।"**

सच पूछिए तो यह वातावरण ही लोक-कहानी की अपनी वस्तु है । यह वातावरण ही इसे साहित्यिक कहानी से पृथक करता है । यहाँ तो 'टपकले का डर' ही ऐसे भयावह वातावरण की सृष्टि कर सका है कि गजेन्द्र के भी छक्के छूट गये हैं । इन कहानियो के सुनने मे जो आनन्द आता है वह इस अपूर्व वातावरण के कारण ही आता है । जादूगर और किसान" की कहानी में वही मोहल्ले के चौराहों पर दिन प्रतिदिन होने वाले नट के खेल का वातावरण व्याप्त हुआ है । परन्तु एक अपूर्वता के साथ जिसमे वैचित्र्य है, रहस्य है ।

शैली

लोक कहानी की अपनी अलग शैली है । इसकी एक विशेषता है कि इसमें कृत्रिम तथा अतिरंजित शैली के लिए गुंजाइश नही है । इसमें सीधी-सादी बात 'धर मंजल, धर कोस' के सीधे तरीके से कही जाकर समाप्त हो जाती है । इनकी स्वाभाविक कथनशैली एवं सरल भाषा का हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़ता है ।

दूसरी शैली चम्पू की शैली है । चम्पू का लक्षण देते हुए कहा गया है "गद्य-पद्य-मयं काव्य चम्पू इत्यभिधीयते ।" गद्य-पद्य का सम्मिश्रण चम्पू कहलाता है । पद्य मे गद्य की अपेक्षा एक विशेषता होती है कि पद्य सूक्ष्म होता है और 'प्रभविष्णु' होता है । अतः जिन कहानियों में पद्य का छौंक लगा दिया जाता है ये अधिक रोचक बन जाती हैं । "रानी महकावली 'और' मूर्खो की कहानियाँ इसी शैली मे निबद्ध है । रानी महकावलो की कहानी चल रही

---

१. लपट । २. धवनास की लकड़ी ।

है। जहांगीर चोर (नायक का सहायक) महकावली के पास नदी पार करके और दीवार में खुंटी गाड़कर पहुँचता है। उसने सोती हुई राजकुमारी को जगाया है। राजकुमारी की जिज्ञासा इन पंक्तियों में टूट पड़ी है :—

"कैसे कीयो आवणो, कैसे फोड़ो नीर।
आयो है तो बैठजा, मेरा सुणो चोर जहांगीर॥"

जहांगीर चोर :—**"महलां में चोरी करी हड़ो लखीनोमाल।**
राखी जे वस्तु तैं चांहती तेरा बागांम्हें तत्काल॥"

इन पद्यों के आने से कहानी बड़ी प्रभावपूर्ण हो गई है।

शैली के अन्तर्गत कहानी के आरम्भ, मध्य और अंत का भी विचार आता है। हरियाणी लोक-कहानी का आरम्भ कथक बड़े रोचक ढंग से करता है। कभी तो वह 'बात में हुकारा और फौज मे नगांड़ा' कहकर ही कहानी आरम्भ कर देता है। पर कई बार वह नाटकीय ढग से चलता है। एक उदाहरण लीजिए—"राजाभोज मूसलचद" की कहानी, जो अहीर कालेज, रेवाड़ी की पत्रिका में छपी है, एक विशेष नांदी पाठ से आरम्भ हुई है :—

"बात की बात, बात की कुराफात,
कीड़ी का धक्का, मच्छर की लात।
राम बचावे तो बचे, नहीं तो बचने की नहीं आस।
और एक बैल का सींग साढ़े सतरा हाथ॥
अब सुनो हमारी बात।
एक राजा थो, उंह को नाम भोज थो।"

महकावली नाम की कहानी के आरम्भ में यह निम्नलिखित विनोक्ति की छटा दर्शनीय है :—

ससी बिन सूनी रेन, ज्ञान बिन हृदो सूनो।
कुल सूनो बिन पुत्र, पात बिन तरुवर सूनो।
गज सूनो बिन दंत, हंस बिन सागर सूनो।
घटा सूनी सावनी, बिन चमके दामनी।
राजा कहे बेताल सूनो भई घर सूनो बिन कामनी।

'बात मे हुकारा और फौज मे नगारा' राजा कै सात छोरा थे। ६ ब्याहा था अर एक कुंवारा.........।

हरियानी कहानियों का अत भी बड़े रोचक ढग से होता है। सुखांत होने के कारण भरत वाक्य या आशीर्वादात्मक वाक्य से समाप्ति होती है। राजा ने कहा 'पहले जैसी किसीकू ना हो अर पाच्छे जैसी सब्र काही कू हो'

देखिए गाज की कहानी (इसी अध्याय में)। 'लाल उगलनेवाला छोरा' नामक एक दूसरी कहानी का अंत इस प्रकार हुआ है "भाई ! तम लधो अर बधो। मै बणजारे धोरै जांगा। वोः ए मेरा धरम का बाप सै।" कहीं-कहीं पर कहानी का अंत बड़ा शीघ्रगामी हुआ है। वह जहाँ अस्वाभाविक है, वहाँ कुछ अरुचिकर भी है। 'दाने की कहानी' का अन्त एकदम हुआ है जो कुछ खटकता सा है 'आच्छा, छोडू सूं। अर यूं कहकै नाड तोड़ दी' तोत्ता की। दाना मरग्या। सब अपणे घरां आ गया अर सुख तै रहण लाग्या।''

लोक-कहानी का मध्य भाग वृक के उदर जैसा होता है। उसका सामर्थ्य अपरिमित है जितना चाहे बढ़ा लीजिए। दो उपकथाएं जोड़ दो, दो घटा दो कुछ अन्तर नहीं पड़ता। बात यह है कि यह मौखिक परम्परा से जीवित रहनेवाला साहित्य है। इसमें ऐसा होना स्वाभाविक है। कहानीकार का मंतव्य पूरा हो जाना चाहिए, अल्पांश में हो या दीर्घांश में, इसकी उसे कुछ चिंता नहीं होती।

उद्देश्य और रस

मनोरंजन, शिक्षा एव धार्मिक आस्था ही लोक-कहानियो के उद्देश्य कहे जा सकते हैं। कहानियो की कथावस्तु प्रायः इन्ही के चारों ओर बिछी होती है। इनमें प्रधान-प्रधान सभी रस मिल जाते हैं। हरियाणे की शौर्य की कहानियो मे, जिनकी सख्या अपेक्षया अधिक है, वीर रस आया है। 'महकावली' एव 'अनबोली राणी' मे शृंगार व अद्भुत जादूगर और मत्री मे अद्भुत रस, चिपकमहादेव' मे हास्यरस का अपूर्व निष्पादन हुआ है। कारुणिक स्थिति तो बहुत अधिक कहानियों मे आती है। दानों की और डायनो की कहानियों में भयानक रस मिलता है। बेमाता के लेख, कहानी मे जुगुप्सा का भाव आया है। एक भाई का विवाह दैवयोग से उसकी सहोदरा से हो जाता है। किन्तु कथाकार को यह अभिवांछित नहीं है। वह नायक मे आत्मग्लानि दिखाकर उस जघन्य स्थिति को बचा गया है। अतः हम निस्संदेह यह कह सकते हैं कि लोक-कहानी साहित्य में हरियानी लोक-कथाओं का एक उच्च स्थान है।

च. हरियानी लोक-कहानियो की विशेषताएं

पिछले पृष्ठों मे हरियानी लोक-कथाओं का विवरण दिया गया है। उनकी अपनी विशेषताएं भी हैं। जो आगे कहे रूपों में रक्खी जा सकती हैं :—

१. रोचकता
२. कौतूहल (विस्मय, आश्चर्य एवं औत्सुक्यजन्य)
३. अलौकिकता (रहस्य रोमांचतत्व)
४. लोक जीवन का चित्रण :—
   (क) प्रेम का अभिन्न पुट ।
   (ख) अश्लील शृंगार का अभाव ।
   (ग) वर्णन की स्वाभाविकता ।
५. संयोग में अत वा सुख मे अंत ।

इनमें रोचकता और कौतूहल, ये गुण प्रधान हैं। इसके बिना कहानी नीरस हो जायेगी और आगे न बढ सकेगी। शेष अंश पहिले विवेचन से सुस्पष्ट हो जाते हैं। हमे एक कहानी 'हिरण का शिकार' नाम की ऐसी भी मिली है जिसका अत दुःखमय है। यह दुःखांत 'ट्रैजेडी' कहलायेगी। इसमे रानी राजा के व्यवहार से क्षुब्ध होकर मर जाती है और अंत मे राजा को विलपता छोड़ जाती है। राजा फकीर (मोडिया) बन जाता है। एक दूसरी कहानी 'अंधेर नगरी के चौपट राजा' की है। यहाँ कहानीकार ने मूर्ख राजा को प्रजा का पाप समझकर फांसी के फंदे मे लटकवा दिया है। अनेक कहानिया सुखान्त और सुखमय हैं।

वर्णन की स्वाभाविकता के लिए 'रानी महकावली' नामक कहानी का कुछ अश यहाँ दिया गया है "छोरी बड़ी हुई। सुन्दर ऐसी जैसे चौदहवीं का चॉद। मुलायम ऐसी जैसे सेमल की रुई। आंखें कटार वर्गी तीखी और जाम्मन जैसी नीली" इस कहानी का सौन्दर्य वर्णन कितना स्वाभाविक और सरल है।

छ "हरियानी लोक कहानियों मे विधि अभिप्राय"

लोक-गीतों की भॉति लोक-कहानियों का अपना महत्व है। यदि गीतो का महत्व सास्कृतिक संरक्षण में है तो लोक कहानियाँ भाषा विज्ञान तथा भाषा की परख के लिए अत्यावश्यक हैं। गंभीर दृष्टि से देखे तो इससे भी अधिक कहानियों की उपादेयता समाज शास्त्र अथवा समाज विज्ञान के क्षेत्र मे है। इन कहानियों मे पात्र, देश, उनकी संस्कृति, उनकी कल्पना और उनके जीवन के आदर्श की विस्तृत झांकी मिल जाती है। अतः भाषा शास्त्र एवं समाज-शास्त्र के अध्ययन के लिए लोक-कहानियों का महत्व बहुत अधिक है। मानव का वास्तविक अध्ययन लोक-कहानियों द्वारा ही संभव है।

विश्लेषण के लिए जब आगे बढ़ते हैं तो ज्ञात होगा कि भाषा के सम्यग् अध्ययन के लिए कहानी के शरीर—शब्द और अर्थ—का अध्ययन पर्याप्त होता

है, परन्तु मानव और समाज का अध्ययन कहानी की आत्मा से सम्बन्ध रखता है। कहानी की आत्मा कहानियो में बिखर पड़े 'अभिप्रायों' (मोटिफ Motifs) में निवास करती है। सच पूछा जाये तो ये 'अभिप्राय' ही कहानी की व्यापकता के द्योतक हैं। नीचे उन अभिप्रायो का वर्णन दिया गया है जो हमें हरियानी कहानियों में मिलते हैं :—

१. कल्पथाली[१]—जिस थाली से भोजन कभी नहीं समाप्त होता।
२. आग लगाने से बन हरा हो जाता है।
३. कृत्रिम खूनी कपड़े भेजकर पत्नी के सतीत्व की परीक्षा ली जाती है।
४. अंगूठी के नग से सुहाग की पहचान। आजकल चूड़ियाँ इस कार्य के लिये काम में आती हैं।
५. सुराही गिरती है और पाताल में पहुँच जाती है।
६. बहन से शादी जिसमें तत्कालीन समाज के अवशेष निहित हैं। इससे पता चलता है कि कदाचित् उस समय सपिंड विवाह भी संभव थे।
७. किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये अनसन[२] पाटी लेना (यह आधुनिक सत्याग्रह का रूप है)।
८. संतान को नदी में बहा देना जैसे कि कुन्ती ने कर्ण को नदी में बहा दिया था।
९. 'मूर्खा, नाम व्यंग्य से आता है।
१०. जादू के धागे या गडे का वर्णन। हीरभदे ने लालसिंह को गडा तोड़ कर भेड़ से फिर मनुष्य बना लिया है।
११. बारह साल का दिसोटा। कहानियो मे १२ वर्ष का बनवास दिया जाता है।
१२. अपनी इच्छा से योनि परिवर्तन—दाने और जादूगर विशेषकर योनि परिवर्तन कर लेते हैं। 'जादूगर और मंत्री' की कहानी मे यह अंश बड़ी रोचकता से आया है।
१३. पशु-पक्षी मानवी बोली बोलते हैं। हंस-हंसनी, चकवा-चकवी का ऐसा वर्णन बहुत सी कहानियों में आया है।
१४. मिनटों में सोने की दीवारें खड़ी हो जाती हैं।

---

१. लोक कहानियों में 'कल्पतरु' की तरह कल्पथाली का वर्णन आता है। २. अनशन (भूखहड़ताल)।

१५. कागज के दिखाने से नदी रास्ता दे देती है, पहाड़ झुक जाते हैं। और फूंक मारने से दीवारें नम जाती हैं। (लखटकिया की कहानी में)

१६. पगड़ी बदल यार मिलते हैं।

१७. पर दुःखभंजनहार राजा का वर्णन। यथा वीर विक्रमादित्य।

१८. रहस्यमय पासे, लाल एवं फूलों का वर्णन।

१९. लाल सदैव नौलाख के आये हैं और वे प्रत्येक परिस्थिति में मिल जाते हैं।

२०. तिल और जौ की बाड़ लगाने से आपत्ति या अग्नि का कुप्रभाव टल जाता है।

२१. मातृ वात्सल्य का वर्णन—स्तनों से दूध की धार बहना और वह पुत्र के मुंह में पड़ना।

२२. सर्प का लाल हो जाता है।

२३. कटार की सहायता से फेरे ले लिये जाते हैं।

२४. पान का बीड़ा खाने से जादू सिर चढ़ जाता है। (लालसिंह व हीरभदे की कहानी में)

२५. काले कपड़े दुहाग की पहचान है।

२६. मनुष्य को मक्खी, गैंडा, मेष आदि बनाना। (लखटकिया को दाने की लड़की ने मक्खी बना लिया है। लालसिंह को पान खिलाकर मेष बनाया गया है)

२७. जादू टोने के डंडों अथवा फूलों से मनुष्य को छिपाये रखना।

२८. मनुष्य का पत्थर में परिवर्तन।

२९. सुनसान निर्जन जंगल में बुढ़िया की झोंपड़ी मिलना।

३०. दाने की जान सात समुद्र पार पींजड़े के तोते में रहती है।

३१. आदमीखानी डायन का वर्णन।

३२. अल्पादल्प अपराध के लिए आंखें निकलवाना और कुटुम्ब को कोल्हू में पिलवाना।

३३. नरभक्षण का वर्णन—माताएँ अपने पुत्र को खा जाती हैं (डायन की कहानी में फेरे में पड़ी हुई माताएँ अपने पुत्र को काटकर खाती हैं।

३४, आत्मग्लानि पर घरबार छोड़ फकीरी लेना।

३५. फूलों के सूंघने से शरीरावस्था में परिवर्तन। एक प्रकार के फूल सूंघने से युवा वृद्ध बन जाता है, दूसरे प्रकार के फूल उसे फिर युवा बना देते हैं (नल की कहानी)

३६. अपुत्र-अपुत्री के दर्शन से दोष लगना।

३७. दूध के छींटे लगने से नर सर्प बन जाते हैं। (परिशिष्ट भाग में द्वितीय कथा देखें)

३८. जादू की डिबिया मनोवांछित वस्त्र देती है।

३९. जादू के रस्से और सोटा किसी को भी बांध सकते हैं और पीट सकते हैं।

४०. बीन या तूबड़ी बजाने पर अभिलषित वस्तुएँ मिलती हैं तथा अप्सराएँ आ जाती हैं।

४१. करामाती गोलियों का वर्णन हरी गोली खाने से तोता और लाल गोली खाने से मनुष्य बन जाते हैं।

४२. बाबा जी के प्रताप से आंख मींचते ही मृत्युङ्गता रमणी जी उठती है।

४३. टोटका आदि करने से दोष मुक्ति। जैसे—पथरिया चौथ का दोष (कलंक) दूसरों के यहां पत्थर फेंकने से मिलने वाली गालियों से दूर होता है उसी प्रकार राजा भोज का दोष टोटका आदि करने से दूर हुआ है।

४४. उत्तर दिशा में जाने का निषेध 'बेमाता के लेख' कहानी में पडितों ने राजकुमार को उत्तर दिशा में न जाने के लिए कहा है। अवहेलना करने से उसे कष्ट उठाने पड़े हैं।

४५. हँसने पर फूल, और रोने पर मोती—स्त्रियो के हँसने से फूल और रोने से लालों का वर्णन। (दाने की कहानी)

४६. पक्षी आकाश में उड़ने के माध्यम बने हैं। 'लखटकिया' में गरुड़ उसे आकाश मार्ग से ले जाता है। शेर भी साथ में है।

४७. नायक के अदम्य साहस की परीक्षा रहस्यमय वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए।

४८. छः मास तक सत की रक्षा की मांग की गई है।

४६. सदाव्रत बिछुड़ों को मिलाने वाले स्थान हैं। 'लाल उगलने वाला छोरा' की कहानी में यह अभिप्राय आया है।

यह हरियानी कहानियों में आये हुए कुछ अभिप्रायों का वर्णन है। यदि खोज की जाये तो इससे भी अधिक अभिप्राय इनमें मिलेंगे।

ज. लोक-कहानियों और आधुनिक कहानियों में अंतर

लोक-कहानी साहित्य का अध्ययन समाप्त करने से पूर्व यह अप्रासंगिक न होगा, यदि हम लोक-कहानियों तथा आधुनिक कहानियो के अंतर पर दृष्टिपात कर लें। कहानी के इन दो रूपो मे भारी अतर है जिसका सक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है :—

१. लोक-कहानियों मे पशु-पक्षी तथा पुरुष दोनों पात्र होते हैं। वे एक साथ बैठकर काम करते हैं। इनमे घटनाओं की अधिकता है। पुरुषों मे अभिजात वर्ग के पुरुष यथा—राजा, महाराजा, सेठ साहूकार ही नायक होते थे। आधुनिक कहानियो में पशुओं के लिए कोई स्थान नहीं है। मनुष्य ही उनके पात्र होते हैं और वे भी साधारण वर्ग के।

२. लोक-कहानियो में कौतूहल प्रवृत्ति प्रधान होती है, जबकि आधुनिक साहित्यिक-कहानियो में मौलिकता के लिए विशेष स्थान है।

३. लोक-कहानियों मे देवी-देवता, भाग्य और भगवान् पर विशेष आस्था रहती है अतः सारी बाते पूर्व निश्चित होती हैं। इससे एक लाभ यह होता है कि देवी-देवता, भाग्य और भगवान् का सहारा लोक-कहानीकार को अनेक संकटों से उबार ले जाता है, जबकि आधुनिक कहानीकार ऐसे संकट काल मे अपने नायक-नायिकाओं द्वारा आत्मघात कराने के लिए विवश होता है। आज की कहानियों में पुरुषार्थ पर विशेष जोर है। उनका आधार मुख्यतया जीवन का संघर्ष होता है।

४. लोक-कहानियों का उद्देश्य रसचर्वण कराना होता है। परन्तु आधुनिक कहानिया चरित्र की सृष्टि मे अपना कौशल दिखलाती हैं।

५. लोक-कहानियों मे घटनाओं का बाहुल्य रहता है। कहानी मजल दर मजल चलती रहती है। कहानी के गोरखधन्धे में श्रोता का मन-मृग उलझा रहता है जैसे कि 'गंगाराम पटेल और बुलाकी नाई' की कहानी में। आधुनिक कहानियों में भाव, विचार और अनुभूति ने वह स्थान ले लिया है।

६. लोक-कहानियों का श्रोता कहानी सुनकर यह अनुभव करता है कि उसने सब कुछ पा लिया है। उसे कहानी पूर्ण प्रतीत होती है। इसके ठीक

विपरीत आधुनिक साहित्यिक-कहानियों का पाठक यह अनुभव करता है कि उसने कुछ खो दिया है अथवा उसकी जेब कट गई है। बहुधा ये कहानियाँ अपूर्ण सी प्रतीत होती हैं। पाठक को विचार गर्त में डाल दिया जाता है।

७. लोक-कहानियों में प्रायः दुःखांत कहानियाँ नहीं के बराबर हैं। अन्त में सब सुखी रहते हैं परन्तु आधुनिक कहानियों में दुखांत कहानियों की अधिकता पाई जाती है। इनमें नायक भी दुःखी और पाठक भी खोया-खोया सा रहता है।

८. आजकल की कहानियों में सामाजिक वैषम्य, राजनीतिक उलटफेर और रोटी की समस्याएं आती हैं, लोक-कहानियों में ये बातें नहीं होतीं। लोक-कहानियों का समाज सुखी और संतुष्ट होता है।

इस प्रकार, इन दोनों प्रकार की कहानियों में प्रायः कोई समानता नहीं है। इन दोनों का संसार जुदा-जुदा है।

पंचम अध्याय

लोक-नाट्य साहित्य

हरियानी लोक-नाट्य साहित्य

क. लोक-नाट्य परंपरा एवं लोक-रंगमंच

हरियाना प्रदेश के गद्य-पद्यमय लोकसाहित्य का विवेचन गत पृष्ठों में हुआ है, अब एतद्देशीय नाट्य साहित्य की परख कर लेना भी अप्रासगिक न होगा। यह वह साहित्य है जिसका कर्ता ज्ञात है और जिसका इस प्रदेश मे बडा मान है। आगे की पक्तियों से पाठक को यह स्पष्ट होगा कि हरियाने का यह साहित्य उत्तर भारत के अन्य प्रदेशीय लोक-नाट्य-साहित्य की अपेक्षा विशाल, समृद्ध एवं रोचक है। हरियाने के कौमी गायक सांगी का कोई पूर्ण अपूर्ण साग देख लेने के पश्चात् दर्शक का हृदय इसकी ओर अनायास आकृष्ट हो जाता है। सांगी को गर्दन उठाकर खुले गले से गाई जाती हुई रागणिया श्रोता पर जादू सा फेरती जाती हैं। दिन पहर की नाईं और पहर घटों और मिनटों की नाईं व्यतीत होने लगते हैं और दर्शकवृन्द गायक के साथ झूम झुक जाता है। लोक-साहित्य की यह विधा हरियाने की अपनी वस्तु बन गई है। यों तो ब्रज की 'रास'[1], बिहार की 'जात्रा' उत्तर भारत के लोक रंगमंच के आदि रूप में से हैं किन्तु लोक-रंगमंच के ये हरियानी सांगीत अपनी निराली छटा लिए हुए हैं। इसी लोक-नाट्य का विशद वर्णन हमारे इस अध्याय का विषय है। परन्तु लोकनाट्य पर विचार करते समय लोक-रंगमंच की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि नाटक अभिनय प्रधान साहित्य है जिसमें रगमच का महत्व कुछ अधिक नहीं तो कम मानना भी भूल है।

लोक-नाट्य अथवा अभिनय प्रधान साहित्य की जन्मतिथि की खोजकर सकना एक कठिन कार्य है किन्तु इस बात में मतवैभिन्य नहीं है कि प्राचीन युग मे साहित्यिक नाटक का प्रादुर्भाव लोक-रगमच पर प्रसारित लोक-नाट्य के रूप में ही हुआ। महामुनि भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में रूपक को 'नाट्यवेद' कहा है जो पचम वेद माना जाता है, और जिसे ब्रह्मा ने सब जातियो के ज्ञानवर्धन एव आनन्दोद्रेक के लिए रचा था। स्त्री एव शूद्रों के लिए भी

---

१. रास लीलाओं में केवल कृष्ण-चरित्र की प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा की गरिमा रहती है।

इसके द्वारा खुले थे। कई विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद के कई स्थल[1] जहां पर अभिनयात्मक वार्तालाप पाया जाता है लोक-नाट्य के आदितम रूप हैं। ये ही कथोपकथन पश्चात् को सस्कृत के साहित्यिक नाटकों के आधार बने और लोक प्रसिद्ध यात्रा[2] (जात्रा) रास आदि के रूप में चालू हुए। इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाण मिलता है कि वैदिक काल में अभिनय बड़े-बड़े यज्ञों के अवसर पर होते थे। एक छोटे से अभिनय का प्रसग कात्यायन श्रोत सूत्र ७।८।२५ में सोमयाग के अवसर पर मिलता है। वैसे तो यह एक याज्ञिक क्रिया है परन्तु है अभिनय पूर्ण। भरतमुनि ने भी देवासुर सग्राम के बाद इन्द्रध्वज महोत्सव पर देवताओ द्वारा नाटक का प्रारभ हुआ, इस ओर सकेत किया है। भरत ने कहा है :—

महानयं प्रयोगस्य समयः समुपस्थितः ।
अयं ध्वजमहः श्रीमान्महेन्द्रस्य प्रवर्तते ॥

कुछ विद्वानो का मत है कि सामवेद के उपासना-नृत्य और गान-नाटक के आदि रूप थे। लोक-नाट्य का एक दूसरा स्रोत 'रामायण' और 'महाभारत' के उन गायकों में है जिन्हें 'पाठक' और 'धारक' की संज्ञा से पुकारा गया है। भाटों की परम्परा का भी इन्हीं से सम्बन्ध है। 'रामलीला' व 'रासलीला' के प्रेरक स्रोत भी ये ही 'पाठक' और 'धारक' हैं ऐसा विद्वानों ने स्वीकार किया है। 'ग्रन्थिकों' एवं 'शोमिकों' का जो वर्णन पांतजलि ऋषि ने (सन् ३०० इ० पू०) किया है उनमें 'ग्रन्थिक अभिनय' दो दलों के बीच होता था। एक दल कृष्ण का अनुयायी होता था, दूसरा कस का। इस प्रकार महाभारत की चरित्र कथाएँ लोक-नाट्य का आधार बन गई हैं।

एक अन्य तर्क पर आगे बढ़कर यह भी देखा जा सकता है कि जैसे प्राकृत भाषा संस्कार पाकर संस्कृत बनी, वैसे ही लोक-नाट्य सस्कार-शाण

१. इन्द्र और मरुत के संवादात्मक ऋग्वेदीय १५ मंत्र। इस प्रकार के संवाद ऋग्वेद १ मं० सूक्त १६६ से १७३ तक चले गये हैं—इसी मंडल का १७०वाँ सूक्त दर्शनीय है:—

किं न इंद्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥

... ...

त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इंद्र त्वं मरुद्भिः संवदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥

२. यात्राओं (धार्मिक महोत्सवों) के अवसर पर लोगों के मनोरंजन के लिए खुले स्थानों में राम व कृष्ण की लीलाओं का अभिनय किया जाता था।

पर चढ़कर संस्कृत नाटक के रूप में विकसित हुए। इन संस्कृत नाटकों में अभी भी बहुत कुछ प्राचीन अश मिलते हैं। स्त्री तथा नीच पात्रों की भाषा शुद्ध संस्कृत न होकर वही बोलचाल की प्राकृत रहती है। संस्कृत नाटकों में विदूषक का प्रवेश जो एक फूहड़ अभिनय है संभवतः लोक-अभिनय का अवशेष चिह्न रह गया है। 'भाणे' और 'प्रहसन' आदि रूपकों का विकास बहुत कुछ लोक प्रवृत्ति की देन हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उक्त कथन किसी लोक-नाट्य की कृति के अभाव में अनुमान मात्र ही है। आगे लोक-रंगमच का इतिहास खोजेगे।

नाटकीय दृष्टि से हिन्दी का मध्य युग बड़ा असंतोषजनक रहा है। देश में अव्यवस्था थी। रगमंच का विकास न हो सका। राज्य की ओर से भी कोई प्रोत्साहन रगमच को नहीं मिला। इसके विपरीत राजप्रसादों से उसे निर्वासित कर दिया गया। वह अपनी लघु सी साज-सज्जा लिए मठों व मन्दिरों में पड़ा रहा। छोटा सा साज व सामान जब चाहो मुखरित कर लो जब चाहो उठाकर धर दो। इस भयावह युग मे उसकी बड़ी हीन अवस्था रही परन्तु इसी अवस्था में पड़ा हुआ वह जनता का मनोरजन करता रहा। मठों व मन्दिरों के सम्पर्क से रगमंच पर धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं का स्वर सुनाई दिया। ग्राम और नगर की असंस्कृत जनता गगन-वितान के नीचे ढोलक, सारंगी और खड़ताल के स्वर में स्वर मिलाकर अनेक लीलाओं का आनन्द लेती रही।

लीलाओ में रासलीला संभवतः सबसे प्राचीन मनोरंजन का साधन है। इसके ऐतिहासिक उद्गम का कोई निश्चित प्रमाण विद्वानों के पास नही मिलता। इतना अनुमान होता है कि सन् १५३१-३२ के आस-पास वल्लभाचार्य ने प्राचीन प्रथिकों के कृष्ण-अभिनय को रासलीला के रूप में प्रचारित कर एक गीति-नाट्य (फाल्क ओपेरा) की परम्परा चलाई जो १६वीं शती तक अच्छे खासे लोक-रंगमंच का काम देती रही। इस अनुमान का यह आधार है कि रासलीला के आरम्भ मे महाप्रभु वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ जी, जो उनके पुत्र हैं, की स्तुति की जाती है। अतः इस लीला का आरम्भ इनके पश्चात् ही संभव है। वल्लभाचार्य का समय सन् १४७६-१५३१ माना जाता है। इस प्रकार सन् १६३१-३२ के इर्द-गिर्द ही इसका प्रथम प्रचलन हुआ होगा।

जैसा ऊपर कहा गया है रासलीला का सम्बन्ध कृष्ण की लीलाओं के प्रदर्शन से है। आचार्यों और भक्तकवियों ने जो साकार उपासना की दुंदुभि बजाई उसी को लेकर अन्य भक्तजनों ने एक नाटकीय विधान आरम्भ किया जो 'रासलीला' या 'रास' या 'लीला' के नाम से पीछे से अभिहित हुआ। यही वह लीला है जो उस गीति-नाट्य (Dramatic poetry

या गीति कथोपकथन की जन्मदात्री है जिस पर आगे चलकर सन् १८५३ मे 'सैयद आगा हसन अमानत' ने 'इन्दर सभा' लिखी। यों तो 'इन्दर सभा' और रासलीलाओ के भूमि एक नहीं हैं। उनमें ध्रुव-दूरी का अन्तर है किन्तु इतना निश्चित है कि लीलाओं से 'इन्दर सभा' ने बहुत कुछ लिया है और लीलाएँ ही गीति-नाट्य परम्परा के आदि रूप हैं। बंगाल और पूर्वी बिहार की जात्रा (यात्रा) में भी भक्त हृदयो के उद्गार इस नाटकीय रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। ये 'जात्राएं' मगधदेशीय रासलीला ही कही जा सकती हैं। गुजरात के रासधारियो के 'रासड़ा' भी एक प्रकार की रासलीला ही हैं। इनमें स्थानीय अभिनय कला के दर्शन होते हैं। महाराष्ट्र मे लोक-रगमच काव्य 'ललित' नाम से मिलता है। इसे भी 'महाराष्ट्र' की रासलीला नाम देना अनुपयुक्त न होगा। दक्षिण में 'कथकली' अभिनय लोक-रगमच की परम्परा में ही रखा जायेगा।

'रासलीला' शैली पर ही भारत भर में 'रामलीला' भी मिलती है। वैसे तो रामायण के चरित्र महाभारतीय चरित्रों से अधिक प्राचीन और लोकप्रिय रहे हैं। पर वे साहित्यिक रचना से पहिले कब लोक-रंगमंच पर आविर्भूत हुए यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन है। परन्तु मध्ययुग से रामचरित्र लोक-रंगमच की एक प्रमुख विशेषता रहा है। १८वी शती के अंत मे राम-लीला के काशी में प्रदर्शन का जो विवरण प्रिंसेप ने अपने ग्रथ मे दिया है, उससे उत्तरी भारत के लोक-रंगमच की तत्कालीन सप्राणता का परिचय मिलता है।[1] कहा जाता है, स्वयं महात्मा तुलसीदास जी ने रामनगर, काशी, में एक 'रामलीला मंडली' स्थापित की थी। रामलीला मडलियो का अपना विशेष ढंग है। एक ओर अभिनय होता है और पास में वाचक मंडल 'रामचरित्र मानस' को गाकर पाठ करता रहता है। इस प्रकार रामलीला में कायिक एव वाचिक अभिनय बराबर चलता रहता है।

उपर के वर्णन से इस निर्णय पर पहुँचना समीचीन नहीं हैं कि लोक-रंगमंच केवल पौराणिक पुरुषों के जीवन को लेकर चला हो या इसके प्रांगण में धार्मिक विषयों ने स्थान पाया हो अथवा धार्मिक कथा नायकों का मुँह जोया हो। पौराणिक एवं धार्मिक विषयों और आख्यान नायकों के चरित्र के अतिरिक्त लोक-रगमंच पर एक तृतीय प्रकार का नाटकीय प्रदर्शन भी होता रहा होगा। इस प्रदर्शन का नाम नकल.' दें तो अनुचित न होगा। यह वर्तमान सांग (भगत)

---

१. श्री जी. पी. माथुर, आई. सी. एस.—"लोक-रंगमंच का रूप और संगठन" सं० प० २०१०।

या नौटंकी[1] का पूर्वरूप या पर्याय है। सांग शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के किस शब्द से है यह कहना अनिश्चित है किन्तु यह स्वांग का तद्भवरूप ज्ञात होता है। स्वांग का अर्थ होता है भेष भरना, रूप भरना या नकल करना। 'इस प्रदेश में' 'सांग भरना' एक लोकोक्ति भी प्रचलित है जिसका अर्थ होता है रूप भरना या रूप बनाना। वास्तव में 'स्वांग' वह रूप बनाना कहलाता है जब प्रयत्न करने पर भी रूप का यथातथ्य आरोपण न हो सके और पात्र मे विकृति आ जाये। साग का जो रूप आज हमारे सामने है अथवा पहिले रहा होगा उसके आधार पर यह स्वांग जैसा ही लगता है। सांग के लिए एक अन्य शब्द 'सागीत' का व्यवहार भी होता है। इस स्थान पर हम एक कल्पना और कर सकते हैं कि सांग और सांगीत दोनों 'सगीत' शब्द से घटकर अथवा बढ़कर बने हैं। क्योंकि 'सांग' या 'सांगीत' में लोक-संगीत की ही प्रधानता रहती है। अतः सांग को 'संगीत' का फूहड़ रूप मान लेने में विशेष बाधा नहीं होनी चाहिए। मनोरंजन की यह परम्परा युगों से चली आ रही है।[2] पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे निहालदे, गोपीचंद, हीरराझा, सीला सेठानी, अजना, नल-दमयन्ती, हकीकत राय और रूपवंसत आदि की नौटंकियाँ एक दीर्घकाल से लक्ष-लक्ष जनमानस का कठहार रही हैं। आज दिल्ली के आस-पास इन सांगों (नौटंकियों) का बहुत प्रचार पाया जाता है। यह हरियाने की अपनी अनूठी वस्तु है। परन्तु इन मर्मस्पर्शी प्रेमाख्यानों का प्रचार सारे उत्तर भारत मे किसी न किसी रूप में बराबर रहा है। इनमें लोक-रंगमंचीय अभिनय-कौशल, नृत्य-कौशल तथा संगीत-कौशल आदि सभी का प्रदर्शन हो जाता है। यह रंगमंच बड़ा शक्तिशाली है। इसके साथ विशाल जनसमूह का हर्षोल्लास गुंथा हुआ है। इनमें प्रेम-कथाओं के अभिनय के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक चरित्रों और व्यवहारों के ऊपर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है। हरियाने के सांगों में यह विशेषता बड़ी दूर से दिखलाई पड़ती है। 'गुजरात' के 'भवई' लोक-नाट्य और बिहार के 'विदेशिया' में भी ये विशेषताएँ अपना स्थान बनाये हुए हैं।

---

१. नौटंकी पंजाब की एक सुन्दरी नायिका थी। उसके जीवन-वृत्त पर लिखा गया स्वांग इतना अधिक सफल हुआ कि बाद में जो और स्वांग भी उस शैली मे लिखे गये वे भी नौटंकी कहे जाने लगे और यह कथा सभी निकटवर्ती जनपदों में पहुँच गई। २. आचार्य शुक्ल ने १वीं शताब्दि मे सांग का वर्णन दिया है। 'हिन्दी सा० का० इति०' पृष्ठ ८, (सिद्ध कराहपा)।

लोक-नाट्य (सांग) की प्राचीनता की परख के लिए एक बात और है। औरंगजेब के समय मौलाना ग़नीमत ने सांग स्वांग अथवा सांगीत' या नकल के अभिनय का व्योरेवार वर्णन दिया है। मौलाना साहब ने अपनी मसनवी 'नौरंगे इश्क' की रचना सन् १६८५ में की थी। मसनवी में कुल २६ पंक्तियां हैं जिनमे से पहिली-पहिली दस पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

'बशहरे मशव रसीदा तुरफ़ें जाम आ,
शरर परवाना हा बरगर दे शम आ। २॥
मुक़ल्ला पेशये बातर्ज़ो अन्दाज़,
मुशाविद सीरतांबा नग्मो साज। ४॥
बइल्म रक्स ओ तक़लीद ओस्तांदा,
मुराद खातिर इशरते न ज़ादां। ६॥
हमः खुश बहेजगां नग्मा परदाज़,
बहरफ़ इस्तला हेमा 'भगत बाज़'। ८॥
बफ़न्ने खविश्तन उस्ताद हरयक,
गहे मर्दों, गहेज़न, गहे तिफ़लक। ॥

[आज शहर में अजब किस्म के लोग आये हैं जो एक तरजो अन्दाज (विशेष ढंग) के साथ नकलें करते हैं और नग़मोसाज (संगीत) के साथ शोबदे (आश्चर्यजनक खेल) दिखाते हैं। नाच और नकल में ये उस्ताद हैं, खुश आवाज (मीठे स्वरवाले) हैं। हमारे इस्तलाह (भाषा) में इनको 'भगतबाज' कहते हैं। [कभी मर्द, कभी औरत, कभी बच्चे की नकल करते हैं] शेष मसनवी का हिन्दी अनुवाद भी डा० सोमनाथ गुप्त के आधार पर हमने यहाँ दिया है। [कभी परेशान बाल संन्यासी बन जाते हैं। कभी मुसलमान, कभी कश्मीरी का भेष बना लेते हैं और कभी फिरंगी (अंगरेज) बन जाते हैं। कभी दहकानी (फूहड़) औरत और मर्द की नकल करते हैं, कभी दाढ़ी मुडाकर गिन्न की सूरत नजर आते हैं। कभी मुगलो की शक्ल बना लेते हैं, कभी गुलाम बन जाते हैं, कभी जच्चा का हुलिया बना लेते हैं जिसका बच्चा दाया की गोद में रोता होता है। कभी देव बन जाते हैं, कभी परी। ग़रज हर कौम का जलवा दिखाते हैं और हर तरह के इश्वा जमाने से काम लेते हैं[1]।]

मौलाना साहब के कथन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि १७वीं शती के मध्य में 'जनोल्लास' का यह साधन विद्यमान था और उसकी परम्परा

१. डा० सोमनाथ गुप्त 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' पृष्ठ १६।

अवश्य पुरानी रही होगी। मसनवी से यह स्पष्ट सूचना मिलती है कि ये 'भगतबाज' आज की नौटंकी-मडलियों अथवा स्वांग-मंडलियों की भांति अपनी कला का प्रदर्शन एक स्थान से दूसरे स्थान पर करते फिरते थे।

उपरोक्त वर्णन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोक-रंगमंच का एक रूप १६वीं शती के आरम्भ में (महाप्रभु वल्लभाचार्य के काल में) रासलीला और रामलोला के रूप मे प्रकट हुआ और दूसरा रूप नौटंकी, स्वांग, भगत, सांगीत अथवा नकल का रहा जो १७वीं शती के मध्य में जनता मे अच्छी तरह प्रचलित रहा। नौटंकी के रूप में नाटक का ही विकृत (नवनाटक)[1] या ग्रामीण रूप देखने को मिलता है। इस काल में लोक-रंगमंच का विकास इन्हीं दो रूपों मे अपनी परिमित सीमा बांधकर हुआ है। उसके मुक्त प्रवाह और उत्थान के लिए उचित क्षेत्र और प्रोत्साहन प्राप्त न हो सका।

इस क्रम में कठपुतली नृत्य पर भी दृष्टि जाती है। कठपुतली अवश्य ही अति प्राचीन काल से रगमंच का एक महत्वपूर्ण अग रही है। वात्स्यायन ने ६४ कलाओ मे काष्ठपुतलिकाओं के निर्माण को लिया है। आगे चलकर साहित्यिक नाटकों में जो सूत्रधार शब्द आता है। सभवतः वह कठपुतलियों को सूत्र द्वारा नचानेवाले अथवा कठपुतलियां को डोरियों को धारण करने वाले व्यक्ति के नाम से ही लिया गया है। आजकल राजस्थान ही उत्तर भारत में कठपुतली नचानेवालों का केन्द्र है। कठपुतली नृत्य में मुगल कालीन राजपूत वीरों की जीवन-कथाओं की झांकियां देखने को मिलती हैं। मनोरंजन का यह साधन दुर्दिन के चक्र में पड़ा पुकार रहा है।

पं० राधेश्याम के खेलों की धूम भी लोक-नाट्य के रूप में बरसों चली। इनके खेलों में रंगमंच का कोलाहल था। इनके खेल घटना-प्रधान, सनमनी पैदा करने वाले, भड़कीले और बनावटी होते थे पर उनमें शिक्षा की पुट अवश्य रहती थी। गजलों की उर्दू में सस्कृत का छौंक लगाकर एक नई जबान तैयार की गई थी जो पीछे राधेश्यामी तर्ज ही बन गई।

ख. हरियानी सांगीत

हरियानी सांगीत परम्परा पर विचार करने से पूर्व हमें निकटवर्ती जनपदों के स्वागों पर विचार कर लेना चाहिए। नकल की यह शैली उत्तर भारत में

---

१. डा० दीनदयाल गुप्त जी का सुझाव है कि नौटंकी शब्द नवनाटक का अपभ्रष्ट रूप है। लोकमंच का सांग नवनाटक ही रहा होगा।

सुदूर तक व्याप्त है। व्रज मे स्वांग के गायकी की दृष्टि से दो प्रमुख स्कूल (परम्पराए) हैं—आगरा का और हाथरस का। आगरा की गायकी (तर्ज) और मंच दोनों ही यद्यपि हाथरस से प्राचीन और आकर्षक हैं तथापि वहाँ इसे व्यावसायिक रूप में कदापि ग्रहण नहीं किया, जब कि हाथरस के कलाकारो ने स्वांग को अपने ढग से विकसित किया और उसमें नये छंद, नई रगतें और नया रूप देकर उसे व्यवसायिक बना दिया। इस प्रकार व्रज में स्वांगो की लोक-प्रियता खूब बढ़ी और उनका विकास भी हुआ। परन्तु व्रज के स्वांगों को हरियाने की नौटकी की अमिट देन है। 'नौटकी' सुन्दरी के जीवन-वृत्त को लेकर लिखा गया स्वांग बड़ा सफल रहा और लोगों को बहुत पसन्द आया। बाद में उस शैली पर लिखे गए सांग भी नौटकी कहलाए जिनका इर्द-गिर्द के इलाके में विशेषकर व्रज में अच्छा प्रचार बढ़ा। तत्पश्चात पंजाब हीररांझा, गुरु गूगा और निहालदे के सांगीत भी निकटवर्ती जनपदों में व्याप्त हो गए, परन्तु हमने जिस नौटंकी के कथानक से स्वाग-शैली का उद्गम माना है। वह स्वांग दुर्भाग्य से आज उपलब्ध नहीं है, अन्यथा उसके स्वागों के आरम्भ, विकास, भाषा और शैली के अध्ययन की विशद एवं महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो जाती। फिर भी इस ओर हमें प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान सर आर० सी० टेम्पिल का कृतज्ञ होना चाहिए। उन्होंने अब से ७५ वर्ष पूर्व सन् १८८५ ई० मे 'दि लीजैंडस् आव दि पजाब' के तीन प्रसिद्ध ग्रन्थ देकर इस ओर महान कार्य किया है। इन ग्रन्थों में सर टेम्पिल ने ५८ लीजैंडस्, किस्से व गीत आदि का संकलन किया है। पर उन सांगो में और आज के सांगों से पर्याप्त अन्तर है और यह अन्तर सगीत, शिल्प, शैली भाव व भाषा प्रत्येक दिशा में है।

इसी प्रकार के सांग (तमाशे) अलीबख्श के थे जिनका प्रचार हरियाने के दक्षिण व पूर्वी भाग मे कई दशाब्द तक रहा है। इनके सागों की भाषा[1] सर टेम्पिल द्वारा संकलित सांगों जैसी है।

---

१ अलीबख्श की भाषा का नमूना—'तमाशा फिसाना आजइब' पृष्ठ ६७ पर।

रागनी—लोगो लुट गई री हम बेरनयां।
बेरनयां री हम बेरनयां।
लोगो लुट गई री हम बेरनयां॥

आज सुहाग हमारे री उनरे हिलकन लागी मेरी छतियां
कौन दिलास दे री पिया वर्षन लागी है अंखियां।
लोगो लुट गई री हम बरेनयां॥

अलीबख्श[1] के प्रमुख खेलों के नाम ये हैं—तमाशा राजा नल, तमाशा फिसाना अजाइब, तमाशा पद्मावत और तमाशा कृष्ण-लीला आदि। आज सांग के रूप रंग, गायकी (तर्ज) व मंचीय विकास में भी पर्याप्त परिवर्तन है जिसका प्रमुख श्रेय पं० दीपचंद जी को है और इनके प्रताप से हरियानी सांग में पुनर्जीवन का संचार हो गया है। इसी पुनर्जीवन काल के इतिहास को हम आगे की पक्तियों में देखने का प्रयत्न करेंगे।

हरियाने का जनोल्लास सांग[2] के द्वारा प्रस्फुटित होता है। लम्बा 'कथागीत' इस सांग का प्राण है और यह एक नाटकीय रूप में होकर चलता है। वस्तुतः साग हरियाने का ग्रामीण कौमी नाटक है[3] जिसमें प्रेम और यौवन आंखमिचौनी खेलते नजर आते हैं। सांगी का गीत प्रेम और यौवन से ऊपर नहीं उठता, मानो उसके लिए गाने योग्य केवल यही सूत्र शेष रहा हो। त्रिबोलों एवं रागनी का एक-एक शब्द शृंगार और वीर-रस के ताने-बाने से बुना होता है और श्रोताओं पर एक विशेष प्रभाव छोड़ता जाता है। हरियाने के लोक मानस को आज रस की जो परितृप्ति पं० दीपचंद, सरूपचंद, प० लक्ष्मीचंद, पं० मागेराम और धनपत आदि के सांगों से प्राप्त होती है वह इस प्रदेश के शिक्षित, अशिक्षित, हाली और पाली (ग्वाले) से छिपी नहीं है। सागियों द्वारा प्रस्तुत धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रेम मूलक इन कथाओं में स्थानीय जनता रामायण से भी अधिक रस

---

१. तमाशा फिसना आजाइब में अलीबख्श ने अपना परिचय देते हुए कहा है :—

दोहा—राजपूत हूँ टीकावत मेरा अलीबख्श है नाम।
नगर मुडावर सूबस बसियो है मेरा निज धाम॥

तोड़—रेवाड़ी बना रहे गुलजार। तमाशा किया बीच बजार।

२. सांग का एक नाम 'सोरठ' भी है। संभवतः 'सोरठ राग' जो आधीरात को गाया जाता है, उसके आधार पर इसे मिला हो। सांग प्रायः रात्रि में होते हैं और रात-रात भर होते रहते हैं। एक उक्ति प्रचलित मिलती है :—

भजन पसंदों में गाओ, अर सोरठ गाओ आधीरात।
आल्हा पंवारा उस दिन गाओ, जिस दिन भारी हो बरसात॥

इस उक्ति के ऊपर की कल्पना की पुष्टि हो जाती है। एक दूसरा अनुमान यह लगाया जाता है कि सांग में सुन्दरी स्त्री सोरठ का वर्णन होता है। अतः सोरठ सुन्दरी के नाम पर इसे यह संज्ञा मिली हो।

३. सांग की दो शैलियां प्रसिद्ध हैं—एक हाथरस की और दूसरी रोहतक की। हमारा आलोच्य विषय हरियानी (रोहतकी) सांग है।

लेती है। वास्तव में, ये रससिद्ध सांगी अपने छोटे से साजबाज और अल्प उपकरणों के द्वारा रस के ऐसे उत्स बहाते हैं कि श्रोतृवृन्द अपनी अवस्था को भूलकर उसमें गोते खाने लगता है। ऐसा साधारणीकरण साहित्यिक नाटकों में कम ही स्थानों पर देखने को मिलता है। सांगी का अ र र र...... का खिंचा हुआ स्वर श्रोताओं को झूम झुका देता है।

१. सांगीत (सांग) का शिल्प विधान

सांग नाटक या रूपक का वह प्रकार है जिसमें पद्य की प्रधानता होती है। इसे इगलिश में Metrical Play या गीति नाट्य[1] कहते हैं। इन रचनाओ को नाटक की अपेक्षा नाटकीय काव्य (Dramatic Poetry) कहा जाये तो असंगत न होगा। इनमें कथोपकथन पद्यमय होता है, केवल बीच-बीच में उन पद्यों मे गद्य की थेकलियां लगा दी जाती हैं। इन गद्य-खडो को वार्ता नाम से अभिहित किया जाता है। ये गद्य वार्ताए बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। इनसे कई लाभ होते हैं:—(क) कथा को एक विशेष मोड़ देने मे ये बड़ी सहायक होती हैं, (ख)—चरित्र नायक के प्रच्छन्न गुण जो गीत की पकड़ से बाहर पड़ गये होते हैं वार्ता द्वारा श्रोताओ तक पहुँच जाते हैं। (ग) कथा की रोचकता बनी रहती है। गीत प्रवाह मे बहती श्रोता-मडली वार्ता-तन्तुओं को पकड़कर कथा तट पर आ जाती है। यह वह अवलेह है जो कथा-श्रवण की बुभुक्षा जाग्रत कर देता है। वास्तव मे यह गद्य-पद्य मिश्रण ही सांग का प्राण है। साग मे गीत, राग और रागणी हृदय की बात कहती है। गद्य-वार्ता द्वारा इतिवृत्त की कड़ियों को जोड दिया जाता है। यहाँ एक उदाहरण देना समीचीन होगा:—

'ढोलामारू' हरियाने की एक प्रसिद्ध लोक-कथा है।

एक बार नरवरगढ़ के राजा नल ने पिंगलगढ़ के राजा बुद्धसिंह के साथ चौसर (चौपड़) खेली थी। उसी समय यह निश्चय हुआ कि दोनों रानियों के गर्भ से उत्पन्न होनेवाली संतान लड़की और लड़के का आपस में विवाह कर देंगे। समय आने पर बुद्धसिंह के मखण (मारू) पैदा हुई और राजा नल के ढोल कंवर। प्रतिज्ञानुसार इनका पलड़े मे बैठा कर विवाह कर दिया,

१. शास्त्रीय नाटकों का भी एक प्रकार 'गीति-नाट्य' है। अभिनव गुप्त ने 'अभिनव भारती' के चौथे अध्याय में गद्य-गद्य मिश्रित नाटकों के अतिरिक्त 'रागकाव्य' का भी उल्लेख किया है। 'राघव विजय' और 'मारीच वध' नाम के 'राग-काव्य' थे। ये प्राचीन राग-काव्य ही आजकल की भाषा में 'गीति-नाट्य' कहे जाते हैं।

परन्तु ढोल को एक श्राप था कि उसके ऊपर द्वार गिरेगा। इसके पश्चात् राजा नल ने ढोल कंवर का विवाह रेवती (रेवा) के साथ कर दिया। उधर पिंगलगढ़ में मरवण युवती हो गई। उसने वस्तुस्थिति अपनी माता से समझ ली और राजा नल के यहाँ ढोल कंवर के पास तोता दूत बनाकर भेजा। तोता रेवा रानी के हाथ पड़ गया और मरवण का सदेस ढोला तक नहीं पहुँचा।

सांगीतकार इस वृत्त को राग-रागिनियों में कहता है। कथा बढ़ती चलती है। जब राजा ढोल से कोई सूचना नहीं मिलती तो मरवण नरवरगढ़ के बणजारे के हाथ अपनी साड़ी पर सब हाल लिख के भेजा देती है। बणजारा उस साड़ी को ढोलकंवर को दे देता है। इस कथा को 'सांगीत ढोला मारू' में इस प्रकार कहा गया है :—

जवाब रेवा का

पास रहो हीरामन सूवा जो चाहे मेवा खावो।
कमी नहीं है किसी बात की लीजो तुम जी में चाहो ॥
सोने चोंच मंढाऊं तेरी मन में मत्त ना घबरावो।
मैना पास रहेगी तेरे और कहीं मत ना जावो ॥

जवाब कवि का

तोते को समझाय कै दिया पींजरे डाल।
यों झगड़ा होता रहा आगे का सुणो हवाल ॥

वार्ता

भाइयो ! पिंगलगढ़ में बणजारा बाग में आसरम के लिए ठहर गया था तो मरवण को मालूम हुआ कि ये बणजारा नरवरगढ़ का है और नरवरगढ़ ही जागा तो भाइयो मरवण अपनी साड़ी पै सब हाल लिख कै दे देती है और बणजारा नरवरगढ़ में आकै ढोलकंवर को देता है। जरा गौर से सुणो। वार्ता का अंतिम वाक्य वास्तव में श्रोताओं मे जाग्रति उत्पन्न कर देता है।

जवाब बणजारे का

बणजारे ने आप का टांडा लिया उठाय।
मजल-मजल चल दिया गया नरवरगढ में आय ॥

काफिया

बणजारे नै टांडा गेर दिया वो नरवरगढ में आकै।
जब चाल पड़ा बणजारा मरवण की वस्तु ठाकै।
उस ढोलकंवर ने दे दी भाइयो बीच कचेड़ी जाकै ॥

इसी प्रकार आगे ढोल पिंगलगढ़ चलने की तैयार होता है। वह ऊंटों से सहायता चाहत है।

जवाब ढोला का

मनै पिंगलगढ पहुँचा दो दरस करा दो प्यारी का।
जा कै दरसन कर लूंगा, घूंट सबर कैसी भरलूंगा ॥
मैं बण के मिरग चरलूंगा, मजा ल्यूं केसर क्यारी का।

वार्ता

हे भाइयो! जो बड़े मोटे ताजे करीया (ऊंट) थे सो सब इंकार कर गये मगर एक बोदा सा करीया पड़ा रहे था वो राजा से क्या कहता है ज़रा सुणो :—

जवाब करला का

धीरज मन में धारिये मत कर सोच बिचार।
पिंगल से भी मैं परै पहुँचा दूंगा यार ॥
तनै पिगल पहुँचा दूं मन में सोच करै मत भारी रै।

२. हरियानी सांगीत और हिन्दी नाटक में अन्तर

सांग के विधान को समझने के लिए नाटक से अन्तर समझ लेना भी आवश्यकीय है। सांग में संस्कृत नाटक की एक दो वस्तुये जीवित हैं। शेष सांग की सादगी मे दब गई हैं। साग में नान्दीपाठ के स्थान पर ईश प्रार्थना, शारदा वदन तथा शिवस्तुति रहती है। सांगी अपनी गुरु परम्परा का वर्णन भी निश्चित रूप से करते हैं। इसके पश्चात् वार्ता द्वारा वस्तु का वर्णन कर दिया जाता है। 'सांगीत ढोला मारू' में रूपचद सांगी निम्नलिखित शब्दों में सांग को आरम्भ करता है :—

निरगुण आतम ब्रह्म सै हो ख्याल पिंगल छंद का।
मानसिंह है दादा गुरु मिट्ठनलाल सतगुरु रूपचंद का ॥

[आत्मा ही निर्गुण ब्रह्म है तथा पिंगल एवं छंद शास्त्र का ज्ञान गुरु के बिना नहीं होता। रूपचंद के सद्गुरु मिठ्ठनलाल और दाद गुरु मानसिह हैं।] एक दूसरा उदाहरण :—

"ओम् नाम सबसे बड़ा इससे बड़ा ना कोय।
जो इसका सुमरण करे तो शुद्ध आत्मा होय ॥"

भेंट

वे सुमर लिए भगवान।
लखमीचंद सतगुरु मिले मैंने जिनते पा लिया ज्ञान ॥
आरी भवानी बास कर मेरे घट के परदे खोल।
रसना पर बासा करो माई शुद्ध शबद मुख बोल ॥

यहाँ पर सांगीतकार ईश्वर, पार्वती, सरस्वती और गुरु की वन्दना करके आगे बढ़ता है[1]। किसी-किसी सागीत में 'भरत वाक्य' की भाँति आशीः, उपदेश आदि वाक्य भी मिलते हैं। 'सांगीत लाखा बणजारा' मे प० कुन्दन लाल जोणायचा निवासी द्वारा प्रयुक्त भरत वाक्य दर्शनीय है :—

नहीं साच को आंच हो यत्न करो चाहे क्रोड़ ।
अटल छत्र जै बोलते ब्राह्मण कुन्दन गौड ॥

साहित्यिक नाटकों की अन्य भूलभुलैया—अंक, अंकावतार, विष्कम्भक आदि इन सागीतों मे देखने को नहीं मिलतीं।

सांग को जमाने के लिए साज-सज्जा युक्त किसी रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती। यह तो खुले चौड़े मे तख्त बिछाकर बिना किसी छिपाव दुराव के अपेक्षित पात्रों के द्वारा खेल लिया जाता है। कभी-कभी कोई साग मडली यथासमय और यथास्थान जवनिका आदि का भी प्रबन्ध कर लेती हैं, परन्तु लोक-नाट्य के लिए इसकी अनिवार्यता नहीं है। अपनी छोटी सी स्टेज पर ही सब अभिनेता—पुरुष-स्त्री—बैठे रहते हैं। प्रवेश, प्रस्थान सवाद, गाना, नाचना आदि सब रंगमच पर दर्शकों के सामने खुले मैदान मे होता रहता है। जिसकी बारी आई उसने उठकर अपना पाठ अदा कर दिया। जनाना पाठ जनाने वेष में पुरुष ही निष्पन्न करते हैं।

विषय की दृष्टि से यदि 'सांगीत' पर विचार करें तो इनमें धार्मिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों से लेकर तिलस्मी ऐयारी और आधुनिक सस्ते घृणित, छिछले रसाभास मूलक प्रेम व्यापारों तक का वर्णन देखने को मिलेगा। एक ओर, पुण्य श्लोक राजा नल के पावन चरित्र का वर्णन है अथवा गोपीचद भरथरी (भर्तृहरि) की अनन्य त्यागवृत्ति[2] के दर्शन होते हैं तथा पूरनमल के उदात्त एव अलौकिक शिष्टाचार की उद्भावना है तो दूसरी ओर "ताकू तोड़ और बाली फोड़" और 'लीलोचमन' के नग्न

---

१. 'सांगीत मस्ताना पलटनिया (फौजी) —चौ० चन्दनसिंह ।

२. स्वांग राजा गोपीचंद :—

चौबोला—लगे बदन में तीर, ये मैं माता ने समझाया।
कंचन काया जली पिता की, ये दिष्टांत बताया ॥
अगम निगम का ज्ञान सुना के, तखतराज छुटवाया।
ए गुरुदेव ! करो किरया, मैं जोग लेन को आया ॥

अशिष्ट एव जघन्य अश्लील प्रेमालापो[1] का चित्रण है। ऐसे सांगों में गॉवो का वह आरण्यक निश्छल वातावरण जो अपनी पावनता एवं निरीहता के लिए प्रसिद्ध है बडा निम्न, घिनौना और गर्हित (निद्य) चित्रित किया गया है। यहाँ इतना और देख लेना चाहिए कि सांग की परम्परा के आदि मे उनकी यह दशा न थी। यह तो आज की' 'नई रोशनी' का परिणाम है और उसी हीन मनोवृति के परितोष के लिए इन सागियो की प्रतिभा प्रभा अवांछनीय दिशा में पदार्पण करने लगी है। आशिक माशूकों के बेढगे वर्णन और विलासप्रियता की भूड़ी भावना ने कविता-कामिनी के कलित कलेवर को कलुषित कर दिया है।

इस दृष्टि से जब इन सागो पर दृष्टिपात करते हैं। तो यही प्रतीत होता है कि आरम्भ के कुछ सांगों को—पुरजन पुरजनी (प० लक्ष्मीकृत), हरिश्चन्द्र (प० सरूपचन्द कृत) तथा सीलां सेठानी (पं० नेतराम कृत) आदि को—छोड़ कर जिनमें जीवन के उदात्त एवं विशुद्ध पक्ष की झांकी मिलती है प्रायः सभी सांग नग्न शृंगार की मजूषाएं हैं। इतना खुला शृगारिक एवं विलासिता-मय वर्णन इनमे होने लगा है कि लज्जा भी लजा जाती है। इसका बड़ा अस्वस्थ प्रभाव अबोध बाल-बलिकाओं पर पड़ता है। कई स्थानों पर नव-युवतियां इन सांगियों की बांकी अदा पर फिदा होकर अपने घरबार को छोड़ गई हैं। यह सांगों की इस विलासिता का ही परिणाम है। यहां पर कतिपय नाटककार या सांगीतकार यह आपत्ति उठायेंगे कि बिना शृंगार रस की पुट दिये नाटक अथवा सांग सरस एवं आकर्षक बनाये ही नहीं जा सकते। बात कुछ सीमा तक ठीक भी है और यह बात भी सत्य है कि शृंगार सर्व-प्रिय रस है किन्तु औचित्य इसे और भी आकर्षक एवं सहृदय सवेध बना देगा क्योंकि संयम में एक विलक्षण शक्ति होती है।

---

१. (क) सांगीत लीलोचमन (धनपत कृत) :—

चन्द्रमा सी शान हूर की सडक बीच खड़ा देखी।
मध जोबन की ठीक जलें ज्यूं उठती फूलझड़ी देखी
मुरगाई की ढाल चाल के पांव धरे थी डट-डट के
नैन कटार जुलम इशारा हूर करे थी हट-हट के।

(ख) सांगीत लीलोचमन (राम किसन व्यास कृत) :—

सुण सैण्डल आली गोरी नीचै नै नजर करै
तू जमीदार की छोरी, तेरी मटकै पोरी-पोरी कट खाना त्योर तेरै
तेरी दो पुतली काली छोरों पै मार करै रे

ग. हरियानी सांगीत का इतिहास

किसी साहित्य का इतिहास प्रधानतया दो प्रकार से लिखा जाता है। एक कालक्रम की दृष्टि से, दूसरे विषय की दृष्टि से। आजकल कालक्रम से इतिहास लिखने की प्रथा ही विशेष प्रचलित है और है भी वह वैज्ञानिक। इस परम्परा के अनुसार आलोच्य साहित्य के उदय, विकास आदि के मील चिह्नों की खोज की जाती है और उसका अध्ययन किया जाता है। इतिहास की एक शैली का उदाहरण प० रामचन्द्र जी शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' है। दूसरी शैली विषय-क्रम से इतिहास लिखने की है। इसमें साहित्य के विभिन्न अगों जैसे पद्य, गद्य और रूपक, रीति एवं अलंकार आदि का क्रमबद्ध इतिहास होता है। महापडित कीथ के द्वारा लिखा गया 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' इसका सुन्दर उदाहरण है। हिन्दी में डा० हरदेव बाहरी का "हिन्दी काव्य शैली का विकास" इस दिशा की अच्छी पुस्तक है। विशिष्ट कवियों या लेखकों के नाम से आलोच्य साहित्य को बाट-कर अध्ययन करने की एक नूतन प्रथा भी प्रचार पा रही है। हडसन का "अग्रेजी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" इस शैली से लिखी वस्तु है। इस प्रणाली में कवियों के नामों पर युग निर्धारित किये जाते हैं। यथा 'एज आव शेक्सपीयर, मिल्टन युग, टेनिसन युग आदि।

साग साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने में हम प्रथम शैली का अनुगमन नहीं कर सकते क्योंकि लोक-रंगमंच का इतिहास टटोलते समय हमें सांग, स्वांग या नौटकी की जन्म-तिथियां नहीं मिल सकी हैं। अतः समय के निश्चय के अभाव में किस प्रकार काल विभाजन किया जाये, समझ में आनेवाली बात नहीं है। दूसरी प्रणाली विषय के एक होने के कारण कार्य में नहीं लाई जा सकती। यह शैली तभी संभव है यदि आलोच्य विषय में कई शैलियां गद्य, पद्य, नाटक आदि हों। यहां केवल नाटक ही एक मात्र विषय है। तीसरी प्रणाली अवश्य ही हमें सहायक सिद्ध होगी।

हरियानी सांग का इतिहास खोजते समय पं० दीपचन्द ऐसे सांगी हैं जिन्हें हम युग प्रवर्तक के नाम से पुकार सकते हैं। इनके द्वारा सांगों में एक नया मोड़ आया, एक नई दिशा मिली और इस साहित्य ने एक नई करवट बदली। अतः प० दीपचन्द को हम सांग साहित्य के इतिहास का मध्यविन्दु मानेंगे और उनके नाम पर युग स्थापित करेंगे। इस प्रकार समस्त हरियानी सांग साहित्य को तीन भागों में बांटा जा सकता है :—

१. पूर्व दीपचन्द युग

२. दीपचन्द युग
३. उत्तर दीपचन्द युग।

एक दूसरी रीति यह भी हो सकती है कि हम समस्त उपलब्ध सांग साहित्य को उसकी अवस्थाओं में बांट लें। अवस्था विशेष में जो प्रवृति विशेष रही है उसी के अनुसार उस सामग्री को एक अवस्था का नाम दें। दूसरी अवस्था को दूसरा नाम दिया जाये। इस प्रकार हमारे विभाजन की रूप-रेखा यह होगी :—

१. प्रथमावस्था
२. द्वितीयावस्था
३. तृतीयावस्था (अतिमावस्था)।

पीछे हमने देखा है कि लोक-रगमच के आदि युग में इसके दो रूप थे, एक कीर्तन का रूप और दूसरा नौटंकी का रूप। कीर्तन का रूप ही आगे चलकर रासलीला के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ। उसी से कुछ प्रवृत्ति सांग ने ली। यह बात पीछे कही जा चुकी है। परन्तु हरियाने के सागो के इतिहास पर विचार करते समय इस प्रदेश मे व्याप्त भजनीक मडलियो के स्वरूप को भी देख लेना होगा। विशेष अध्ययन इस बात का साक्षी है कि हरियाना का सांगीत अपने आदि रूप मे भजनीक मंडली का ऋणी है। हरियाने के आधुनिक सांगों के प्रतिष्ठापक पं० दीपचंद से पहिले जो दो सांगी—रामलाल खटीक (सौनीपत) और पं० नेताराम (अस्मापला निवासी) हुए हैं वे आदि मे भजनीक थे और पश्चात् को सांगी बने। उनके पास वाद्य-यन्त्र—सांरगी 'एक तारा) ढोलक और खरताल होती थीं। खड़े-खड़े गाते थे। भजनीको का स्वरूप था।

पंडित नेतराम जी जटाधारी, बड़े भजनानंदी और कथावाचक थे। उनके विषय में यह बात कही जाती है कि वे किसी गांव में भगवद् कथा कहा करते थे। अनेक लोग कथा सुनने आते थे। उन्हीं दिनों उस ग्राम मे एक पं० किशनलाल (रेवड़ी, मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश निवासी) सागी आया और उसने अपने साग का प्रदर्शन किया। सांग का जनता पर ऐसा जादू चढ़ा कि कथा में कतिपय वृद्ध-भक्तों के अतिरिक्त कोई न आता। दक्षिणा के लाले पड़ गये। इस घटना से पंडित जी को बड़ी खिन्नता हुई और वे बड़े निराश हुए। बस, उन्होंने कथा को अतिम प्रणाम किया और अपनी प्रतिभा प्रभा को सांगदेवी की भेंट कर दिया। इस प्रकार उनकी सांग सुलभ प्रतिभा का उन्मेष हुआ। 'सीलां सेठानी' के सोरठ (सांग) का प्रथम सफल

अभिनय उन्होंने किया। यह सांग उस समय के अभिनीत सांगो से, जो अंशतः भजन होते थे और अंशतः सांग, अपेक्षाकृत उच्च कोटि का रहा था।

इसके पीछे, प० दीपचंद (सेरी खांडा निवासी) का प्रतिभा प्रभाकर सांग गगन में छा गया और उडगण अस्त हो गये। पं० दीपचंद के मंद गंभीर स्वर को जिन्होंने सुना है वे आज भी उनका प्रभाव शिरसा स्वीकार करते हैं। 'प्यासे की प्यास' का रोमांचकारी वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है :—

> टुक सा नीर पिला दे और घाल मेरे बंट्टे में,
> अरे तूं भले वरां की दीक्खै, तन्नै जनम लिया टोट्टे में,
> तूं मेरी साथ होल्ले रै, दाम्मण मंढवा द्यूं घोट्टे में।
> टुक सा नीर पिला दे और घाल मेरे बंट्टे में।

दीपचंद के सांग योरोपीय प्रथम महायुद्ध के समय अपने यौवन पर थे। उन दिनों दीपचंद हरियाने का प्रमुख गायक था। वास्तव मे उसके कंठ में बैठकर राग बड़ा प्रभावशाली बन जाता था।

दीपचंद के गीत का प्रभाव अचूक होता था। कथन की इसी प्रभावोत्पादकता को स्वीकार करके भारत सरकार ने उसे भरती के कार्य में ले लिया था। हरियाने के जाटों ने जो बड़े निडर और निर्भीक हैं और सदा बागी रहे हैं, सेना में भरती होना नहीं चाहा। परन्तु सरकार को हरियाना प्रदेश जैसे बहादुर वीर सैनिकों की आवश्यकता थी। उन्हें किस प्रकार भरती के लिए प्रोत्साहित किया जाये यही समस्या थी। उसी बात का बीड़ा प० दीपचंद ने उठाया। मनुस्मृति साक्षी है कि यहाँ की जनता सदा से सेना के हरावलों (अग्रभाग) में रहती रही है[1]। हरियाने के जाटों की निर्भीकता एक उक्ति में इस प्रकार आकर बैठी है :—

> "आप्पी बोया आप ही खात हैं, नाहीं दे किसी को दाणा।
> बागड़ देस मत जाणियो या सै देस हरियाणा।"

---

१. कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पंचालान् शूरसेनजान्।
दीर्घांल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयते॥

मनुस्मृति अ० ७ श्लोक १९३

कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पंचालदेश तथा शूरसेन देश के विपुलकाय और फुर्तीले सैनिकों को भीषण आक्रमण करने के कारण सेना के अग्रभाग मे रखना चाहिए।

परन्तु पं० दीपचन्द के रागबद्ध कथन की प्रभावोत्पादकता के प्रभाव में वे ही बागी जाट मन्त्र-मुग्ध मधुमक्खिकाओं की सदृश धड़ाधड़ फौज मे भरती होने लगे। उन पर उसके गाने का बड़ा असर हुआ। यदि यह कहा जाये कि दीपचन्द के गाने हरियाने मे 'बिगुल' का काम करते थे तो अत्युक्ति न होगी। दीपचन्द को इस महान् कार्य के लिए लाखो रुपया इनाम मिला और रायसाहब की उपाधि भी मिली। रंगरूटी के लिए गाये गये गाने आज भी हरियाणे की जनता को याद हैं :—

भरती होलै रै थारे बाहर खडे रंगरूट,
इयां इसा रखते मध्यम बाणा,
मिलता फट्या पुराणा, उवां मिलते हैं फुलबूट,
भरती होलै रै थारे·······रंगरूट।

फुलबूट ही नहीं बिस्कुट का भी बड़ा भारी प्रलोभन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ 'रंगरूट' किसी जाति विशेष के युवक के लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है। सभी युवक इसके सबोध्य हैं।

दीपचंद युग से आगे बढ़ने से पूर्व यह अनुपयुक्त न होगा कि पाठक इस युग की सांग विषयक प्रगति का सिंहावलोकन कर लें। इस युग में सांगीय-रंगमच के साधनों में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। जो अभी तक खड़े होकर, इकतारा और खरताल से ही काम लेते थे इस दौरे में एक चौकी और मूंढा लेकर बैठते थे। नायक मूंढा पर और शेष सब नीचे। राणी और बांदी दो नाचनेवाली होती थीं। साज के क्षेत्र में एकतारे के स्थान में सारंगी का प्रयोग बढ़ा। खरताल ज्यों की त्यों रही। इसके अतिरिक्त ढोलक और नक्कारा भी सम्मिलित हो गया। सांग इस दौर में अपने वास्तविक रूप में उपस्थित हो गया। प्रभावकारिता के लिए स्त्री और पुरुष का अभिनय होने लगा। सांग अब पक्की नकल या स्वांग बन गया। दीपचंद दौर के मुख्य-मुख्य सांगी ये हुए हैं :—

१. हरदेवा स्वामी गांव गोरड़
२. बाजेनाई (भगत) ,, ससाणा
३. प्रभु ,, आसन
४. भरतू ,, भैंसरू ब्राह्मणान्
५. हुकमचद ,, किसमिनाना (जिला करनाल)
६. लखमीचंद ,, जांटी।

ये सभी सांगी दीपचंद दौर के कहे जाते हैं परन्तु इनमें पं० लखमीचंद

बड़े प्रतिभा सम्पन्न गायक हुए हैं। कहा जाता है वे भी महात्मा कबीर को तरह "मसी कागद छूवो नहिं, कलम गही नहीं हाथ।" वाली कोटि के थे। परन्तु उनकी प्रतिभा का प्रस्फुरण जब होता था जब कि वह शारदा का ध्यान कर दत्तावधान होकर बैठते। लखमीचंद बड़े ज्ञानी और वेदान्ती पंडित थे। उनकी रागणी जो ज्ञानपूर्ण हैं वेदान्त के उत्कृष्ट नमूने हैं।

रागिणी हरियाने की अपनी निराली विभूति है। इसका उद्गम अज्ञात है। पर इसके वर्तमान रूप का पर्याप्त श्रेय प० लखमीचद जी को है। बहुतों का कथन है कि पं० लखमी का दिव्य कंठ ही इस राग का जन्मदाता है। परन्तु यह तो सत्य है कि रागणी के नाम के साथ ही पं० लखमीचद की स्मृति हो अवश्य आती है।

घ. हरियानी सांगीत में सूफी प्रभाव

पं० लखमीचंद जी ने इस क्षेत्र मे एक नई दिशा दी। उन्होने सांग को जो अभी पौराणिक एवं धार्मिक आख्यानों पर आधारित था, एक उन्मुक्त क्षेत्र मे ला खड़ा किया। जीवन के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित कर दिया। प्रेम और यौवन जो ग्रामीण जीवन की दो विभूतियाँ हैं उनका अच्छा संयोग साग मे देखने को मिला। इस दौर के कई सांगो में सूफी काव्य-धारा की प्रवृत्ति मिलती है। स्वप्न मे किसी सुन्दरी के दर्शन हो जाने पर उसकी प्राप्ति के प्रयत्न, नाना कष्ट और अत मे सच्चे प्रेम की पूर्ति की सुखद अवतारणा इनका विषय है। इस प्रकार का एक सांग हमारे सामने है। वह दुलीचंदकृत 'सच्चा माशूक' है। लेखक दुलीचंद गुरु मानसिह का शिष्य है। इसमे एक सुन्दर प्रेम-कथा का वर्णन आया है जिसका सक्षेप नीचे दिया जाता है :—

वार्ता

सज्जन पुरुषो को मालूम हो कि श्याम नगर मे राजा मुकट राज की लड़की चन्दकोर क्वारी थी और इधर कंमलीपुर के बीच मे राजा धर्मजीत का लडका बलवीर सिंह था। एक दिन बलवीर सिंह ने सुपना देखा तो उस सुपने मे उसे चन्दकोर का ख्याल आया कि तीस वर्ष की उमर में है और अब तक पिता के घर पर क्वारी है और जैसी वह हुसन रूप में है वैसा कोई खूबसूरत बर उसकी जोड़ी का नहीं मिलता। अब यह लड़के के दिल में समा गया और उस पै ईश्क सवार हो गया। अब सुबह होते ही लड़का उसी के ध्यान में पागल सा बन गया। जब यह उसकी राणी ने सुना तो अपने पति से न्यों कहने लगी :—

जवाब रानी अमरावती का

दोहा— आज तनै के हो गया चेहरे का उतरा रंग।
बालम तों न्यों तो बता क्यों बिगड़ रहा तेरा ढंग ॥

जवाब बलबीरसिंह का रानी से

अरे के कहूँ कहण की ना बात बदन में लग रही आगसी।
इब सबर करूं कितनाक। रांड चिर गई नीबू की फांक।
थी मोटी-मोटी आंख लड़ी मेरे काली नाग सी ॥१॥
जहर चढ़रया काली नागण का। घाव होग्या तीर लागण का।
रात नै महीना था फागण का ईश्क में खेली फाग सी ॥२॥
तनै समझाऊं हरवार। मनै जबतै देख्या दींदार।
हुया मैं घायल बिना हथियार मेरै होगी वैराग सी ॥३॥
मैं सिर पै विपता ठाऊं। अड़ै डट कै ना भोजन खाऊं।
कहै महताब अड़ै तैं जाऊं, मैंने तो दीखे निरभाग सी ॥४॥

जवाब रानी अमरावती का

(*काफिया*)

जिब तै बुरा हाल तेरा देखा पिया मैं हो री मरणे जोगी।
तेरे कितके तेल लागगे कोण से हुआ दर्द का रोगी।
तेरे रात-रात में बालम आज के बक बावल सी होगी।

जवाब बलबीरसिह का

(*काफिया*)

हुया मेरे पै ईश्क सवार, बता मैं कुणसा जतन करूं।
मनै जिब तैं सुपना आया। मेरी दुख पा रही सै काया।
हुया मैं बिना दर्द बेमार अड़ै डटजां तै बिन वैद मरूं ॥
रात नै लगी जिगर मे चोट। सेल मनै लिए छाती पै ओट।
वा खिल्या चैत में क्यार बणकै मैं मिरगा जाय चरूं ॥

जवाब राणी अमरावती का

हो तनै बरजूं सूं भरतार मत ठोकर खइये जमाने की ॥
कित गए तेरे अतर फुलेल। चाल सेजां पै चौपड़ खेल।
परत्रिया विष की बेल इज्जत करदे आने[1] की ॥

---

१. एक आने की; कम।

आज तेरा ऐसा बिगड़ रहा ढंग । तनैं जाणू पी राखी हो भंग ।
मेरे जोबन का लिए रंग पतंग सै या पेच लड़ाणे की ॥

जवाब बलबीरसिंह का

जब से देखा है सुपना मैं घायल हुआ,
वो है देवी हुस्न की पुजारी हूं मैं ।
भीक मांगूंगा उससे वो देगी मुझे,
उसके जोबन का बना, भिखारी हूं मैं ॥
सुपना देखे मुझे चार घन्टे हुए,
जब से दुख पा रहा दिल में भारी हूँ मैं ।
अब एक बै कहूं चाहे लाख दफा,
करता स्याम नगर की त्यारी हूँ मैं ।
वो घोड़ी है उसकी सवारी हूं मैं,
बन्सरी है वो कृश्न मुरारी हूं मैं ।

दोहा— अगनी सी लागै मेरे मनै जूं जूं होती देर ॥
अब प्यार अखीरी हो लिया जीग्या तो मिलूंगा फेर ॥

रागनी

राणी रोती छोड़ी धरा स्याम नगर का ध्यान ॥
मैं इब आगे नै बढ़ूगा । ना लाज शर्म में गड़ूंगा ।
बणके मैं तीर चढ़ूंगा वा खाली पड़ी सै कमान ॥

वार्ता

सब सज्जन पुरुषों को मालूम हो जब कि बलबीर सिंह जंगल बियाबान में पहुचा तो उसे एक साधू तप करता दिखाई दिया । अब लड़का साधू को देखकर सोचने लगा कि इस बाबा जी का चेला बण कर स्याम-नगर नै चलूँ और वहां जाकर उसके महल का पता लगा कर भीक मांगने जाऊँगा । अब बलवीर फकीर के पास आया और फकीर बलवीर को देखकर कहणे लगा ।

जवाब फकीर का

दोहा— कुणसे देस का कंवर सै कुणसे देस नै जाय ।
बियाबान के बीच मे टुक भी दहशत ना खाय ॥

जवाब बलबीर का

दोहा— देस नगर तै छूटग्या इब करूं जंगल मे बास ।
मैं तेरी शरण में आलिया तू पूरी कर दे आस ॥

मेरी जोग लेख की सला भला तेरा होगा मनै चेला करिए ॥
भंग पड़ रहा अकल मेरी मे । चुभगी पैनी थी धार छुरि मे ।
मैं आग्या शरण तेरी में नाथ मेरे घाव दूखतै नै भरिए ॥
मैं तेरे तै कान पडाऊं । फिर तेरे कैसा बण जाऊं ।
मैं तेरा दास कहाऊं नाथ तू हाथ मेरे सिर पै धरिए ॥
मैं आया घरतै लिकड़ कै । इब मेरे आग कालजै भड़कै ।
मनै चेला करले बेधड़कै तो मत अपणे दिल में डरिए ॥

वार्ता

सज्जन पुरुषो को मालूम हो कि बलबीर ने घोड़ा और अमीरी बस्तर सब उतार दिए और लखीनाथ का चेला बण कर चल दिया और चन्दकोर के महल मे अलख जगाई । चन्दकोर जोगी का सारा हाल बांदी से सुनकर झट फाटक पर आई और जोगी को सूरत देखते ही उस पर आशिक हो गई और दोनों एक दूसरे को देखणे लगे तब चन्दकोर बलबीर से इस तरह कहणे लगी :—

जवाब चन्दकोर का

(काफिया)

मनै जिबतै तेरा हाल सुणा सै नाथ मेरे बाकी कोन्या गात में ।
या मेरे मन मे भागी[1] माला जो ले रहा अपणे हाथ मे ।
तनै लेणी हो सो मांगले हीरे पन्ने द्यूं जवहारात मैं ।

जवाब जोगी का

दोहा— सुपने मे देखी तनै मेरे जब तै लगी उचाट ।
मनै हीरे पन्ने छोड़ कै सब तजे राज और पाट ॥

रागनी

जोबन की भोख घाल दे और कुछ लोड नहीं सै धनकी ॥
....
तेरा चेहरा ऐसे दमकै जाणू कड़की बिजली गगन की ॥

जवाब चन्दकोर का

दोहा— तेरे तैं के सै ल्हको[2] मैं साफ कहूं सू खोल ।
सांस सबर के लेबती जिब उठै ईश्क की होल ।

---

१. पसन्द आई । २. छिपाव, दुराव ।

रागनी

मेरा सोरण बरगा गात । मनै तो ले चल अपणे साथ ।
इब उठके रोज परभात पति तेरी देखूं श्याम नै ।।
मनैं बड़ी-बड़ी बिप्ता ठाई । जोबन बणग्या बकर कसाई ।
मेरी इब तक ना हुई सगाई रोऊं मैं किसकी जानै ।।

जवाब जोगी का

मनै देख्या करके ध्यान चन्दे तै सुथरी तेरी स्थान ।
इब मैं बैठ करूं अस्नान सीली तू बूंद चुंमासे की ।।

रात्रि के पिछले पहर में जोगी चन्दकोर के महल से उतरता है और कोतवाल उसे पकड़ लेता है ।

जवाब कोतवाल का

(काफ़िया)

पर त्रिया विष की बेल सै या बडे बडा ने खोजा ।
तनै करद्यूं बन्ध कैद मे इब तौं आगै आगै होजा ।।

जवाब जोगी का दरोगा से

जो करते सच्ची यारी, वो भौसागर पार उतर जांगे ।

प्रातःकाल जोगी राजा मुकट राज के सम्मुख पेश किया जाता है और उसे प्राण-दंड की सजा सुना दी जाती है ।

वार्ता

दूसरे दिन जोगी को फांसी के लिए तैयार करने लगे तो मुकट राज का वजीर जोगी से आकर कहण लगा कि तूं कौण से देश का जोगी है और किसका लड़का है तो जोगी बोला कि मैं कमलीपुर के राजा धरमीजीत का लड़का हूँ और चन्दकोर के इश्क में फॅसकर यहां अपणी मौत निसानी पर आ पहुंचा हूँ । इतनी सुण कर वजीर बादशाह से कहणे लगा कि यह जोगी राजा का लड़का है और चन्दकोर के महल में जाकर उसका धर्म भी बिगाड़ आया है इसलिए इस जोगी को रिहा करके चन्दकोर को इसके साथ व्याह दो । तो सज्जन पुरुषो ! यहां का किस्सा तो यहीं छोड़ा जाता है और अब चन्दकोर के महल का हाल सुनाता हूँ ।

जवाब कवि का

दोहा— दिन लिकड़ा पीली पटी सब रटै राम संसार ।
चन्दकोर भरी इश्क में मरगी थी खाय कटार ।।

(काफिया)

लड़की नै ख्याल करया दिल मे इश्क में मरगी होके आंधी।
कमरे मे ल्हास पड़ी चमकै थी जाणू चमकै कचिया चांदी।
राजा सल्हा सूत कर रहा था जाकै न्यूं रोवण लागी बांदी॥

जवाब बांदी का राजा से

राजा चन्द्कोर तेरी बेटी वा तै खाय कटारी मरगी हो॥

जवाब कवि का

सुणी चन्द्कोर के मरणे की उस लड़के ने गस आगी रै॥
वा होगी जिसतै रहा था डर मैं। कित मारूं जाकै टक्कर मैं।
....
मनै तेरे इश्क में फंस कै घर पै सोले राणी त्यागी रै॥
मै था पीवण नै हो रहा रै। सरबत का था भरा कटोरा रै।
न्यूं रोवै चातर भौंरा रै तों खिली कली मुरझाई रै॥

वार्ता

सज्जन पुरुषों को मालूम हो कि जिस वक्त चन्द्कोर की ल्हास महलों में पड़ी थी तो उसे देख-देख कर सबके मुँह से रोणा ही रोणा लिकड़ रहा था। तब राजा मुकटराज दिल मे शान्ति धर कर उन लोगों से कहणे लगा कि अब रोणे से क्या होता है चलकर इसकी गत-मुक्त करनी चाहिए। तब इतनी सुणकर बलबीरसिह राजा से यू कहने लगा:—

मैं फंसा इश्क में होग्या मेरा नास सै।
या करदे मेरे हवाले जो पडी ल्हास सै।
....

राजा का जोर चल्या ना बो आ रहा था बीच बचन में।
लड़का ल्हास उठाकै चल दिया फिर आ पहुँचा था एक वन में।

जवाब कवि का

अरै चिता चिणी थी राव नै कुछ दुख का हुया ना इलाज।
आग लगावण लागग्या आया शिवजी महाराज॥
आया शिवजी महाराज खोस कै आग बगादी।
धरती पै पड़ी ल्हास ऊपर तै लकड़ी हटा दी।

जवाब शिवजी का लड़के से

इसकी सारी उमर इब खतम हो चुकी इसको एक जतन से जिलाद्यूंगा मैं।
उमर बाकी तेरी साल चौबीस की जो तू कहदे तो आधे मिलाद्यूंगा मैं।

तो तू आधी उमर अपनी दे दे इसे अभी पहलू में तेरे सुलाद्यूंगा मैं।
महताब कहे तेरे बारा बर्क इसको जल के साथ पिलाद्यूंगा मैं।

जवाब बलबीर का

दोहा— जै जिंदा इसनै तू करै तनैं समझू राम समान।
उमर नहीं चाहे नाथ तौं मेरी ले ले सारी जान॥
ले लोटा जलका हाथ में लड़की को दिया पिला।
आधी उमर बलवीर की दी चन्दकोर में मिला॥
दी चन्दकोर में मिला नार बैठी होगी हर हर करती।
शिवजी गायब होय गए वो तो छायां थी हिरती फिरती॥
बिछुड़ा जोड़ा फेर मिला खुश होगे आसमान धरती।
चन्दकोर नै देख्या आशिक चरणों में धरली सुरती॥
मानसिंह जोगी रहै जिला रोहतक शहदपुर गाम।
बणजारा महताब का देहली बीच मुकाम॥

हरियाना के इन लोक किस्सों में लोक-वार्ता के कई तत्व—अद्भुत दैवी शक्ति की उपस्थिति, साधु का धूना और प्रेमियों की आयु का विनिमय आदि बराबर मिलते हैं और ये अलौकिक अश सदैव कथा के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं।

सूफी प्रेम कथाओं मे राजा के जोगी होने और प्रेयसी के मंदिर में दर्शन पाने की बात आती है। "सांगीत सच्चा माशूक" में भी इस परम्परा का पालन हुआ है। यहां नायक बलबीर सिंह जोगी बनता है और नायिका चन्दकोर से राजमदिर में भेट होती है। शिव महाराज की अवतारणा से लेखक ने कथा को सुखांत बनाने में विलक्षणता से काम लिया है।

पूरी कथा में सहज स्वाभाविक ग्रामीण वातावरण और ग्रामीण उपमानों की छटा दर्शनीय है :—"मनै बोली लागै प्यारी तेरे इस मुँह बटवा मे की।" मे मुंह के लिए बटवा उपमान बड़ा सुन्दर एव उपयुक्त है।

पं० लखमीचंद अपढ़ थे। उन्होंने अनेक सांग खेले थे परन्तु कोई सांग अपने नाम से छपवाया नहीं। दूसरे-दूसरे सांगियों ने उनके गानों की तर्ज पर अपने-अपने गाने रचे हैं और छपवाये भी हैं। आज बाजार में लखमीचन्द की तर्ज पर बनी हुई तो बहुत सी सागीत की किताबे मिल जाती हैं जो देहाती पुस्तक भंडार, दरीबा कला, दिल्ली आदि से छपी हैं परन्तु लखमी ने अपनी कोई किताब नहीं छपवाई थी।

जहां प० लखमीचंद ने रागणी को जन्म दिया, उसमे वैशिष्ट्य भरा, वहा वे उसे अलंकृत करने से भी नहीं चूके हैं। 'भूषन बिनु न बिराजई कविता, बनिता मित्त' उनका भी मूलमत्र था। बड़े सुन्दर-सुन्दर अलकार उनकी वाणी से निसृत हुए हैं। उपमा के विचार से लखमी को हम हरियाने का कालिदास कहें तो तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। उनकी उपमाओं की सार्थकता एव पूर्णता श्रोताओ को मंत्रमुग्ध कर देती थी और वे चित्र-लिखे से रह जाते थे। उनकी उपमाओं में उपमेय और उपमान मे एक निराली सादृश्यता है जो बहुत ही कम स्थानों पर देखने को मिलती है। उनकी शब्द-योजना इतनी सुन्दर, कल्पना इतनी मार्मिक, काव्य-प्रवाह ऐसा अजस्र एवं गतिवान् और चित्रण इतना आकर्षक है कि सहसा मुह से वाह! वाह!' निकल पड़ता है। वह मानवी कवि नहीं, वरन् दैवी कवि जान पड़ता है। उसकी कृतियो के द्वारा कभी हम वात्सल्य मे, कभी शृंगार में, कभी करुणा मे और कभी अद्भुत रस में अपने को डूबता पाते हैं। परन्तु खेद है कि अब के सांगों मे जीवन की उच्चता एवं शालीनता के लिए आग्रह कम हो गया है। एक उद्दाम और नग्न शृंगार ने सांगियों की आंखों पर निर्लज्जता का पर्दा डाल दिया है। इनके साग जीवन के उपयोगी तत्वों से रहित हैं। एक सस्ते प्रकार के शृङ्गारिक पक्षो पर इनकी दृष्टि है। ग्रामीण भोली-भाली जनता पर इसका कुप्रभाव पड़ रहा है। हास्य भी बड़े निम्नकोटि के हैं। इनमें न तो हास्योत्पादक घटना की विचित्रता है, न आश्चर्यजनक सभाषण और न ही मानव जीवन के गम्भीर क्षणों का प्रदर्शन है। इन्हें हम केवल स्कूल आफ स्केन्डल कह सकते हैं। परन्तु यह कह देना भी आवश्यकीय है कि यह घृणित प्रवृत्ति चाहे प्रबल हो रही हो किन्तु फिर भी कई सागियों के सांग काफी संतोषजनक हैं।

प० लखमीचन्द युग के सांगी आज भी अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैला रहे हैं। पं० लखमीचन्द इस लोक को छोड़ चुके हैं। इस आधुनिक केंडे के सागियों की सूची यह है :—

१. पं० मागेराम	गांव	पुरपाणची
२. सुलतान	,,	रोहद
३. चन्दन	,,	वजीणा
४. जमुआ मीर	,,	सुनारी
५. धनपत	,,	निदाणा
६. पं० राय किशन व्यास	,,	नारनौंद
७. पं० रामानन्द आजाद	,,	गोरिया

इस अंतिम दौर में वाद्य-यन्त्रों में हारमोनियम भी सम्मिलित हो गया है। अब ६ तखत होते हैं, शामियाना लगा होता है, तखत पर जाजम और सफेद चादर बिछी होती है। तखत के ऊपर नायक के लिए कुर्सी भी होती है। इस दौर में नाचने वालों की संख्या बढ़कर ६ हो गई है।

यहा पर उन सांगीतों के नाम देना भी असामयिक न होगा जो जनता में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर चुके हैं और जिनमें सामाजिक उच्च भावनाएँ मिलती हैं।

नाम सांगीत	लेखक	गांव
१. सीलां सेठानी	पं० नेतराम	समाल
२. सोरठ	दीपचन्द	सेरीखाण्डा
३. बनपर्व	पं० सरूपचन्द	दिखोर खेड़ी
४. चीर पर्व	,,	,,
५. बैराठ पर्व	,,	,,
६. उत्तान पाद	,,	,,
७. हरिश्चन्द्र	,,	,,
८. नल-दमयन्ती	पं० लखमीचन्द	जांटी
९. मीराबाई	,,	,,
१०. सत्यवान-सावित्री	,,	,,
११. पुरंजन और पुरंजनी	,,	,,
१२. शाही लकड़हारा	,,	,,
१३. सेठ ताराचन्द	,,	,,
१४. पूरन भगत	,,	,,
१५. रूप बसन्त	पं० मागेराम	पुरपाणची
१६. नर सुलतान	चितरु मिस्तरी	सांपलागठी
१७. अजना	पं० माईचन्द	बवैल
१८. हकीकत राय	पं० मागेराम	पुरपाणची
१९. मोहना देवी	पं० रामानन्द आजाद	गोरिया।[1]

सांगों में, भजनीकों की भांति, ताल की पुनरावृत्ति करने वाले को 'सांजदे' या 'टेकिया' कहते हैं। 'साजंदों' का सम्मिलित स्वर एक अनुपम समाँ बांध देता है। इस बीच में मुख्य गायक को विश्राम मिल जाता है। दूसरे, श्रोताओं की विचारधारा में विघ्न नहीं आने पाता और रस चर्वण बराबर बना रहता है।

ङ. हरियानी लोक-नाट्य और सिनेमा

हरियाने के लोक-नाट्य का महत्व जान लेने पर तथा साहित्यिक नाटक से अन्तर देख लेने पर सिनेमा से भी इसका अन्तर स्पष्ट कर लेना समीचीन होगा। सिनेमा मनोरंजन के आधुनिक साधनों मे से एक है। यह एक वैज्ञानिक देन है। जहां हमारे मनोरजन के साधनों में ग्रामोफून, रेडियो ने अपना अद्‌भुत स्थान बना लिया है वहां सिनेमा (चलचित्र) भी हमें अच्छा लगने लगा है। उसकी बहुरूपी वेशभूषा, रङ्गीन दृश्यावलियां, पर्वत, पाताल, समुद्र, समीर के रोमांचकारी दृश्य, दर्शक पर बरबश अपना प्रभाव डालती हैं किन्तु इतना होने पर भी वे सभी वस्तुयें जो चमकती है सोना नहीं हैं। वहां पर हमारे असंस्कृत दर्शक को एक बड़ी भारी कमी अनुभव होती है यह कमी उस अवस्था में तो असह्य हो जाती है जब अवर्णित बातें कल्पना के पर लगाकर उतरती हैं क्योंकि हमारे ग्रामीण दर्शक के पास तीव्र कल्पना शक्ति नहीं है। वह जन्म से सदा प्रकृति के खुले वातावरण में पला है जहां प्रत्येक वस्तु अपनी राम कहानी अपने आप सुनाती है। कल्पना की यह कमी ग्रामीण दर्शक को रस मे विष मिलाती प्रतीत होती है। वह ऊब उठता है। उसे तो दीपचन्द, लखमी और मागेराम व धनपत की वे रागनी पसन्द हैं जहां उसके कल्पना लोक की सहचरी उसके दृष्टि-पथ में बैठी अपनी भावभगिमा एव हाव-भाव से उसे बराबर प्रत्युत्तर देती रहती हों। इसी कारण, नगाड़े पर चोब पड़ी कि ग्रामीण आबाल, वृद्ध पुरुषों के मदमाते दल टिड्डी दल की भांति घरों से निकल पड़ते हैं। सांग का दंगल आरम्भ हो जाता है।

सांग की सिनेमा के ऊपर एक अन्य विशेषता यह है कि सांग में छाया-चित्र नहीं होते। अस्थि चर्ममय पुतले अपने मनोभावों को प्रकृति सुलभ रीति से अभिव्यक्त करते हैं। ये गुड़ का स्मरण कराकर मीठा मुँह नहीं कराते। ये तो साक्षात् गुड़ की डली खिलाते हैं। इन ग्रामीण दर्शको की दृष्टि में लीला चटनिस, सुरैया, नरगिस, मधुबाला, नलिनी जयंत और कामिनी-कौशल आदि के उत्कृष्ट नाट्कीय भावाभिव्यंजन का कोई मूल्य नहीं है, यहा तो मूल्य है निहालदे, मारू, सीलां, लीलोचमन, रूपकला आदि के अकृत्रिम नाट्य कौशल का जो ग्रामीण वातावरण से ओत-प्रोत है तथा जो सीधी-सादी भाषा में दर्शकों का मनोरंजन करता है और उनकी जेबों से सहसा 'रपैय्ये', बिखरवा देता है। वस्तुतः इन ग्रामीणों का आनन्द थर्ड क्लास और फर्स्ट क्लास में बॅटा नहीं होता है।

रसानुभूति के लिए सुपरिचित भाषा का होना जरूरी है। वह ऐसी हो

कि श्रोता के भाव तन्तुओं को प्रथम आघात में ही झंकृत कर दे। ये गुण और विशेषताएँ इन सांगों मे हैं। इन्हीं कारणों से यह शैली वैज्ञानिक साधनों से सुसज्जित सिनेमा जैसे छाया-लोक से बाजी लिए हुए हैं।

च. हरियानी लोक-नाट्य की विशेषताएँ

हरियाने के लोक-नाट्य का विहगावलोकन गत पृष्ठों में हुआ है। अब हम इसकी कतिपय विशेषताओं पर दृष्टिपात करेंगे।

१. हरियानी लोक-नाट्य एक समुदाय या समाज की वस्तु है। उसमें व्यक्ति विशेष की कल्पनाओं और अनुभावों की अनुकृति नहीं होती। प० लखमीचन्द के हरियानी साग उनके अपने व्यक्तित्व से पूर्ण नही हैं उनमें तो उस 'लखमी' का व्यक्तित्व है जो हरियाने की जनता का प्रतिनिधि है और जो जनता की मूक भावनाओं को मुखरित करता है।

२. हरियानी लोक-नाट्य मे लोक-नाट्य की वह विशेषता भी उपस्थित है जिस विशेषता से लोक-नाट्य को गीति नाट्य कहा जाता है। अर्थात् इसमे पद्य की प्रधानता है। हरियानी साग इसी पद्य प्रसाद से जीवित है और जब तक रागणी की सरसता एवं उपादेयता बनी रहेगी; वे भी जन-मनोरंजन करते रहेंगे।

३. हरियानी सांग खुले में होता है। तख्तों का ऊँचा मंच बनाकर उसके चारों ओर बॉसों का घेरा बना लिया जाता है। पट-परिवर्तन का विधान नहीं होता। प्रवेश व प्रस्थान आदि सब रंगमच पर दर्शकों के समक्ष खुले में होते रहते हैं। दर्शक-मंडल इस मंच के तीन ओर बैठ जाता है।

४. हरियाने के सांगों में कोई अंक आदि नहीं होते। इसमें दृश्यों का तॉता बंधा रहता है। समस्त कार्य क्रम-पूर्वक होते रहते हैं। गीत, नृत्य और बीच में वार्ता भी चलती रहती है।

५. हरियानी सांगों में संकेतों का बहुलता से प्रयोग होता है। इससे यह लाभ होता है कि अनेक बातें बिना शब्दों का जामा पहने ही अभिव्यक्त हो जाती हैं। इस संकेत विधान से कई त्रुटियॉ पूरी हो जाती हैं। सच पूछा जाये तो यही तत्व साग में अकृत्रिमता भर देता है।

६. हरियानी लोक-नाट्य का कोई एकसा रूप नहीं है। इसमें पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक सभी कथाएँ प्रदर्शित की जाती हैं और की जा सकती हैं। प्रेम-कथाओं में विरह या संयोग शृंगार के मर्मस्पर्शी अभिनय के बीच

में या तो उपदेशात्मकता के दर्शन होते हैं अथवा सामाजिक त्रुटियों पर आक्षेप किये जाते हैं या अभिजात वर्ग पर व्यंग्य कसे जाते हैं। मास्टर रामानन्द जी की रागणी का एक अंश जिसमें एक सामाजिक चित्र आया है, यहाँ दिया जाता है :—

"तू पलटण में चाल पड्या इब कौण मेरे लाडलडावैगा।
तेरे आप्पे लाडलडें जां जिब तेरे घर मनिआडर आवेगा। टेक
तेरे मनीआडर की नहीं जरूरत मन्नै चांहवते दाम नहीं,
तो अड़ै गुजारा क्यूंकर होगा करने नै कुछ काम नहीं।
कोई और मजूरी टोहल्ले थो उज्जड़ होर्‌या गाम नहीं,
म्हारे खेती क्यारी बंद पडी रहै, जिब तक बरसे राम नहीं।
कितै पाणी की जगहां बोल्थांगे, कोई लम्बरदार सतावैगा।
तेरे आप्पे लाडलडें जां जिब तेरे घर मनीआडर आवेगा॥"

रागणी की इस एक कली में ग्रामीण पति-पत्नी की कोमल भावनाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है। किसानों को नम्बरदार की उगाही-पताई की इतनी चिंता है कि वे घरबार छोड़ने के लिए विवश हो जाते हैं।

७. हरियानी-सांगों में कथानक प्रायः ढीला-ढाला होता है। पूर्वार्द्ध में कथा शिथिल गति से बढ़ती है। उत्तरार्द्ध मे यकायक द्रुतगति आ जाती है जो अस्वाभाविक रूप से घटनाओं को ढकेलती चलती है किन्तु विशेषता यह भी है कि इस विधान से दर्शकों के मनोरंजन मे कोई विघ्न नहीं पड़ता। कथा तो पूर्वतः सुपरिचित होती ही है। बस तृप्ति मिलती है रसचर्वण से, घटनाओं के सहसा उतार-चढ़ाव से। 'निहालदे' के सांग में कथा तो पूर्व ज्ञात है। उसके परवानों से भी परिचय है। बस आनंद आता है, घटना के घटन में।

८. हरियानी सांग मंडलियों का प्रत्येक सदस्य प्रायः प्रत्येक पात्र का कार्य कर लेता है। वह 'ऐवर रैडी शैल' की भांति होता है। निर्देशक नाम का कोई पृथक व्यक्ति नहीं होता। साधारण अभिनेता ही निर्देशक हो जाता है और दूसरे क्षण वही निर्देशक एक अभिनेता। मंडली में एक कौटुम्बिक भावना होती है। कोई व्यक्ति किसी भी उत्तरदायित्व को निभा सकता है। जो अभी दासी है वह दूसरे क्षण रानी भी बना सकती है।

अन्त में, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हरियाने के लोक-नाटकों में समाज की सामूहिक भावना मिलती है। वे व्यक्ति विशेष से रचे जाकर भी व्यक्तित्व की छाप से मुक्त हैं।

षष्ठ अध्याय

प्रकीर्ण साहित्य

प्रकीर्ण साहित्य

पूर्व पीठिका

गत पृष्ठों मे हरियानी के जिस लोक-साहित्य—गीत, प्रबन्ध गीत (गाथा) कथा आदि—का सम्यग् अनुशीलन तथा अध्ययन हमने किया है, उसमे विस्तार के लिए स्थान है। उसमें चित्र बड़े-बड़े, भावनाएँ व्यापक एव इतिवृत्त जाटेल हैं। इस अध्याय में पाठकों को हम उस उद्यान मे प्रवेश कराते हैं जहाँ चमत्कार का प्रकाश है स्वाभाविकता की हरीतिमा है और आडम्बरहीनता का गौरव है। वहाँ न ठगई का भय है, न कल्पना की भूलभुल्लैयाँ। वह लोक-वाङ्मय का वह सौत्र-संग्रह है जहाँ प्रत्येक बात स्थूलता को परे फेंक सूक्ष्म रूप से सिकुड़ कर बैठी है। ये हैं तो छोटे परन्तु हैं नाविक के प्रभावकर तीर। ये किसानों, ग्रामीणों एवं संस्कृति के प्रसाद से वंचित लोगों की वह वाणी है जिसका सहारा पाये बिना कवि की प्रतिभा-प्रभा कुण्ठित रह जाती है। इसमे शब्द-योजना है, सालंकारता है और है एक विशेष प्रकार की लवणता एवं चटपटापन। इस साहित्य के अग हैं—लोकोक्ति, मुहावरे, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, शिशु वाणी विलास, मल्हौर (सिंधुड़े) एव ओलना आदि। हमने इसे 'प्रकीर्ण साहित्य' नाम दिया है। इस प्रकीर्णवर्गीय साहित्य को मधुरा लोकसाहित्य (Pleasent Surprise) नाम भी कुछ लोगों ने दिया है।

क. लोकोक्तियाँ (कहावतें)

भाषा अथवा बोली में सौन्दर्य और सौष्ठव लाने के लिए लोकोक्तियाँ और मुहावरों का प्रयोग अनिश्चित काल से चला आ रहा है। उनके व्यवहार में प्रयोगकर्ता को एक विचार परम्परा का सहारा मिल जाता है और उसको इस बात का अनुभव होने लगता है कि इस प्रकार की परिस्थिति पहिले भी आ चुकी है जो उसकी सामाजिकता को अधिक बल प्रदान करती है और वह सोचता है कि पहिले भी लोग उसी प्रकार अपने विचारों को प्रकट करते आये हैं। पहिले हम हरियाना प्रदेश की लोकोक्तियाँ (प्रायोवादों) का अध्ययन करेंगे, तदुपरान्त मुहावरों का।

सदा से सभ्य, असभ्य किंवा अर्द्धसभ्य सभी जातियों में लोकोक्ति अथवा कहावतों का प्रयोग देखा जाता है। जीवन की समस्याएँ कहावतों को जन्म

देती हैं। जीवन अनेकानेक समस्यात्मक घटनाओं का सकलन ही तो है। अतः अनेक ऐसी कहावतें जिनकी पृष्ठभूमि घटनापरक है। बड़ी-बड़ी समस्याएँ, अनुभव तथा जीवन जगत के जटिल प्रश्न जब तीव्र, लघु एव चटपटे वाक्यो के द्वारा निसृत होते हैं तो प्रवादों की सृष्टि होती है। डा० चटर्जी ने एक स्थान पर कहा है "जनता की समवेत अभिज्ञता (अनुभव) तथा विचार कहावतो में उपलब्ध होते हैं।[1]

कहावतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है मानव जीवन की कोई ऐसी गतिविधि नहीं जो इसके चक्र से बाहर हो। कहावतो मे जीवन के सभी सुख दुख, हर्ष विषाद, रुचि व ग्लानि विविध वर्णों में समाहित होकर मिलते हैं। जातियों के आचार-विचार, रीति-परम्परा आदि के अभिव्यंजन में कहावतों ने सदैव ही सहयोग दिया है। देश-भेद के आवरण के पीछे मानव-मानव एक है। मानव प्रकृति सर्वत्र एक है, इसकी पूरी-पूरी जाँच हमें लोकोक्ति साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से मिलती है। वाच्यार्थ में भिन्न होती हुई भी कहावतें भावार्थ मे अभिन्न हैं।

लोकोक्ति साहित्य इतना ही पुराना है जितनी मानव-भाषा। लिखित साहित्य के प्रादुर्भाव से पूर्व इसका जन्म हो चुका होता है। प्रत्येक जाति के ज्ञानपूर्ण वाङ्मय अथवा नीति साहित्य (विज्डम लिटरेचर) से इसी साहित्य का अभिप्रायः लिया जाता है। संसार के सभी प्राचीन ग्रन्थों मे ज्ञानपूर्ण साहित्य की विशद सामग्री अध्येता को अपनी ओर आकर्षित करती है। पचतंत्र व हितोपदेश की लोकोक्तिमूलक कथाएँ, चाणक्य सूत्र, बौद्ध साहित्य, प्राकृत तथा संस्कृत के अन्यान्य नीति विषयक ग्रन्थ इन कहावतों से भरे पड़े हैं। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के अनेक पूर्णापूर्ण ऋक्, पाद या अर्द्धपाद स्वभावतः लोकोक्ति या कहावत कहे जा सकते हैं। सूक्तियां जिनका वर्णन आगे करेंगे, एक प्रकार की कहावते ही हैं। इतना ही क्यों भारतीय आधुनिक भाषाओं के प्रख्यात तथा अज्ञातनामा कवियों के कितने ही दोहे, पंक्तियाँ, चौपाइयाँ, कवित्त जनता के हृद्‌गत भावों को प्रतिध्वनित कर लोकप्रिय कहावत ही बन गए हैं। ऐसी कहावतों की गणना करना भी कठिन है। इस प्रकार हमें असंख्य कहावते अपने लिखित साहित्य से उत्तराधिकार में मिलती चलती हैं। परन्तु लिखित साहित्य में प्रभावोत्पादकता तब तक नहीं आ पाती जब तक कि वह जन प्रवादों को प्रयोग में न ले लें अथवा जन प्रवादों का प्रसाद उसे न मिल जाये। यह कहना अतिरंजित न होगा कि

---

१. डा० सुनीति कुमार चटर्जी, 'राजस्थानी कहावतां भाग १ 'भूमिका'

जिस प्रकार नमक के बिना भोजन रसहीन हो जाता है। ठीक उसी प्रकार भाषा या बोली का प्रभाव भी बिना किसी मौके की कहावत के फीका पड़ जाता है।

कहावतों की उत्पत्ति में किसी एक व्यक्ति का हाथ नहीं होता। वह तो एक विशाल जन समुदाय की स्वीकृति से जन्म लेती है। साधारण रूप में कहावत एक कथन है, एक उक्ति मात्र है किन्तु वह लोकोक्ति तभी गिनी जायेगी जबकि उसे लोक अपनी उक्ति बना ले। जब लोक अनुभव किसी वाक्पटु द्वारा उक्ति-वैचित्र्य प्राप्त कर जाता है तब कहीं उसका लोकोक्ति नामकरण होता है। लार्ड रसेल ने इसी अर्थ में कहावत को 'बहुतों की बुद्धिमानी और एक का चमत्कार (The wisdom of many and wit of one) कहा है। सबकी सम्पत्ति बनने योग्य कोई लोकानुभव अथवा लौकिक सत्य जब किसी एक व्यक्ति की चतुराई से सबको आकर्षित कर सकने वाला रूप प्राप्त कर लेता है, तब कहावत का जन्म होता है। उक्त चातुर्य ही कहावत को चटपटा बनाता है।[1] यह चटपटापन ही लोकोक्ति की अनुप्राणिका शक्ति है। यही उसमें गत्यात्मक तत्व है। कहावतों का प्रादुर्भाव सदा होता रहता है। वे भाषाएं सचमुच सौभाग्यशालिनी हैं जिनकी लोकोक्ति निधि सम्पन्न है।

साहित्य को किसी भी प्रकार की परिभाषा की कठोर शृंखला में बांधना कठिन कार्य होता है। परन्तु फिर भी विद्वानों द्वारा दी गई लोकोक्ति की परिभाषाओं को जांच लेना अप्रासंगिक न होगा। विश्व के विद्वानों ने लोकोक्ति (कहावत) की परिभाषा अनेक प्रकार से दी है :—

१. जनता में निरन्तर व्यवहृत होने वाले छोटे-छोटे कथन—जानसन

२. एक की सूझ जिसमें अनेकों का चातुर्य सन्निहित है—लार्ड रसल

३. लोक-साहित्य का एक प्रकार जो साधारण घरेलू वाक्य के रूप में जीवन की तीक्ष्ण आलोचना करे। एनसाइक्लोपीडिका ब्रिटेनिका (ब्रिटिश विश्व-कोष)

४. जनता में प्रचलित कोई छोटा सा सारगर्भित वचन, अनुभव अथवा निरीक्षण द्वारा निश्चित या सबको ज्ञात किसी सत्य को प्रकट करने वाली कोई संक्षिप्त उक्ति। —'आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी।'

---

१. श्री शालिग्राम वैष्णव, 'गढ़वाली भाषा के पाखाण' नागरी प्रचारिणी पत्रिका सवत् १९९४ पृष्ठ १०३-४।

लोकोक्ति की उपरोक्त परिभाषाएं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई हैं। भारतीय मेधा ने भी लोकोक्ति को जिस रूप में देखा या पाया है उसे देख लेना भी यहाँ अनुपयुक्त न होगा।

१. मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र—धनीभूत रत्न।
—डा० वा. श. अग्रवाल।

२ लोकोक्तियाँ अनुभूत ज्ञान की निधि हैं। —डा० उदय नारायण तिवारी।

३. लोकोक्ति सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का निदर्शन है। —प्रो० कन्हैयालाल सहल

अतः निष्कर्ष रूप में हम कहते हैं कि लोकोक्ति वह लोकाभिव्यक्ति है जो ईमानदारी के साथ लोक के अनुभव को लेकर कही गई है।

लोकोक्ति संग्रह

लोकसाहित्य के अन्यान्य अंगों की भांति लोकोक्ति साहित्य की ओर हमारी दृष्टि को आकर्षित करने वाले पाश्चात्य विद्वान ही हैं। इन्होंने ही भारतीय भाषाओं में प्रचलित प्रवादों के प्रथम संग्रह का कार्य किया है। वे ही इस दिशा के पथिकृत एवं मार्ग-दर्शक हैं। कई योरोपीय विद्वान तो इस साहित्य पर लट्टू हो गये हैं। इनमे सर मॉनियर विलियम्स् एक प्रमुख विद्वान हैं। इन्होने अपने संस्कृत कोष की भूमिका में लोकोक्ति विषयक भारतीय मेधा की बड़ी प्रशसा की है। उनका कथन है कि 'नीति शास्त्र की चतुरता में में भारतवासी संसार मे अद्वितीय हैं'[1]। सन् १८३२ में बगला और सस्कृत के प्रवाद और सूक्तियों की प्रथम पुस्तक कलकत्ता से निकली थी। इसकें संग्रह-कर्त्ता रेवरेन्ड डब्ल्यू. मार्टन मिश्नरी थे। इसके बाद १८८५ में 'कश्मीरी कहावतों की डिक्शनरी' निकली। जिसके लेखक थे रेवरेन्ड जे. एच. नीवलस्। सन् १८८६ में फैलन साहब का 'हिन्दुस्तानी प्रोवर्बस का कोश' निकला। जैकब नामक विद्वान का तीन भागों में प्रकाशित 'लौकिक न्यायाजलि' नाम का ग्रथ इन प्राचीन न्यायों पर बहुत ही सुन्दर सामग्री प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त प्रयत्न सब अभारतीय हैं। भारत में भी इस ओर बहुत कुछ कार्य हुआ है। बंगाल के डा० सुशील कुमार दे की 'बंगला प्रवादों की सग्रह पुस्तक' एक स्तुत्य प्रयास है। सुचिंतित और सुलिखित भूमिका तथा

---

१. **विलियम्स डिक्शनरी** "In the wisdom' depth and shrewdness of their moral apothegms they (Indians) are unrivalled". page 31.

अन्यविध टिप्पणियों और संग्रहीत प्रवादों की विशाल संख्या के कारण यह एक अनुपम पुस्तक है। इसी प्रकार गुजराती में 'गुजराती कहावत संग्रह' दुलीचंद शाह, मालवी में 'मालवी कहावतें' रतनलाल मेहता आदि उपयोगी संग्रह उपलब्ध हैं। श्री लक्ष्मी लाल जी जोशी ने मेवाड़ की लगभग एक सहस्र कहावतों का संग्रह करके एक आवश्यक अंग की पूर्ति की है। 'राजस्थानी कहावतां' का सुव्यवस्थित संग्रह हिन्दी के लेखक-द्वय—श्री नरोत्तम स्वामी तथा मुरलीधर व्यास जी द्वारा हुआ है। यह ग्रंथ बड़ा उपयोगी है। इसमे राजस्थानी के साथ हिन्दी का आक्षरिक अनुवाद भी दे दिया गया है जिससे भाषागत विशेषताएँ प्रस्फुटित होती हैं। अत में एक संक्षिप्त हिन्दी टीका भी दी गई है, जिससे कहावत का अभिप्राय, इतिहास आदि बातें ज्ञात हो जाती हैं। सम्वत् १९९३ में राजेन्द्र सिंह जी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'मेरठ के मुहावरे' नाम से प्रकाशित कराये थे। अगले वर्ष सं० १९९४ में श्री शालिग्राम वैष्णव ने 'गढ़वाली भाषा के पखाणा'[1] लिखकर इस कार्य को आगे बढ़ाया। भोजपुरी लोकोक्तियों का सुन्दर संग्रह डा० उदय नारायण तिवारी एम० ए०, डी०, लिट् के द्वारा हिन्दुस्तानी पत्रिका १९३९ पृ० १५६-२१६ तथा पृष्ठ २४५-२६० परप्र काशित हुआ है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने भी भोजपुरी लोकोक्तियों का संग्रह किया है। किन्तु अभी वह प्रकाश मे नहीं आया है। हमने अपनी हरियानी लोकसाहित्य की खोज में कई सौ लोकोक्ति, मुहावरे, सूक्तियां तथा पहेलियां एकत्र की हैं जो अभी अप्रकाशित हैं।

आज संग्रह कार्य के साथ-साथ उस ज्ञानपूर्ण वाङ्मय (Wisdow Literature) का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त आवश्यकीय है। यह विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं की सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में सहायक होगा। भिन्न-भिन्न देशों एव प्रान्तों की कहावतों को देखने पर यह आश्चर्य होता है कि वे सब किसी एक ही अर्थ की ओर सकेत करती हैं। उनके ऊपरी आवरण भले ही भिन्न हो किन्तु उनकी आत्मा एक ही है। कुछ लोगों का मत है कि भ्रमणशील जातियो (Nomadic tribes) की भांति लोकोक्तियां दूर-दूर की यात्रा करती हुई अपने जन्म-स्थान से चलकर इधर-उधर अन्यान्य देश प्रदेशा मे जा पहुँची हैं। कहावतों की यह अन्तर्राष्ट्रीय एव सार्वदेशिक प्रवृत्ति एक रहस्यमय पहेली है। एक दो उदाहरणो से यहा पर यह बात स्पष्ट हो जायेगी। एक बात है, बिल्कुल लोक सामान्य, कि समीप रहने वालों पर

१. पाखाणा शब्द पहाड़ी भाषा में उपाख्यान का अपभ्रंश रूप है। वहां इन्हें अखाणा भी कहते हैं जो 'आख्यान' का बिगड़कर बना रहा है।

ध्यान नही दिया जाता। इसी एक भाव को व्यक्त करने वाली यदि हम तीन लोकोक्तियां--एक हिन्दी जगत् से, दूसरी संस्कृत वाङ्मय से तथा तीसरी अंग्रेजी प्रोवर्वस् में से लें तो हमे भाव-साम्य का स्पष्ट पता चल जाता है। यथा—हिन्दी जनता इस भाव को अपनी सीधी सी अभिव्यक्ति मे यो कहेगी 'घर का जोगी जोगना आन गांव का सिद्ध'; संस्कृत का पंडित 'अति परिचयाद्वज्ञा भवति' रूप देगा और अंग्रेजी में यह भाव इन शब्दों में बंधा मिलेगा कि 'फेमलियरिटी ब्रीडस् कन्टेम्प्ट'। भिन्न काल, भिन्न देश, भिन्न भाषाओं मे कहा हुआ यह भाव एक मुख विनिसृत सा ही लगता है। संस्कृत और अंग्रेजी के शब्द तो मानों एक ही व्यक्ति के कथन से प्रतीत होते हैं। एक उदाहरण और लीजिए—हरियानी मे एक कहावन है—'उजला उजला सब दूध कोन्या'। यह अंग्रेजी के इस वाक्य की जोड़ी का प्रतीत होता है। 'आल-दैट ग्लिटरस् इज नाट गोल्ड'। एक और कहावत है कि 'आज मेरी मंगणी कल मेरा व्याह। टूट गई टंगड़ी, रह ग्या व्याह ॥'' इसमें मानव की चेष्टाओं पर देवस्वत्व का अभिव्यजन हुआ है। ठीक इसी अर्थ को द्योतित करनेवाली अंग्रेजी की यह कहावत है, ''मैन प्रापोजेज गाड डिस्पोजेज।'' आदि।

लोकोक्ति साहित्य का महत्व

मानव के अध्ययन, उसकी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए लोकोक्तियाँ एक अमूल्य साधन हैं। भाषा की सुन्दरता, सरसता, एवं प्रभावशालिता का बहुत बड़ा भाग कहावतों को मिलेगा। इनमें 'गागर में सागर' भरने की क्षमता होती है। भाषा मे एक जादू सा आ जाता है। एक तीक्ष्ण व्यंग्य होने पर भी सुनने वाला हूँ नहीं करता। यथा—किसी परमुखापेक्षी व्यक्ति को उत्साहित करने पर भी यदि वह अपनी प्रवृत्ति को न छोड़े, तब यह कहना 'दो पर बत्ती[1] मांगनी, पर चलणा मसाल की चांदनी।' दो घर और अधिक भिक्षा मांगनी पड़े पर चलेंगे मसाल के प्रकाश में। कितना शिष्ट एवं गम्भीर व्यग्य है। इसी प्रकार किसी सम्पन्न व्यक्ति के पास पहुँचकर मन की अभिलाषा पूरी न हो तो यह कहना 'पहुँचे समन्दर पै घोंघा हाथ लगा' कितना साहित्यिक व्यंग्य है। हिन्दी के प्राचीन तथा अर्वाचीन जितने सिद्धहस्त लेखक हैं उन सबके काव्य का बहुत सा प्रभाव लोकोक्ति-जन्य है। सूरदास की गोपियां ऊधो से कहती हैं।

''प्रकृति जोइ जाके अग परी'' स्वान्न पूँछ कोटिक जो लागै सूधि न काहू करी।'' इसमें श्वान-पुच्छ की नित्य की वक्रता से एक चुभता भाव व्यंग्य व्यक्त किया गया है।

1. भिक्षा (बरती) देशी शब्द

लोकोक्ति का साहित्यिक दृष्टि से भी कुछ कम महत्व नहीं है। कई विद्वानों ने तो लोकोक्ति नामक अलंकार ही पृथक माना है। इससे तो यह प्रगट होता है कि लोकोक्ति साहित्यिक भाषा मे भी सज्जा का काम करती है। एक मुहावरे के प्रयोग से हम यह कह सकते हैं कि लोकोक्ति सोने मे सुगध का काम करती है।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकोक्ति साहित्य के महत्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि "लाकाक्तिया मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य-रश्मि नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटनेवाली ज्योति प्राप्त होती है।" संक्षेप में हम कह सकते हैं कि लोकोक्तिया अनुभव का सार हैं। लोकोक्तिया भटकते हुए का सबल बन उसे अंधेरे मे प्रकाश (ज्योति) प्रदान करती हैं। लोकाक्ति साहित्य सार्वभौम साहित्य है। यह जिसके मुखारबिन्द की सौरभ है, उसका है, जिसके कर्ण कुहर मे पडा है उसका भी उतना ही है। लोकोक्ति का महत्व इस बात से भी जाना जा सकना है कि जब हमे अपने साहित्य-सेवियों की लोक-प्रियता देखनी होती है तो हम इसी कसौटी पर कसकर देखते हैं कि अमुक साहित्यकार की कितनी उक्तियो ने जनता के कण्ठ पर अधिकार पा लिया है तथा उसकी कितनी उक्तियां जनता का कण्ठहार बन गई हैं। सचमुच लोकोक्तियां साहित्य का एक महात्वपूर्ण अंग हैं।

लोकोक्ति साहित्य की विशेषताएं

लोकोक्तियों मे अनेक विशेषताएं देखने मे आती हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

लोकोक्ति की पहली विशेषता है 'लाघव'। अरबी में एक बड़ी सारगर्भित बात कही गई है—'माकल्ला व दल्ला' अर्थात् थोड़ी सी भी सामग्री जो युक्ति-पूर्ण कही गई हो, उत्तम है। सस्कृत में भी 'मित्तं च सारं च वचो हि वाग्मिता' तथा 'स्वल्पा च मात्रा बहुलं गुणश्च' के द्वारा कथन की इसी विशेषता की ओर संकेत किया गया है। ग्रीक विचारको ने भी लोकोक्ति की विशेषता वर्णन करते हुये कहा है—'Multun in purvo' i. e. Much in little, वास्तव में लोकोक्ति मे लाघव ही एक ऐसा गुण है जो इसे सर्वप्रिय बनाये हुए है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि लोकोक्ति का छुटपन ही उसमें बड़प्पन ला देता है। देखिए 'गींतड़ा के भींतड़ा' यह उक्ति केवल

तीन शब्दो से बनी है जिसका अर्थ है मनुष्य की प्रसिद्धि दो कारणो से होती है—धर्मशाला आदि भवन निर्माण कराने से या गीतों मे गाये जाने से। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि लोकोक्ति मे सर्वत्र यह गुण हो। इसके विपरीत कहावतें बड़ी बड़ी भी होती हैं यथा—'धियां की मा राणी। बुढ्यांत भरेगी पाणी।' आदि मे वाक्य का वाक्य लोकोक्ति कहलायेगा। कभी-कभी तो वाक्य को छोड़ पद के पद लोकोक्ति की परिधि मे निवास करते हैं। यथा :—

फूस की आग, उधार का खाणा।
बखत पडे पै कभी न पाणा,
तिन उठ उठ घर घर जाणा। आदि।

दूसरी विशेषता यह है कि लोकोक्ति में अनुभव और निरीक्षण का निचोड़ होता है जो इसे सत्य बना देता है। सचाई कहावत की आधार शक्ति है। प्रयोगकर्ता ने उसे अनुभव से जांच लिया है और अपने निरीक्षण पर पूरा पाया है। एक कहावत देखिए, "कांजरां के डेरा में टूकां का न्याव।" कजर एक जाति है जो मागकर अपना निर्वाह करती है। उनके डेरों के अन्दर जमीन जायदाद के झगडे तो होते नहीं है। बस जो बासे फूसे टूक मिल जाते हैं और बच रहते हैं उन्हीं के ऊपर झगड़ा होता है। यह कहावत इसी बात को लक्ष्य करती है जिसमे दर्शक का अनुभव एव निरीक्षण है। यह तो इसका वाच्यार्थ है। लक्ष्यार्थ होगा 'तुच्छ पुरुषों के तुच्छता के झगड़े।' इसी प्रकार एक अन्य कहावत है जिसमे कटु सत्य कहा गया है—"मूस्सल का मिंह मे के भीज्जै से" जो मूसल को जानते हैं उन्हें इस अनुभव का ज्ञान अवश्य होगा कि वर्षा से मूसल पर कोई प्रभाव नहीं होता अर्थात् निर्लज्ज पर बातों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

तीसरी विशेषता लोकोक्ति मे है—घरेलू भाषा। यो तो समस्त लोक साहित्य ही घरेलू भाषा में प्रवहमान होता है, परन्तु कहावतों की भाषा सरल घरेलू और दिन प्रति दिन की जानी-पहचानी होती है। लोकोक्तियां वास्तव मे जनपदीय बोलियो की अपनी वस्तु हैं। साहित्यिक भाषाओं में अपनी-अपनी बोलियों से लोकोक्तियां उधार ली जाती हैं और साहित्यिक क्षेत्र में वे बहुत दिनों तक अलग-अलग रहती हैं। "गजी और रोडां में कुल्लावादी", अपनी परिस्थिति का विचार किये बिना अव्यापार करने वाले के प्रति कहावत के ये शब्द कितने सार्थक एवं कितने घरेलू हैं। इसमे घरेलू वातावरण और सीधी-साधी घरेलू भाषा है। अन्य कहावतें और देखी जा सकती हैं। "म्हारी मुरगी म्हारे ते गुटरगू", "काणी कै आंख की कसर सै" आदि घरेलू भाषा में

घर के वातावरण का एक चित्र है "पैहरी ओड्ढी धन पिदै। लीप्पा पोत्ता घर खिलै।" ऐसा ही "होली के पाच्छे बिरकला को के काम" मुहावरा है जिसमें ग्रामीण वातावरण मुह बोल रहा है।

चौथी विशेषता है कि लोकोक्ति साहित्य अनाम है। इसके रचयिता का पता नहीं है। ये नाम की छाप से शून्य है—"खेती खतम सेत्ती, वरना रेत्ती की रेत्ती", कृषि कार्य स्वामी के द्वारा अच्छा होता है, नहीं तो वह व्यर्थ होगा। कहावत कब कहाँ और किसके द्वारा जन्मी, पूर्णतया अज्ञात है।

अतिम विशेषता इसकी लोकप्रियता एवं लोक-चलन है। कोई उक्ति चाहे कितनी ही मनोहारी क्यों न हो वह तब तक लोकोक्ति नहीं बन सकती जब तक कि लोक उसे अपनी न बनाले। लोक के अपनाने से ही उसकी संज्ञा लोकोक्ति होती है।

डा० सत्येन्द्र ने लोकोक्ति मे सतुक और अन्योक्ति अंश को भी विशेषता माना है।[१] उनका तर्क है कि तुक से कहावत का लयांश खिल उठता है। किन्तु ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जहाँ लयांश होता ही नहीं है। दूसरें अन्योक्ति अश को भी पृथक् विशेषता मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वास्तविक कहावतो मे अन्योक्ति ही उनका प्राण है। सामान्यार्थ की प्रतीति ही लोकोक्ति मे गति देती है। विशेष की प्रतीति होती अवश्य है किन्तु कुछ ही स्थानों पर।

वर्ण्य-विषय

लोकोक्तियों के वर्गीकरण की न तो कोई शैली ही निर्धारित की जा सकती है और न उन्हें किन्हीं वर्गों में सरलता से रखा ही जा सकता है। वास्तव मे उस साहित्य का विषय-वर्गीकरण जो सर्वदेशीय एव सर्वकालीन अनुभव पर आधारित है, और जिसमे मानव की समस्त परिस्थितियाँ स्थान पाती हैं, एक दुष्कर कार्य है। अभी तक अन्यान्य लेखकों ने इनके विषय और वर्गीकरण के मार्ग-प्रदर्शन करने का प्रयत्न किया है पर प्रयास मे ये कहाँ तक सफल हो सके हैं यह एक आलोचना का विषय है। प्रस्तुत निबन्ध मे हम इन्हें निम्न वर्गों में रखकर अध्ययन करेंगे :—१. जातिपरक। २. स्थानपरक। ३. इतिहासपरक। ४. कृषि वर्षा परक। ५. नीतिगर्भित। ६. व्यंग्यात्मक।

लोकोक्ति साहित्य मनीषी मुरलीधर जी व्यास ने उनका विभाग—

१. 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ, ५३२।

१. सार्वदेशिक व सार्वकालिक, २. एक देशीय व एक कालिक किया है। परन्तु यह विभाग इतना सूक्ष्म है कि अध्येता को अधिक सहायक नहीं होता। यह तो साधारण सी रूपरेखा है। हरियानी मे लोकोक्ति साहित्य बड़ा सम्पन्न है। इस प्रदेश मे लोकोक्तियां प्रचुर मात्रा मे पाई जाती है। साधारण जन (हाली पाली) अपने सभाषण मे लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं और अपने कथन को भरतल बनाते हैं। महिलाए भी अपने आह्निक व्यवहार में लोकोक्तियो का छौक लगाती हैं। बालक भी अपनी बुद्धि के अनुसार इनका प्रयोग करते पाये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि वाणी का उपयोग करने वाले सभी प्राणी लोकोक्ति का प्रसाद पाते हैं। अब हम अपने वर्गीकरण के अनुसार हरियानी कहावतो का अध्ययन करेंगे।

१. **जातिपरक**—लोकोक्तियो मे विभिन्न जातियो के स्वभाव, आचार-व्यवहार और रीति-नीति को बड़े संयत ढंग से निबद्ध कर दिया गया है। ये फुटकर सूत्र, दोहे अथवा गीत जाति-विशेष के वे छोटे-छोट फोटोग्राफ हैं जो उस जाति की मनोवृत्ति का चित्र पाठक के समक्ष उपस्थित कर देते हैं। कहावत है—'अग्रे-अग्रे ब्राह्मणाः', अतः हम अपना जाति विषयक अध्ययन ब्राह्मण को लेकर ही आरम्भ करते हैं।

ब्राह्मण—लोक में ब्राह्मणो की ख्याति परान्नप्रियता की ओर बहुत पहिले से रही है। इसी बात को हरियाना मे इस कहावत द्वारा दिखाया गया है, "अकर[1] कर मकर कर, खीर पर शकर कर। इतनै मै चुलाल्यूं, दछना का फिकर कर।" एक दूसरी कहावत में ब्राह्मण को इस प्रकार चित्रित किया है "ब्राह्मण होके आंटे[2] जोहड़, बनिया होके करे मरोड[3]। जमींदार होके लेवे कोड[4], तीन्नो का आया थावले[5] ओड। काला ब्राह्मन, भूरा चमार। उल्टी मूछ सुनार, इनका न कोई इतबार॥ बाम्मण कुत्ता बाणिया तीनू जात कुजात। बामन कुत्ता हाथी ये नही तीन जात के साथी।" हरियाने की एक कहावत में ब्राह्मण को सब बुराइयों का मूल कहा गया है—"काल बागड़ तै ऊपजै, अर बुरा बाम्मण तै होय॥ अकाल सदैव बागड़ प्रदेश से उत्पन्न होता है और दूसरों का अहित सदा ब्राह्मण से होता है।

कायस्थ—तीन जात नै पालै, कायत कागा कुकरा[6]। तीन जात नै घालै, नाई ब्राह्मण कुतरा[7]॥

---

१. तत्परता और शीघ्रता के साथ खीर पर शकर डालिए और उसे खाकर ज्योंही मैं कुल्ला करूं तो दक्षिणा दीजिए। २. भरना। ३. अभिमान। ४. ब्याज। ५. शीघ्र। ६. मुर्गा। ७ कुत्ता।

जाट—हरियाने की सभ्यता व संस्कृति में जाट का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जनपदीय मानस ने उसे चारों ओर से परखा है। कहा जा सकता है कि लोकोक्ति ने जाट की पूरी खबर ली है। जाट पर ही हमे सब से अधिक उक्तियां प्राप्त हुई हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है:—

नटबुध आवै, जट बुधना आवै। जाट जडै ठाट, जाट जात गगा ॥ जाट भेली देदे अर गडा ना दे ॥ जाण मारे बाणिया पिछाण मारै जाट ॥ जाट मर्‌या जिब जाणिए, जिब तेरोमी होले ॥ गूमड़ा[1] अर जाटड़ा बंधे भले ॥ जाटड़ा अर[2] काटडा अपणानै मारे ॥ गूजर टेक[3], अहीर हट, जाट कही सो कही ॥ आठ[4] फिरगी, नौ गोरा, लड़े जाट के दो छोरा ॥ बिणज किया था जाट नै, सौका रहग्या तीस। जाट डूबै[5] धोली धार ॥ आगम बुद्धि बाणिया, पाच्छम बुद्धि जाट ॥ जाट[6] जाट के साले, कर दे घाले माले ॥ सामन भादवे की धूप में जोगी बन जाए जाट ॥ जाट[7] न जाने गुनकरा ॥ पढ़ाया जाट, सोलह दूनी आठ ॥ जाट रे जाट हाडी चाट ॥

साठी[8], माटी, कापडे, सनी, मूज और टाट।
ये छैओं कूटे भले, अर सातवां जाट ॥
जाट, जमाई, भानजा, रैबारी[9], सुनार।
कभी ना होंगे आपने, सलूक[10] करो सौ बार ॥
जाट, बैरागी, नाटवा, चौथे विधवा नार।
ये चारो भूखे भले, धापे[11] करें बिगार ॥
तुर्क, जाट और मुंडचडा बंदर भिड बिलाओ।
ये छैओं ना आपने, भावें[12] दूध कटोरे पिलाओ ॥
जाट रे जाट तेरे सिर पै खाट।
तेली रे तेली तेरे सिर पै कोल्हू।
बे पढा जाट पढा जैसा, पढा जाट खुदा जैसा ॥

---

१. फोड़ा और जाट को सदैव बांधकर रखना चाहिए। २. जाट और भैंसा सदा अपने निजी लोगों को हानि पहुँचाते हैं। ३. गूजर प्रतिज्ञापालक होता है, अहीर हठी होता है और जाट उदार होता है। ४. आठ फिरंगी और नौ अंगरेजों के साथ लड़ने का सामर्थ्य जाट के दो लड़कों में होता है। ५. जाट में बुद्धि कम होती है और वह जलधारा मे दिन धौली डूब जाता है। ६. जाट सब आपस में सम्बन्धी होते हैं और जब मिलते हैं तो हानि की संभावना होती है। ७. जाट अकृतज्ञ होता है। ८. साठी चावल। ९. जाति विशेष। १०. सद्व्यवहार। ११. तृप्त होकर। १२. चाहे, बेशक।

जाट कहै सुण जाटसी, अडै गांव में रहणा।
ऊंट बिलाई[1] ले गई, हां जी हां जी कहणा।।

अहीर—अहीर जाने खेती की तदवीर ।। हीरे नै रेकारे[2] की गाल ।। हरि बे पीर[3] ।। अहीर खावे राबड़ी बतावे खीर ।। अहीर ओढ पासी[4], तीनों सत्यानासी ।।

सभी जात गोपाल की, तीन जात बे पीर।
बिना गरज लरजे नहीं, बनक[5] बेस्वा हीर ।।
सांप घास और अहीर के सरन मे न रहिये।
ठाकर और पहाड़ की ठोकर भी सहिए ।।

गूजर—
ऊजड़ देक्खे गूजर कूदे, ढाल देक्खे बैरागी।
खीर देक्खे बाह्मन कूदे, तीनों हो जायें राजी ।।
गूजर से ऊजड़ भली, ऊजड़ से भली उजाड़।
जहां देखिए गूजर, तहां दीजिए मार ।।
गूजर गोडा, जांड जड़[6], बड पीपल सिखरांत।
जाट हार्‌या जब जानिए, जब आखां नीर ढलांत ।।
कुत्ता बिल्ली दो, गूजर बांदर दो।
ये चरां ना हों तो खुले किवाडां सो ।।

बनिया—आगम बुद्धि बाणिया, पाच्छम बुद्धि जाट ।। बाणिया हाकम गजब खुदा ।। बनिया मीत ना बेसवां सती, कागा हस ना गधा जती ।। बनिया हाकम, बामन शाह। जाट पियादा, गजब खुदा ।। बाणियां कै आंट मे, कै खाट में ।। खड़ा वाणिया पड़े बराबर, पड्या बाणिया मरे बराबर ।। जाननहारा जानिया, बनिया तेरी बान। बिनछाने लोहु पिवे, पाणी पीवे छान ।।

बावन बुद्धि बनिया, तरेपन अक्कल तेली।
चव्वन अक्कल सुनार की, रुपये में देहै धेली ।।
किसका ठाकुर पालती, किसका मित्र कलाल।
किसकी बेस्वा इस्त्री, किसका बनिया यार ।।
ढीली धोती बनिया, उल्टी मूंछ सुनार।
बिना तिलक के ब्राह्मन, इन पत्थर के दे मार ।।

कुम्हार—कुम्हार का कुम्हारी पै बस ना चले, सटकणे[7] के कान

१. बिल्ली। २. अरे या रे भी अहीर के प्रति गाली का काम करते हैं। ३. अहीर निगुरा होता है। ४. जाति विशेष। ५. बनिया, वेश्या और अहीर। ६. वृक्ष-विशेष। शमी वृक्ष। ७. कटरा।

उठे ।। ढीली धोती बनिया, उल्टी मूँछ सुनार । बैंडे पैर कुम्हार के, तीनों अधल[1] पछान ।। हड़ हड हंसे कुम्हार की । माली की के बूट[2] । ना जानू ए बावली कड़ बल बैट्टे ऊँट ।।

रांघड़ (मुसलमान राजपूत)—सौ रांघड़ां की एक मा ।। रांघड़ भले कलाल के, किह बदी खाने । कि घोड़े की पीठ, कि डूगे धाने ।। रांघड़ का मलाहजा[3], गूजर पै सिआन । गोरे[4] की खेती कुसल ना जान ।।

भाट— भाट भटियारी बेस्वा, तीनो जात कुजात ।
आये का आदर करें, चलते पूछें ना बात ॥

धाणक—(भगी से मिलती जुलती एक जाति) धाणका न मा का न बाहण का । [किसी का सगा नहीं होता ।]

नाई—बामन कुत्ता हाथी ये नहीं चार जात के साथी ।। तीन जात नै घाले[5], नाई बामन कुतरा ।। तेल जले दरबार का नाई का के जाय ।। नाइयां की से जनेत (बरात) में सारे ठाकुर ।। नाई किसका भाई, छोरी बेच ल्याया लुगाई ।

डोम—गोला[6] सोहबत, अभ्भा[7] धन, डूमां ढेडां प्यार । गोरे खेती बोवे के चारो शख्स खुआर ।।

तेली—तेली का तेल जले, तेरा जी क्यू जले । बाबन बुध बनिया तरेपन अक्ल तेली ।

सुनार—बावन बुद्ध बनिया, तरेपन अक्ल तेली । चव्वन अक्ल सुनार की, रुपये में दे हैं धेली । काला ब्राह्मन, भूरा चमार । उल्टी मूंछ सुनार । इनका ना कोई इतबार ।

कोली—देनी आई बुनावणी, कोली तै लड्डम् लड्डा ।।

मेव—मेव मरा जिब जाणिए जिब तीजा होले ।।

देश या स्थान परक—कहावतें पाठक के समक्ष स्थान व देश विशेष के ज्ञान का पिटारा खोल देती हैं । ये प्रामाणिक निर्देशक का कार्य करती हैं । इनमें आलोच्य देशवासियों के स्वभाव का वर्णन भी मिलता है और भौगोलिक वर्णन भी । यथा 'बांगर मे डांगर बसै' ऐसी एक कहावत है जो बांगर प्रदेश की सभ्यता-संस्कृति-हीनता का ज्ञान करा देती है । 'देसां म्हं देस

---

१. कोरी, निरी, पूरी । २. हरे चने । ३. देखना । ४. ग्राम समीप । ५. हानि पहुंचाते हैं । ६. नाई से मित्रता । ७ बकरी, भेंड ।

हरियाणा, जित दूध दही का खाणा' हरियाना प्रदेश की निरामिष प्रकृति का और समृद्धि का इसमे कथन है। इसी प्रकार गुजरात और मालवे की सम्पन्नता पर भी उक्तिकार की दृष्टि गई है :—सामन लगती सतवीं, गर्जे आधी रात। हम तो जागे पी मालवे, तम जाओ गुजरात।—इस दोहे की नायिका को पता है कि ये दो देश धनधान्यपूर्ण हैं। 'जिसनै देक्खी ना दिल्ली वोह कुत्ता न बिल्ली' मे दिल्ली के महत्व, सौन्दर्य एव आकर्षण का वर्णन है।

३. इतिहास परक—लोकोक्तियो में हमारा इतिहास भी सिमट कर बैठा है। इतिहास का वह विस्तार तो यहाँ देखने मे नहीं आयेगा परन्तु ये छोटी-छोटी उक्तिया विगत युग की किसी मुख्यतम घटना को पाठक के सामने चित्रित करती हैं।

'कहाँ राजा भोज कहाँ गांगला तेली' भोज की असहायावस्था को चित्रित करती है। 'घोडां राज अर बैलां अनाज' इतिहास के उस युग की गाथा कहती है जब फौज में अश्व का बड़ा मान था और बैल किसान का पांव था। जब सेना का विभाग आज की भाँति वायुसेना व नौसेना के नाम से नही था बल्कि पदाति, अश्वारोही, गजचर, रथचर आदि नाम से था। हरियाना प्रदेश की लोकोक्तियो मे इन्द्र के हाथो सताये हुये इस प्रदेश की हीन-दशा का ऐसा कारुणिक चित्र है जो पाठक को रोमाञ्चित कर देता है। इस प्रदेश मे एक दो नहीं अनेक दुर्भिक्ष पड़े हैं। प्रत्येक अकाल अपनी नई समस्या लेकर उपस्थित हुआ है। इन सब का ऐतिहासिक वर्णन हमे इन दुर्भिक्ष की उक्तियों से ज्ञात होता है। चौंतीसा नाम का अकाल इस प्रदेश मे बडा भयंकर हुआ था। उस ऐतिहासिक स्मृति को लोक-मेधा ने इन शब्दों में अभी तक याद रखा है :—

एक रोटी को बैल बिका, और पैसा बिक गया ऊँट।
चौंतीसा ने खो दिया, भैंस गाय का बंट[१]॥
चौंतीसा ने चौंतीस मारे, जिये बैस कसाई।
ओह मारे तकड़ी अर उसने छुरी चलाई॥

अकाल की भयकरता यहाँ तक थी कि एक रोटी को बैल बिका और ऊँट तो एक पैसा मे बिका। चौंतीसा अकाल में भैंस-गाय का वश ही समाप्त हो गया। चौंतीसा अकाल में चौंतीस जातियां मर गईं, केवल दो जातियां शेष बची—कसाई और बनिया। बनिया अपनी तराजू से कमाता और कसाई अपनी छुरी चलाता।

---

१. वंश

एक करुणाजनक इतिवृत्त इन पक्तियों में भरा हुआ है। एक दूसरी कहावत हमारे परतन्त्रता के इतिहास को बड़ी खूबी से व्यक्त कर रही है— 'कमावै धोती आला, खाजा टोपी आला' भारतवासी कमाते हैं और कर रूप में टोपवाले अँगरेज सब ले जाते हैं।

४. कृषिपरक—हरियाना प्रदेश कृषि उपजीवी लोगों से आबाद है। इसमें जितनी अधिक कहावतें कृषिपरक मिलती हैं उतनी दूसरी नहीं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। कृषिपरक कहावत वे उक्तिया हैं जो कृषि के ऊपर कही गई हैं अथवा किसान, खेत, बैल आदि का कोई अनुभव जनता के सामने रखती हैं। यथा—'जो बोवेगा सो काटेगा।' इस कहावत का वातावरण कृषिमूलक है और इसका अभिधेयार्थपूर्ण रूप से कृषिपरक है। भावार्थ दूसरी कहावतों की भाँति इधर-उधर जा सकता है। उत्तम खेती, मध्यम बंज। अधम चाकरी भाख निदान।" इस कहावत में कृषि व्यवसाय की भूरि-भूरि प्रशसा की गई है।

हरियाने में अनेक ऐसी कहावतें भी मिली हैं जो ठेठ किसान की साथी हैं। उनमें कृषि विषयक बड़े सुन्दर-सुन्दर उपदेश भरे पड़े हैं। एक प्रकार से इन कहावतों में कृषि-शास्त्र के सूत्र बिछे पड़े मिलेंगे। 'हल लगा पाताल, तै फूट गया काल।' गहरी जुताई करने से फस्ल अच्छी होती है। 'जेठ जेठी, साढ हेटी, सावन बोई न बोई।" यह कहावत 'अगाया सो सवाया' का ही रूपान्तर है। कपास की खेती पर एक नुसख़ा है, नौलाई (नलाई) ना करी दुपत्ती, क्या चुनेगी कपत्ती" छोटी फस्ल की यदि नलाई नहा की तो कपास कुछ नहीं होगी। एक और कहावत में जुताई की महिमा बतलाते हुए कहा गया है—'बिआही दगा दे दे, पर बाह दगा ना दे।' विवाहिता पत्नी धोखा दे सकती है, परन्तु जुताई (बाह) कभी धोखा नहीं देती। बड़ी यथार्थ उक्ति है।

इसी स्थान पर हम उन कहावतों को भी देख लेना चाहते हैं जो हैं तो कृषिपरक ही परन्तु उनमें ज्योतिश्शास्त्र के गभीर तत्व सन्निहित हैं। ऐसी भी अनेक कहावतें हरियाने में मिली हैं। उदाहरण :—

उत्तर दिशा से पवन बहने पर अनाज की उत्पत्ति बहुत अधिक होता है। इसी बात को यहा कहा गया है। 'पौन चले उतरा, अनाज खाये ना कुतरा' यदि उत्तर की पवन चलेगी तो अनाज इतना अधिक होगा कि कुत्ते भी न खायेंगे। 'दो सावन दो भादवे, दो कात्तक, दो मां[1] टाडे[2] ढोरे बेच कै,

१. माघ। २. साधन सामग्री।

नाज विसावन[1] जा' ॥ 'सावन पैहली पचमी, बादल हो न बीज। बेचो गाड़ी बलदां, नीपजे[2] कुछ न चीज' ॥ 'आई मेखे[3] और आला सूख एकमएक'। किसान के प्रति एक उत्तम शिक्षा है कि चैत्रमास मे पकी अथवा अधपकी सब को काटकर रख लेना चाहिए। फसल खड़ी रहने से हानि होती है। इस प्रकार की सैकड़ो कहावतें इस लेखक को मिलती हैं।

कृषिपरक कहावतों में बैल, गाय और भैंस का भी खुलकर वर्णन आया है। बैल किसान की शक्ति और गाय भैंस शरीर पुष्टि के साधन हैं। उनकी श्रेष्ठता का परीक्षा किसान को अपेक्षित है। ऐसी अनेकानेक कहावतें यहां प्रचलित हैं। यथा :—

ओच्छी गोडी बैगन खुरा, ले आवो कंथा, कदी ना बुरा ॥ बैल विसावण चले कथ, बूढ़े के मत देखियो दंत। लाखा लियो लाख यतन कर, लीला लियो करोड़ पर ॥ बैल का आगा और धेनु का पाछा। कृषि प्रधान देश में आये दिन ही वहां के निवासियों को गाय व बैल खरीदने पड़ते हैं। गाय और भैंस की परीक्षा के लिए एक कहावत है 'गाय नारी अर भैंस सारी' अर्थात् गाय क्याणी (मध्यम) अच्छी होती है और भैंस भारी। हरियाने की गायें दूध देने में बड़ी प्रसिद्ध हैं। उनकी दूध देने की सामर्थ्य अधिक है। इसी विचार को लेकर हरियाने की एक कहावत मे गाय की तुलना भैंस आदि से की गई है, 'गाडी वाला सदा दिवाला, भैंसवाला आधे ॥ गायवाला बरों बराबर, बकरी वाला बाधे ॥' यह विचार आज की गौहितकारी भावना के अनुकूल है। किसान के घर में बैल और भैस का न्याय नहीं है। बैल बेचारा प्रातः मे सन्ध्या तक हल चलाता है और खल बिनौले की सानी मिलती है भैस को। इस अवसर पर बैल ने एक शिकायत की है, "बांट बिनौले भूरी खाय। हल चलान लाडा जाय ॥ बिनौले युक्त सानी तो भैंस को दी जाती है और हल चलाने बैल जाता है जिसे सूखा चारा ही मिलता है। लोकोक्तिकार उन कमकसरी निष्कर्मण्य किसानों पर व्यग कसने से नहीं चूका है जो गाय-बछड़े के चक्र में न पड़ मस्त रहने वाले हैं 'गाय न बाच्छी नींद आवै आच्छी ॥'

५. नीतिगर्भित—लोकोक्तियों की अधिक संख्या नीति साहित्य के अन्तर्गत आती हैं। हरियाने में भी नीतिगर्भित उक्तियों में किसान के काम की बहुत सी बाते आई हैं। आलसी किसान की दशा का एक चित्र यहां दिया गया है :—

---

१. खरीदने। २. उत्पन्न होना। ३. मेषराशि।

आलस नींद किसान नै खोवै, चोर नै खोवै खांसी।
टका ब्याज मूल नै खावै, रांड नै खोवै हांसी॥

नीतिगर्भित यह वाक्य बडा सार्थक है। इसमें किसान, चोर और साहूकार को अच्छी शिक्षा दी गई है। 'जिस राह न जाना, उसके कोस गिनन तैं के फादा॥ खेती, बाती, चाकरी और घोड़े का तंग। मोह तो करे आपमें चाहे लाख लोग हो त्तङ्ग॥ भींत में आला, घर मे साला, के करे कुछ ना कुछ चाला॥' आदि ऐसी कहावते हैं जो जानपदीय जन के लिए चाणक्य नीति जैसा कार्य करती हैं। इन नीतिमूलक कहावतों में उन उक्तियों को भी स्थान मिलना चाहिए जिनमे स्वास्थ्य के नुस्खे (योग) बतलाये गये हैं। यथा :—

कुंवार करेला, चैत गुड, सावन साग न खा।
कौड़ी खर्च गिरह की, रोग बिसावन जा।

इस कहावत में पथ्य की सुन्दर नीति दी गई है। यदि उपभोक्ता इस नीति का पालन नहीं करता तो वह एक तो अपने पैसे इनके क्रय मे व्यय करता है, दूसरे रोग लयेगा, जिससे हानि होगी। इसी प्रकार "घोड़े को कास, आदमी को बांस।" आदि लोकोक्तियां भी आयुर्वेदीय ज्ञान कराती हैं।

६. **व्यंग्यात्मक**—लोकोक्ति में बड़ा गहरा व्यंग्य होता है जो अचूक चोट करता है, परन्तु उसकी अभिव्यजना का विधान कुछ ऐसी अप्रस्तुत योजना द्वारा होता है कि सुनने वाला चोट खाकर भी कीच में रपटने वाले की भांति किसी से शिकवा नहीं करता। नेक सलाह (सन्मति) को न मानकर प्रतिकूल आचरण करने वाले व्यक्ति की नीचे लिखी उक्ति मूर्खता का प्रकाशन करती है। "गेधे नै दिया लूंणा, गधा कहै मेरी आख फोड़ैं" लोकोक्तिकार ने अपनी चतुराई से लिंग परिवर्तन ही नहीं, योनि परिवर्तन तक कर दिया है। पुरुष गधा बना दिया गया है। 'उल्टा चोर कोतवाल नै डांटे' धृष्टता का तीव्र वाण है। इसी प्रकार निस्सार व्यक्ति की आलोचना 'थोथा चना, बजे घणा' के द्वारा सयत शब्दो में कर दी गई है। बाहरी तड़क-भड़क रखनेवाले लोगों को लज्जित करके कही गई "ऊंची दूकान, फीका पकवान" उक्ति सब कुछ कह गई है। अक्ल के अंधों का कच्चा चिट्ठा खोलनेवाली "अकल बिन ऊंट उभाणे" बुद्धि के बिना ऊट नंगे रहते हैं और 'अकल बड़ी के भैंस' उक्तिया आंख प्रदान कर रही हैं। इसी प्रकार का एक तीखा व्यंग्य 'मुस्सल का मिंह म्हे के भीज्जे सै' तथा 'नदीद्दे नै मिल्या कटोरा, पानी पी पी हुआ पदोड़ा' नदी दे (अभावग्रस्त व्यक्ति) को यदि कटोरा मिल जाये तो वह उससे

पानी ही पानी पीता है और उसका पेट फूल जाता है। आदि उक्तियों में आया है।

प्रकृति निरीक्षण तथा भविष्यवाणी वाली कहावतें भी अनेक हैं। यथा :—'सावन माह चले पड़वा, खेले पूत बुलाले मा' में प्रकृति निरीक्षण से उत्तम फस्ल की बात कही गई है। भविष्यवाणी में घाघ-भड्ली की उक्तिया आयेंगी जिनका सविस्तार वर्णन आगे मिलेगा। नमूने के तौर पर एक उक्ति है :—

सुक्करवाली बादली, रहे सनीचर छाय।
कहे सहदेव सुन भाडली, बिन बरसे ना जाय॥

यहां शकुन विचारवाली कहावते भी मिलती हैं जिनमे जीवन के सफलता-असफलता की भविष्यवाणी होती है। यथा :—

एकला मृग, दूजा साल, झोटे चढ्या मिलै गुआल।
तीन कोस लग मिल जाय तेली, तो मौत निमायै सिर पर खेली॥

(अर्थात्) यदि यात्रा करते समय जगल मे एक मृग मिले, दो सांप मिले, भैंसे पर चढा हुआ गुआला मिले और यात्रा के तीन कोस तक तेली मिले तो निश्चय ही मृत्यु हो। ऐसे दृश्य अपशकुनकारी हैं।

उक्त कहावतो के अतिरिक्त कुछ कहावते ऐसी हैं जो न तो सूक्ति हैं मगर हैं पूरे-पूरे दोहे जिनका अर्थ हृदयगम करने के लिए वे घटनाएँ उधेड़नी पडती है जिनके आधार पर उनका निर्माण हुआ है। यह पंचतत्र की शैली है। अर्थात् यहां एक युक्ति से कहानी उपजती है अथवा कहानी से दोहा उपजता है। हमने इन्हें 'कहावती दोहा' नाम दिया है। यहां एक दोहा देते हैं जिसमे हरियाना प्रदेश का मुँह बोलता चित्र है। बाबा गोरखनाथ अपने अनुभव को इन शब्दो मे बांध रहे हैं :—

कंटक देश, कठोर नर, भैंस मूत्र को नीर।
कर्मों का मारा फिरे, बांगर बीच फकीर॥

(अर्थात्) हरियाना मे कटक अधिक हैं, मनुष्य कठोर प्रकृति के हैं और यहां का पानी भैस के मूत्र जैसा है। ऐसे बागर प्रदेश मे फकीर का दुर्भाग्य है।

'जाट और तेली' की कहानी मे तेली की भगवद् स्तुति भी ऐसे ही कहावती दोहो मे आई है। यथा :—

भीड़ी गौडी, बैल मारना, जाट कह जुड जुई में।
डूब कैं हे अल्ला! खुदा बचा दे पड़ा घमोड़ूं रूई मे।

(अर्थात्) हे ईश्वर ! रास्ता तग है, बैल जिसने कधे मे जुआ उतार दिया है, को जोड़ता हूँ तो वह मारने आता है, जाट कहता है बैल की जगह जुड़कर गाडी खींचो । ऐसे दशा मे आप ही सहायक हो । मुझे बचाओ । मै अब घर पर रुई धुनकर ही आजीविका कर लूगा । ऐसे अनेक कहावत, दोहे हरियाना में प्रचलित हैं । एक दूसरे कहावती दोहे में गंगा-यमुना के अन्तर्वती प्रदेश का चित्रण हुआ है :—

> **म्यानडाभ बडा ग्वराब, लौंडा लौंडी कट्ठ जबाव ।**
> **आधी रोटी, ऊपर साग, ले तो ले ना रास्ता लाग ॥**

गगा-जमुना के बीच के भाग को 'म्यानडाभ' नाम से हरियाना प्रदेश मे पुकारते हैं । इस प्रदेश मे भिक्षुका के साथ ऐसा व्यवहार होता है कि उन्हें भरपेट भोजन भी नहीं मिलता ।

कहावतों में कहीं-कहीं पर सामाजिक उच्छृङ्खलता को भी प्रश्रय मिला है । यथा—'मेरा तेरा नाता, तीसरे का फोड़ै माथा ।' यहां आचारिक पक्ष को लेकर देखे तो सयम-नियम की मात्रा के प्रति अवहेला ही दृष्टिगत होगी । राजनैतिक प्रभाव भी कहावतो मे झलक गया है । इस प्रकार ये कहावतें 'पिनाक पुराना' ही नहीं हैं आधुनिक राजनैतिक तत्व भी इनमें अनुस्यूत मिलते हैं । कांग्रेस की लहर दौड़ी तो गांधी जी को लोगों ने अपना बेताज का बादशाह मान लिया और उक्तिकार ने कहावत को जन्म दिया 'खरा रुपैया चांदी का, राज महात्मा गाधी का ।' इससे महात्मा गांधी का जन-मानस पर राजनैतिक एव आर्थिक प्रभाव प्रकट होता है । कहीं-कहीं पर आयुर्वेद के ज्ञान को भी इन गगरियों (बोतलो) में भर दिया गया है । 'आत भारी तै मांत भारी ।' 'जित जला उत सेक' जले का नुस्खा है । ऐसे ही स्वास्थ्य का नुस्खा है :—

> **"गर्म तै न्हावै, सीला खावै । झाम्हे सोवै, उसका वैद मूंड पकडिया रोवै ।"**

लोकोक्तियो की बात समाप्त करने से पूर्व यह और देख लेना होगा कि लोकोक्तियो मे अन्योक्तितत्व का विशेष महत्व है । यदि यह कहा जाये कि अधिकांशतः लोकोक्तियां अन्योक्तियां हैं तो विषयान्तर न होगा । इनमे जिनका प्रस्तुत उल्लेख होता है, उसके अतिरिक्त सामान्य विशेष में इनका प्रयोग होता है । "गंजी और गोखरू को ईड्डी" यह खल्वाटों के सम्बन्ध में है परन्तु गंजों के प्रति इसका उपयोग न होकर एक विस्तृत भावभूमि में होता है । अतः इस उक्ति में वर्णित विशेष—गजा जिसके सर पर बाल न हों—में जो सामान्य जिसमें गुण आदि कोई विशेषता न हो है, उसी सामान्य के अर्थ में इसका उपयोग हो

मकता है, एवं होता है। जहां विशेष का वर्णन कर दिया जाता है वहां पर भी 'विशेष' उक्ति को वैचित्र्य देने के लिए ही आता है। अर्थ वहां पर भी सामान्य विशेष का ही होता है। 'टांकर वाला ऊट पहिले अरड़ावै', 'अवकल बिन ऊट डभाणे' में 'ऊंट' विशेष के प्रयोग से वैचित्र्य उत्पन्न हो गया है। अर्थ सदैव विशेष मे गर्भित सामान्य ही होगा। 'पूड़ी ना पापड़ी, पटाक बहू आपड़ी' आदि मे विभावना जैसी खूबी आ गई है। यहां पर भी प्रकृत विशेष अ तर्निहित सामान्य भाव में ही वैचित्र्य है और वही लोकोक्ति को संभाले है। यहा सामान्यभाव है 'तैयारी बिना कार्य का हो जाना।'

अन्योक्तिपूर्ण कहावतो में विशेष की स्थापना और उसके द्वारा सामान्य एव वैचित्र्य की योजना तो संभव कल्पना के आधार पर हुई है और 'ढाई ढींगरी फतू बागवान' जैसी कहावत में विशेष किसी सभावना पर निर्भर नहीं प्रतीत होता 'ढींगरी का ढाई' होना सभव नहीं है। ऐसे स्थानो पर उक्तिकार केवल उक्ति वैचित्र्य से अपने भाव को कह देना चाहता है। संभव असभव की उसे चिन्ता नहीं होती। उसका यही ध्येय होता है कि तीर 'लक्ष्य बेध कर' दे। ऐसी कहावते कम होती हैं।

हरियाने मे कुछ लोकोक्तियॉ ऐसी भी मिली हैं जिनमें लोकोक्तिकार अपनी मनोवांछित सुखदायक वस्तुओ की कल्पना करता है। आनन्ददायिनी परिस्थिति की अवतारणा ही इनका मूलमन्त्र होता है। यथा :—

दस चंगे बैल देख, बा दस मन बेरी,
इक्क हिसाबी न्या, वा साकसीर जोरी।
भूरी भैंस का दूधा, वा राबड घोलणा,
इतना दे करतार, तो बोहिर ना बोलणा॥

किसानों के आनन्द की पराकाष्ठा है कि उसके अच्छे चगे बैल हों, पर्याप्त अनाज हो जाये, फस्ल के पीछे लगान या मालगुजारी मॉगी न जाये, भूरी भैस का दूध पीने को मिले और राबड़ी का भोजन मिल जाये। इतना मिल जाने पर उसे सार्वभौम सत्ता प्राप्ति जैसा संतोष मिलता है। वह फिर भगवान से अधिक नही मागेगा। इसी प्रकार सहस्रशः लोकोक्तियॉ हैं जिनमे जीवन जगत् के किसी न किसी पक्ष की अनूठी झलक है। लोक साहित्य का अध्ययन इस मौखिक साहित्य के बिना अधूरा ही है।

ख. मुहावरे (रूढ़ियॉ)

ससार भर की भाषाओं तथा उपभाषाओं (बोलियो) में मुहावरों का प्रयोग पाया जाता है। जैसे लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा भरतल बन जाती

है, उसी प्रकार मुहावरों के प्रयोग से भाषा का सौन्दर्य, प्रवाह और प्रभाव बहुत बढ़ जाता है। जिन बोलियों का अभी तक साहित्य नहीं बना है, उनके बोलनेवाले भी अपनी वार्तालाप अधिक प्रभावमयी बनाने के लिए मुहावरो का प्रश्रय लेते हैं अथवा प्रयोग करते हैं। अक्षर-ज्ञान का प्रसाद जिन ग्रामीणो को नहीं मिला है उनके मुख से भी मुहावरे, यदि ध्यानपूर्वक सुने तो, अपने आप निकलते सुनाई पड़ते हैं और बड़े प्यारे लगते हैं। कितने ही स्त्री-पुरुष तो मुहावरो मे ही बाते करते हैं। इधर रोहतक नगर में एक एडवोकेट हैं, जिनका नाम चौ० प्रताप सिंह है। उनके लिए प्रसिद्धि है कि वे मुहावरे ही खाते हैं, मुहावरे ही पीते हैं और मुहावरे ही बोलते हैं।

१ (क) मुहावरे का अर्थ

मुहावरा शब्द अरबी भाषा का है। अरबी में इसका अर्थ होता है "परस्पर बातचीत और सवाल-जवाब करना।" वहाँ यह शब्द सीमित तथा संकुचित अर्थवाची है या यों कहिए कि अरबी में मुहावरा शब्द का अर्थ सीमित है। किन्तु भारतीय भूमि पर आकर इसका अर्थ विकसित हो गया है। वैसे भारतीय वाङ्मय में मुहावरा शब्द का यथार्थ पर्याय नहीं मिलता। कई विद्वान इसके लिए कई प्रतिशब्द देते हैं यथा—प्रयुक्तता, वाग्धारा तथा रमणीय प्रयोग आदि आदि। परन्तु हम इसका प्रतिशब्द 'रूढ़ि' देते हैं जो इसके प्रयोगार्थ के अधिक समीप है। मुहावरा (रूढ़ि) उस सुगठित पद समूह का नाम है जो अपना साधारण अर्थ (वाच्यार्थ) नहीं, अपितु एक विशेष अर्थ (रूढार्थ या लक्ष्यार्थ) प्रकट करता है। उदाहरणार्थ 'गड़े मुर्दे उखाड़ना' हरियाने का एक प्रसिद्ध मुहावरा (रूढ़ि) है। इसका अभिधेयार्थ वाच्यार्थ है "कब्रे उखाड़कर उनमे के शव बाहर निकालना।" परन्तु वार्तालाप मे इसका प्रयोग इस अर्थ मे नहीं होता बल्कि "प्राचीन एवं विस्मृत अवांछनीय बातों का वर्णन करना।" अर्थ मे होता है। इसका यह अर्थ लक्षण के द्वारा हुआ है जिसमें रूढ़ि की प्रधानता है और इसमें उक्त पदसमूह निस्सदेह रूढि है। परन्तु विष प्रयोग की रिपोर्ट मिलने पर पुलिस ने 'गड़े मुर्दे उखड़वा डाले' सरीखे वाक्यो में उक्त पद समूह रूढि नहीं है क्योंकि वह वाच्यार्थ से आगे नहीं बढ़ता और उस अर्थ को ही प्रकट करके क्षीण हो जाता है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपनी थीसिस 'भोजपुरी लोक-साहित्य' में पृष्ठ ५५३ पर मुहावरा की यह परिभाषा दी है "हिन्दी एवं उर्दू मे लक्षणा अथवा व्यजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। मुहावरे के अर्थ में अभिधेयार्थ से कुछ विलक्षणता होती है। एक गम्भीर दृष्टि से देखने पर विदित होगा कि डा० उपाध्याय का कथन भी हमारी स्थापना की पुष्टि कर रहा है।

(ख) लोकोक्तियो और मुहावरों का अन्तर

आगे बढने से पूर्व यह उचित है कि लोकोक्ति एवं रूढि मे अन्तर स्पष्ट कर लिया जाये। लोकोक्ति मे एक पूर्ण सत्य या विचार की पूरी आभव्यक्ति होती है। वह दूसरे वाक्य का अश नही बनता वरन् एक स्वतन्त्र वाक्य होता है। रूढ़ि (मुहावरा) स्वतन्त्र नहो होती वह तो वाक्य के भीतर ही प्रयुक्त होती है। अथवा यों कहिए वह किसी वाक्य मे रखे जाने के लिए विवश होती है। 'के जाणे भेड बिनोले का स्वाद' 'घर मे गदड़ो सेर', 'लेणा एक न देना दो' आदि लोकोक्तियॉ हैं जो स्वतन्त्र हैं। 'साग भरणा, झांझे की चिड़ियॉ, बावली बूच, बारा मुट्ठी का, आदि रूढियॉ हैं जो वाक्य के प्रयोग की बाट जोहती है।

(ग) मुहावरों का महत्व

मुहावरों के आविर्भाव का प्रतिपादन करते हुए श्री हरिऔध जी ने एक स्थान पर बडी मार्मिक बात कही है—"घटना और कार्यकारण परम्परा से जैसे असख्य वाक्यो की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मुहावरो की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष मे सकेत अथवा इगित किंवा व्यग्य द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावो को थोड़े शब्दो मे निवृत्त करने का उद्योग करता है, जिनके अधिक लम्बे चौडे, वाक्यों का जाल छिन्न-भिन्न करना उसे अभीष्ट होता है। "इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाषा के सवारने, सजाने और उसमें शक्ति व बल फूँकने का कार्य मुहावरों का है। मुहावरों के बिना भाषा फीकी रह जाती है और विधवा सी प्रतीत होती है। मुहावरे की लाक्षणिक शक्ति से भाषा में सयम आता है और अनावश्यक विस्तार दूर हो जाता है। 'मुकद्दमा, शेर व शायरी' मे मौलाना हाली ने मुहावरों के महत्व को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है, "मुहावरा अगर उम्दा तौर से बांधा जावे तो बिला शुबहा परस्त शेर को बलंद और बलद को बलदतर कर देता है। "निस्सन्देह मुहावरों के यथोचित प्रयोग से शैली में परिष्कार आता है और उसमें शक्ति आती है। साथ ही शैली में माधुर्य तथा मनोहारिता भी आ जाती है। भाषा में चुस्ती भी इन्हीं के प्रयोग से आती है। मुंशी प्रेमचंद की भाषा का जादू मुहावरों के सम्यक् प्रयोग में है और पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय की कविता की शक्ति मुहावरों के सहारे स्थिर है।

महावरो के महत्व के साथ ही साथ इनमे अपनी एक विशेषता होती है। मुहावरो का शब्द विन्यास 'परिवर्तन असहत्व" गुणवाला होता है। इसका तात्पर्य है कि प्रयोग करते समय रूढ़ियो के शब्दों तथा उनके क्रम में कोई

परिवर्तन नही होने पाता । यथा :—'पेट का पानी न पचना' का भाव है, कोई बात छिपा न सकना । यदि इसके स्थान पर 'उदर का जल न पचना' कहा जायेगा तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा । यहां यह न भूलना चाहिए कि 'शब्द परिवृति असहत्व' उत्तमोत्तम साहित्य का गुण होता है । अतः यह कहना कि लोकोक्ति एव मुहावरे साहित्य के श्रेष्ठ अंश हैं, असंगत नहीं है ।

२. हरियानी मुहावरों का अध्ययन

हरियानी मुहावरों के सम्यग् विवेचन से पाठक को अनेक अनूठी बातों का पता चलेगा । इन मुहावरो मे कहीं स्थानीय सामाजिक प्रथाओं का उल्लेख हुआ है, तो कहीं किसी पौराणिक वृत का वर्णन है । किसी जाति की विशेषता और उसके स्वभाव का चित्रण भी इनमे आया है । कई बार मुहावरों के द्वारा शब्दो की निरुक्ति करने में सहायता मिलती है । इस प्रकार इनका बड़ा महत्व है ।

क. संस्कार तथा प्रथाओ का उल्लेख

ऐसे अनेक मुहावरे हरियाना प्रदेश मे प्रचलित हैं जिनमें इस प्रदेश के सस्कारो एवं प्रथा परम्पराओं की छाप है । एक मुहावरा है 'हाथ पेले करना' जिसका अर्थ होता है 'पुत्री का विवाह करना ।' कन्यादान करते समय पिता पुत्री के हाथों को हल्दी से पीले करता है और फिर उसे वर को देता है । अतः यह मुहावरा हिन्दुओं में प्रचलित कन्या के विवाह-संस्कार को बताता है ।

वर जब कन्या का पाणिग्रहण करता है उस समय वर और कन्या के गोत्रज पुरुषों के नामों का उच्चारण किया जाता है । इसे हरियाना में 'शाखाचार' कहते हैं । यह प्रथा कुलीनता की भावना से युक्त है । इसीसे मिलता-जुलता दूसरा मुहावरा है 'कुली बखानता' परन्तु यह पहिले मुहावरे के पूर्णतया विपरीत है । इसका अर्थ है 'किसी के वंश के दोष बखानना' अर्थात् दोषो का वर्णन करना । इसी प्रकार 'भात भरना' 'पानी देना' 'चुणडे मे घी भरना' आदि मुहावरे हैं जो प्राचीन संस्कार व प्रथाओं के अवशेष हैं ।

स्त्रियों के व्रतो का उल्लेख भी इन मुहावरों में यत्र-तत्र पाया जाता है । 'संकरात पूजना' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है खूब पीटना । हरियाने में मकर संक्रांति बड़ी श्रद्धा से मनाई जाती है । स्त्रियां इस अवसर पर बाजरा आदि कूटकर खिचड़ी बनाती हैं । अतः बाजरा कूटने की क्रिया के साहचर्य

से इस रूढ़ि (मुहावरे) का पीटना अर्थ होता है। साथ ही इस मुहावरे के द्वारा उस प्रथा का उल्लेख भी हो गया है।

ख. ऐतिहासिक चित्रण

हरियानी मुहावरो में ऐतिहासिक अंशो की ओर भी अनेक संकेत मिलते हैं। 'सत्तावणियां जूता' हरियानी का एक मुहावरा है। यह मुहावरा १८५७ के सिपाही विद्रोह के समय से सबधित है। बहुत से जाटों के यहां ऐसे पुराने जूते मिलते हैं जो दूसरो के हैं और जिनसे उन्होने अपने शत्रुओं को १८५७ मे पीटा था। इसी प्रकार का एक दूसरा मुहावरा है 'भाऊ की लूट'। राजा भाऊ गुजरात के थे। उनको धोखे से हराया गया और राज्य को लूटा गया था। राज्य में कोई व्यवस्था न रह गई थी। वही पुरानी बात इस छोटे से मुहावरे में अवशिष्ट है। 'पुराना घाघ' अर्थात् आवश्यकता से अधिक अनुभवी, मुहावरा भी इतिहास के एक तमसाच्छन्न कोने को प्रकाश प्रदान कर रहा है।

ग. पौराणिक चित्रण

कुछ मुहावरे पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। 'द्रौपदी का चीर' एक मुहावरा है जो पौराणिक युग की कथा को अपने मे समेटे हुए है। अचूक औषधि को 'रामबाण' कहते हैं। यह भी पाठक को उस प्रागैतिहासिक युग में प्रवेश कराता है जहां इतिहास की पुस्तके मूक हैं। इसी प्रकार 'ईद का चांद' किसी विगत युग की स्मृति का द्योतक है। 'सुदामा के चावल' भी कृष्ण युग की वस्तु है।

घ. जातिगत विशेषताएं

हरियाने में कई ऐसे मुहावरे हैं जो किसी जाति को आधार मानकर खड़े हैं अथवा चल रहे हैं। इनमें 'जाट गोंगदा' जाटों का झगड़ा 'बुद्धू जाट' आदि मुहावरे जाट जाति के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। इस प्रदेश का एक मुहावरा है 'बावली बूच'। यह बूच कोई पशु विशेष अथवा कीट विशेष नहीं। लोकमेधा ने अद्‌भुत भाव के लिए एक शब्द घड़ लिया है जिससे किसी जतु का भाव शब्द ध्वनि के प्रभाव से मिलता है। जिसे मान लिया गया है कि वह बावला होता है। गाय के ऊपर भी कई मुहावरे मिलते हैं यथा—'गूगली गाय' इसका अर्थ होता है 'दया का पात्र' 'बाच्छी का काका' एक दूसरा मुहावरा है जिसका अर्थ 'अत्यन्त सीधा'। यह मुहावरा जो कि सरलता एव भोलेपन को लेकर चला है।

ङ. व्यंग्योक्ति

मुहावरे की परिभाषा देते हुए पीछे कहा गया है कि लक्षणा व व्यंजना से युक्त सिद्ध वाक्य को मुहावरा कहते हैं। हरियाने मे ऐसे मुहावरे प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं जिनमें व्यग्य की अभिव्यंजना बड़ी अनूठी हुई है। 'रांड का सांड' एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है "उच्छृङ्खल बालक" विधवा पुत्र पर पिता आदि किसी अभिभावक का अनुशासन न होने से वह सांड की भांति उद्दंड हो जाता है। अतः यहा सांड शब्द से उच्छृङ्खलता का भाव ध्वनित होता है। 'पुराना घाघ' मुहावरे में 'घाघ' शब्द घाघ कवि के अनुभवो की ओर लक्ष्य करता है अतः इस मुहावरे का अर्थ होता है "बहुत अनुभवी पुरुष"।

च. शकुन विचार

हरियानी मुहावरो में शकुन विचार भी आया है। गायों में उल्लू बोलना अपशकुन और कौवा का बोलना शकुन माना जाता है। अंगों के फड़कने से भी शुभाशुभ विचार लगाये जाते हैं। 'हथेली खुजाना' धन की प्राप्ति और 'पैर खुजाना' यात्रा का होना आदि का ज्ञान कराते हैं।

इन मुहावरों में प्राचीन भाव के अतिरिक्त नवीन वस्तुओं पर भी विचार व्यक्त किये जाते हैं यथाः—'पलेटफार्म साफ होना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है 'सबका मर जाना' आदि आदि। इस प्रकार हम देखेंगे कि जीवन जगत के नवीन अनुभव नये-नये मुहावरों के जनक होते जा रहे हैं।

संस्कृत साहित्य में सूक्ति या सुभाषितों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के न्याय भी उपलब्ध होते हैं। यथा—खलेकपोत न्याय, अरण्य रोदन न्याय, अन्ध-दर्पण, अजाकृपाणीय, काकोलूकीय न्याय आदि-आदि। इन्हें हम रूढ़ि या मुहावरा ही कहेंगे। इनका 'चुस्त कहावत' नामकरण जिसकी ओर कई विद्वानों का सकेत है, संगत नहीं प्रतीत होता। कहावत और मुहावरे में स्पष्ट एवं मौलिक अतर है। वे दोनों एक जाति की दो विधाएं अवश्य हैं परन्तु उन्हे एक नहीं कहा जा सकता। कहावत-कहावत है। वह स्वतः स्पष्ट है और मुहावरा परतः स्पष्ट है।

मुहावरों तथा कहावतों का इतना अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है। इनमें से अनेक मुहावरों को साहित्यिक तथा वर्तमान भाषा का रूप देकर सुन्दर भाव-व्यंजना की जा सकती है। 'सांग भरना, झांबे की चिड़िया, तथा पके पान होना' आदि मुहावरे हमारी साहित्यिक अभिव्यक्ति के आभरण बन सकते हैं।

ग. पहेली

पहेली शब्द प्रहेलिका का तद्भव रूप माना जाता है जिसका अर्थ होता है 'विपम अवस्था' अथवा 'उलझन'। हरियानी मे इसे 'फाली आडना' पहेली बतलाना अथवा "गाहा खोलना" कहते हैं। 'फाली' शब्द का अर्थ होता है, 'फलगर्भित वाक्य' और गाहा 'गाथा' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है जिसका अर्थ होता है 'कथा या कहानी', भोजपुरी में इसे 'बुझौवल' कहते हैं।[1] वहाँ तो पहेली पूछने के लिए 'बुझौवल बुझाना' मुहावरा भी है। इसके और भी कई नाम—पारसी, प्याली तथा उखाणा आदि—भिन्न-भिन्न बोलियों में प्रचलित हैं। सस्कृत में पहेली को 'ब्रह्मोदय' कहते हैं।

पहेली कहने की प्रथा बड़ी प्राचीन है। बारहवी-तेरहवी शती के कविवर खुसरो की पहेलियों और मुकरियो के विषय मे आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि "जिस ढंग के दोहे, तुकबंदियां और पहेलियाँ आदि साधारण जनता की बोलचाल में इन्हें प्रचलित मिलीं उसी ढग की पद्य-पहेलियां आदि कहने की उत्कंठा इन्हें भी हुई[2]।" यह सभ्य और असभ्य सभी प्रकार के लोगो मे प्रचलित मिलती हैं। अवकाश के क्षणो में पहेलियां अबाल-वृद्धवनिता सभी के लिए मनोरंजन का उत्कृष्ट साधन हैं। कई अनुष्ठानों और विवाहादि संस्कारों पर भी इनकी पूछ होती है। इधर हरियाने के गांवों में जामाता की बुद्धि परीक्षा के लिए सुसराल में 'सींटणे' पूछे जाते हैं जो एक प्रकार की पहेली होती है। इसे कहीं-कहीं 'छन' या 'छद' भी कहते हैं। 'सींटणों' मे शृंगार के कोमलतम पक्षों का बड़ा खुला वर्णन होता है जो परिष्कृत रुचि

---

१. 'बुझौवल' ब्रज और बुन्देलखंडी मे एक प्रकार की कहानियां होती हैं जिनमें कौतूहलपूर्ण परिस्थिति का स्पष्टीकरण वांछित होता है। श्री हरगोविन्द गुप्त, बुन्देलखंडी बुझौवल, आजकल पत्रिका, दिसम्बर, १९५२, में लिखते हैं "बुझौवल उन कहानियों को कहते हैं जिनमें एक व्यक्ति प्रश्न करता है और दूसरा उनका उत्तर देता है। मनोरंजक कहानियां भी होती हैं और सार्वजनिक ज्ञान की वृद्धि करनेवाला बौद्धिक व्यायाम भी, जिसमें कभी-कभी बहुत ही तत्व की बातें पकड़ में आती हैं।" पं० त्रिपाठी ने बुझौवल को पहेली का पर्याय माना है। उनका कहना है, "बच्चों की बुद्धि, पर शाण चढ़ाने के लिए गांवों में बहुत सी पहेलियां जिन्हें बुझौवल कहते हैं, प्रचलित हैं। बुझौवल बड़े गूढार्थवाले होते हैं।"—हिन्दी ग्राम-साहित्य, भाग १ में ग्राम-साहित्य की रूपरेखा।

२. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६१।

को घिनौना लगता है। भारतवर्ष में वैदिक काल से ही 'ब्रह्मोदय' पहेलियों का प्रचलन पाया जाता है। अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर ब्रह्मोदय आनुष्ठानिक क्रिया का अंग समझा जाता था जो होता और पुरोहित के मध्य चलता था।

पहेलियो का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन होता है। परन्तु कोरी मनोरंजनात्मकता ही इनका सर्वस्व नहीं है। ये तो वक्ता के बुद्धि-विलास तथा श्रोता की बुद्धि परीक्षा के साधन रूप मे भी आती हैं। बड़े अनुभवी बुद्धि के धनी और प्रत्युत्पन्नमति काइयाँ लोग भी उनके वैचित्र्यपूर्ण अर्थ गौरव के प्रति नत मस्तक हैं। इसी से पं० रामनरेश जी त्रिपाठी ने इन्हें 'बुद्धि पर शाण चढाने का यंत्र' या 'स्मरण-शक्ति और वस्तुज्ञान बढ़ाने की कलें' कहा है। भोजराज ने भी प्राहेलिका के उपयोग पर टिप्पणी देते हुए कहा है 'क्रीडा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे। परव्यामोहने चापि सोपयोगाः प्रहेलिकाः।' अर्थात् खेल, गोष्ठी तथा विनोदकाल मे प्रहेलिका जाननेवाले पारस्परिक विचार-विनिमय अथवा परामर्श एवं श्रोतृ-वृन्द को व्योमोहित करने के लिए अर्थात् आश्चर्य-चकित करने के लिए इनका उपयोग करते हैं।[1] वहीं पर इसके भेदोपभेदों का भी वर्णन किया गया है यथाः—अन्तः प्रश्न, बहिः प्रश्न, बहिरन्तः प्रश्न, जाति प्रश्न, पृष्ट प्रश्न, उत्तर प्रश्न, प्रभृति।

पहेलियो के वर्ण्य विषय इतने विस्तृत एवं व्यापक हैं कि साधारण से साधारण वस्तु भी पहेली की पकड़ से छूटी नहीं है। दिन प्रति दिन इनकी सख्या बढ़ती रहती है। ग्रामीण प्रतिभा का अंशुमाली बराबर चलता रहता है। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि पहेलियों में किसी वस्तु का वर्णन होता है जिसमें प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की योजना की जाती है। अप्रस्तुत यहाँ प्रायः ग्रामीण वातावरण से लिया जाता है जो वस्तु उपमान के रूप में रहता है। यह नैसर्गिक भी है। गॉव के बुद्धि कौशल को सजग रखने के लिए उस अपार परिचित परिस्थिति के अतिरिक्त और क्या चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि पहेलियो के विषय अनेक एवं अनंत होते हैं। ब्रज की पहेलियों को डा० सत्येन्द्र जी ने निम्नलिखित सात वर्गों में बाँटने का प्रयत्न किया है। १. खेती सम्बन्धी २. भोजन सम्बन्धी। ३. घरेलू वस्तु संबंधी। ४. प्राणी सम्बन्धी। ५. प्रकृति सम्बन्धी ६. अंग-प्रत्यंग सम्बन्धी ७. अन्य। यह वर्गीकरण अधिकांश में समीचीन है परन्तु 'पौराणिक कथा सम्बन्धी' पहेलियाँ भी प्रचलित मिलती हैं जो उपरोक्त वर्गों में नहीं रखी जा सकती। यथा :—

---

१. विश्वनाथ—'साहित्य दर्पण', दशम परिच्छेद, पृष्ठ ४६६ पर पादटिप्पणी।

आप कंवारा बाप कंवारा और कवारी महतारी।
पुत्र पिता नै गोद खिला रह्या देखो न वेदाचारी ॥

हरियाने की यह पहेली एक पौराणिक पहेली है। इसमें मकरध्वज और हनुमान की पौराणिक गाथा कही गई है। जब तक यह पौराणिक वृत्त स्पष्ट नही हो जाता तब तक यह पहेली नही सुलझती। अतः हमारी सम्मति में उपरोक्त सात वर्गों के साथ एक वर्ग और पौराणिक कथा सम्बन्धी होना चाहिए। इससे भी अधिक भेद किये जा सकते हैं।

पहेलियों के विवेचन में यह भी ध्यान रखने की बात है कि इनमें बहुत से ऐसे शब्दों की योजना होती है जिनका अर्थ प्रस्तुत में तो कोई नही होता परन्तु प्रकरण में आकर उनमे अर्थ-द्योतकता आ जाती है। कभी-कभी शब्द पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त होता है और कहीं पर किसी व्यंग्य की अभिव्यक्ति के लिए। श्लेष का अनूठा प्रयोग भी इन ग्रामीण गाहाओं में देखने को मिलता है। यथा :—

दिल्ली बोई बेल, मंगर पै नाल गये।
हथनापुर फूले फूल, पटालै पान गये ॥

हरियाने के इस गाहे में एक बेल का वर्णन है जो दिल्ली में बोई गई है, जिसके नाल (तने) आदि मुंगेर तक गये हैं। हस्तिनापुर में उस पर फूल लगे हैं और पटियाला तक पत्ते गये हैं। इस अलौकिक बेल का वर्णन श्रोता को कौतूहल से भर देता है और उसे चकित कर देता है। अब आप इसमें प्रयुक्त श्लेष को तनिक अनावृत्त कीजिए और देखिए कि इस गाहा का फल "ग्रामो में स्त्रियों द्वारा धारण की जानेवाली आँगी" है। यहाँ दिल्ली (दिल, वक्षः), मंगर (मुंगेर वा पृष्ठ, पीठ), हथनापुर (हाथ, भुजमूल) और पटालै (पटियाला, पेट) श्लिष्ट शब्द हैं। आंगी (Bodice) वक्ष से चलती है और कमर पर उसकी तणियाँ बांधी जाती हैं जो बेल के तने के सदृश हैं। भुजमूल पर फूला हुआ भाग हस्तिनापुर के फूल और पेट पर पटियाला पर पान के सदृश खुला कपड़ा रहता है[1]। कितना भव्य एवं सुन्दर श्लेष है।

पहेलियों में एक शब्द-चित्र होता है। प्रश्नकर्ता उस चित्र को उपस्थित करके अर्थात् पूर्वपक्ष की स्थापना करके अपने प्रतिपक्षी से उस चित्र के उत्तरपक्ष की आकांक्षा करता है। यहाँ कठिनाई यह होती है कि प्रस्तुत चित्र अस्पष्ट होता है। उससे तो केवल एक दिशा मात्र मिलती है। शेष की

---

१. आज भी (गाडा) लुहारों की स्त्रियां इसी प्रकार की अंगियां धारण करती हैं।

पूर्ति श्रोता को अपने ज्ञान के आधार पर करनी होती है। इसी से अबोध बालक अपने प्रश्नकर्ता से आग्रह करते पाये जाते हैं कि वह चित्र का अथवा समस्या का कुछ अता-पता (Clue) दे जिससे वे अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ा सकें। इतना ही नहीं, इस समस्या को गम्भीरतर बनानेवाली एक बात और होती है इन चित्रो मे और वह है 'ध्यानविकर्षण की भावना' जो श्रोता एव मननकर्ता के ध्यान को विकेन्द्रित करती है और विचलित करती है। इसमे 'असभवनीयता' सी बनी रहती है। यथा—'दो भाई एक से, काम करें कट्ठा। एक रहा हांडा फेरी में एक रह बैट्ठा॥' एक हरियानी गाहा है। इसमें श्रोता प्रथम पक्ति का चित्र अपने बुद्धि-पटल पर अंकित करके आगे बढ़ता है तो उसका ध्यान विकेन्द्रित होने लगता है। एक स्थान पर काम करें किन्तु एक बैठा रहता है और दूसरा घूमता रहता है। उसकी समझ मे नही आता। अतः उसे 'चाकी' का भाव स्पष्ट संकेत द्वारा ज्ञात नहीं होता। वास्तविकता यह है कि इन पहेलियो मे इस ध्यान विकर्षण के तत्व ने ही कौतूहल जाग्रत किया है। यही चमत्कार है और यही उक्ति का वैचित्र्य है। एक दूसरी पहेली :—

पट दे मारा चौंदे बोला बधक्या बेलम बेला।
इस गाहे का फल खोलदे नहीं तो मैं गुरु तू चेला॥

यहॉ लट्टू का भाव विचित्र अवस्था से चित्रित किया गया है। पहेलियों की अधिक संख्या इसी 'ध्यान विकर्षण', के आधार पर उक्ति-वैचित्र्य का अंग बनी है। मुकरियों में तो यह प्रवृत्ति इतनी प्रचुर होती है कि श्रोता को प्रकरणवश ज्ञात तो होता है कुछ और पर वक्ता झट से दूसरा अर्थ कर बैठता है। इस प्रणाली से मनोभावनाओं को रहस्यमय ढग से गुह्य रख लिया जाता है। अतः पहेलियों में इस असपष्ट चित्रण' के द्वारा जो कौतूहलमय आनन्द भरा होता है उसी को लेकर दंडी आदि अलकारवादियों ने पहेली की अलंकारों में गणना की है, परन्तु रस सम्प्रदाय के आचार्य रसबोध में विरोधी कह कर इसे अलकार कोटि से बहिष्कृत कर देते हैं। और इसे उक्ति वैचित्र्य मात्र की संज्ञा देकर आगे बढ़ते हैं।[1] परन्तु इस विषय पर थोड़ा सा विचार कर लेना यहॉ समीचीन होगा। लोक प्रचलित, पहेलिकाओं के विश्लेषण, अध्ययन एव मनन से यह निर्बाध प्रतीति होती है कि इस

---

१. विश्वनाथ—'साहित्य दर्पण', दशम परिच्छेद, पृष्ठ ४६६—,

रसस्य परिपन्थित्वान्नालंकारः प्रहेलिका।
उक्तिवैचित्र्यमात्रं सा च्युतदत्ताक्षरादिका॥

साहित्य मे एक कौतूहलमय भाव एव विस्मयकारी चित्र होता है जो रस-कोटि तक पहुँच जाता है। विस्मय स्थायीभाव विभावादि के द्वारा व्यक्त हो अद्भुत रस में परिणत हो जाता है। हिन्दी के जो विद्वान संस्कृत रसवाद की पूँछ पकड़े हुए हैं उन्हें विचारना चाहिए कि अपने भाषा सारल्य एव बधचातुर्य से हिन्दी पहेली सस्कृत प्रहेलिका की भाँति "काव्यान्तर्गतोद्भूत" नहीं है। अध्ययन के लिए हरियाने की कुछ पहेलियाँ नीचे दी जाती हैं।

यह बतलाया जा चुका है कि पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है। अतः पहेली श्रोता की बाछें खुलवा देती है। बच्चे तो ऐसे अवसर पर खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। उदाहरण—"जोहड़ ते निकली झरड़ फूँ। चार चुत्तड़ चार मुँह।" यहाँ बच्चे झरड़फूँ के 'चारचुत्तड़' का नाम सुनते ही खिलखिला उठते हैं।

काक्काजी हमने कुक्कू देख्या, कहो भतीजा कैठे देख्या।
बिना चौंच तै चुगते देख्या, बिना परों के उडता देख्या।

कुक्कू यहाँ एक लोकमेधाप्रसूत काल्पनिक शब्द है जिसमें 'शब्द ध्वनि' विशेष अर्थ की प्रतिपादिका है। इसका अर्थ किसान के कुए पर का 'चाक' है। ऐसी अनेक पहेलियाँ हरियाने की जनता को याद हैं। ऐसी पहेलियों में 'रामलाला' सालगराम आदि शब्द भी व्यक्तिवाची न होकर जातिवाचक रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं।

पहेलियों का विषय एकमात्र मनोरंजनात्मकता ही हो ऐसी बात नहीं है। बड़े गम्भीर प्रश्न भी इनके विषय बनते हैं। रूपक शैली के द्वारा जीवन की अनुपम मीमांसा निम्नलिखित गाहे मे दी गई है :—

कच्चे फल सुहावने, गदर हुए मिठान।
वे फल कौन से, जो पक्के हो करवान।

इस पहेली मे कच्चे, गद्दर और पके फलों के रूपक से शैशव, यौवन और वार्द्धक्य का यथार्थ चित्र दिया गया है। जीवन में बाल्यावस्था सुहावनी है, युवावस्था, आनन्ददायक है, परन्तु वृद्धावस्था कड़वी होती है।

कई पहेलियाँ ऐसी मिली हैं जिनका कथापट पौराणिक इतिवृत के सूत्रों से निर्मित हुआ है। ऐसी पहेलियों का अर्थ तब तक हृदयंगम नहीं होता जब तक कि वह 'पिनाक पुराना' समझ में न आ जाये। यथा :—

आप कंवारा बाप कंवारा और कंवारी महतारी।
पुत्र पिता नै गोद खिला रह्या देखो न वेदाचारी॥

यहाँ मकरध्वज और हनुमान की पौराणिक कथा कही गई है। हरियाने की बहुत सी पहेलियां ऐसी हैं जिनकी पृष्ठभूमि घर और घरेलू वस्तुओं से निर्मित हुई है :—

हरी थी मनभरी थी, नौलाख मोती जड़ी थी।
राजा जी के महल में, दुसालां ओढ्यां खड़ी थी ॥

मै जब हरी थी बड़ी मनोहर थी। नौ लाख मोती (असंख्य मोती) अर्थात् पीले-पीले दाने मेरे शरीर मे जड़े हुए थे और किसान के महल (खेत) में दुशाला (भुट्टे के पत्ते) ओढ़े खड़ी थी। यह एक मकई की 'कूकड़ी' का अपने मुँह बोला वर्णन है। घर में प्रतिदिन उपयोग मे आने-वाला गेहूँ भी पहेली मे सिपाही बना खड़ा है "छोटा सा सिपाही, बांके पेट मे बिवाई।" परन्तु लोक मेधा का परितोष ग्रामीण वातावरण से नहीं हो जाता। उसकी पैनी दृष्टि शहरी 'जलेबी' और 'पतंग' को भी पहेली के क्षेत्र मे घसीट लाई है :—

गोल गोल चौंतरा, पोरी पोरी रस।
बता तो बता नहीं, रुपये दे रस ॥

जलेबी के साथ शहरी सट्टा और जुआ की प्रवृत्ति भी लोक तक लगी चली आई है। पतग का वर्णन हरियाने की एक पहेली में हुआ है :—

एक कहानी मैं सुनाऊँ सुनले मेरे पूत।
बिना परों के उड गई, बाँध गले में सूत ॥

साईकिल तो आज नगर की अपेक्षा ग्रामीण बनती जा रही है, और उसने ग्राम से घोड़े को भगा दिया है। एक उक्ति है :—

घोडा है पर घास नहीं खाता।
खड़ा करें तो डिग[1] डिग जाता ॥

'दृष्टिकूट' प्रणाली की पहेलियाँ भी हरियानी-लोकसाहित्य का अंग बनी हैं जिनमें ग्रामीण बुद्धि कौशल ने प्रागैतिहासिक वृत्त को बाँधा है :—

पत्थर ऊपर हल चले बैल गऊ के पेट।
हाली तो जाम्या नहीं, छकियारी पहुंची खेत ॥

इस गाहा में इस जनश्रुति को आधार बनाया गया है कि वाल्मीकि जी ने रामचन्द्र जी के अवतार लेने से पूर्व ही रामायण लिख दी थी। पत्थर (पात्र, भोजपत्र) के ऊपर लेखनी चलती है। बैल रूपी भाव लेखक

---

१. गिर-गिर जाता है।

के मन में हैं। हाली (वर्ण्य पुरुष राम) तो अवतरित नहीं हुए हैं परन्तु रोटी (पूर्ण वर्णन) छकिमारी (लेखक ऋषि बाल्मीकि जी) ने कर दिया है। इन स्थानो पर विस्मय का भाव विशेष आनन्ददायी होता है। हरियाने में ऐसी पहेलियों को 'उलटा गाहा' नाम दिया जाता है। इनका अर्थ सहज समझ में नहीं आता। कभी-कभी ग्रामीण मेधा घटना विशेष को लेकर पहेली रूप में मुखरित होती हुई दीख पड़ती है। बाल्टी में बंधकर कुए में फंसती हुई रस्सी की घटना का एक उदाहरण है :—

"सरड़ जा सरड़ आबै।"

यहाँ कुए मे बाल्टी फांसने और खींचने की घटना का चित्रण हुआ है। इसी प्रकार गाय या भैंस के शारीरिक अंगों की घटना ने एक पहेली को जन्म दिया है :—

चार मेरे आऊ जाऊ चार मेरे कमाऊ।
दो सुक्के लक्कड़, एक मांखी टाऊ[1]॥

चार वस्तुओं (चार पैरों) से मेरा आना-जाना होता है। चार (चार थन) मेरे कमाऊ हैं। दो सींग (दो सूकी) लकड़ियां हैं और एक (पूछ) मक्खी-मच्छर आदि को उड़ानेवाली है।

साथ ही ग्रामीण प्रतिभा ने कहीं-कहीं यौन वृत्ति परिचालक शब्द-चित्र व क्रिया-चित्र भी दिये हैं जो सयत हैं और स्वल्पीय मात्रा में हैं। "काला बाठ्या, लालकाठ्या" में पहेलीकार ने लुहार की भट्टी में लोहे की काली कुसको पड़ते और तपकर लाल होते हुए देखकर यह पहेली बनाई है। परन्तु इसमें यौनवृत्ति की झलक आ गई है जो भोगियों के प्रति स्पष्ट है। ऐसे स्थानों पर सुख की भावना की प्रतीति होती है जो अवचेतन मन में बैठे यौन-तंतुओं के स्पदन से प्राप्त होती है।

लोकमेधा बराबर पहेलियों का निर्माण करती रहती है। नये विषयों या नये अनुभवों के साथ नये गाहे भी जन्म लेते रहते हैं। शिक्षा का प्रचार बढ़ा और किताबें पढ़ी जाने लगी तो किताबे और उनके पढ़नेवालों पर भी पहेलियां बन चलीं :—

धोली धरती काला बीज।
बोअण आला गावै गीत।

मियां खुसरो की पहेलियो में मच्छर विरहपाठी के रूप में पाठक को

---

१. उड़ानेवाला।

मिला है परन्तु हरियानी पहेलियों में वही मच्छर सर्वभक्षी बन गया है :—

सेज्जां चढती राणी खाई, बालक खाये मन्दर में।
काली नाग बुम्बी की खाई, केहरी खाया जंगल में।
हाथियां सेत्ती हाथ मिलावै, वोह वी जानवर जंगल में॥

राजप्रासादो मे रानी को खानेवाला, घरों में बालको को खानेवाला; बॉबी में सर्प को और जंगल मे शेर को खानेवाला (काटनेवाला) तथा हाथियों के साथ हैंडशेक करनेवाला जीव (मच्छर) जगल में रहता है।

पहेलियो के साथ मुकरियों का नाम भी प्राचीन युग से चला आता है। अतः हम भी यहां पहेलियो के अध्ययन में इन्हें स्थान देते हैं। ये भी विस्मय, वैचित्र्य, कौतूहलकारी होने से पाठक के आनन्द का स्रोत बन जाती हैं। "भींत क्यो बांगी (टेढी), बहु क्यों नांगी (नग्न)"—(सूत न था)। यहाँ श्लेष बल पर अतः-प्रश्न पूछा गया है :—

सास बहू का ओलणा, भीत रही बलखा।
ताणी पडी जुलाहे कै, को चेला किसका? (सूत बिना)

यहां सूत सहयोग के बिना सास-बधू की लड़ाई, सूत्र के बिना भित्ती में टेढ और धागों के बिना जुलाहे का काम बन्द है। यह बहिः प्रश्न है।

घ. सूक्तियां

सूक्ति का दूसरा नाम सुभाषित भी है। सूक्ति या सुभाषित वे उक्तियां हैं जिनमें ग्राह्यतत्व की प्रधानता होती है और ये जन-साधारण को दूसरी उक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रभावित करती हैं। ये सूक्तियां लोकसाहित्य एवं शिष्ट साहित्य दोनों की अपनी वस्तुयें हैं। इनकी अपनी विशेषता एक यह भी है कि इनमे साधु-भाव आद्यन्त ओत-प्रोत होते हैं जो श्रोता एवं पाठक को अनायास ही आनन्द-विभोर कर देते हैं। ये सूक्तियां अवश्य ही किसी आप्त पुरुष की प्रांजल शब्दालियां होती हैं। ये ही वे वचन हैं जो "हितं च मनोहारी" की कल्पना को साक्षात् प्रकट करते हैं।

लोकसाहित्य की खेती बिना तिथिवार एवं बिना कर्ता की उपज होती है परन्तु सूक्तियों के ऊपर उन लोगो के नाम की छाप भी देखी जाती है जिन्होंने इन्हें जन्म दिया है। परन्तु ये नाम संकीर्णता की दुर्गन्ध से रहित होते हैं। भारत के सभी प्रदेशीय लोकसाहित्यों में घाघ, भड्डरी (भड्डली) और डाक की खेती व वर्षा विषयक सूक्तियां अवश्य सुनने को मिलेंगी। कई

विद्वानों का मत है कि ये तीनों नाम किसी एक ही प्रतिभाशाली व्यक्ति के नाम हैं जिसे देश भेद से कई नाम प्राप्त हो गये हैं। अन्य–घाघ, भड्डरी और डाक तीनों को भिन्न-भिन्न व्यक्ति मानते हैं।

सूक्तियां भाषा-बोली के अर्थ सौष्ठव, भावगांभीर्य एव संहार शक्ति की द्योतिका होती है। अतः जो भापा जितनी सम्पन्न, एव अर्थ प्रकाशिका शक्ति समन्वित होती है उसमे उतनी ही अधिक सूक्तियां पाई जाती हैं। सस्कृत में सुभाषितों की प्रचुरता है। वहो 'सुभाषित रत्नभांडागार' जैसी अनुत्तम पुस्तकें विद्यमान हैं। हिन्दी और उसकी बोलियो में अभी ऐसी उपयोगी पुस्तकों का अभाव है।

हरियाना प्रदेश में घाघा (घाघ) और भड्डली की सूक्तियां मिलती हैं। हमारी खोज मे एक दो सूक्ति सरूपा की भी मिली है। लोकहिताय अपनी वाणी, ध्वनित करने वाले इन कृषि-पंडितों के विषय में इतिहास का साक्ष्य नहीं मिलता। 'घाघ' के विषय में कुछ पते की बाते महापंडित रामनरेश जी त्रिपाठी के अनुसंधानों से प्राप्त हुई हैं। एक जनश्रुति के अनुमोदन से पता चलता है कि इनकी जन्मभूमि उत्तर प्रदेश के धुरवर्ती भाग गोरखपुर जिले में थी। कहा जाता है वहां वे अपने पुत्र और पुत्रवधू के साथ रहा करते थे। किवदन्ती प्रसिद्ध है कि उनकी पुत्रवधू बड़ी चतुर थी और उससे इनकी नोंक-झोंक बराबर रहती थी। घाघ जो कहावत कहते पुत्रवधू तत्काल उसकी काट कर देती। एक घटना से क्षुब्ध होकर वे बादशाह अकबर के दरबार में पहुँचे। गुणग्राही सम्राट् ने उनका बड़ा आदर किया और उनको कन्नौज के पास एक जागीर भी दी। घाघ अपने अतिम दिनों में उसी ग्राम में रहे। वह ग्राम कन्नौज से तीन मील दक्षिण में है और "अकबराबाद सराय घाघ" के नाम से प्रसिद्ध है। घाघ के वंशज आज भी उस गांव में रहते हैं। 'घाघ' की कृषि विषयक सूक्तियां बड़ी प्रसिद्ध हैं। हरियाना मे 'घाघ' की अनूठी अनुभूतियो की द्योतक एक कहावत 'पुराना घाघ' अत्यन्त अनुभवी अभी तक चल रही है। परिणाम स्वरूप हम कह सकते हैं कि घाघ बड़ा ही पडित और अनुभवी व्यक्ति था।

भड्डरी और डाक कौन थे, कहां और कब हुए आदि बातों का कुछ पता नहीं चलता। कुछ लोगों का अनुमान है कि भड्डरी डाक की पत्नी थी। भड्डरी शब्द के स्त्रीलिङ्गान्त होने से इस अनुमान को बल मिलता है। "कहथि डाक सुनु भड्डरी रानी।" इस वाक्य से तो सुस्पष्ट है कि भड्डरी डाक की पत्नी थी। गुजराती लोकगीतों के यशस्वी अन्वेषक श्री झबेरचंद

मेघाणी ने अपने लोकसाहित्य के 'कंठस्थ-ऋतुगीतों' नामक अध्याय मे गुजराती जनश्रुति के अनुसार भड्डरी को किसी ज्योतिषी की पुत्री बतलाया है। ब्रज मे भड्डरी एक जाति है जो महाब्राह्मण का कार्य करती है और ज्योतिष से फलादेश बताती है। भड्डरी लोग 'भड्डरी' की सूक्तियों के आधार पर वर्ष का भविष्य बतलाते हैं। राजपुताने और हरियाने में 'भड्डली' नाम की स्त्री की कहावतें मिलती हैं। हरियाने की सूक्तियों में 'भड्डली' के साथ सहदेव, शादी, सैदा जो सहदेव के ही तद्भव रूप हैं, मिलते हैं। संभवतः भड्डली नामक स्त्री सहदेव की पत्नी हो। जहां सहदेव ने उक्ति कही है वहा तो सर्वत्र सहदेव और भड्डली का नाम आया है अन्यत्र कोई नाम नहीं है। 'सरूपा' तो कोई आधुनिक सूक्तिकार ज्ञात होते हैं।

घाघ और भड्डली जनकवि थे। उन्होंने अपने सुख सौविध्य की चिंता न कर जन-साधारण की बोली मे मौसमी ज्ञान की बातें सूक्ति रूप में कही हैं। परन्तु खेद है कि उनकी सूक्तियों की कोई लिपिबद्ध पुस्तक नहीं मिलती। उनका आसन किसान का कंठ है। आज का वैज्ञानिक घाघ व भड्डरी की सूक्तियों के फल की यथार्थता पर आपत्ति कर सकता है परन्तु इन लोगो ने जनता को मौसम की जानकारी उस युग में कराई है जब इस देश मे आज की भांति अन्तरिक्ष विज्ञान के केन्द्र न थे। जनता इन्हीं सूक्तियो के आधार पर कृषि-कर्म का निर्वाह करती थी।

हरियाने को इन्द्र की कृपा का लव भी प्राप्त नहीं हुआ है। अतः पानी की बूंद को तरसनेवाले हरियाने के लिए तो इन ऋषियों की वाणी सचमुच वेदवाक्य बन गई है। हरियाने की जनश्रुति है कि 'घाघा' ने छत्तीस प्रकार के चूतिया (मूरख) बताये हैं और उन मूर्खों को 'किं कर्म किम कर्मेति' का उपदेश दिया है अर्थात् अवांछनीय बातों के छोड़ने के लिए कहा है :—

> **पहर खड़ाऊ हलणै जोतै सुत्तण[1] पहर खालस्वै।**
> **कह घाघा जी तीन चूतिया (मूरख) सिर पै बोझ अर गावै॥**

अथवा,

> **नौकर सेत्ती मता उपावै, घर तिरिया की चालै सीख।**
> **कह घाघा जी तीन चूतिया, गांव गोरवे[2] वोवै ईख॥**

महाकवि घाघ का कहना है कि वे तीन पुरुष मूर्ख हैं। (क) जो खड़ाऊ (पादुका) पहनकर हल चलाते हैं, (ख) पाजामा पहनकर जो नलाई करते

---

१. चुस्त पाजामा। २. ग्राम के समीप।

हैं तथा (ग) बोझ सिर पर रखकर जो गाते हैं। खड़ाऊ पहनकर हल चलाने से पैर टूटने का भय है, पाजामा पहनकर नलाने से बलतोड़ अधिक होते हैं तथा बोझ के नीचे गाने से फेफड़ों पर अधिक आघात पहुँचता है। अतः ये तीनो कार्य अवांछनीय हैं। दूसरी सूक्ति भी इसी प्रकार तीन बातो का निषेध करती है जो पुरुष अपने भृत्य (सेवक) से सम्मति लेते हैं, स्त्री की सीख मानते हैं और गॉव के निकट ईख बोते हैं वे मूर्ख व्यक्ति हैं। गॉव के समीप ईख बोने से हानि अधिक होती है।

घर तिरिया से लेक्खो मांगै, भू सुकड़ाई सोवै।
कह घाघा जी तीन चूतिया, उधल गई नै रोवै।

इसके द्वारा वे तीन मूर्ख कहे गये हैं जो पत्नी से हिसाब मांगते हैं, विपुला पृथ्वी पर, सुकड़कर सोते हैं और जो भगी हुई स्त्री का शोक करते हैं।

सहदेव और भडुली की सूक्तियां प्रायः बर्षा विषयक हैं :—

चिउंटी ले अंडे चली, चिडिया नहावे धूल।
शादी कहे भाडली बरखा हो भरपूर॥

सहदेव का विचार है यदि चींटियां अन्डे लेकर चलें, चिड़ियां धूल में लोटें तो समझ लीजिए वर्षा अच्छी होगी।

सहदेव कहे सुन भाडली, जेठ गलिया मत रो।
जो सावन पंचक गले, नाहिज संवत हो॥

इस उक्ति से सहदेव भाडली को समझाते हैं कि जेठ में पचक गलने की चिंता मत करो। यदि सावन में पंचक गल जायें तो संवत् बुरा होगा। पचक पांच अनिष्ट नक्षत्र होते हैं। जिन दिनों वे आते हैं वे दिन पचक कहलाते हैं।

पड़वा चले सबादली, पछुवा चलै नरोल[1]
सहदेव कहे भाडली, बरखा गई कित ओड़॥

यदि पूर्वी पवन चले और बादल हों, पश्चिमी वायु के चलने पर बादल न रहे तो निश्चय समझो वर्षा नहीं होगी। एक और उदाहरण है :—

सुक्कर वाली बादली, रहै शनीचर छाय।
कह सहदेव सुन भाजली, बिना बरसे न जाय॥

यदि शुक्रवार को बादल हों और वे शनिवार तक छाये रहें तो निश्चय

---

१. बिना बादल के, रिक्त।

वर्षा समझो। यहाँ पर भाडली के स्थान पर 'भाजली' शब्द आया है। ऐसी परिवृति लोकसाहित्य मे संभव है।

ऋतुओं में असामयिक परिवर्तन भी अनिष्टकर होते हैं, इसी बात को बतलाते हुए एक उक्ति है :—

माघ मचका जेठ सिआल, साढ पड़व बाल।
सैदा कहै भाजली, बरखा गई पाताल॥

यदि माघ मे गर्मी और जेठ मे शीत पड़े, आषाढ मे पूर्वी पवन चले तो निश्चय है कि वर्षा नहीं होगी। इस दोहे में सिआल (सीत)' पड़वा (पुरवा) और सैदा (सहदेव) शब्द देखने योग्य हैं जो भाषा वैज्ञानिक के लिए बड़े काम के हैं।

ऊपर कही उक्तियो के अतिरिक्त, इन महापुरुषों की सैकड़ों कृति, खेत, बीज और बैल विषयक उक्तियां प्रचलित हैं जिनमें नाम की पुट नहीं है। हमने लोकोक्तियों के खंड मे कृषिपरक भाग मे उन्हें दिया है।

ङ. खेलों में वाणी विलास

अब तक जिन रूढि, लोकोक्ति, प्रहेलिका एवं सूक्ति आदि का वर्णन हुआ है, उनके अतिरिक्त गांवों में कुछ और भी उक्तियां मिलती हैं जिन्हें ग्रामीण बालक तथा युवक खेलो में प्रयोग करते हैं। वह वाणी-विलास साहित्य संज्ञा का अधिकारी तो नहीं है परन्तु फिर भी उसका अस्तित्व ग्रामीण वातावरण में अपना एक अलग महत्व रखता है।

गांवों मे जितने खेल खेले जाते हैं उन्हें हम दो रूपों में विभाजित कर सकते हैं—एक, बड़ों के, दूसरे, शिशुओं के। बडों के अर्थात् युवकों के खेल भी मौसमवार होते हैं। हरियानी ग्रामीण युवक शरत्काल में—कबड्डी, आतीलो पातीलो, डका विती (गिल्ली डंडा), खद्दा खुलिया, हूल, ढाई ला (आंखमिचौनी), कुंडल और लिल्ली घोड़ा आदि से अपना मनोरंजन करते हैं और शरीर को पुष्ट बनाते हैं। वे ही युवक ग्रीष्मकाल मे 'कायांझिरणी' चुखल, कोलड़ा जमालशाई, और काकड़ बेलमतीरा आदि खेलते हैं। पावस ऋतु मे नूणपाला, नौकंटू, बारहकटू, बोड़ा कुआ, फौरा कुदाई (लांग जम्प), कीड़ी की धार और कोल्हू आदि खेल युवक समाज के प्रिय खेल हैं।[1]

१. इन खेलों के नामों आदि मे इलाके-इलाके में भेद मिलेगा। हमने यहां उन खेलों के नाम मात्र दिये हैं जो हरियाना प्रदेश में प्रायः सभी स्थानों पर खेले जाते हैं। इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों प्रकार के खेल मिलते हैं।

इन खेलों में जो युवक समाज में प्रचलित हैं कुछ ही खेलो में वाणी का प्रयोग होता है वरन् शक्ति एवं बुद्धि-कौशल ही सहायक होते हैं। कबड्डी, कोलड़ा जमालशाई और 'आतीलो-पातीलो' ही ऐसे खेल हैं जिनमें वाणी का विलास दिखलाई पड़ता है।

'कबड्डी' गांव का प्रिय खेल है। हरियाना प्रदेश में तो यह खेल यहां का राष्ट्रीय खेल माना जाता है। यह खेल दो दलों मे बॅटकर खेला जाता है प्रत्येक दल अपनी शक्ति एवं बुद्धि-कौशल से विपक्षी दल पर विजय प्राप्त करना चाहता है। इस खेल की विशेषता दर्शक को प्रारम्भ में ही प्रतीत हो जाती है। युवक जब दो दल बनाते हैं तो पहिले दो खुटे (कैप्टेन) चुन लिए जाते हैं। खेल की इच्छा रखनेवाले शेष युवक दो-दो की जोड़ी में उनके पास आते हैं और उन्हें अपना परिचय देते हैं। यह परिचयात्मक वाक्य बड़ा विलक्षण होता है। इसे सुनकर खुटों में से प्रत्येक अपने निर्णयानुसार पराक्रमी खिलाड़ी को छांट लेना चाहता है। ये वाक्य कई प्रकार के होते हैं। उदाहरण :—

आड़ तोड़ बेड़ी आई, तोड़ कै बगाई[1]।
कोई ले लो सूरज कोई ले लो चांद।

बस, इस प्रकार सब खिलाड़ी दो दलों मे विभक्त हो जाते हैं और खेल आरम्भ हो जाता है। इस खेल में 'महुड़्ड़' या 'कबड्डी कबड्डी' आदि छोटे-छोटे वाक्य बराबर बोले जाते हैं।

कोलड़ा जमालशाई या कमालशाई :-एक दूसरा खेल है। इसमें खिलाड़ी गोलाकार रूप में बैठ जाते हैं। एक खिलाड़ी कोलड़ा लेकर उनके पीछे घूमता है और उसे रहस्यमय ढग से किसी अन्य खिलाड़ी के पीठ पीछे रखना चाहता है। इस क्रिया के सम्पादन करते हुए वह खिलाड़ियो को सचेत करता जाता है :—

कोरड़ा कमाल शाई।
पीछे देखै उसी ने मार खाई॥

यह पाठ भी सुनने को मिलता है :—

कोलड़ा कमालशाही,
डिब्बे मे तमाखू मैं तेरा बाबू।[2]

'आतीलो पातीलो'—इस खेल को खेलते हुए खिलाड़ी रात्रि में छिप

१. फेंकना। २. बाप, पिता।

जाते हैं और पोत देनेवाला लड़का उनको ढूंढता है । खोज न मिलने पर छिपे लड़के "आतीलो पातीलो चम्पा फूल पहाड़ियो था बाड़ियो कहकर अपना स्थान व्यक्त करते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। पिदनेवाला लडका जिसको खोज कर पकड़ लेता है फिर वह पोत देता है और यह खेल चलता रहता है ।

दूसरे प्रकार के खेल शिशुओ के हैं जिनमे प्रायः सभी में वाणी का प्रयोग होता है । हमने नीचे कुछ प्रचलित शिशु-छंद खेलों का दिया है ।

शिशु जिसकी अवस्था अभी ५ वर्ष तक की है और जिसका संसार घर के अजिर और अधिक से अधिक मुहल्ला तक सीमित है उसके 'मनोरंजन का तथा उसके समय को व्यस्त रखने का एकमात्र साधन खेल होता है। इस आयु में दौड़-धूप कें घर के बाहर के मैदानी खेलो की अपेक्षा वे खेल अधिक उपयोगी होते हैं जो अंतरंगी खेलों के (इन्डोर गेम्स) नाम से पुकारे जाते हैं और जिनमे शिशु की अन्यमनस्कता को दूर करने तथा उसके रोने को बन्द करने की शक्ति होती है। इन खेलो को आवश्यकतानुसार ग्रामीण का बुद्धि कौशल जन्म देता रहता है । ये खेल वाणियो का सहारा लेकर चलते हैं अथवा यों कह लीजिए कि इस प्रकार के शिशु खेलों मे वाणी का विलास देखने को मिलता है । मुख्यतः निम्न खेल हैं ।

'आटड़े बाटड़े या आट्टे बाट्टे :—**खिलानेवाला शिशु को खिलाते समय बालक का एक हाथ अपने हाथ में इस प्रकार रखता है कि बालक की हथेली ऊपर को रहे । फिर दूसरे हाथ से बालक के उस हाथ पर ताली पटकाता हुआ कहता है :—**

आटड़े बाटड़े कान के काटड़े,
भूरा झोट्टा देखा हो ते बताइयो ॥

इन शब्दों के उच्चारण करते-करते खिलाने वाला अपनी दो अंगुलियों से पैरों की तरह बालक की भुजा पर चलता हुआ कहता है "या पैड़ वा पैड़ यू गया यू गया" और भूजमूल तक पहुँच जाता है फिर कुची मे गुदगुदाकर कहता है "यू पाया, यू पाया, यू पाया ।" बालक खिलखिलाकर हंस पड़ता है ।

इसका पाठान्तर यह है :—

आठ्टे बाट्टे दही चटाक्के,
गोरी गाने जाये बाच्छे ।
या पागी, या पागी, या पागी ।

इस पाठ मे चरमबिन्दु (क्लाइमैक्स) शीघ्र ही आ पहुँचा है। इसका एक रूपान्तर और भी मिलता है :—

बच्चे की हथेली के बीच में उंगली गोलाकार रूप में घुमाते जाते हैं और निम्न प्रकार से पद बोलते जाते हैं। फिर बगल में गुलगुली करते हैं। बच्चा खिलखिला उठता है। पाठ यह है :—

गोरी गाय ब्याई है,
गोरी वाच्छो ल्याई है,
न्याणो तुड़ाई है,
पारी, फुड़ाई है,
खोजां, खोजां,
यह लादी रे, यह लादी।

'भूत्ती चढ़ाणा' :—एक बालक बैठ जाता है। दूसरा उसकी पीठ को थपथपाता है और यह बोलता जाता है।

काली कतरनी काला केस,
चढ चढ भूत्ती मगरां देस ॥

कुछ देर तक इस प्रक्रिया से उस बालक को भूतली चढ़ जाती है। वह अचेतन सा होकर गिर पड़ता है। खिलानेवाले लड़के उसे चिढ़ाते हुए इधर-उधर भागते हैं। भूतग्रस्त लड़का किसी दूसरे लड़के को छूने के लिए दौड़ता है। जो छू लिया जाता है। उस पर फिर भूती चढ़ाई जाती है और खेल आगे बढ़ता है।

'मकड़ी चढ़ाना' :— यह खेल उपरोक्त खेल से मिलता-जुलता है। वर्णन उसी प्रकार है। वचन ये हैं :—

चढ चढ मकड़ी महादेराणी,
आवेगा सक्का देगा धक्का।
आवेगी जाळ देगी गाळ।

ऐसा कहते-कहते खिलानेवाले उसे खूब हिलाते और झकझोरते हैं। फिर पूछते हैं "खीर खागो कै रावड़ी" यदि वह खीर कहता है तो लड़के उसे धपियाते[1] हैं और यदि राबड़ी कहता है तो समझा जाता है कि मकड़ी चढ़ गई है और लड़का बावला हो गया है। लड़के भाग जाते हैं। बावला बना लड़का उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करता है। जिसे छू लेता है उसे पोत देना होता है। खेल आगे बढ़ता है।

---

१. पीटते हैं।

'कुकड़म कुकड़ा' :—एक लड़का अपने सिर पर हाथ रखकर बैठ जाता है। दूसरे लड़के मुट्ठी बांध कर खड़े हो जाते हैं और यह वाणी बोलते जाते हैं :—

कुकड़म कुकड़ा कितना बोझ।
एक पली तार ले सौमण बोझ॥

इस प्रकार वचन कहकर एक-एक मुट्ठी हटाते जाते हैं। अत में जब सब मुट्ठिया हटा ली जा चुकती हैं तो उसके हाथ पीछे को खींच लेते हैं और उसे गिरा देते हैं।

'खाजी लंगड़ा' :—खेलनेवाले सबसे बड़े बालक को चुनते हैं और खुँटा बनाते हैं। उससे छोटा लड़का उस खुटे को कसकर पेट से पकड़ता है। फिर उससे छोटा लड़का दूसरे के पेट को इसी प्रकार पकडता है। फिर उससे छोटा, फिर उससे छोटा अपने से अगले के पेट को कसकर पकड़ लेते हैं। इस प्रकार ये पंक्तिबद्ध हो जाते हैं और बैठ जाते हैं। तब एक लंगड़ा खाजो खखारता मठारता आता है। खुंटा उससे पूछता है कौन? उत्तर मिलता है—'खाजी लंगड़ा' फिर खाजी लंगड़ा जिज्ञासा रूप से पूछता है, "राजा जी के बाग में के बोया सैं?" उत्तर मिलता है, "काकड़ी खरबूजा बैगण तोड़िया की छा।" खाजी लंगड़ा पूछता है, "पक्की या कच्ची?" और सब लड़कों के टोले मार मार कर देखता है, और फिर पंक्ति के अंत के सबसे छोटे लड़के के पैर पकड़कर खींचता जाता है (अर्थात्) उसे अपहरण करने का अभिनय करता जाता है। जिसे वह अपहरण कर लेता है। वह खाजी लंगड़े की पार्टी में सम्मिलित होता जाता है।

'ठेकरी' :—यह खेल शरत्काल में धूप में खेला जाता है। लड़के कुंडलाकार बैठ जाते हैं। किसी एक के हाथ मे एक कांकरी दे दी जाती है। एक लड़का कुंडल के बीच में बैठता है। वह राजा भोज होता है। तब एक लड़का गोल कुंडल में से बोलता है :—

सरण गरण की ठेकरी, सरणाट्टा करती जा।
कहियो राजा भोज नै मो के जिनावर जा॥

इस बीच में वह कंकड़ी आगे-पीछे बढ़ा दी जाती है। इस प्रश्न को सुनकर राजा भोज कंकड़ीवाले लड़के को पहचानने की चेष्टा करता है। यदि पहचान जाये तो ठीक है नहीं तो यही प्रश्न दुबारा किया जाता है। यदि राजा भोज सात बार उस लड़के को न पहचान सके तो राजा भोज को झोट्टा बनाया जाता है। एक हाथ और एक पाव आपस मे बांध दिये जाते हैं।

उसे एक फरड़ा दे दिया जाता है। तब कोई बालक राजा के वजीर से पूछता है, "कितने रपैये लेगा इस झोट्ट कै : "यदि उत्तर मिले अस्सी तो सारे बालक कह उठते हैं "तेरे सिर मे मारूं कस्सी।" बालक भाग जाते हैं। झोटा उस फरड़े से उन्हे छूने की कोशिश करता है जो छू लिया जाता है, वह राजा भोज बनता है और खेल का दूसरा दौर आरभ हो जाता है।

"बुढ़िया के टोह् वै" :—यह एक संवादयुक्त खेल है। एक बालक रेत में अपने हाथ को इस प्रकार फेरता है जैसे कुछ ढूंढ़ रहा हो। खिलाने-वाला उससे पूछता है :—

> **बुढिया री बुढ़िया के टोह वै ?**
> **सुई टोहूं सूं।**
> **सुई का के करैगी ?**
> **कोथला सीम्यूगी।**
> **कोथला में के घाल्लैगी ?**
> **रपय्ये घल्लूंगी।**
> **रपय्यां का के करैगी ?**
> **भैंस ल्याऊंगी।**
> **भैंस का के करैगी ?**
> **दूध पीऊगी।**
> **मूत पीले री मूत पी ले री।**

कहकर सब भाग जाते हैं।

बालक को पैरों पर झुलाने का—झुलाने वाला खाट आदि ऊँचे स्थान पर बैठकर अपने पैरों को मिलाकर उन पर बालक को बैठा लेता है। फिर पैरों से आगे पीछे करके झुलाता जाता है और यह बोलता जाता है :—

> गोर गडी भई गोर गडी,
> बन्ना छोट्टा बहू बडी।
> गोर गडी भई गोर गडी,
> सास्सू छोटी बहू बडी।
> जितणै सास्सू पाणील्यावै,
> उतणै बहू बिनौले खावै।

'महमूद का टट्टू' :—खेल में दो दल हो जाते हैं। एक दल के सब लड़के घोड़ी बनते हैं और झुक कर खड़े हो जाते हैं। दूसरे

दल के सब सवार बनते हैं। उन सवारों में से एक सवार अपनी घोड़ी की आख मींचकर और अपने हाथ की उगलियों मे से कुछ को उठाकर पूछता है :—

ईन कला पर बीन कला,
महमूद के टट्टू के यारो ?

उत्तर सही होने पर घोड़ी सवार और सवार घोड़ी बन जाते हैं। गलत होने पर वह सवार उस बतलाई हुई संख्या को उच्चारण करता हुआ कहता है :—

"चार (एक, दो, तीन आदि) का मार्‌या टेकड़ा।
अगली घोड़ी चढ यारो।"

अगली घोड़ी पर जाकर भी इसी प्रकार के प्रश्न होते हैं।

हल्दीघाटी :—यह खेल उपरोक्त खेल से मिलता-जुलता है। बस आदि का कथन भिन्न है। शेष उसी प्रकार है। आदि के वाक्य हैं :—

हल्दी घाटी जीत कै आया,
राणा जी का मान बढाया
क एक बीरो ?

उत्तर अशुद्ध होने पर उसी वचन का उच्चारण करता है जो उपरोक्त खेल के उत्तरार्द्ध में दिया है और अगली घोड़ी पर बदल जाता है।

लोरियां :—जब बच्चा रोता है तो उसके मनोविनोदार्थ जो सुखद शब्दावली उच्चारण की जाती है और जिनमें बच्चे को निद्रानिमग्न करने की क्षमता होती है लोरी कहलाती है। माता के भावना पूर्ण हृदय में लोरियों का रत्नाकर हिलोरें लेता रहता है।

दुर[1] जाई रे कुत्ता, दुर जाई रे कुत्ता,
बाणिये की हटड़ी पाड़ी कुत्ता।
बाणियो बूड्ढा डोकरो,
मेरे बेट्टे नै ल्यावै गुड़ खोपरो[2] ॥

बेट्टे शब्द के स्थान पर नाम भी ले लिया जाता है जो अधिक प्रभावशाली होता है। यथा :—

---

१. भागना। २. गोला।

मेरे लीलू नै ल्यावै गुड़ खोपरो, आदि।

इन लोरियो मे शब्द की ध्वनि भी बच्चे के ध्यान को आकर्षित करने में समर्थ होती है। ऐसी ही एक लोरी नीचे दी जाती है :—

झल्लड़ मल्लड़ दूध बिलोवै
जाटणी का छोरा रोवै।
रोवै से तो रोवण दे,
मन्नै दूध विलोवण दे॥ आदि।

यहां 'झल्लड़ मल्लड़' शब्द की प्रथम ध्वनि ही बच्चे पर प्रभाव डालने में समर्थ होती है।

च. फुटकर :—प्रकीर्ण साहित्य का विवेचन समाप्त करने से पूर्व घरों में बूढली स्त्रियों के "आशीर्वचांसि" भी देख लेना असाम्प्रतं न होगा। घर में नवागत बधुएँ प्रातः सायं अपनी सास, जेठानी, दादस आदि के चरणस्पर्श करती हैं जिसे ग्रामीण भाषा में 'पांपड़णा' कहते हैं। तब वे अभिवंद्याएं आशीर्वाद देती हैं। हरियाने की वृद्धाएं अपनी बधुओं को इस प्रकार शुभाशीः देती हैं :—

बेब्बे बहू! तू बूढ सुहागण हो, तेरे बेट्टा हो,
तेरे भाई भतीजे जीवें।

अथवा

बेब्बे बहू! तेरा बेट्टा जीवो, तेरे नैण पराण बणे रहें,
तेरे भाई भतीज्जे जीवें।

यह दूसरा आशीर्वाद विधवा स्त्रियों के लिए है। उसके लिए 'बूढ सुहागण' नहीं कहा जाता। अन्यथा यह अपमानजनक होता है और चरित्र पर आक्षेप करता है। इन आशीषों मे उदात्त भावना भरी होती है :—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुखभाग्भवेत्॥

वास्तव में लोक प्रतिभा का कोई सा अंग और अंश देख लीजिए उसमें लोकहित की भावना ओत-प्रोत मिलेगी।

किसान भी एक साधु है। वह अपने खेत, क्यार पर प्रातः-सायं, रामनाम की रट लगाये रहता है। कुआ चलाते समय भी वह इस गुरुमंत्र को नहीं

भूलता। वह कुछ न कुछ उच्चारण करता रहता है जिसे 'बारा' कहते हैं। जब चड़स भर जाता है तो वह कीलिया[1] को सचेत करता है।

"सहार[2] ले रे जल जा भर्‌यो।"

चरस के ऊपर आने पर वह प्रार्थना करता है—"कीलिया हो। लिआई ऐ रे राम।" इस प्रकार 'एक पंथ दो काज' हो जाते हैं। रामनाम का जप और श्रम विनोदन का कार्य।

यह संक्षेप से हरियानी प्रकीर्ण साहित्य की रूप रेखा है। जिसके अवलेह में पाठक को षटरस मिलते हैं।

---

१. कीली लगानेवाला। २. खींचले।

हरियानी लोकसाहित्य में प्रादेशिक संस्कृति

हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य का सामान्य विस्तृत अध्ययन कर लेनें के उपरान्त अब हम हरियाना की प्रादेशिक संस्कृति पर विचार करते हैं। जैसा कि विगत अध्यायों में दिखलाया गया है, हरियाना भारत के उन प्रदेशों मे से एक है जहाँ की संस्कृति ने भारतीय संस्कृति की समष्टि में एक गौरवशाली स्थान प्राप्त किया है। वरेण्य देश भारत के नदी-नद, पर्वत उपत्यकाएँ, गिरि गह्वर, विस्तृत मैदान एवं षड्ऋतुओं की परिक्रमा, यहाँ की संस्कृति के प्रधान आधार हैं। इन्हीं के प्रांगण मे आदि मानव ने उन तत्वों की खोज की थी जो मानव की आध्यात्मिक उन्नति के मूल हैं।

विश्व के अणु-अणु में आत्मीयता की भावना ही संस्कृति का उज्ज्वलतम पक्ष है। यही भारतीय संस्कृत के मूलमन्त्र—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुखभाग्भवेत्॥"—के रूप

में संसार के सामने प्रकाश-स्तम्भ सदृश खड़ा है। यही वाणी जब हम हरियाने के साधारण पुरुष के मुख से सुनते हैं:—"हे भगवान्! खैर राखियो, सब का भला करियो।" तो गद्गद् हो जाना पड़ता है कितना उच्च, पावन एवं सर्वजनहितकारी भाव हैं। इस अध्याय में हम हरियाना प्रदेश में लोकसाहित्य में इसी प्रादेशिक संस्कृति का रूप देखेंगे :—

एक किंवदन्ती है, जिसे हम पीछे भी दे चुके हैं, "देसां मे देस हरियाणा, जित दूध दही का खाणा।" देशों में हरियाना देश विशेष उल्लेखनीय है, जहाँ का भोजन दूध और दही है।

इस प्रसंग मे उत्तर वाक्य बड़ा सार्थक है। इससे दो अर्थ व्यक्त होते हैं। एक—हरियाणा प्रदेश का पशुधन बड़ा समुन्नत है। यहाँ की गौओ की दूध देने की क्षमता विश्व विश्रुत है। हरियाने की गौ को यदि दूध की खान कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। इन्हीं पयस्विनी गौओं का दूध-दही खाकर हरियाना के नवयुवक बलबुद्धि सौन्दर्य में अद्वितीय हैं। लोगों का कहना है कि दूध-दही के इस प्रदेश की महिमा ने भगवान् कृष्ण तक को इधर आकर्षित किया था। दूध-दही की वह प्रचुरता 'माखनचोर' के दिल मे बस गई होगी। आज भी ऐसा विश्वास है कि गौ जब उर्द्धमुख होकर रंभाती है तो वह उसी कृष्ण की पुकार करती है। दूसरे—'दूध-दही का खाणा'

भारतीय संस्कृति के एक बडे महत्वपूर्ण एवं उज्ज्वल पक्ष की ओर लक्ष्य करता है। भारतीय सस्कृति में दुग्धाहार, फलाहार जैसे सात्विक भोजन की महत्ता बतलाई गई है। फिर भला गो-दुग्ध का तो कहना ही क्या है? वह गौ जिसमे सर्वदेव बिराजते हैं, उसका दूध आर्य सस्कृति के लिए क्यों न अनुकूल हो। अतः इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि यह प्रदेश आर्य संस्कृति का आदि स्थल रहा है।

आज भी यहॉ की भोली-भाली जनता में आधुनिक सभ्यता के वे चिह्न नहीं आ पाये हैं जो मांस, मदिरादि भक्षण को सभ्यता का प्रतीक मानते हैं। ये लोग आज भी वैसा ही ऋषि सुलभ जीवन व्यतीत करते हैं जैसा प्राचीन काल मे आरण्यक लोग किया करते थे। यह एक उल्लेखनीय बात है कि मुसलमानो के सबसे अधिक सम्पर्क मे आनेवाले ये हरियानी निवासी आज भी मुसलमानी सभ्यता से अधिकांश मे दूर हैं। इनका जीवन शुद्ध और सात्विक है।

क. हरियानी संत सम्प्रदाय

इस जनपद की गौरवगाथा को यहॉ के अनेक साधु-महात्माओं ने भी दूर-दूर तक फैलाया है। मुस्लिम धर्म एव संस्कृति के प्रवाह को रोकने के लिए इन निरीह साधु-महात्माओं ने जनता का नेतृत्व किया। इस प्रदेश में यात्रा करनेवाले व्यक्ति को गॉव-गॉव में कोई न कोई समाधि अवश्य मिलेगी जिसका एक न एक साधु के साथ सम्बन्ध रहा है। इन्हीं स्थानों पर ग्रामीण भक्तजन प्रातःकाल तथा संध्या मे एकत्र हो उन साधुओं के गीत गाते हैं और कीर्तन करते हैं। इस प्रदेश मे वेदान्ती और निर्गुणपथी अनेक साधु हुए हैं। गोरखपंथ की कीर्ति पताका आज भी 'बोहर अस्तल' पर फहरा रही है और एक तीर्थ स्थान के सदृश कई शताब्दियों के उपरान्त भी सिद्ध जोगियों के प्रभाव को अक्षुण्ण बनाए हुए है। छुड़ानी में, एक ओर यदि गरीबदास अपनी अमर वाणियों द्वारा अनुयायियों का हृत्संमोहन कर रहे हैं तो किठौली के महाराज निह्चलदास की सस्कृतज्ञता तथा वेदान्तवादिता का किस विद्वान को ज्ञान नहीं है। दूबलधन माजरा के महाराज नित्यान्द की लोक-पावन वाणियों के अभाव मे कौन व्यक्ति नहीं तड़पता? महम के महमी मुस्लमान फकीरों की सिद्धि और फक्कडपन के गीत किसने नहीं सुने? महामती नानगी के सीधे तथा सरल पदों के रसास्वादन से वचित रह कौन अपने को अभागा नहीं कहता? सहजोबाई के "चलणा है रहणा नहीं, चलना बिस्वे बीस। सहजो तनिक सुहाग पर, कौण गुंदावै सीस॥" आदि शब्द संसार

की असारता को प्रकट करते हैं। किंबहुना, इस प्रदेश के अणु-अणु में ब्रह्म, वेद, वेदान्त, सिद्ध और साध की सुगन्धी भरी पड़ी है। जहाँ तक साधुना, आचार की उच्चता, तथा जीवन की श्रेष्ठता का सम्बन्ध है यह प्रदेश ब्रजमंडल और काशीपुरी के समान ही है। नाना सम्प्रदायों एवं अनेक मतमतान्तरोंवाले इस प्रदेश में एक लोकधर्म के दर्शन होंगे। इस धर्म के ताने बाने हैं सरलता, सत्यता और साधुता। इन महात्माओं का इस प्रदेश में इतना प्रभाव है कि छोटे-बड़े सभी लोगों को इनकी वाणियाँ कंठस्थ हैं। हम यहाँ बाबा गरीब दास जी की एक वाणी आदर्श रूप में उद्धृत करते हैं:—

चितावनी के अंग मे से

गरीब पानी की जलबूँद से, साज बनाया जीव।
अन्दर बहुत अंदेश था, बाहर बिसरिया पीव॥
गरीब पानी की जलबूंद से साज बनाया साच।
राखन हारा राखिया जठराग्नि की आंच॥
गरीब पानी की जलबून्द से, साथ बनाया साच।
कौडी बदले जात है, कंचन साटे कांच॥
गरीब धरणीधर जान्या नहीं, जिन सिरज्या तनसाज।
चेत सकै तै चेतिये, बिगर जायगा काज॥
गरीब आध घड़ी को अधघडी, आध घड़ी की आध।
साधों सेती गोष्टी, जो कीजे सो लाभ॥
गरीब अन्त समय बीतै धनी, तन मन धरै न धीर।
उस साईं कूं याद कर, जिन यह धरिया शरीर॥
गरीब भक्त हेत घर बाँधिया, माटी महल मसान।
तैं साहिब जान्या नहीं, भूल्या मूढ जहान॥
गरीब या माटी के महल मे मगन भया क्यूं मूढ।
कर साहिब की बंदगी उस साईं कूं ढूँढ॥

पिछले ७०-८० वर्ष से समाज सुधार की भावना से ओत-प्रोत आर्य धर्म—वैदिक धर्म—का प्रचार आर्य समाज के द्वारा विशेष हुआ है। जिससे इन प्राचीन मठ व मन्दिरो के प्रति उत्साह कम हो गया है। किन्तु यहाँ के शिवालय किसी भी पर्यटक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये बिना नही रह सकते। कई विद्वान हर (शिव) का स्थान मानकर ही इसे 'हरयाणा' कहना उचित समझते हैं। उनका तर्क है कि रोहतक अथवा रोहतकारण्य कार्तिकेय जी को प्रिय था। पश्चिम दिग्विजय के लिए नकुल जब खांडवप्रस्थ

से चले तो वे धन-धान्य से पूर्ण स्वामी कार्तिकेय के प्रिय प्रदेश रोहीतक में पहुँचे ।[1] इस प्रकार यह प्रदेश शिव-परम्परा में प्रिय रहा है और आज भी शिव मन्दिर शिव की महत्ता प्रकट कर रहे हैं ।

ख. हरियाना की भूमि

यमुना के खादर से पश्चिम में एक ऊंची उठी हुई भूमि है जिसे बांगड़ के नाम से पुकारा जाता है । यह पचनद और गंगा के दोआबे को पृथक् करने वाला वह ऊंचा उठा हुआ भूभाग है जो जलविभाजन (Watershed) के रूप में स्थित है । बांगड़ से पूर्व को बहनेवाली नदियां बंगाल की खाड़ी में जाती हैं और पश्चिम को बहनेवाली नदियां अरब सागर में । यह भाग वर्षा के अभाव से पीड़ित रहता है ।

१. *पानी की न्यूनता*

नदियां किसी भी देश के लिए बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं । इस दिशा में यह प्रदेश सुभग नहीं कहा जा सकता । इस भूभाग में प्रागैतिहासिक काल मे ३६० नदियां बहती बतलाई जाती हैं किन्तु आजकल उन प्राचीन एवं पवित्र नदियों में से क़ेवल दो नदियों के काठे हैं । वे वर्षा काल में बहकर यहीं अपने को विलीन कर लेती हैं । नदियो के अभाव में यहां बड़े-बड़े सर-सरोवर बनाने की ओर जनता का विशेष ध्यान है । तालाब एव बावड़ी बनाने का यहां विशेष महत्व है । रामरा, पिंडारा और कुरुक्षेत्र[2] के पावन सरोवरों में आज भी सहस्त्रशः यात्री सुदूर भारत के कोने-कोने से आकर स्नान करते हैं । इन्हीं सरोवरों के किनारे मेले भी लगते हैं । एक उक्ति के अनुसार किसी पुरुष की प्रसिद्धि, तालाब खुदवाने से तथा बाग लगवाने से, अधिक होती है । इनमें प्रथम जल का आशय तथा बागबगीचा वर्षा का कारण है ।

इस प्रदेश का एक नाम हरिबन रहा है । यह हम पीछे स्पष्ट कर आये हैं । इसके कुछ अवशेष आज भी दिखलाई पड़ते हैं । हरियाना के प्रायः सभी ग्रामों के आसपास बड़ी-बड़ी 'बनियां' छूटी हुई हैं जिनमें पीलु वृक्ष विशेष रूप से पाये जाते हैं । प्राचीन किंवदन्ती तथा काव्यों में जांगल देश के

---

१. ततोबहुधनरम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् ।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहीतकमुपाद्रवत् ॥ सभापर्व अध्याय ३५ श्लोक ४

२. रामरा और पिंडारा दो प्रसिद्ध तीर्थस्थान रियासत जींद में हैं । कुरुक्षेत्र तो एक इतिहास प्रसिद्ध स्थान है ।

लिए कहा गया है कि वहां पीलू और कैर के वृक्ष अधिक संख्या में होते हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध 'ढोलामारू' किस्से में मारवाड़ का जो वर्णन मालवणी करती है वह पर्याप्त रूप में बांगड़ प्रदेश पर भी घटता है। मालवणी के वचन देखिए :—

"बालुउं बाबा देसड़ड, पांणी जिहां कुवांह।
आधीरात कुहबकड़ा, जउं मांणसां मुवांह॥"

बाबा! ऐसा देस जलादूं जहां पानी गहरे कुओं में ही होता है, जिसे निकालते हुए लोग आधीरात से चिल्लाने लगते हैं :—

मारू! थांकण देसड़इ एक न भाजइ रिड्ड,
ऊंचालुडक अबरसणउ, कर फाकड़कर तिड्ड।

मारू! तुम्हारे देश में एक भी दुख दूर नहीं होता है, कभी अकाल के मारे दूसरे देशों को भागना, कभी अनावृष्टि और कभी टिड्डियों का आक्रमण, एक न एक आफत लगी ही रहती है :—

जिणभुंइ पन्नग पीमणां, कैर कंटाला रूख,
आके फोगे छांहड़ी, हूं छां भांजइ भूख[1]।

जिस भूमि मे पीनेवाले सांप हैं, करील और कटेली ही रुख हैं, जहां आक और फोग के पेड़ों की ही छाया है और जहां भुरट नामक कंटीली घास के बीजों को खाकर लोग भूख भगाते हैं, भला वह देश भी कोई देश है। "मारू" देश की ये विशेषताएं कई रूपों मे हरियाना प्रदेश में भी मिलती हैं। पानी की अत्यधिक कमी ने देश की दशा को बड़ा दयनीय बना दिया है। प्रकृति इस देश के प्रति सदय नहीं है। हरियाने का पिछला इतिहास यह बतलाता है कि यहां पर अनेक बार बड़े भीषण एवं लोमहर्षक अकाल पड़े हैं। एक रूप से तो हरियाना को समझने के लिए अकालों का इतिहास जानना अत्यावश्यकीय है। प्रत्येक अकाल ने जनता के मनस् पर अपनी स्मृति की रेखाएं छोड़ी हैं जिनमें दैन्य है और है परिस्थिति का एक तथ्य निरूपण। ये वे दुर्भिक्ष हैं जिन्होंने ग्रामीण जनता के इतिहास में युग निर्माण किये हैं।

२. *अकालों की भीषणता*

इन अकालो का स्वरूप दो प्रकार का होता है—अनाज का काल और चारे का काल। अकालो में सबसे भीषण एवं घातक अकाल 'चालीसा'

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० १९९४ पृष्ठ ३२२ 'ढोलामारू रा दूहा' का परिचय भाग मुंशी अजमेरी लिखित।

(१८४० संवत्) का हुआ है। उसका वर्णन 'दि राजाज आव दि पंजाब' में बड़े मार्मिक ढंग से किया गया है। इसके बाद अगले सौ वर्षों में कई अकाल तार या तांता बाधकर पड़े हैं। इनमें नबिया, सत्तरा, चौंतीसा और छप्पनिया काल की कहानियां आज भी ग्रामीण जनता को रोमांचित कर देती हैं। इन सबके गीत वर्णन आज भी उपलब्ध हैं जो श्रोता को भयावह परिस्थिति में डाल देते हैं। ये गीत एक बड़ी संख्या में मिले हैं परन्तु यहां हम केवल एक दो गंभीर एवं भीषण परिस्थिति का वर्णन करनेवाले गीत ही देगें। सं० १६१७ में जो 'सत्तरा' नामक 'काल' पड़ा उसका वर्णन एक अकाल गीत में इस प्रकार आया है :—

> **पडते अकाल जुलाहे मरे, और बिच में मरे तेली,**
> **उतरते अकाल बनिये मरे, रुपये की रहगी धेली।**
> **चणा चिरौंजी हो गया, अर गेहूं होगे दाख,**
> **सत्रह भी ऐसा बडा, चालीसा का बाप ॥**

अकाल के आरम्भ में जुलाहे मरे और मध्य में तेली मरे। अकाल की समाप्ति पर वैश्य मरे क्योकि उनके ऋण को आधा ही चुकाया गया, इस १६१७ के अकाल में चना, चिरौजी मेवा के रूप में महंगा बिका और गेहूँ अंगूर जैसा तेज हो गया। इस अकाल की भीषणता चालीसा सं० १८४० के अकाल से कई गुना अधिक थी। एक दयनीय दशा है और जीवनोपयोगी वस्तुओं का अत्यन्त अभाव है कि चना चिरौजी के भाव में तथा गेहूँ अंगूर और द्राक्षा के भाव भी न मिले। अन्नाभाव में प्राणी की क्या दशा हुई होगी—अनुमान का विषय हैं। एक दूसरे 'अकाल गीत' मे किसान की दुर्दशा का लोमहर्षक चित्र दिया गया है :—

> **जीगे बणिया मरेगे जाट,**
> **टूटगी गड्डी मरगे बैल,**
> **बे मुकलाया[1] होगी गैल।**

अकाल पड़ने पर जाट (किसान) मर गये। बनिया व्यापारी को बड़ा लाभ हुआ। किसान की गाड़ी लदते-लदते टूट गई और बेचारे बैल भी मर गये। किसान की पुत्री बिना गौना हुए अपने सासेर चली गई। इतनी आपत्ति आई कि पिता ने अपनी लाड्डो को विवश होकर गौने की प्रथा बिना किये ही पति के यहां खंदा दिया, भेज दिया। प्रथाभुक्त पिता के लिए कितना कष्टकारक यह दृश्य रहा होगा ?

---

१. गौना।

एक अगले अकाल चौतीसा में सं० १६३४ भी किसान और उसके सहयोगी साधनो पर जो विपत्ति पड़ी उसका रोमाचकारी वर्णन निम्न पंक्तियों में मिलता है :—

> एक रोटी को बैल बिका, अर पैसा बिक गया ऊंट।
> चौंतीसा नै खोदिया, भैंस गाय का बंट[1]।
> चौंतीसा नै चौंतीसा मारै, जिये वैश कसाई।
> ओह मारै तकड़ी, अर उसने छुरी चलाई॥

इस चौतीसा अकाल में बैल की कीमत एक रोटी थी और ऊँट एक पैसा में बिका। भैंस और गाय का तो वश ही समाप्त हो गया। इस चौंतीसा ने छत्तीस जातियों में से चौतीस मार दी। केवल दो जातियां वैश्य और कसाई बचीं। वैश्य अपनी तराजू से जीवित रहे और कसाई सस्ते पशु खरीदकर और उनका मांस बेचकर लाभ उठाते रहे। इन कालों की भीषणता ने सरकार की आंखे खोली और पश्चिमी जमना नहर के निकलने से अकालों की वह भयंकरता तो कतिचित् रूप में दूर हो गई किन्तु एक विस्तृत भूभाग दैव दुर्विपाक से बहुत पीछे तक पीड़ित रहा।

इन अकालों का प्रभाव इतना बढ़ा कि कन्या देने से पहिले यह सोचा जाने लगा कि जिस गांव मे कन्या दी जा रही है वह बैरानी (शुष्क) तो नहीं है। अपने जीवन-निर्वाह के लिए कृषक यह चाहता रहता था कि कुछ भूमि उन्हें नहर पर मिल जाये। एक बहन अपने भाई से कहती है कि भाई! सम्मान के लिए नहरी खेती करो—"मेरे भैय्यो नै, नहरां पै धरती बोओवै।" बहन को भय है कि बैरानी गांव का भाई एक दीर्घकाल तक कुंवारा ही न रह जाये। बहन को भाई की गृहस्थी की चिंता है।

इसके साथ यह भी जान लेना उपयुक्त होगा कि जलहीन हरियाना स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से बड़ा प्रसिद्ध प्रदेश है। यह संसार के स्वास्थप्रद देशों में से एक है। यहां के तीर जैसे सीधे, हृष्ट-पुष्ट नवयुवक अलभ्य स्वास्थ्य का आनंद लेते हैं। शौर्य एवं स्वास्थ्य के हेतु यहां के नवयुवक प्रागैतिहासिक काल से बड़े जीवट सैनिक रहे हैं। भारत की विख्यात कहानियों की हरावल में यहीं के वीर सैनिक होते थे। महाराज मनु का आदेश है कि महाकाय, शीघ्रगामी, तथा फुर्तीले कुरुक्षेत्रीय, विराट देशीय, कान्यकुब्ज और अहिच्छत्र प्रान्तीय एवं शूरसेन प्रदेशीय जनो को सेनाग्र मे रखा जाये।[2] कुरुक्षेत्र तथा पानीपत के सुविस्तृत मैदान हरियानी नवयुवकों की ओजमयी स्नायुओं में आज भी शक्ति संचार करते हैं।

१. वंश। २. मनुस्मृति, अध्याय ७, श्लोक १९३

ग. हरियाना में प्रचलित विश्वास

१. *अन्धविश्वास* (Superstitions)

हिन्दुओं के यहां श्रद्धा एवं मूढ विश्वास धार्मिक उपचार तथा प्रथाओं मे सम्मिलित किये गये हैं। यो कहा जाय कि धर्म और विश्वास एक ही वस्तु है तो कुछ सीमा तक कोई आपत्ति न होगी। हरियाने के हिन्दू जीवन में असख्य अंधविश्वास माने जाते हैं जिनमें से कृषि तथा पशु सम्बन्धी कुछ मूढ विश्वास निम्नलिखित हैं :—

जुताई हलोटिया के प्रारंभ के लिए मंगलवार वर्जित माना जाता है। बुधवार विशेषतः शुभ दिन माना जाता है। यहां एक उक्ति प्रचलित है 'बुद्ध बावनी सुक्कर लावनी' अर्थात् बुद्ध को बुआई आरम्भ करनी चाहिए और शुक्र को कटाई, कितु रोहतक जिले में हलकर्षण के लिए बुधवार अमगलकारी एव अशुभ माना जाता है। प्रत्येक पक्ष की प्रतिपद् अथवा चतुर्दशी को जुताई और बोवाई प्रारम्भ नहीं की जाती। आश्विन मास के प्रथम १५ दिन पितृपक्ष, श्राद्धपक्ष या कनागत के नाम से पुकारे जाते हैं। उन दिनो बुआई करना अहितकर माना जाता है।

खेती के पशु विशेषकर बेलो को अमावस्या के दिन काम में नहीं लाया जाता। यदि अबाध आवश्यकता उपस्थित हो तो अपराह्न में काम में ला सकते है। माघ मास मे सक्रांति (सकरांत) के दिन कुआ चलाना निषिद्ध माना जाता है। उस दिन गाड़ी अथवा हल भी नहीं चलाया जाता। पशुओं को विशिष्ट रूप से चारा दिया जाता है। लोक-विश्वास है कि जैसी अवस्था में संक्रांति बैठती है वैसी ही अवस्था वर्ष भर रहेगी।

पशु क्रय-विक्रय के लिए मंगल व शनिवार अशुभ माने जाते हैं। रोहतक जिलो में पशु-विक्रय के लिए बुधवार भी अमगलकर माना जाता है। भैंस या दुधार पशु का क्रय-विक्रय शनिवार को वर्जित माना जाता है। खरीदा हुआ पशु आदि स्वामी के घर आते ही चौथ (गोबर) करे तो उसका टीका लगा लेना शुभ माना जाता है।

जब कभी पशुरोग फैल जाता है तो फलसा (ग्रामद्वार) के बीचोबीच रज्जु में एक सराई, जिस पर काली-पीली टिकलियां बना दी जाती हैं, लटका दी जाती हैं। रस्सी को लकड़ी की कीलो से कस दिया जाता है। लोक-विश्वास है कि जो पशु इस रस्सी के नीचे से निकल जायेगा, वह रोग से मुक्त हो जायेगा। इसी प्रकार का एक विश्वास लोक-कहानियों में आता है

कि तिल और जौ बोने से आपत्ति टल जाती है। जादू की कहानियों में जादू के लिए नीला डोरा अपेक्षित होता है। गांव में जब कुआं खोदा जाता है अथवा कुआं गलाया जाता है तो हनुमान जी की मढी बनाई जाती है। विश्वास है कि ऐसा करने से समस्त कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाते हैं और पानी मीठा निकलता है[१]।

२. अन्य विश्वास तथा शकुनविचार

खेती-क्यारी सम्बन्धी मूढ विश्वासों के अतिरिक्त हरियाने की जनता अनेकानेक विश्वासों को मानने की अभ्यस्त है। उनके जीवन में तरह-तरह की रूढ़ियां स्थान बनाये हैं और जनता में धर्म की नाना व्यवस्थाएं प्रचलित हैं। इनमें से कुछेक ये हैं :—

कोई व्यक्ति जब अपने घर से बाहर यात्रा आदि पर निकलता है, अथवा व्यापार के लिए विदेश जाता है, और उस समय उसके सम्मुख यदि उपलों की हेल, ईंधन, काणा या काला ब्राह्मण अथवा सर्प आ जाये तो यह अनिष्टकर तथा अपशकुनकर माना जाता है। एक स्थान पर यह शकुन-विचार दिया गया है :—

एकला मृग, दूजा साल, झोटे चढ्या मिले गुआल।
तीन कोस लग मिल जाय तेली, तो मौत निमाणे सिर पर खेली॥

यदि यात्री को मार्ग मे एकाकी हिरन मिले, दो सर्प मिलें और भैंसे पर चढ़ा गुआला मिले तो यात्रा के शकुन अच्छे नहीं हैं। यदि उसी यात्री को तीन कोस तक तेली भी मिल जाये तो निश्चय समझिए कि उसकी मृत्यु सिर पर खेल रही है। दोष-निवृत्ति के लिए इन्हें बामाग करके निकल जाना चाहिए। इसी प्रकार किसी उद्देश्य-विशेष के लिए जाते हुए पुरुष के सम्मुख यदि हिरन और हिरनी बायें से दायें को आगा काट जायें तो सुन्दर शकुन माने जाते हैं। यदि ये ही दायें से बायें को मार्ग काट दें तो कार्यपूर्ति में विघ्न होता है। पनिहारी जलपूर्ण दो कलश लेकर यदि सामने आये तो

---

१. हरियाना प्रांत के बहुत से भाग में पानी की—विशेषकर पीने के पानी की महान् कठिनाई है। पानी पृथ्वी मे गहरे स्थान पर है और बहुधा खारा है। दुर्भाग्य की बात है कि श्रद्धा के साथ एक विपुल धनराशि व्यय करके कुआं खोदा जाये फिर भी वह खारी निकले। अतः जनता अनेकानेक देवी-देवताओं की मान्यता करके ही ऐसे कार्यों में हाथ डालती है।

शुभ शकुन माना जाता है। अनाज व मिष्टान्न लाते हुए पुरुष मिले तो भी शुभ शकुन होता है।

कौआ, मृग, सर्प और गरुड़ को शुभ शकुनकारी बतलाया गया है। परिस्थिति की विशेषता अनिवार्य है। एक दोहे में जनता के सगुन इस प्रकार कहे गये हैं :—

कागा मिरगा दाहिने बाएं बिसियर हो।
गई सम्पत्ति बहावड़ै जो गरुड़ सामने हो॥

कौआ और हिरन दक्षिणांग हो, विषधर सर्प वामांग हो, नीलकंठ (गरुड़) सम्मुख हो तो नष्ट हुआ धन भी मिल जाये। एक स्थान पर जमाता की मृत्यु के कारण भी अपशकुन ही कहे गये हैं :—

जब तों घर तैं लीकड़या गभरू सेर जुआन।
हो गया सौण कुसौण गभरू सेर जुआन॥
बाम्मै बोल्ली कोतरी, दहणै बोल्या काग।

यहां कोतरी एक पक्षी विशेष का बाँई ओर बोलना और कौवे का दाईं ओर बोलना शुभ नहीं माना गया है।

एक अन्य स्थान पर रोहिताश्व कुमार के पुष्पचयन से संबंधित गीत में अनेक अपशकुन गिनाये गये हैं :—

ठाई डालड़ी हाथ कंवर नै जिब हिरदा सा हाला,
होगे सोन कसोन कंवर के ज़िब फूल तोड़ने चाला।
रीत्ती दोघड़ लिए खड़ो थी पांच सात पनिहारी,
आगे सी नै मिला बाणिया दे रह्या खड़ी बुहारी,
दरवाजे संगीन चढ़ाए देखे खड़े सिकारी,
जान गया रोहतास कंवर हुई बात ग़जब की सारी,
दो साधू आपस में लड़ते देखा ढंग निराला।
सास बहू का जूत बाज रहा देखे खड़ी सहेली,
तोडैं तान हीजड़े नाचैं पातैं खूब हथेली,
आंख काना तांत खवे कै मिला बावना तेली,
सुनमख आन कोतरी बोल्ली सिर करड़ाई खेली,
काढ दांत फिरै कल्यारी गल चमड़े की माला।
एक बालक की लाश पास रोवै सिर पीट लुगाई,
तीन ब्राह्मन नंगे पैरां सरप काट गया राही,

खोले केस उघाड़े सिर इक विधवा नजर में आई,
बिना खता मानस नै पकड़े जां थे चार सिपाही,
हवालात की फाटक खुल रही मंदर का बंद ताला।
हंस-हंसनी की जोट भूले गई सब हेरा फेरी नै,
बकरी ऊंट की जोट मिलो रहा दाब स्यार केहरी नै,
बायां नेत्तर फडक रह्या था खतरा जान मेरी नै,
जिंदगी बचनी मुश्किल से दिया चक्कर काल बैरी नै,
धर्म पाप की हार जीत नै पाप जीत गया पाला।
रहा काटड़े जोड़ एक विकराल रूप का हाली,
हिरन लकड़गे आरगे के झोट्टे पै बैठा माली,
छोट्टे बड़े ऊंचे निच्चे पौदे काटै माली,
शर्मा जी गये बाग बीच पकड़ी कन्नेर की डाली,
लड़का चाहवे था फूल तोड़ना विषीयर लडगा काला,
होगे सौन कसौन कंवर के जिब फूल तोड़ने चाला॥

रात्रि मे काक और दिन मे शृगाल का बोलना भावी अहित का सूचक माना जाता है। रात्रि में तारों का टूटना मृत्युसूचक माना जाता है। टूटता तारा यदि दीख जाये तो देखनेवाला उसकी ओर थूक देता है जिससे दोष-निवृत्ति हो जाती है।

सगाई अथवा लगन लाने वाले नाई ब्राह्मण को नमकीन वस्तु अचार आदि नहीं खिलाई जाती। विश्वास है कि ऐसा करने से सम्बन्ध में मिठास नहीं रहती, उल्टे कड़ुवाहट आ जाती है। विवाह में जो गोरवा[1] पूजन होता है उसमें विश्वास है कि यदि बर बरनी गोरवे की मिट्टी भंडार में रख दें तो भंडार गोरवे की भांति भरा रहता है, कमी नहीं आती।

अयुग्म संख्या शुभ मानी जाती है किन्तु तीन और तेरह अशुभ। इनका सम्बन्ध मृत्यु के पीछे अशुभ दिनों से है। इस प्रकार तीन तेरह अथवा तेरह तीन व्यर्थ के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। तीन को यहाँ तक बचाया जाता है कि यदि एक पुरुष जिसके दो पत्नियां हैं वह तीसरी शादी करना चाहता है तो पहिले उसे किसी वृक्ष से शादी करनी होती है और फिर स्त्री से, जो इस प्रकार चौथी हो जाती है। पांच की संख्या सबसे शुभ मानी जाती है, सात की उससे कम। ब्राह्मण को दक्षिणा देते समय सवा सेर, अढाई सेर, पाँच सेर अथवा साढ़े सात सेर अनाज दिया जाता है या इन्हीं संख्या में रुपये।

१. कूड़ी।

दक्षिण को यम-दिशा कहा जाता है जहाँ पर मृतात्माएँ निवास करती हैं। अतः चूल्हे का मुँह दक्षिण को नही बनाया जाता, सोनेवाला दक्षिण को पैर करके नही सोता। मृत व्यक्तियों के पैर अवश्य ही दक्षिण की ओर कर दिये जाते हैं।

छींक का आना शुभ माना जाता है। छींकने वाला अभी नहीं मरेगा, यह विश्वास माना जाता है। जब एक व्यक्ति को छींक आती है तो उसके हितैषी प्रसन्न होते हैं और कहते हैं 'शतंजीव' अथवा 'छत्रपति'। 'चकपदी (छत्रपति) एक देवी मानी जाती है जो ब्रह्मा जी के छींकने पर मक्खी के रूप में उत्पन्न हुई थी। छींकते समय उसी का नाम लिया जाता है।

बच्चों के नाम को प्रायः अधिक प्रसिद्ध नहीं किया जाता। पिता अपने बच्चों का कई वर्षों तक तो नाम भी नहीं लेते। उनके यथार्थ नाम को छोड़कर 'बूजा' 'बूजी' कहते हैं। जन्मपत्री के नाम को प्रायः नहीं लेते।

एक ग्रामीण अपने दूसरे साथी का तिल का तेल अथवा प्रदत्त तिल को उपयोग में नहीं लाता। उसे विश्वास है कि यदि वह इनका भक्षण करेगा तो प्रदाता की भविष्य जन्म मे दासता करनी पड़ेगी। इस विश्वास के आधार पर एक उक्ति प्रचलित है "के मन्ने तिरे काले तिल चाब राखे सैं?" काले तिलों की दासता एवं कृतज्ञता अधिक होती है।

एक बनिया सर्वप्रथम (बोहनी के समय) उधार नहीं देता। उसका विश्वास है कि यदि बोहनी उधार से होती है तो दिन भर उधार ही चलेगा।

पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे को नाम से नहीं पुकारते। संस्कृत के नीतिकार ने भी एक स्थान पर इसी प्रकार के विश्वासमूलक शब्द कहे हैं :—

आत्मनामगुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्जेष्ठापत्यकलत्रयोः॥

विश्वास है कि अपना, गुरु का, अतिकृपण, जेठी संतान और पत्नी का नाम लेने से श्रेयस् की हानि होती है। एक हिन्दू से गाय का बध हो जाने पर गोघातक गोपुच्छ को एक छड़ी में बांध उसे ऊँचा उठाकर गंगा-स्नान के लिए जाता है। गंगा पर प्रभूत धन व्यय करके उस दोष से मुक्त होता है।

वृहस्पतिवार को काजल अथवा सुर्मा नहीं आंजा जाता। विश्वास है कि एक वृहस्पति अंधी आती है। यदि उस वृहस्पतिवार को काजल आंजली जायेगी तो लगाने वाले की आखें अंधी हो जायेगी।

धरती पर या भित्ति पर औसियां[1] बनाते हैं। यदि वे लकीरें दो से विभाजित हो जाये तो कार्य सिद्धि की आशा होती है अन्यथा नहीं। यह भी एक विश्वास है।

विश्वास है कि 'हिचकी' जब आती है तो कोई प्रियजन याद करता है। बारी-बारी से प्रियजनों का नाम लेते जाते हैं, जिस नाम लेने से हिक्का बन्द हो जाये वही स्मरण करता है—ऐसा माना जाता है।

ऐसा विश्वास है कि यदि 'हथेली खुजाती है' तो धन प्राप्ति की आशा की जाती है और 'पैर खुजाता है' तो यात्रा करनी पड़ती है। पुरुष की दाईं आख फड़कना शुभ माना जाता है और स्त्री की बाईं आख का फड़कना श्रेष्ठ होता है।

इनके अतिरिक्त हरियाना मे अन्य अनेक विश्वास प्रचलित हैं जिनके मूल्य पर विचार करना भी यहां अप्रासंगिक न होगा। ससार की सभ्य-असभ्य जातियों में विश्वास प्रचुर मात्रा मे प्रचलित मिलते हैं। उनका अपना मूल्य है। श्रीमती बर्न ने ठीक कहा है कि हल या गाड़ी की आकृति का उतना महत्व नहीं जितना महत्व उन क्रियाओ एवं मंत्रोच्चारणों का है जो हलवाहक (हाली) गाड़ीवान अथवा चरसिया कार्य के प्रारम्भ में प्रयोग में लाता है। भाषा चाहे अस्पष्ट एव असंस्कृत क्यों न हो परन्तु उसकी आस्था मे जो पावनता है एवं आत्मा की जो साक्षात्कारिता है, उसका मूल्य अवश्य है जो लौकिक पदार्थों के रूप मे नहीं आंका जा सकता।

कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी से होकर धर्मनद बहता है। इसमें भक्ति ही प्रेरक शक्ति है। धार्मिक पुरुष इसी भक्ति को लेकर ज्ञान और कर्म में प्रवेश करता है और धर्मपद की प्राप्ति करता है। ये मूढ़ विश्वास, जंत्र-मंत्र भक्तितत्व को विकृत करनेवाले कहे जाते हैं परन्तु इनमें श्रद्धा का वह अंश रहता है जिसका मूल्य अन्यून है। मूढ़ विश्वास जत्र-तंत्र के द्वारा जब भी धर्म की हानि और ग्लानि हुई है, वह अधविश्वास एवं जंत्र-तंत्र के कारण नहीं अपितु इसके विकृत प्रचार व प्रयोग के कारण हुई है। पूर्वजन्म के कल्मष को दूर करने में टोने-टोटकों से जो काम लिया जाता है उसके अन्तर्गत भी श्रद्धा की एक क्षीण रेखा निहित रहती है। वही श्रद्धा सदुपयोग के बल पर धर्म-प्राप्ति का कारण बन सकती है।

३. जंत्रमंत्र और टोने-टोटके

हरियाना प्रदेश में विविध प्रकृति के जत्र-तंत्र-मत्र, जादू, टोने-टोटके

---

१. सीधी खड़ी लकीरें काढना।

प्रचलित मिलते हैं। लोक-जीवन में इनकी मान्यता दो रूपों में मानी जाती है — एक, हित कामना के लिए, दूसरे, अहित कामना के लिए, बैर आदि उतारने के लिए।

आख दूखने पर 'चोब' उतारने आदि के नाना प्रकार के टोटके किये जाते हैं। बेरी के सात पत्ते और सात आटे की गोलियां सींक से बींधकर आंखों के सामने सात बार उतारी जाती है। फिर इन्हें छप्पर में टांक दिया जाता है। इस टोटके से आख की सुरखी दूर हो जाती है। आंख में फूला पड़ जाने पर तो और भी कई प्रकार के टोने किये जाते हैं।

गांव में बहुत से रोग जत्र या टोने से दूर कर दिये जाते हैं। कई नीची जातियों के पुरुष इस प्रकार के टोने जानते हैं। कई प्रकार के ज्वरो के ऊपर जब भेषज् असफल हो जाती है तब ये जंत्र (टोने) किये जाते हैं।

कई तालाबो में स्नान-मात्र से सर्पदंशन का विष उतर जाता है। ऐसा एक तालाब 'गोराला कलां' में है जिसमें हरिदास पुण्यात्मा का प्रभाव बताया जाता है। छारा के तालाब मे स्नान करने से पीलिया रोग दूर हो जाता है। कुत्ता का काटा 'खडराली' के ताल'ब की मिट्टी लगाने से ठीक हो जाता है। इस प्रदेश मे ऐसे असंख्य जंत्र या टोने (Charms) पाये जाते हैं, जिनके प्रयोग से प्राचीन पुरुष अनेक बीमारियां दूर कर लेते कहे जाते हैं।

अंधविश्वासों की भाति जंत्रमंत्र, टोने-टोटके भी बहुव्यापी हैं। इनके सांस्कृतिक मूल्य की परख भी की जा सकती है। जंत्र-मंत्र, टोने-टोटके जिनका वर्णन ऊपर हुआ है, सभ्यता के दृष्टिकोण से भले ही जंगलीपन से युक्त हों, परन्तु आप तनिक उस पृष्ठभूमि में प्रवेश कीजिए जो छोटे से छोटे विश्वास में संनिहित है। आपको एक ही तत्व दिखाई देगा—वह तत्व है अनन्य श्रद्धा। यही वह तत्व है जो मानव को साधारण भावभूमि से ऊपर उठाकर आनन्द की मधुमती भूमिका में प्रवेश कराता है। अतः गंभीरता से विचार करें तो ये ही वे तत्व हैं जो संस्कृति का पंचांग हैं।

संस्कृति आत्मा की पुकार है। संस्कृति का रूप आत्मा का रूप है। विश्वास इसके अभिन्न अंग हैं। श्रद्धा, आस्था एव विश्वास मे अद्भुत शक्ति है। इन्हीं मे सस्कृति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। अतः किसी देश की संस्कृति की परख के लिए तद्देशीय प्रचलित प्रथाएँ, रीतियां, अंध-विश्वास, जन्त्र और टोने टोटकों का सम्यग् ज्ञान परमावश्यक है।

घ. हरियानी समाज

हरियानी समाज के विषय में जब विचार करते हैं तो सर्वप्रथम हमारा

ध्यान यहां की जातियों के प्रति आकर्षित होता है। भारत के अन्य प्रदेशों की भांति हरियाना मे भी नाना जातियां निवास करती हैं जिसमें अपनी-अपनी परम्पराएँ एव रीति-रिवाज प्रचलित हैं। प्रत्येक जाति के विषय मे विशद विवेचन इस लेख का अभिप्राय नही है। सामूहिक रूप से ही कुछ विचार किया जायेगा।

यहां की सभी जातियों मे वैवाहिक प्रथा सजातीय (Endogamous) है किन्तु सगोत्रीय (Exgogamous) नहीं है। बहु विवाह प्रथा भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के अतिरिक्त सभी जातियों में नियोग अथवा करावा की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा ने बहु-पत्नी प्रथा को प्रश्रय दिया है। अभी तक सर्वत्र सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा चल रही है। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा मे वृद्ध कुलपति का शासन रहता है जिसमें सबका समान अधिकार होता है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव एवं नौकरी की प्रवृति ने इस पुनीत प्रथा को एक बड़ा धक्का पहुचाया है। यह प्रथा आज निष्प्राण होती चली जा रही है। उत्तराधिकार अधिकतर पगडीबांट या भाई बांट के सिद्धांत पर है किन्तु किन्हीं गावों अथवा किन्हीं कुटुम्बो मे बीर-बाट या चुंडा-बांट भी प्रचलित है।

हरियानी समाज मे जिसकी झांकी ऊपर की कतिपय पंक्तियो में दी गई है, बहुत से रीति-रिवाज प्रचलित हैं। प्रजनन, विवाह, मृत्यु आदि पर जो रिवाज प्रचलित हैं उनका विशद वर्णन गीतों के अध्याय मे हो चुका है। यहां पर नामकरण संस्कार के विषय में कुछ चर्चा की जायेगी। पुत्रोत्पत्ति पर घर-घर के वृद्ध पुरुष, पंडित को बुलाते हैं और उससे नवजात शिशु का नाम पूछते हैं। वह जन्म की राशि के अनुकूल नाम रखता है। नाम प्रायः किसी देवी-देवता अथवा ईश्वर के नाम पर होते हैं। यथा —रामचन्द्र, किशनलाल, देवीदत्त आदि। कभी-कभी पवित्र तीर्थों के नाम पर रखे जाते है। यथा—मथुरादास, वृन्दासिंह, काशीराम आदि। पवित्र पौदों के नाम पर भी नाम होते हैं। यथा तुलसीदास, गेंदासिंह आदि। दुष्ट ग्रहों की उपशांति के लिए कुछ असुन्दर (भौडे) नाम भी रख लिए जाते हैं यथा— मंगतू (मांगा हुआ), घसीटा (घसीटा हुआ), बुद्धू (मूर्ख), बदलू (बदल कर लिया हुआ), कुड़िया (कूड़ी पर मिला हुआ) आदि जिनसे ईर्ष्यालु को घृणा हो जाये किन्तु आजकल प्रवृत्ति पूर्णरूपेण बदली हुई है। रामायण और महाभारत मे आये हुए नामों की पुनरावृत्ति सर्वत्र दीख पड़ती है।

जब बच्चा मूल नक्षत्र में उत्पन्न होता है तो मूल की शांति के लिए विभिन्न आचारों का आश्रय लिया जाता है। इसका विस्तृत वर्णन तृतीय अध्याय में जन्म के गीतों में पीछे दिया जा चुका है।

कन्याओं के लिए ऐसी कोई प्रथा प्रचलित नहीं है। हां, विवाह के पश्चात् ससुराल की स्त्रिया उसे बाप के नाम से पुकारने लगती हैं, यथा—तेजा की पुत्री को 'तेजाही' लक्खी की पुत्री 'लखाही' आदि। पुरुष उस स्त्री को पति के नाम से पुकारते हैं, यथा—बदलू की बहू आदि। यहां पर यह भी देख लेना चाहिए कि जाट आदि जातियो मे जो नियोग अथवा करवा की प्रथा प्रचलित है उसे ब्राह्मण आदि अन्य जातियां सम्मान की दृष्टि से नहीं देखती। ये जातियां करेवा करनेवाली जातियों को व्यंग्योक्ति में कह देती हैं—"आजा बेट्टी, लेल्ले फेरे, ये मरजा और भतेरे।" जिन जातियों मे करेवा प्रचलित है उन जातियों में सौभाग्य के लिए इतनी चिंता नहीं होती, पति के मरने पर दूसरा पति कर लिया जाता है। हरियानी समाज की दो महत्वपूर्ण अभिलाषाएँ—'पक्की रोटी' और 'पक्की हवेली' उसकी लौकिक समृद्धि की पराकाष्ठा है। एक दूसरे स्थान पर हरियानी किसान जीवन की आनन्ददायिनी परिस्थिति की अवतारणा इस रूप में की है :—

दस चंगे बैल देख, वा दस मन बैरी,
इक हिसाबी न्या, वा साक्सीर जोरी,
भूरी भैंस का दूधा, वा राबड़ घोलणा,
इतना दे करतार, तो फेर ना बोलणा।

किसान के अच्छे 'चंगे बैल हों' पर्याप्त अनाज हो जाये, फस्ल के पीछे लगान या माल मांगा न जाये, भैंस का दूध पीने को मिले और राबड़ी का भोजन खाने को मिले तो उसे फिर अधिक की चाहना नही होती।

ड. हरियाने का भोजन

हरियाने के इतिहास, विश्वास, रीति-रिवाज तथा एतद्देशीय लोकसाहित्य के दिग्दर्शन से यहां की प्रादेशिक संस्कृति का पर्याप्त परिचय दिया गया है। हरियाना के निवासियों के भोजन के विषय में अब कुछ विचार कर लेना उचित होगा। हरियाने के भोजन के विषय में लोकोक्तिकार ने बड़ी मार्मिक बात कही है—'देसां म्हैं देस हरियाना, जित दूध दही का खाना'। यहां के खाने मे दूध-दही की प्रचुरता है।

'रबड़ी' यहां के भोजन का एक विशिष्ट अंग है। यह हरियाने का प्रातराश है। यहां पर लोकोक्तिकार ने अहीरों पर व्यंग्य कसा है—"अहीर खा राबड़ी बतावे खीर" अहीर के लिए यह खीर बन गई है। हरियाने का खीर एक प्रिय भोजन है जो दुग्ध और तन्दुल के मिश्रण से बनता है।

हरियाना के भोजन का वर्णन करने में अवश्य अपूर्णता रह जायेगी यदि हम यहां के टीकड़ा या अंगाकड़ा की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित न करें। यह भी प्रातराश का भोजन है जिसे हम देसी बिस्कुट कह सकते हैं। कड़े आटे से बनी मोटी नमकीन रोटी 'टीकड़ा' कहलाती है। यह उन्हीं लोगो को प्रिय है जो एक बार ४ छटांक घी खा सकने की शक्ति रखते हैं। लोगों का कहना है कि बस एक टीकड़ा और पावभर घी खाइये कि राम मिल जायेंगे।

परिशिष्ट क

हरियानी लोक-कहानी

"खीचड़ी"

'एक चमार था। वोः था बड़ा बावला। जींह ढाल. कोई जह नै भकादे ऊँहे ढाला मान जा था। एक बार वोः अपणी सुसराड़ डिगर गिया। उड़े ऊँह के साला नै खूब सेवा करी। चमार की सास्सू नै जमाई के चा में एक हाड्डी भरके खीचड़ी बणाई। चमार आग्गे एक थाली खीचड़ी धरदी अर ऊंह में खूब गेर दिया घी। चमार का जो बाठ जासै सूत वोः सारी नै डकारग्या। ऊह ने खीचड़ी बौहत आच्छी लागो पर बिचारे ने नां का पता नही था। चमार नै सोच्ची अकरै याहे चीज तैं घरा चालकै बणवाइये। पर मुसीबत सै योः अक इंह का नां कींह ढाल पता लागै। ऊह नै कुछ होक्कै बेसरम सा इंह का नां अपणी सास्सू तैं बूज्झा। पता लाग्या कि योः सै "खीचड़ी"। वोः जिब्बै-इ रटण लागग्या—'खीचड़ी, 'खीचड़ी'।

अगले दिन चमार नै अपणे घरकैंड का रस्ता लिया। चालते-चालते "खीचड़ी" कहणा तै गया भूल अर लाग्या भौंकण "खाचिड़ी खाचिड़ी"। रस्ते मे इक जाट अपणे खेत का रुखाला था और गोफिये तै चिड़िया नै उडावण लाग रह्या था। बिचारे का चिड़िया नै बौहत नकसान कर दिया था। किमै तै छोः में था ही अर कुछ चमार के "खाचिड़ी-खाचिड़ी" के कसूत्ते बोल सुण कै लाल पीला होग्या। चमार तै कहण लाग्या अकरै अन्यायी के पेड तौ के भौंक्कै सै। अड़ैआ तन्नै मैं करूँगा सूद्धा। जाटनै चमार कै पांच सात जूत फटकारे अर कहण लाग्या अक भाई "आ फन्दे में, आ फन्दे में" कहता चाल्याजा। चमार बिचारा इस्सै बात नै कहता चाल दिया।

आगै चाल कै ऊँह नै चार चोर फँटे। वे चारों सौंण मना कै चोरी करण जां थें। चमार "आ फन्दे में, आ फन्दे में" कहता जा रह्या था। इसतैं चोरों के सौण खराब होगे अर चमार कै बेरसीद के दो चार जमा दिये अर कहण लागे कि "ले ले जाओ, घर-घर आओ" कहता चाल्या जा। चमार नै डर के मारे ये ही आंखर पकड़ लिये अर चालता बण्या।

आगे मुसलमाना का कोई माणस मरग्या था। वे ऊंह नै गाड्डण जां थे। कुछ तै बिचारां कै मरा का जलण थाए कुछ चमार नै "ले ले जाओ,

घर घर आश्रो" कहके उनके घा मे लूण छिड़क दिया। मुसलमानां ने चमार खूब पनाया अर कह दिया कै "इसी किस्से कै ना हो" कहता चाल्या जा। वोः तै मार गैल पैतरे बदलै था। वोः न्यूहे रटण लाग्या।

चमार "इसी किस्सै कै ना हो, इसी किस्से कै ना हो" कहता जा रह्या था। आगे राह में एक गाम पडै था। उडै एक बाणिया धरम कर रह्या था। उडै वी पांच-सात आदम्यां नै जिब इह चमार के इसे कडवे बोल सुणे तै ऊंह के गरमागरम पांच-सात झांपट रसीद कर दिये अर कह दिया अक "इसी सबके हो, इसी सब के हो" न्यूं कहता चाल्या जा। चमार बिचारा चाल दिया रोमता।

आगै सी एक जघाॅ किस्सैं की पूलियां मे लाग गी थी आंच। उडै पूलियां आले का तै हो रहा था घर फूक तमाशा अर चमार चिल्ला रहया "इसी सब कै हो, इसी सब कै हो।" उन्नै चमार ठाकै आंच बिचाले पटक दिया। थोड़ी सी हाण में चमार का तैं गंडासा सा बुझ गया। बिचारा गऊ का जाया घर ताहीं बी ना पोंह चा। 'खीचड़ी' नै कीस्से जुलम ढाये बिचारे की गैलां।

एक राजा के छोरे की कहानी

एक बार की बात सै। एक बाम्मण का छोरा नै ऊं का बाप नै उसताहीं देस लिकाड़ा दे दिया। जब वो घर तैं चाल्ल्या जा था तौ ऊंनै रा मे एक सांप मिला जो क जाड्डातैं कती कठ्टा होर्‌या था। ऊं नै लेक्कै नै सांप कै कुछ सेक स्याक देक्कै नै गर्मी दी तो के देक्खै सै क सांप का लाल बणग्या। ऊं नै ले जाक्कै वो लाल राज्जा नै दे दिया। राज्जा नै उसताइं सन्दूक में बंद कर कै अर उसका ढकण मूंद दिया।

एक दिन राज्जा स्यन्दूक नै खोल कै देक्खण लाग्या तो के देक्खै सै क लाल का घणा सोणा छोरा हो रह्या सै। राजा कै कोई औलाद ना थी वो ब्होत राज्जी होया। छोरा बड्डा होग्या मल.[1] ऊं का बाप मरग्या। ऊं की सगाई वो करग्या था। फ़ेर हकीकियां नै ऊ नै माराकूव्या अर भज्या दिया।

वो थोड़ी सी मोर[2] लें कै अर बिना बेरै ऊंए गांम में आग्या जै मैं ऊंकी सगाई होरिही थी। छोरा पड्ढण जाण लाग्या अर ऊंए मद्रसा में जेम्हें वा छोरी पढ्या करती जिंह कै सेत्ती ऊंएं छोरा की सगाई होरि थी।

---

१. मगर २. मोहर, असरफी।

दोनूं बहोत सुथरे थे अर दोनूं राज्जा की औलाद थे। ऊंका आपस में प्यार होग्या। ऊं नै न्यूं नहीं बेरा था अक म्हारी आपस मे सगाई होरिही सै।

कुछ दिनां पाच्छै ऊं छोरी के मां-बाप नै ऊकी सगाई ओर किते करदी। फेर ऊंका व्या[1] नीड़ै आग्या। छोरी नै ऊंतै सारी बात बता दी अक मेरी सगाई पहल्यां फलाणी फलाणी ठौड़ होरी थी। फेर छोरा नै बताई अक वो तो मै ए सूं।

इब छोरी बोल्ली क जब तोरण चटकण का मोक्का आवै तो तू घोड़ा लेक्कै अर ऊं तै पैल्यां[2] तोरण चटका दीये। अर मै दूसरा घोड़ा लैक्कै त्यार खड़ी मिल्लूंगी। ऊ नै न्यूं एकरी। दोनू घोड्या पै चढकै भाजगे। अर सब लोग देखते के देखते रैगे।

दोनूं एक राज्जा कै साला जीज्जा का नात्ता तैं वा छोरी मरद बणकै रहण लागगे। राजा ऊ नै बहोत घणा चाह्या करता। वै राज्जा का बाग में रह्या करते।

एक दिन रात नै परी आणकै उन रूखां नै काढ्ढण लाग्गी तो ऊ छोरी नै तलवार काढ कै अर ऊंकै मारी तो ऊका कपड़ा कटकै रैग्या।

राणी बोल्ली इसा कपड़ा और ल्या। तो वा छोरी खोज में लिकड़ पडी। चालती-चालती ऊ नै एक बाबा जी मिल्या। ऊं नै बताई अक इंतरॉ[3] इंतराँ बाग में परी न्हाण आवै सै। ज वै न्हाण लागज्यां तो उनके कपड़े उठाकै भाजैय्ये। ऊनै ऊं ए तरॉ करी। बाबा जी नै बतादी अक सब का कपड़ा बारी-बारी दे दिये मल बडली आवै तो ऊं की चोट्टी काट लिये। ऊ नै ऊं ए तरां करी। तो वै बोल्लीं अक इब हम इन लत्या का के करां? फेर ऊं नै ऊंनी "बीन तूबडी" दी अक जबै त इंनै बाजावागी तो हम आणकै नाच करांगी। इतणी कइकै वै ल्हुकगी।

ऊं नै 'बीन तूबड़ी' बजाई अर वै सारी आए कै नाचण लाग्गीं। बाबा का मन ललचाग्या। बोल्ल्या क बच्चा। ले या बीन बूंड़ी तै मन्नै देहे अर या रस्सी सोटा त लेल्ले। तू कहगी तै ए[4] या रस्सी तो बांध लेगी अर या सोट्टा पीहैगा।

आग्गै सी जाकै वो छोरा (छोरी') ठणक-ठणक करण लाग्या। बाबा बोल्ल्या के भई! तू ठणक-ठणक क्यूं करैं सै? वा छोरा बोल्ल्या मन्ने बीन बूंड़ी ल्यादे। ऊंनै बाबा जी बांध कै खूब पीट्या। बाबाजी नै बीन बूडी दे दी।

---

१. विवाह, ब्याह। २. पहिले। ३. इस प्रकार, इस तरह। ४. इसी को।

आग्गै सी जाकै ऊंए तरा एक बीर बान्नी मिली। ऊंनै एक डिब्बी दी अक जिसा लत्ता चाव्हैगा उसाए मिल ज्यागा। फेर ऐतराँ ऊंनै एक उडन खटोल्ला मिलग्या अर ऊ पै बैठकै अपणी नगरी में आण पहुँचा।

राज्जा ऊं तै बहौत राज्जी होया अर अपणी छोरी का ब्या ऊंतै कर दिया। ऊं छोरी नै बतादी अक बिर मै बी छोरी ए सूं। फेर दोनूं राणी अर वोः राजकवर राज्जी राजी रहण लागग्या। ऊ रस्सी सोट्टा की ओट[1] तै ऊं नै अपणा राज बी ले लिया।

फेर वां छोंटणी राणी ऊतै एक दिन बोल्ली अक तेरी के जात सै। पहल्यां ता नो बताई मल. ऊंकी हट्ट करण तै बोल्ल्या क आऽच्छा तूं मेरै काच्चा दूध का छींट्टा मार। ऊनै तो छींटा मार्या अर वो सांप बणकै सरड़-सरड मौरी म्हें बड़ग्या। वै दोनूं देखती की देखती रैगीं अर अपणा किया पै पछताई।

परिशिष्ट—ख

स्वरलिपि

लोकसाहित्य संग्राहक को अपने प्रयत्न में यथार्थ (एक्यूरेट) होने की बड़ी भारी आवश्यकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका प्रयास विकृत तथा कृत्रिम-सा प्रतीत होने लगता है और वह विशेष उपयोगी नहीं रहता। जो बात लोकसाहित्य के लिए कही जा सकती है वह लोक-गीतों के विषय में और भी अधिक स्वीकार्य है। लोक-गीतों की रक्षा के लिए गायक के उच्चारण के साथ उन्हें ठीक-ठीक उतारने का प्रयत्न वांछनीय है। यह कार्य विशुद्धरूप से तभी हो सकता है जब प्रत्येक गीत की 'स्वरलिपि' भी की जाये। स्वरलिपियो के तुलनात्मक अध्ययन से लोक-गीतों के वश और प्रसार के इतिहास पर भी भारी प्रकाश पड़ता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग मे इन गीतों को विकृति से बचाने के लिए उचित तो यह है कि इन गीतों के 'रिकार्ड' तैयार कर लिए जायें।

आदर्शरूप में, हम यहाँ तीन हरियानी लोकगीतों की स्वरलिपि दे रहे हैं, जिससे इन गीतों के रागात्मक पक्ष को हृदयंगम करने में सहायता मिलेगी।

---

१. मदद।

१. राग पीलू बरवा   ताल कहरवा

सा सा रे रे सा सा नी — । सा सा रे रे गा — रे — ।
म्हा रे री घे ऽ र में ऽ आ या री ब टे ऽ ऊ ऽ
नी — नी नी सा ऽ रे नी । सा — — — नी — नी नी ।
सा ऽ थ ण का ल खि हार ऽ ऽ ऽ सा ऽ थ ण
सा — रे रे गा गा रे रे । सा सा नी नी सा सा रे नी ।
चा ऽ ल प ड़ी री मे रे ड ब ड ब भ र आ ये
सा — — — — — — — ।
नैण ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ।

शेष गीत तृतीय अध्याय के १६५ पृष्ठ पर देखिए ।

× × ×

मेरा छोटा वीरा लाडला बणखंड की राही हो लिया।
कितै हो तो बीरा बोलिये मैंने सारा बणखंड टोलिया।

२. राग पीलू   ताल कहरवा

नी सा रे — रे — रे — । गा रे गा सा रे रे रेमा रे ।
मे रा छो ऽ टा ऽ बी ऽ रा ऽ ऽ ला ड ला री ब ।
मा गा रे सा नी सा — रे । गा रे सा — नी सा — — ।
ण खं ड की ऽ रा ऽ ही । ऽ ऽ हो ऽ लि या ऽ ऽ

बेबे अन्न मिलै ना खाण नै दरखत के पते खा रहे ।
जल मिलै ना पीण नै जोड़ कुए सब टो लिए ।
मेरा छोटा बीरा लाडला बणखंड की राही होलिया ।
कितै हो तो बीरा बोलिये मैंने सारा बणखंड टोलिया ।
बीरा तेरे रे भाणजे का व्या ए से कौण आवेगा भात में ।
बेबे मेरे से छोट्टे तीन सैं तेरै वै आवैंगे भात में ।
बेबे थाली में घालें तीन सो ए लोटे में मौर घला लिए ।
मेरा छोटा बीरा लाडला बणखंड की राही होलिया ।
कितै हो तो बीरा बोलिये मैंने सारा बणखड टोलिया ।

कात्यक बदी अमावस आई दिन था खास दिवाली का।
आंख्यां के म्हें आंसू आग्ये देख लिया घर हाली का।

३. राग मांढ ताल कहरवा

पा — पा धा सां सां — रे । — सां सां सां — सां — पा ।
का ऽ त्य का ब दी ऽ मा ऽ व स आ ऽ ई ऽ दिन
— पा पा — पा पा पा — । पा मा पा धा पा मा रे मा ।
ऽ था खा ऽ स दि वा ऽ ली ऽ का ऽ ऽ ऽ आ ऽ
पा सां नी धा पा — पा धा । पा मा — — गा — रे सा ।
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ आं ख्यां के म्यां ऽ ऽ आं ऽ सू ऽ
रे — सा — रे । रे — रे रे — रे रे रे — रे सा ।
आ ऽ ग्ये ऽ दे ऽ ख लि या ऽ घ र हा ऽ ली ऽ
रे मा गा रे सा — — — ।
का ऽ ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ

सबी पड़ौसी बच्चों खात्तर खील खिलौने ल्यावे थे।
दो बच्चे हाली के बैट्ठे उनकी ओर लखावै थे।
रात कूच की जली खीचड़ी घोल सीत में खावैं थे।
दो कुत्ते बैट्ठे मगन हुए उनकी ओर लखावें थे।
तीन कटोरे एक बखौरा काम नहीं था थाली का।
आंख्यां के कहें आँसू आग्ये देख लिया घर हाली का ॥१॥
कहीं कहीं तो खीर पके कहीं हलुवे की मंहकार उठ री।
हाली की बहू एक ओड़ नै खड़ी बाजरा कूट री।
हाली बैट्ठ्या खाट बिछाकै पांयतांकानी टूट री।
हुक्का भर कै पीवण लाग्या चिलम तल तै फूट री।
चाकी धोरै डंडूक पड्या था जर लाग्या एक फाली का।
आंख्या के कहें आँसू आग्ये देख लिया घर हाली का ॥२॥

परिशिष्ट—ग

शब्दकोष

हरियानी लोकसाहित्य में प्रयुक्त कतिपय शब्दों की तालिका हम नीचे दे रहे हैं। देखकर आश्चर्य होता है कि अक्षरज्ञान-विहीन ग्रामीण जनता

ने प्राचीन शब्द निधि को कितनी श्रद्धा के साथ अर्घ्य देकर बचाया है तथा उसका शब्दभंडार कितना सम्पन्न है। भावाभिव्यक्ति के लिए उन्हें कदापि शब्द-दारिद्र्य नहीं घेरता। उनके यहाँ शब्दों की टकसाल सतत जारी रहती है।

"अ"

अभा	(अजा) बकरी
अगेता	पहला, समय से पहिले
अडांस	१. कठिनाई, समस्या 'अडांस में आया' कठिनाई में फंस गया। २. जिद करना, विघ्न उपस्थित करना 'अडांस लाना' विघ्न कर रहा है।
अड़ै, आड़ै	यहाँ
अणी	नौंक
अघल (विशेषण)	स्पष्ट, पकी, प्रायः पहचान, शब्द के साथ इसका पहचान प्रयोग होता है। अघल पहचान (पछाण) के अर्थ होंगे, स्पष्ट पहचान, खूब पहचान।
अंत (वि०)	समाप्ति अथवा लक्ष्य
अलेख (अलक्ष्य)	भगवान
अतका (वि०)	अत्यधिक "घना न अंत का बोलना, घनी ना अंत की चुप।"
अबेर	देरी
अकरभकर	चालाकियाँ, अगर, मगर
अटकल सटकल	अनुमान, अंदाजा
अणाआत	(अणहोत) अभाव अथवा गरीबी
अलवादी (वि०)	धृष्ट, जिद्दी, (पुरुष या पशु)
असतल	(स्थल) वैरागी साधुओं का मठ या आश्रम

"आ"

आंकल	वृषभ, बिजार
आँख	(अक्षि तथा अक्षर) लिपि के अक्षर, दो आँख काढना, कुछ लिख देना।
आंटना	भरना। कुआ अथवा तालाब को मिट्टी डाल कर भर देना।
आगमबुधी	(अग्रबुद्धि)
आठें	अष्टमी
आठ न साठ	तीन तेरह, व्यर्थ। "खेती की उसकी आप करे आधी उसकी देखना जाय। आये गये को पुच्छे बात, उसकी खेती आठ ना साठ।"

आड	१. विघ्न २. रोक ३. सरसों की आड
आडा	कुळ, कड़वा । "राड़ करो तो बोलो आड़ा ।"
आण	निषिद्ध, परहेज । "दारू की आण सै," मद्य का निषेध है ।
आधमआध	बराबर-बराबर
आल	१. आर्द्रता, गीलापन । २. दंगा, उपहास, मूर्खता
आलकस	आलस्य
आस	आशा
आसा	(आश्रय) सहारा, "मालिक के आसरे तै" भगवान की सहायता से ।
आंयत	सिरहाना, सिर की ओर

"इ" "ई"

इलहान	व्यर्थ की बात जो अपनी शक्ति से बाहर हो ।
इंघे	इधर
इंढी	बोझा, विशेषकर पानी का घड़ा ढोने के लियें सिर पर रखने का कपड़े का गोल चक्र । "दवी आवे, दवी जा ।"

"उ"

उजाड़	जंगल
उग्मनां	उदित दिशा में, पूर्व दिशा में । 'उग्मनां खेत' । पूर्व की ओर खेत हितकर नहीं होता । प्रातः जब जाओ तो सूर्य सम्मुख, सध्या में वापिस आओ तो भी सम्मुख ।
उम्रा	वह भूमि जिसमें बिना सिंचाई के रबी की फसल पैदा होती है ।
उणिहार	(अनुहार) सदृश, 'जेठ की उणिहार, जेठ की सदृश
ऊबना	निकलना, उद्भव होना

"ऊ"

ऊत	निपूत, निष्पुत्र, दुर्भाग्यशाली
ऊपला	गोसा, कंडा

"ए"

एकला	एकाकी

"ओ"

ओच्छा	छोटा, लघु
ओट, ओटना	१. स्वीकार करना—'अपणा कसूर ओट ले'। अपराध स्वीकार कर लो। २. मान लेना—"आज घर में काम सै, मेरा आड़े का काम तू ओटले।" ३. सहना, झेलना—'मेरी लाठी ओट, गेंद ओट'। संभालना।
ओहलना	उपालंभ, व्यंग्य।

"औ"

औलासौला (क्रि. वि.)	जैसा-तैसा
औले	कोने मे
औली बात	कटु, कर्कश, गाली
औले तो कौले	इधर उधर

"क"

कथ	पति
कठण	कठिन
कड़	कमर, पीठ
कड़ै	कुत्र, कहां ?
कतनी	कातते समय पूनी रखने की टोंकरी
कनै	पास—'तेरे कनै' तुम्हारे पास।
कपत्ता	झगड़ालू, कुपुत्र "नलाई ना करी-दोपत्ती, क्या चुगेंगी कपती"
कमेर	१. कार्यक्षमता २. कमाई
करंग	अस्थिया
कराल	कठिन, बुरा बना हुआ। 'कराल हल' कठिनाई से भूमि में लगनेवाला हल।
कहैला	ऊंट
कल्हारा	झगाड़ालू, धृष्ट
कसुआ	एक कीड़ा जो फसल मे लग जाता है
कसूत	बुरा, हानिकर
कसौन	अपशकुन, कुशकुन
काकड़ा	बिनौला
कागला	कौआ

किलौड़ (क्रि. वि.) किधर
किम्मे न कहीं नहीं
कुकरां मुर्गी मुर्गी
कुतान (विशे०) निकृष्ट, छोटा, 'ओछी नगरी कुत्तान बासा। करी बीर क्या घर बासा"
कैहर नरक, कष्ट, आपत्ति "रहना तो सहर का, चाहे कैहर क्यूं ना हो।"

"ख"

खन्डवा साफा
खुरा खुरवाला 'बैंगनखुरा' बैंगन के से खुरवाला।
खोवार निकम्मी, हानिकर

"ग"

गाद देसी (क्रि. वि.) एकदम, अनायास
गद्दर अधपका "कच्चे फल सुहावने, गद्दर हुये मिठान। वे फल कौन से, जो पक्के ही करवान।" शैशव, यौवन, वृद्धावस्था।
गमीना रिश्तेदारी
ग्यासी एक शस्त्र विशेष
गाबरू युवक
गाहा पहेली
गेड़ा चक्कर
गोरा आबादी के पास, गौरवर्ण
गोरी युवती स्त्री। इस शब्द के पीछे रसिक स्त्री का चित्र उपस्थित होता है। यौवन की लाली या स्वभाव, सुलभ लज्जावश लाली का भाव गोरी शब्द में छिपा है।
गोसा उपला, कंडा

"घ"

घालमाल गड़बड़, 'जाट जाट के साले, करदे घालेमाले'।

चोज	कौतुक, आश्चर्य
चौकस	सावधानी, पक्की बात नरनारी का पिआर, सजन तुम दिल में रखना। नर को देना मार, नारी को चौकस रखना॥ नर (ताला) नारी (ताली)।
चौंरी	वेदी, (विवाह की)

"छ"

छोह	क्रोध

"ज"

जनेत	बरात
जलहैरी	जलकलश
जांजलवासा	जनवासा, बरात के ठहरने का स्थान
जेठा	बड़ा, पहला

"झ"

झक्कत	परिश्रम, "झकत विधा, पञ्चत खेती"।
झिरवे	दुर्बल होना, सूखना। "ज्ञानी झिरवे ज्ञान ने" ज्ञानी ज्ञान के लिए कष्ट उठाता है।

"ट"

टलना	बचना, वापिस जाना, चूकना "कालटलबा, कलाल ना टले" मृत्यु से बचाव हो सकता है।
टाबर	बाल बच्चे
टांडा	प्रायः १०० बैलों के समूह को टांडा कहते हैं। बनजारे टांडा लादकर चलते थे। प्रसिद्ध है लाखा बनजारे के टांडा में लाख बैल थे।
टीबा	रेत का पर्वत
टेक	प्रतिज्ञा, सहारा, रक्षा
टोटा	हानि
टोरड़े	कंकड़
टोहना	खोजना, तलाश करना

"ठ"

ठाडा	१. शक्तिशाली, २. खड़ा रहना, रुकना

"ड"

डाकौत	ज्योतिषी
डामचा	मचान, ठांड
डांगर	पशु
डूम	एक जाति जो नाच-गाकर आजीविका कमाती है।
डैहर	बाढ

"ढ"

ढाणा	१. कुआ का छोटा सा साधन, २. किसानों की छोटी सी बस्ती
ढाणी	बस्ती
ढुकाव	कन्या के द्वार पर मनाया जानेवाला आचार
ढोर	डांगर

"त"

तगार	गीली मिट्टी का ढेर
तलां	नीचे
तव्हेता	जोरदार, ठीक समय पर
तापड़	कड़ी भूमि
तिस	प्यास, तृषा
तिसाया	प्यासा
तीजन	चरखा कातने की जगह
तील	स्त्रियों के पहरने के कपड़े "आंगी ओढना और लहंगा"।
तोरण	द्वार पर लगी हुई काठ की चिड़िया

"थ"

थान	(स्थान) साधुओं के रहने का स्थान
थामना	ठहरना
थारे	तुम्हारे

"द"

दग्ड़ा	रास्ता
दलद्दर	(दारिद्रय) गरीबी, निर्धनता
दसोट्टा	देश निकाला
दावेत	शत्रु

दुहाग	(दुर्भाग) रांड बैठाना, तलाक, सजा
दुहेला	कठिन
दूधल	दुधार, 'गाय तो दूधल बांकी' दुधार गाय प्रशंसनीय है।
दूभर	कष्टकर। 'मरदां दूभर पीसना' पुरुष के लिये पीसना कष्टसाध्य है।
देवघर	कोहबर जहां फेरों के पीछे वर को ले जाते हैं।

"ध"

धरा	(धन्या) पत्नी
धराी	स्वामी, पति
धजा	(ध्वज) झंडा
धाप	छक कर। "कितरा सुखते जीवा थे जद धाप के राबड़ी पीवांथे"।
धीनू	दूध का पशु करना
धीय	बेटी
धोकना	पूजना, नमस्कार, दडवत् करना

"न"

नगमलग	अकेला, बिना परिवार के
निगोड़ा	अशिष्ट, व्यर्थ, बावला
निपजना	उत्पन्न होना
निमाना	मूर्ख
निरासा	(निराश्रय क्रि० वि०) तीव्रता से "जेठ मास जो तपे निरासा, तो जानो बर्खा की आशा।"
निभ	निर्भय

"प"

पगड़ी बॉट	भाई बॉट
पछवाड़े	घर के पीछे
पड़वा	१. प्रतिपद, २. पूर्वी वायु। 'सावन माह चले पड़वा। खेले पूत बुलाले मां।"
पत	इज्जत, मान
पदौड़ा	अत्यंत पीनता, "नदी दे नै मिल्या कटोरा। पानी पी पी हुआ पदौड़ा।"
परस	चौपाल, मरदानी बैठक

परार	एक वर्ष से पहिले
पर्नी	परिणीता
पटेला	पेट्टू, बड़े पेट का
पाली	गोप, ग्वाला
पांयत	पैरो की ओर
पाही	गैर बिस्वेदार
पिलाणा	जीन रखना
पीला	चुदड़ी, पीला पौमचा भी होता है जिसे प्रसव के उपरांत माताएँ ओढ़ती हैं।
पुगना	१. जीतना, रहना। "बित्ती डंडा में मैं अव्वल पुगया"—गिल्ली डंडा के खेल मैं सर्व प्रथम रहा। २. चुकना, दीजाना "उगाही नाहीं पुगीं।"—भूमिकर नहीं दिया गया
पेश्रौसाल	पितृशाला, नेहर
पौन	पवन
पौली	घर में प्रवेश का कमरा, दुवारी
पौहड़्डा	आश्रय

"फ"

फलसा	मुख्यद्वार
फैंस	कष्ट, चिंता "ले लेना भैंस, कट जागी फैंस।"

"ब"

बगड़	आंगन
बटेऊ	पथिक, यात्री, अतिथि, पाहुना
बत्ती	अधिक, "दो घर बत्ती माँगनी, पर चलना मशाल की चॉदनी।"
बरगा	सदृश, "मै बी तेरा ए बगी सूं।"
बरौं ब्राबर	एकसा, समान
बरजना	मना करना, निषेध करना
बांका	१. छैल, २. टेढ़ा
बांगी	टेढ़ी। "भींत क्यों बांगी, बहू क्यों नांगी"—(सूत न था)
बाबल	पिता
बारनै	द्वार पर
बाहुड़ै	लौटना

बिसाना	क्रय करना, खरीदना
बीज	बिजली
बुलद	बैल
बैंडा	टेढ़ा
बोल	व्यंग्य

"भ"

भड़ना	लगाना (किवाड़)
भाजड़	घर की समस्त वस्तुएं सामूहिक रूप से
भांवे	चाहे, बेशक
भौपा	कठपुतली का नाच दिखानेवाली एक जाति जो राजस्थान में विशेषरूप से मिलती है।

"म"

मढी	किसी सिद्ध पुरुष की समाधि
मत	मति, समझ
मनरा	मनिश्रार
मंडा (मांडा)	फलका, गेहूँ की चपाती
मेलजोड़	किसी वृद्ध के मरने पर कारज आदि करना
मार मुलक के	अगणित, असंख्या, 'दुनिया भर के'।
मारू	प्रियतम
मोचड़े	जूते
मोडा	साधु

"र"

रांघड़	मुसल्लमान राजपूत, "सौ रांघड़ों की एक मां।"
रीता	रिक्त, खाली
रूपा	चाँदी
रैवारी	एक जाति

"ल"

ल्हास	१. खेती के काम में सहायता देने के लिये बुलाए हुए अवैतनिक व्यक्तियों को जो भोजन दिया जाता है वह ल्हास कहलाता है।

२. कोग्रापरेटिव लीग (डगवारा)

ल्हुक	छिपकर
लूखा	रूक्ष, शुष्क, सूखा

"स"

सकाली	प्रातःकाल
सटकणा	गधा
सभाश्रो	(स्वभाव) आदत—मन मोती और दूध का एक सभाश्रो। पाटे पाछे नामिलें लाख करो उपाश्रो॥
समेप	समीप—नृप, बैल, विद्या, तिरिया, येह ना गिन्हें गुणजात। जो समेप इन के रहे, उसी के लिपटे हाथ॥
स्यावड़	सूक्ष्म दक्षिणा
सरै	काम चलना
साड़सती	आपत्ति, दुष्काल
साथन	सखी
साध	एक प्रकार के साधु जो निहंग रहते हैं और शादी नहीं
साल	(स्यार) गीदड़, 'रात नै बोले कागला, दिन नै बोले साल'।
सासरे	श्वसुरालय
	करते
सेत्ती	साथ
सौन	शकुन

"ह"

हलहल	जोर से
हान	समय, काल, वक्त
हेला	रुक्का, पुकार
हेर	तरफ, ओर, 'आइये म्हारै हेर'।—तू हमारी ओर आना

सहायक-सामग्री

१. ग्रामीण हिन्दी — डा० धीरेन्द्र वर्मा
२. विचार धारा — डा० धीरेन्द्र वर्मा
३. हिन्दी भाषा और लिपि — डा० धीरेन्द्र वर्मा
४. प्राकृत प्रकाश — डा० ए. सी. ऊलनर
५. हेमचन्द्र शब्दानुशासनम् — हेमचन्द्र सूरि
६. व्रजभाषा का व्याकरण — किशोरीदास वाजपेयी
७. दक्खिनी हिन्दी — डा० बाबूराम सक्सेना
८. भोजपुरी भाषा और साहित्य — डा० उदयनारायण तिवारी
९. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास — डा० उदयनारायण तिवारी
१०. हिन्दी भाषा का विकास — डा० श्यामसुन्दर दास
११. हिन्दी व्याकरण — दुलीचंद
१२. राजस्थानी भाषा और साहित्य — मोतीलाल मेनारिया
१३. पृथ्वीपुत्र — डा० वासुदेव शरण अग्रवाल
१४. भारतीय अनुशीलन ग्रंथ — हिन्दी साहित्य सम्मेलन
१५. पुरातत्व निबंधावलि — राहुल जी
१६. लोकसाहित्य — झवेरचंद मेघाणी
१७. लोकसाहित्य नुं समालोचना — झवेरचंद मेघाणी
१८. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन — डा० सत्येन्द्र
१९. राजस्थानी वार्ता — सूर्यकरण पारीक
२०. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन — डा० कृष्णदेव उपाध्याय
२१. भारतीय लोकसाहित्य — श्याम परमार
२२. कविता कौमुदी भाग ५ वा — रामनरेश त्रिपाठी
२३. ग्राम साहित्य — रामनरेश त्रिपाठी
२४. धरती गाती है — देवेन्द्र सत्यार्थी
२५. बेला फूले आधीरात — देवेन्द्र सत्यार्थी
२६. चट्टान से पूछ लो — देवेन्द्र सत्यार्थी
२७. बाजत आवे ढोल — देवेन्द्र सत्यार्थी
२८. भोजपुरी ग्राम-गीत भाग २ — डा० कृष्ण देव उपाध्याय

२६. भोजपुरी ग्राम्य-गीत	आर्चर तथा संकटा प्रसाद
३०. राजस्थानी लोक-गीत	सूर्यकरण पारीक
३१. मैथिली लोक-गीत	रामइकबाल सिंह 'राकेश'
३२. हरियाना के लोकगीत	एस. एस. रधावा और देवी शकर 'प्रभाकर'
३३. कुरु प्रदेश के लोक-गीत	गणेश दत्त गौड़
३४. हिन्दी लोक-गीत	रामकिशोरी श्रीवास्तव
३५. गढवाली लोक-गीत	नत्थी प्रसाद जुगपाल
३६. मालवी लोकगीत	श्याम परमार
३७. ईसुरी की फाग	लोक वार्ता परिषद, टीकमगढ़
३८. ग्राम्य-गीतों में करुण रस	सीतादेवी
३६. धूलिधूसरित मणियां	सीतादेवी
४०. गरीबदास जी की बानी	बम्बई
४१. ब्रज की लोक-कहानियां	डा० सत्येन्द्र
४२. ब्रज की लोक-कथाएं	आदर्श कुमारी यशपाल
४३. बुन्देलखन्ड की ग्राम-कहानियां	शिवसहाय चतुर्वेदी
४४. हरियाना की लोक-कथाएं	राजा राम शास्त्री
४५. जातक संग्रह	ना० वा० तुगार
४६. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा	मोतीलाल मेनारिया
४७. राजस्थान रा दूहा भाग १	नरोत्तमदास स्वामी
४८. ढोला मारू रा दूहा	पारीक, ठाकुर और स्वामी
४६. राजस्थानी कहावतें	मुरलीधर और स्वामी
५०. राजस्थानी लोकोक्तियां	डा० कन्हैया लाल सहल
५१. राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद	डॉ० कन्हैया लाल सहाय
५२. घाघ और भड्डरी की कहावतें	श्रीकृष्ण शुक्ल
५३. मराठी साहित्य का इतिहास	कृष्णलाल शरसोदे
५४. तारीख जबान ए उर्दू	डा० मसूदहसन
५५. उर्दू साहित्य परिचय	हरिशंकर शर्मा
५६. उर्दू साहित्य का इतिहास	डा० रामबाबू सक्सेना
५७. जीवन विहार	काका कालेलकर
५८. भारतीय रीति-रिवाज	रत्नभानु सिंह नाहर
५६. हिन्दुओं के त्योहार	कुं० कन्हैया जु
६०. राजपूताना का इतिहास	गौरीशकर हीराचंद झा

६१. बीकानेर राज्य का इतिहास — गोरीशंकर हीराचन्द झा
६२. हमारा राजस्थान — पृथ्वी सिंह मेहता
६३. इतिहास प्रवेश — जयचंद्र विद्यालकार
६४. भविसयत्त कहा — धनपाल
६५. हिन्दी काव्यधारा — राहुलजी
६६. जय यौधेय — राहुल जी
६७. वृहद विष्णु पुराण (प्रदेश माहात्म्य भाग)
६८. स्कद पुराण
६९. महाभाष्य
७०. महाभारत—सभापर्व, बनपर्व, उद्योगपर्व
७१. मनुस्मृति
७२. निरुक्त (नैगमकाण्ड) दुर्गाचार्य की टीका
७३. वेदधरातल — गिरीशचन्द्र अवस्थी
७४. पाणिनिकालीन भारतवर्ष — डा० वासुदेव शरण अग्रवाल
७५. नाटक की परख — डा० खत्री
७६. हिन्दी नाटक साहित्य का विकास — डा० सोमनाथ गुप्त
७७. महापुराण पुष्पदतविरचित
७८. शब्द कल्पद्रुम काण्ड २
७९. बीसलदेव रासो — नरपति नाल्ह
८०. बालमुकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रंथ
८१. अग्रवाल जाति का इतिहास — डा० सत्यकेतु विद्यालंकार
८२. 'तारीख फरिश्ता'

1. Linguistic Survey of India — Dr. George Grierson.
2. The Legends of the Punjab Vol. 3. — Sir R. C. Temple.
3. Standard Dictionary of Folk-lore, Mythology & legends. — Funks and Wagnalls.
4. Annals & antiquities of Rajasthan — Col. Tod.
5. Encyclopedia Britanica — (History of Folk-lore)

6. Gazetteers of Districts :— Gurgaon, Rohtak, Delhi, Hissar, Karnal, Patiala (State) Jind (State)

7. Introduction to the popular religion and folklore of Northern India. — Crooke.

8. Golden Bough — Sir James Frazer.
9. Queen of the Air — John Ruskin.
10. Field songs of Chhattisgarh. — Dr. S. C. Dube.
11. Snow balls of Garhwal. — N. S. Bhandari
12. Hindi Folk songs. — A. G. Sheriff.
13. Folk songs of the Maikal Hills. — Dr. Vanier Elvin.
14. Folk-tales from Mahakaushal. — Dr. Vanier Elvin
15. A History of Maithili literature. — Dr. J. K. Misra.
16. Dictionary English-Sanskrit — William Morrier.
17. 'Fables choroies' — La Fountain
18. Old Ballad — Frank Sidgwick
19. The English Ballad. — Robert Graves.
20. The Oxford book of Ballads. — Arthur Quiller Couch.
21. Ballads & songs of the peasantry of England. — Robert Bell.
22. Lyrical Ballads. — Thomas Hutchunson.
23. The Ballads. — M. J. Hodgart.
24. Geography of early Budhism. — B. C. Law.
25. Census report 1954 paper No. 1 Punjab Tables.

26. The origin & development of Bengali language. — Dr. S. K. Chatterji.
27. Downfall of Hindu India — C. V. Vaidya.
28. Epigraphia Indica
29. Ina Akbari — Bussman.
30. Ellit's History of India as told by its own historians.
31. Epigraphia Indo-Muslemica — Gulam Yazdani.
32. The ocean of story — Penger.
33. The Rajas of the Punjab

पत्रिकाएँ

१. जनपद
२. मधुकर
३. सरस्वती
४. विशालभारत
५. सम्मेलन पत्रिका (लोकवार्ता-विशेषांक)
६. भारतीय साहित्य (हिन्दी-विद्यापीठ आगरा)
७. चांद
८. हंस
९. आजकल
१०. नागरी प्रचारिणी पत्रिका
११. हिन्दुस्तानी पत्रिका
१२. हिन्दी अनुशीलन पत्रिका, प्रयाग-विश्वविद्यालय
१३. राजस्थानी लोकवार्ता
१४. जनवाणी
15. Modern Review
16. Indian Antiquary
17. Man in India--Folk-lore number.
18. Indian Historical Quarterly—Calcutta.
19. General of Asiatic Society of Bengal (Files).
20. General of Royal Asiatic Society—London.